रवीन्द्रनाथ की कहानियाँ

अनुवादक
रामसिह तोमर

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

सूची

परिचय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियों के संकलन का देवनागरी लिपि मे प्रकाशन तथा भारत की प्रधान भाषाओ में उनके अनुवाद को प्रकाशित करने की साहित्य अकादमी की योजना की वे सभी भारतीय प्रशंसा करेंगे जो श्रेष्ठ साहित्य का आदर करते हैं।

रवीन्द्रनाथ की कहानियो ने उन्हे विश्व के कहानी-कला के श्रेष्ठतम शिल्पियों मे स्थान प्रदान किया है, अत: उनकी कहानियो की प्रमुख विशेषताओ की समीक्षा करना रोचक होगा। किन्तु ऐसा करने के पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि कहानियाँ लिखना ही उनके जीवन का प्रधान कार्य नही था और वे उन धाराओं मे से, जिनमें होकर उनकी बहुमुखी प्रतिभा व्यक्त हुई है, केवल एक का प्रतिनिधित्व करती हैं। यहाँ प्रस्तुत की गई कहानियों के उचित मूल्यांकन की दृष्टि से प्रारम्भ मे ही उनके लेखक के व्यक्तित्व, उसकी उपलब्धियों की प्रकृति तथा सीमाओ को मोटे तौर पर समझ लेना सहायक होगा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर संसार के महानतम साहित्यकारों में से हैं। यह तो सर्वविदित है कि गीति-कवि की दृष्टि से किसी युग तथा देश मे उनकी बराबरी करने वाला दूसरा कवि नही हुआ, किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि अन्य अनेक काव्य-रूपो की रचना मे भी उन्होने श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त किया। महाकाव्य को छोड़कर साहित्यिक अभिव्यक्ति का ऐसा कोई प्रकार नही है जिसके प्रयोग मे उन्होंने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त न की हो। कवि के रूप मे तो वे महान् थे ही, अपने उपन्यासो मे, कहानियो मे, गद्य-पद्य दोनो में लिखे गए सामाजिक नाटकों तथा रूपको मे, सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक और धार्मिक विषयों पर लिखे अपने निबन्धो मे, अपने अनेक सरस पत्रो मे, प्रभावशाली साहित्यिक समीक्षाओं में, बच्चो के लिए लिखी आकर्षक पुस्तको मे, आत्म-परिचयात्मक संस्मरण आदि मे भी वे कम नही है। सृजनात्मक प्रेरणा उनमे इतनी बलवती और आग्रहशील थी कि साठ वर्ष से भी अधिक समय तक निरतर साहित्य-रचना के पश्चात् भी वह क्षीण नही हुई। उनके रचे साहित्य की प्रचुरता और विविधता

अद्‌भुत है, किन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस परिमाण में से अधिकाश बहुत ही उच्चकोटि का है। सुदीर्घ जीवन-व्यापी अपनी कला के सतत अभ्यास ने उसे क्षीण और रसहीन बनाने की अपेक्षा उल्टे अनुपम सौंदर्य से युक्त नई कृतियाँ प्रदान की।

लेखक के रूप मे रवीन्द्रनाथ की पहुँच और गहराई उनके समृद्ध और उच्च व्यक्तित्व के केवल एक पक्ष को ही प्रकट करती है, और उनके विषय मे यह कहना नितात सत्य है कि अपनी प्रसिद्ध कविता के सम्राट् शाहजहाँ के समान वह अपनी रचनाओं से भी महान् है। उनकी महत्ता तथा हमारे समय और भविष्य के लिए उनके महत्त्व को पूर्ण रूप से तब तक समझना संभव नही होगा जब तक हम उनके विविध कार्यो को एक-दूसरे के साथ मिलाकर नही देखेगे और उनके जीवन को एक पूर्ण प्रकाशमान नक्षत्र के रूप मे नही देखेगे। उनकी आरभिक अवस्था का समय ऐसा था जब उन्होने अपनी पारि-वारिक जायदाद की देख-भाल करते हुए पद्मा नदी के किनारे स्थित बंगाल के गाँव के आकर्षक वातावरण मे जन-समाज की आँखों से ओझल रहकर एकांत जीवन बिताना पसंद किया था, जहाँ वे गरीबो के घरो के नीरव जीवन-प्रवाह का सहानुभूति से निरीक्षण करते थे और विविध प्रकार की साहित्य-रचना करके, विशेषकर कविताओ और कहानियो की रचना मे सारा दिन व्यतीत करते थे। किन्तु उनके लिए वह जीवन बहुत दिन तक नही टिक सकता था, क्योकि उनके अन्दर की शक्ति उन्हे निरतर चिर नूतन कार्यो के लिए प्रेरित कर रही थी और उन्हे बीच मे आराम करने के लिए नही छोड़ सकती थी। इसलिए हम उन्हे सदा आगे बढता पाते है और अपने लिए किसी एक काम या सफलता पर सतोष करके बैठे नही देखते। उस समय के लिखे हुए पत्रो मे से एक मे हम उन्हे यह कहता हुआ पाते है कि वे विविध प्रकार के कार्य स्वीकार कर रहे थे, क्योकि वे सोचते थे कि वास्तविक महत्त्व के कार्य द्वारा ही मनुष्य अपने को पूर्ण कर सकता है। विशाल जगत् के मनुष्यों और उनके विविध क्रियाकलापो के साथ अपने को एकरूप करने की अपनी इच्छा के कारण पद्मा के किनारे के सुखमय एकात शातिपूर्ण जीवन को छोड़कर वे परिश्रम और संघर्ष के जगत् मे प्रविष्ट हुए। यह केवल एक उदाहरण है कि जब जीवन एक विशेष ढंग पर निर्बाध गति से प्रवाहित होने लगता तो वे कैसे एक प्रकार की ऊब का अनुभव करने लगते और मुडकर एक नया पथ ग्रहण कर लेते जो सृजनात्मक प्रयास के विशाल क्षेत्र मे ले जाता। उनके जीवन मे यह बार-बार घटित हुआ, और एक अध्याय बद करके नये अध्याय का आरभ करने मे, जो उनके व्यक्तित्व के अभी तक किसी

अज्ञात पहलू को प्रकट होने का स्वतंत्र अवसर प्रदान कर सकता, उन्होने कभी संकोच का अनुभव नही किया।

रवीन्द्रनाथ की सृजनात्मकता की किसी एक अभिव्यक्ति को अलग करके देखना भूल है। उन्होंने जो कुछ किया उसमे से—उनकी साहित्यिक कृतियों मे, उनकी गीति-रचनाओ मे, विश्वभारती तथा ग्राम-संगठन-केन्द्र और श्री निकेतन के कार्य मे, हर प्रकार के अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध उनके संघर्ष में, स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष मे उनके योगदान मे, संसार के लोगो के समीप भारत का संदेश पहुँचाने के लिए पूर्व और पश्चिम मे की गई उनकी अनेक यात्राओ मे, संसार के प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाते प्रत्येक देश के उच्चतम व्यक्तियो के साथ उनके घनिष्ठ संपर्क मे, और अन्य अगणित कार्यो मे— एकता और सामंजस्य का स्पष्ट स्वर सुनाई पडता है। वह प्रधान और केन्द्रीय स्वर कहाँ से आया यह हम अभी देखेंगे। एक व्यक्ति का इतने प्रकार की प्रतिभाओ से सम्पन्न होना एक अद्भुत वात है और उनमे इन शक्तियों का जो सम्मिलित सामंजस्य था वह और भी दुर्लभ वात है। उनके व्यक्तित्व के विभिन्न अगो ने एक-दूसरे से जैसे अभिन्न रूप मे मिलकर उनके व्यक्तित्व को सर्वांग पूर्णता प्रदान की थी। जो भी कार्य उन्होने किये अथवा अपने हाथ मे लिये, जैसा कि हम स्पष्ट करने की चेष्टा करते आ रहे है, वे विविध, विभिन्न तथा प्राय. प्रभावशाली महत्त्व के थे। किन्तु वे उन्हे इतनी शांति के साथ तथा ऐसे सलीके और अधिकार के साथ करते कि दर्शक उन्हें विलकुल सरल समझ वैठता था—और यह भूल जाता था कि उनके पीछे प्राय. जीवन-भर की तैयारी थी। निरन्तर कार्य मे लगे रहने पर भी इस महापुरुप को नीरवता और विश्राम का जो वातावरण घेरे हुए दिखता उसका ध्यान आते ही आश्चर्य होने लगता है। उनकी भावनाएँ, निजी जीवन की संकीर्ण सीमाओ मे नही, अपितु विश्व-भर की मानवता मे वसती थी; और उनमें मानवीय भाव-जगत् और मानवीय जीवन की महत्त्वपूर्ण गतिविधियो के प्रति आश्चर्यजनक संवेदनशीलता थी। फिर भी उनका चित्त और व्यक्तित्व अविचलित रहता था।

अपने आत्म-परिचय के एक सुन्दर उद्धरण मे उन्होने उस विश्वास और आदर्श के रहस्य से हमे परिचित कराया है जिसने जीवन मे उन्हें प्रेरणा दी, उनका पथ-प्रदर्शन किया और उनके नाना कार्यो को यह समन्वय प्रदान किया। मैं उसको यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, "मैंने इस पृथ्वी को प्रेम किया है, महत्ता के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुकाया है, मैंने मुक्ति की कामना की है—उस मुक्ति की जो परमात्मा के समक्ष आत्म-समर्पण मे आती है। उसमे निहित मानव-सत्य मे

मैंने विश्वास किया है, वह सदा मानव-हृदय में निवास करता है। मैं अपनी बाल्यावस्था से साहित्य-साधना बड़ी लगन से करता आ रहा हूँ, मैं उसके क्षेत्र से परे पहुँच गया हूँ, और मैंने यथाशक्ति अपने समस्त कृतित्व और त्याग को परमात्मा के प्रति नैवेद्य के रूप मे एकत्रित किया है। यदि बाहर से मुझे विरोध मिला है तो गहन आंतरिक संतोष से मैं पुरस्कृत भी हुआ हूँ। मैं उस पवित्र तीर्थ, इस पृथ्वी पर आया हूँ। यहाँ प्रत्येक युग और देश मे मानव-इतिहास के केन्द्र मे उसका ईश्वर रहता है। उसी ईश्वर की वेदी के चरण तले मैं ध्यानमग्न होकर बैठा हूँ, और अहकार और भेद-बुद्धि से मुक्त होने के कठिन प्रयत्न मे निरंतर लगा रहा हूँ।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो कुछ लिखा तथा जो कुछ किया उस सबमे यही आदर्श उन्हे प्रेरित कर रहा था। अपने देशवासियो के लिए जो सर्वोत्तम देन वे दे सकते थे उसे वे अपनी साहित्य-रचना तथा अपने अनुपम, सुन्दर और उदात्त जीवन की अमूल्य विरासत के रूप मे छोड गए है। उनका मस्तिष्क सारे संसार के लिए उन्मुक्त था। वह मस्तिष्क जहाँ "सारा विश्व एक ही नीड मे एक साथ समा सकता था।" अपनी उपलब्धियो की महत्ता और अपने व्यक्तित्व की महिमा के फलस्वरूप उन्होने अपने युग पर अधिकार किया और अपनी जाति के लोगो के जीवन के सभी पहलुओ को प्रभावित किया। उन्होने उनको शिथिलता और मिथ्या आत्म-संतोष से बचाने का प्रयत्न किया, और कर्म, आत्म-विश्वास और सत्य के निर्भय अनुगमन द्वारा पूर्णता और सुख का मार्ग दिखाया। परन्तु उनका हृदय केवल देशवासियो के ही लिए नही वरन् सम्पूर्ण मानवता के लिए अर्पित था। वे जीवन के पथो के पथिक थे और विषाद और कुरूपता के बीच सौंदर्य की खोज करते और उसके गीत गाते थे। और ऐसे संसार को मानव-धर्म का उपदेश दे रहे थे जिसके अमानवीय हो जाने का भय था। ये सब बातें जर्मन दार्शनिक काउंट हेरमन्न केयसेरलिंग के मन मे रही होंगी, जब सन् १९३१ मे 'गोल्डन बुक अव् टैगोर' मे उन्होने टैगोर की प्रशंसा करते हुए लिखा था। उसके कुछ स्मरणीय शब्दो को मैं उद्धृत करता हूँ . "कई शतियो तक उनके समान हमारी पृथ्वी पर और कोई नही हुआ · वे एक राष्ट्र के निर्माता हे···मैं अपने परम मित्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जितनी प्रशंसा करता हूँ उतनी और किसी जीवित व्यक्ति की नही करता, क्योकि वे सर्वाधिक विश्वजनीन हैं, सबसे अधिक विशाल और जहाँ तक मुझे ज्ञात है सबसे अधिक पूर्ण मानव है।"

: २ :

अब हमे रवीन्द्रनाथ की कहानियों को देखना चाहिए। कहानियों को लेकर उनके साहित्यिक स्रोत खोजना या प्रभाव की खोज करना व्यर्थ होगा, क्योकि अपनी कहानियो में रवीन्द्रनाथ अनुपम हैं। बंगाल मे कहानी-कला के क्षेत्र मे उनसे पहले कोई नही था और किसी विदेशी लेखक का उन पर कोई प्रभाव नही पड़ा। अपनी कहानियों मे वे नितात और अद्भुत ढग से स्वयं है। यथार्थ मे प्रवेश करने की सूक्ष्म दृष्टि से समन्वित उनकी सजीव कल्पना, सार तत्त्वो को ग्रहण करने की क्षमता, अतिशयोक्ति और भावुकता से दूर रहने की प्रवृत्ति, उनकी विशाल मानवता, अनृत और अन्याय के प्रति उनकी असहिष्णुता तथा उनकी अनुपम रचनात्मक क्षमता, आदि उनकी प्रतिभा के विशिष्ट गुणों के प्रदर्शन की दृष्टि से उनकी कहानियाँ केवल उनकी कविता से पीछे है। और फिर वे उस दृष्टि से भी रोचक हैं कि उनमे उनके आस-पास के वातावरण तथा उन विचारो और भावो तथा उन समस्याओ की झलक मिलती है, जिन्होंने उनके जीवन मे समय-समय पर उनके मन को प्रभावित किया।

गल्पगुच्छ की तीन जिल्दों मे तीन-चार कहानियो को छोड़कर उनकी सब कहानियाँ सग्रहीत है; जिनकी संख्या ८४ है (**से,** और **गल्पसल्प** को मैं छोड देता हूँ; क्योकि वे ऐसी कल्पित, तारतम्यहीन और रेखाचित्रात्मक है कि वे कहानियो की सीमा मे नही आ सकती)। इनमें से आधी कहानियाँ सन् १८९१ और १८९५ के बीच मे लिखी गई जो उनके रचनात्मक जीवन का पहला महान् काल था, जिसे साधारण रूप से **साधना**-काल कहा जाता है। यह नाम इसी नाम के मासिक पत्र के आधार पर दिया गया है, जिसके सम्पादक रवीन्द्रनाथ ठाकुर थे। शेप कहानियाँ समय-समय पर लिखी जाती रही, कभी-कभी कई वर्षो के अन्तर से।

बाद का सबसे बडा गल्प-समूह—सात सन् १९१४ मे तथा तीन १९१७ मे—उस युग से सम्बन्धित है जो **सबुज पत्र**-काल कहलाता है और जो सामान्यत: उनका सर्वोत्तम रचना-काल माना जाता है। इस काल में वे अपनी रचनाएँ प्राय: **सबुज पत्र** (हरे पत्ते) नामक मासिक पत्र मे छपाते थे, जिसका सम्पादन प्रमथ चौधुरी करते थे। प्रस्तुत संग्रह की प्रथम ग्यारह कहानियाँ प्रारभिक तथा सबसे बड़े गल्प-समूह से सम्बन्धित है, दूसरी छ कहानियाँ १८९८ और १९११ के बीच मे प्रकाशित हुई थी और शेप चार **सबुज पत्र**-काल से सम्बन्ध रखती है। अंतिम कहानी **पात्र और पात्री** सन् १९१७ मे प्रकाशित हुई थी।

मैं उनके जीवन के उस वसंत काल का उल्लेख कर चुका हूँ जब वे प्राय.

सिलाइदा, पातीसार, शाजादपुर आदि गाँवों में रहकर अपनी पारिवारिक जायदाद की देख-भाल कर रहे थे, जिसकी अत्यन्त सुन्दर झाँकियाँ 'छिन्न पत्रों' में मिलती है। ग्रामीण बंगाल के इसी वातावरण मे इनकी प्रारंभिक कहानियाँ लिखी गई और उनमे से कई का प्रारभ हम इन अनुपम पत्रो मे खोज सकते है। अपनी समस्त कहानियो मे रवीन्द्रनाथ को ये प्रारभिक कहानियाँ सबसे अधिक प्रिय थी। वे प्रायः कहा करते थे कि इनमे विचारो की ऐसी ताजगी और निरीक्षण की ऐसी सिधाई है जो उनमे वर्णित वातावरण तथा लेखक की यौवनावस्था के फलस्वरूप उन्हे मिली है और जो, (उन्होने खेद-पूर्वक कहा) ज्यो-ज्यो वे वृद्ध होते गए, निरन्तर बढते गए और उत्तरदायित्वो से उत्पन्न चिन्ताओ और समस्याओ का भार ज्यो-ज्यो बढता गया त्यो-त्यो विलीन होती गई। अपने बाद के जीवन में जब इन कहानियो को वे पढते तो वे अनुभव करते थे मानो धरती मे एक शालीनता चली गई हो। सन् १९३२ मे इस विषय पर लिखे हुए एक पत्र मे वे कहते है : "जब मैं बगाल के गाँवो मे प्रकृति के सामने उपस्थित हुआ तो मेरे दिन प्रसन्नता से उमड पडे। वह हर्ष इन सरल, अनलंकृत कहानियो मे प्रवाहित है··· ··ग्रामीण बगाल के उस स्नेहपूर्ण आतिथ्य से अब मैं बहुत दूर चला आया हूँ, और इसका परिणाम यह हुआ है कि मोटर-कार मे सवार मेरी कलम अब कभी साहित्य के उन शीतल छायामय हरे मार्गो से नही चलेगी।"

इन प्रारभिक कहानियो की प्रकृति का अनुमान उनकी उत्पत्ति के विषय मे रवीन्द्रनाथ के दिये हुए अपने वर्णन से हो सकेगा। २५ जून १८९५ को एक पत्र मे वे शाजादपुर से लिखते है, "बैठा हुआ धीरे-धीरे मैं एक कहानी साधना के लिए लिख रहा हूँ, मेरे आस-पास के प्रकाश, छाया और रंग मेरे शब्दो मे घुले जा रहे है। दृश्य, पात्र और घटनाएँ जिनकी मैं अभी कल्पना कर रहा हूँ, उन्हे यह सूर्य, वर्षा, नदियाँ और नदी-किनारे के सरकण्डे, वर्षा ऋतु का आकाश, यह छायापूर्ण गाँव, वर्षा से प्लावित अनाज के प्रसन्न खेत जीवन और वास्तविकता प्रदान करने तथा उनकी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने का काम करते है।·· यदि मैं अपनी कहानी के पृष्ठो मे अपने पाठक के सामने वर्षा ऋतु के मेघरहित उस दिन के अपने सामने से बहते हुए छोटे स्रोत के धूप मे चमकते हुए जल को उपस्थित कर सकता, यदि मैं गाँव के दृश्य की इस शान्ति तथा इन पेडो की छाया को तथा इस सरिता-तट को अपने पूर्ण रूप मे पाठकों के सामने रख सकता तो वे क्षण-भर मे मेरी कहानी के सत्य को पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकते।"

पात्र प्रधानतः ऐसे है जो उन्हे गाँवो की यात्रा करते समय मिले थे—

नर-नारियाँ, लडके-लडकियाँ और वच्चे—जीवन के निम्न स्तर से आने वाले लोग—और घटनाएँ ऐसी है जो गरीव लोगों की जीवन-कहानी मे प्राय. मिलती है। इन सामान्य लोगो के जीवन-नाटक को उन्होंने असीम सहानुभूति और सद्भावना के साथ देखा था, और वास्तविकता से रत्ती-भर भी हटे विना ऐसे आकर्षक ढंग से चित्रित किया है कि हम दया, क्रोध, हर्ष और विषाद से अभिभूत हो जाते हैं। उदाहरण के लिए **पोस्टमास्टर** की रतन को लीजिये। वारह-तेरह वर्ष की यह अनाथ वालिका, जिसकी चिंता करने वाला तथा जिसे अपना कहने वाला कोई नही था, पोस्टमास्टर के लिए सब तरह के काम करती है। शहर मे पले उलापुर-जैसे सुदूरवर्ती गाँव मे नियुक्त पोस्टमास्टर को निर्वासिन के जीवन की उदासीनता मे उसके सहवास के कारण कुछ राहत मिलती है। फिर वह वीमार हो जाता है और छोटी अपढ लड़की रतन के ऊपर उसकी सेवा करने तथा स्वस्थ वनाने का भार आ पड़ता है। अचानक वह नारी के रूप मे सामने आती है, वह उसकी देख-भाल उसी प्रकार करती है जैसे माता अपने वच्चे की। वह अच्छा होकर उठ वैठता है। किन्तु देहाती जीवन से वह थक जाता है और वहाँ से चले जाने का निश्चय करता है। वह किसी प्रकार भी कठोर-हृदय नही है, अपने ढंग से वास्तव मे वह रतन के प्रति सदय है, और उसे छोड़ने के कारण वह क्षणिक पश्चा-ताप का भी अनुभव करता है। किन्तु उसकी सदय उदासीनता और रतन की गहन आसक्ति तथा संशय-रहित निर्भरता मे कितनी महान् विषमता है। जव वह अपना काम छोडकर अपने घर कलकत्ता चला जाता और कलकत्ता ले चलने की भीरु प्रार्थना को अनुचित समझकर अस्वीकार कर देता है तो उसकी मूक पीड़ा की करुणा हमारे हृदय को अभिभूत कर लेती है और गृह-विहीन वालिका को रवीन्द्र-नाथ के पात्रो मे एक निश्चित स्थान प्रदान करती है। 'पोस्टमास्टर' इसका सजीव उदाहरण है कि एक सच्चा कलाकार साधारण उपकरणो को लेकर कैसी सृष्टि कर सकता है। कहानी मे केवल दो पात्र है, जिनमे से वास्तविक जीवन मे कोई भी विशेष ध्यान देने योग्य नही है। वातावरण मलेरिया-ग्रस्त देहाती वगाल का एक सुदूर कोना है। कहानी के प्रवाह में वहुत कम घटनाएँ है, वास्तव मे ऐसा कुछ घटित नही होता जिसे 'हृदय-द्रावक घटना' कहा जा सके। तो भी वह हमे आकर्षित कर लेती है, और रतन के निराश दु.ख का चित्र हमारे मन पर अंकित हो जाता है।

एक अन्य कारण से भी हम इन कहानियों की प्रशंसा करने को वाध्य होते है। उनके लिखे जाने के समय तक साधारण नर-नारियो, विशेष रूप से गरीवो तथा निम्न स्तर के लोगो ने हमारे साहित्य मे प्रवेश नही पाया था। रवीन्द्रनाथ

की कहानियो मे पहली वार उन्हे अपना उचित स्थान मिला; और यह लक्ष्य करने की वात है कि उनसे पहले ही नही उनके वाद भी हमारे साहित्य में कही भी उनको इससे अधिक सहानुभूति तथा इससे अधिक सही जानकारी के साथ चित्रित नही किया गया। कभी-कभी रवीन्द्रनाथ पर यह मिथ्या आरोप लगाया जाता है कि उनकी कृतियाँ केवल विशेष वर्ग के लोगों का ध्यान रखती है; सामान्य जन-समुदाय का नही, इस धारण का खंडन करने के लिए उनकी कहानियो पर दृष्टि डालना ही पर्याप्त होगा। उनकी कहानियो मे विविध प्रकार के पात्र मिलते हैं, जैसे, सभ्रात वद्राओन घराने की शाहजादी तथा वगाली ग्रामीण लड़कियाँ गिरि-वाला तथा मृण्मयी, नयनजोड तथा शनियाड़ी-जैसे सभ्रात वंशो के व्यक्ति तथा निम्न रुइ-परिवार के सदस्य, कलकत्ता की सडको पर अंगूर तथा सूखे फल वेचता हुआ अफगानिस्तान का कावुलीवाला और वरिच मे कपास-कर की वसूली करने वाला कर्मचारी तथा समाज के नाना स्तरो के अनेक पात्र। सच तो यह है कि वे हर प्रकार के आदमी मे रुचि रखते थे, कोई भी मानव उनके लिए पराया नही था। किन्तु सामान्य निरीह जनता का इन कहानियों को छोडकर साहित्य के क्षेत्र मे और कभी ऐसा स्वागत नही हुआ, यह हम फिर दुहराते है।

उनकी कहानियो मे से **कावुलीवाला** सवसे अधिक लोकप्रिय है और यह उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे भी है। यह कुछ असाधारण भी लगता है, क्योकि लोकप्रियता प्राय सर्वश्रेष्ठता की प्रतीक नही होती। पाँच वर्ष की वंगाली लड़की मिनी ने सहज स्वाभाविकता के साथ कावुल से आए हुए इस विशालकाय आदमी को अपना मित्र वना लिया था। जव उसके घर के पास से होकर सड़क पर आराम से अपना सौदा वेचता हुआ निकलता तो वह उसे वुलाती, और वह आकर उसके पास वैठ जाता और वाते होने लगती। उनका अपना खास वँधा हुआ मजाक था, जो प्रतिदिन चलते रहने पर भी वासी नही होता था और न अपनी विशेपता खोता था। और तव एक दिन कावुलीवाले ने एक आदमी को छुरा भोक दिया जो उसे धोखा देना चाहता था। फलस्वरूप उसे जेल भेज दिया गया—'ससुराल' मे जिसको लेकर मिनी और वह मिलकर कितनी वार हँसे थे। कई वर्षो के पश्चात् जव वह लौटकर आया और 'छोटी वच्ची' को देखने गया, तो उसने सोचा था कि मिनी अभी भी वच्ची होगी। पर वह उसके विवाह का दिन था। पहले तो उसके पिता ने वाहर आकर उससे मिलने की अनुमति नही दी। इसके पश्चात् मिनी के पिता और कावुलीवाला—दो व्यक्तियो का अद्वितीय वर्णन आता है, जाति, भाषा, संस्कृति, सामाजिक स्थिति की दृष्टि से इतना विपम अंतर होते हुए भी वे एक समान भाव की शृंखला के द्वारा एक-दूसरे के समीप आ गए थे—दोनो एक

लडकी के पिता थे, जिसे वे असीम स्नेह करते थे। अपने घर मे काबुलीवाला की भी मिनी के समान एक पुत्री थी, और जितने वर्ष वह कलकत्ता की सडकों पर चक्कर लगाता रहा या जेल मे रहा एक छोटे और मैले कागज के टुकड़े पर एक नन्हे तथा मैले हाथ की छाप अपने साथ लिये रहा—अपनी नन्ही पुत्री का स्पर्श। जैसे ही उसने यह सुना और कागज का टुकडा देखा तो मिनी के पिता ने अनुभव किया कि अन्य सब स्पष्ट अतरो के होते हुए भी अपढ काबुली और सुसंस्कृत बंगाली मूल बातो मे एक समान है।

यह किसी भी प्रकार दु.खान्त कहानी नही है। फिर भी संसार के हर घर के स्नेह की प्रतीक, अजस्र वाचालता, अदम्य उत्सुकता, और प्रत्येक आदमी के साथ मित्रता स्थापित करने की स्वाभाविक क्षमता से युक्त आकर्षक नन्ही-मिनी; अपनी प्रकृति मे एक ही कोमल भाव छिपाए अफगानिस्तान के पहाड़ो से आने वाला ऊँचा, हट्टा-कट्टा फेरीवाला, अपनी पुत्री के लिए उसका स्नेह ही मिनी के लिए उसके स्नेह का कारण होता है, तथा मिनी का पिता जो अपनी प्रिय पुत्री को स्नेहपूर्ण दृष्टि से वड़ी होते हुए देखता है और उसके विवाह योग्य हो जाने पर उसकी आसन्न विदाई की कल्पना करके जिसका हृदय भारी हो जाता है, अपनी कल्पना के इन पात्रो के साथ रवीन्द्रनाथ को अद्भुत सहानुभूतिपूर्ण एकात्मता और उसके चित्रण का अतीव सौदर्य इस कहानी को उत्कृष्ट वना देते है जिसको पढकर द्रवित हुए विना नही रहा जा सकता।

प्रस्तुत सग्रह की प्रत्येक कहानी विस्तार से विचार करने योग्य है। किन्तु स्थानाभाव के कारण उनमे से केवल कुछ का ही उल्लेख-मात्र किया जा सकता है।

धूप और छाया (मेघ ओ रौद्र) यद्यपि सब मिलाकर वहुत सुगठित नही है, तथापि उसमे महान् काव्य-सौदर्य से युक्त कई अवतरण तथा नाटकीय प्रकार की घटनाएँ है। यह भी उल्लेख योग्य है कि इस कहानी मे जातीय औद्धत्य और शक्ति के दर्प के विपय मे रवीन्द्रनाथ का मत प्रदर्शित हुआ है। मनुष्य के अधिकारों का उनके जैसा सतर्क प्रहरी दूसरा नही हुआ। मानवता तथा न्याय का कही भी उल्लघन होने पर रवीन्द्रनाथ की आवाज ससार के सामने उसे प्रकट करने तथा उसकी भर्त्सना करने के लिए गूँज उठती। इस कहानी के अँग्रेज़ो से सवंधित तीन घटनाएँ तत्कालीन (१८९४) तथा आगे के अनेक दशकों के भारत की करुण परिस्थिति की परिचायिका है।

समाप्ति मे ऊधमी, लापरवाह मृण्मयी का कोमल स्नेहमयी महिला मे परिवर्तन सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तथा चित्ताकर्षक हास्य के साथ दिखाया गया है।

दृष्टिदान अपने पति के लिए अंधी पत्नी के प्रेम का वास्तविक और हृदय-द्रावक चित्र प्रस्तुत करती है जिसमें एक ओर पूर्ण निर्भरता तथा कोमलता दिखती है और दूसरी ओर ईर्ष्या, अविश्वास और झूठ को पहचानने की अद्भुत क्षमता। साधारण लेखक के हाथो मे पडकर यह कहानी भावुकता का प्रदर्शन-मात्र बन कर रह जाती और पत्नी नाटकीय ढंग से आत्म-प्रवंचना प्रदर्शित करती हुई मर जाती। रवीन्द्रनाथ के अचूक अनुपात-बोध ने उसे ऐसे पिटे-पिटे अन्त से बचा लिया है।

अतिथि का तारापद रवीन्द्रनाथ की अविस्मरणीय सृष्टियों मे से है। उसकी आयु के लडके मे जितने भी गुण संभवतया हो सकते है वे सब उसमे है और ऊपर से उसकी आकृति भी आकर्षक है। वह जिसके भी सम्पर्क मे आता है उसीको अभिभूत कर लेता है, किन्तु उनमे से किसी के भी साथ वह स्थायी संबंध स्थापित नही कर पाता। प्रकृति ने उसे एक घुमक्कड का जीवन दिया है; एक 'अतिथि' का स्वभाव जो क्षणिक आकर्षण के वश चाहे जहाँ रुक जाता है, पर सदा के लिए कही बस जाना जिसके भाग्य ही मे नही है। वह वास्तव मे प्रकृति-शिशु है, क्योंकि उसमे पूर्ण उदारता, पक्षपातहीनता और उदासीनता है, दुनिया की कोई शक्ति उसे स्थायी रूप से किसी व्यक्ति या स्थान मे आबद्ध नही कर सकती। और इसीलिए वह एक दिन चुपचाप प्रेम, स्नेह और मैत्री द्वारा पूर्ण रूप से जकड़े जाने के पहले ही न जाने कहाँ ओझल हो जाता है।

क्षुधित पाषाण, **आधी रात मे (निशीथे)**, तथा **मास्टर साहब**—प्रस्तुत संग्रह की इन तीन कहानियो मे दैवी तत्त्व का स्पर्श मिलता है। इनमे पहली निस्संदेह सुन्दरतम है। यह कल्पना की अनुपम रचना है। इसमें असीम भोगो, प्रणयो, निर्दयताओं और अतृप्त वासनाओ से युक्त एक बीते युग की कल्पना की गई है। यह कहानी सूक्ष्म दर्शन, विशद वर्णन और महान् काव्यात्मक सौंदर्य के अवतरणो से युक्त है। कहानी का केन्द्र एक मुगलकालीन विशाल भग्नावशिष्ट महल है जिसके पत्थर तक जीवित मास के भूखे जान पडते है। यह धुँधले प्रकाश वाला प्रान्त है, जहाँ अतीत वर्तमान के साथ आदान-प्रदान करता है—रंगीन प्रभामय अतीत के साथ नीरस और दो-टूक वर्तमान।

उस काल की कहानियो मे से, जिसे रवीन्द्रनाथ का मध्य युग कहा जा सकता है, **नष्टनीड़ और रासमणि का लड़का**, दोनों सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पहली १९०१ मे लिखी गई थी और दूसरी १९११ मे। **नष्टनीड़** एक विवाहिता महिला के अपने पति के चचेरे भाई के प्रति प्रेम के उदय तथा विकास का शक्तिशाली अध्ययन है। यह प्रेम अन्त मे ऐसी सर्वभक्षी वासना का रूप धारण कर लेता है

जिसका आवेग असहनीय हो जाता है। यह प्रेम अव्यावहारिक पति की बुद्धिहीन अवहेलना से अनजाने ही पल्लवित होता है—एक ऐसे पति की अवहेलना से जो सर्वथा सम्माननीय है, यद्यपि वह कुछ अंतर्मुखी वृत्ति का है। परंपरावादी लोगों को इस कहानी से धक्का लगा था, किन्तु उसमे 'निषिद्ध' प्रेम का चित्रण ऐसा संयमित, ऐसा कोमल, तथा अशुद्धता की लेश-मात्र भी व्यंजना से इतना मुक्त है कि मर्मज्ञों ने इसका उत्कृष्ट रचना कहकर स्वागत किया था और अव यह कहानी 'क्लासिक' मानी जाती है।

रासमणि का लड़का शैली के ओज की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हे। इस कहानी मे एक सभ्रात परिवार की एक दरिद्र शाखा का अभावो से जूझने का करुण संघर्ष, उसकी एकमात्र आशा—दुर्वल, भावुक तथा अपनी अद्भुत लौह इच्छा वाली किन्तु साथ ही स्नेहालु माता रासमणि के समान ही दृढ इच्छा वाले—कालीपद की मृत्यु की भयंकर विभीपिका चित्रित है।

सवुज पत्र-काल की भव्य कहानियों के न तो पात्र ही ग्रामीण जनता के लोग रह गए थे, और न उनकी पृष्ठभूमि ही ग्रामीण वंगाल के दृश्यो की रह गई थी। उनकी प्रकृति भी वदल गई थी; रवीन्द्रनाथ का मस्तिष्क अव समस्याओ मे उलझ गया था तथा वे सामाजिक अन्याओ का प्रतिकार करने मे लगे हुए थे। वगाल के मध्यम वर्ग के घरो मे स्त्रियो की दुर्दशा से उनको विशेष रूप से क्लेश हुआ और उन्हे ओजपूर्ण प्रभावशाली भापा मे इन अन्यायो को निर्भीक भाव से प्रकट करने की प्रेरणा मिली। सन् १९१४ मे प्रकाशित **स्त्री का पत्र** मे वड़े प्रशसनीय ढंग से उनके विचार प्रकट हुए हैं। पत्नी के रूप मे पीड़ा और निराशा के पंद्रह वर्षो ने यह अनुभव करने मे मृणाल की सहायता की कि एक महिला की इतिश्री केवल पत्नीपन तक ही सीमित नही है। स्वार्थपरता, झूठ और अकथनीय नीचता का भद्दा वातावरण, जो परिवार के लोगो ने अपने घर मे उत्पन्न कर रखा था और जिसके विपय में उन्होने यह सहज आशा की थी कि उनकी महिलाएँ उसे स्वाभाविक समझकर स्वीकार कर लेगी, अदम्य भावना वाली मृणाल-जैसी महिला के लिए दम घोंटने वाला था। अन्त मे पारिवारिक जीवन के घृणित कारावास से जव उसे मुक्त होने का अवसर मिला तो अवर्णनीय हर्प और मुक्ति के साथ उसने अनुभव किया कि अभी भी एक आत्मा है जिसे वह अपनी कह सकती है। अपने पति को लिखा गया उसका पत्र—यह कहानी पत्र के रूप मे ही लिखी गई है—उसके कभी न लौटने के दृढ़ निश्चय की घोपणा के साथ समाप्त होता है। यह पत्र पुरुष के उन अन्यायो, नीचताओ और निर्दयता के सम्पूर्ण इतिहास पर, एक कटु

निर्णय है, जो परपरा के रूप मे अप्रतिहत भाव से माने जाते थे तथा प्रथा के कारण पवित्र समझे जाते थे।

इस युग की अन्य अनेक कहानियो मे इस विषय के अनेक रूपान्तर मिलते है, क्योंकि समाज में महिलाओ का स्थान तथा नारी जीवन की विशेषताएँ उनके लिए गभीर चिंता के विषय थे और वे इस युग मे बराबर उनके विचारो के विषय बने रहे।

रवीन्द्रनाथ की कहानियों की पूर्ण समीक्षा के लिए विस्तृत स्थान की आवश्यकता है। उनकी कहानियो के इस अत्यत अपूर्ण पर्यवेक्षण को यही समाप्त करना उचित होगा। वास्तव मे उनकी कहानियो के परिचय की आवश्यकता नही है, वे अपने विषय मे स्वय बहुत अच्छी तरह बता सकती है। मुझे इसमें कोई संदेह नही कि अनुवाद मे भी उनके अमर सौंदर्य का कुछ भाग पाठक के हृदय का हर्ष के साथ स्पर्श करेगा, और क्योकि मानव-स्वभाव सर्वत्र एक समान है, अतः भारत के विभिन्न भागो के पाठक इन पात्रो मे—बंग-भूमि के पुत्र-पुत्रियो मे—अपने सगे-सबधियो की परिचित रूप-रेखाएँ पायँगे।

२० सितम्बर, १९५६ ——सौमनाथ मैत्र

पोस्टमास्टर

पहले-पहल काम शुरू करते ही पोस्टमास्टर को उलापुर गाँव मे आना पड़ा। गाँव वहुत साधारण था। पास ही एक नील-कोठी थी। इसलिए कोठी के स्वामी ने वहुत कोशिश करके यह नया पोस्टऑफिस खुलवाया था।

हमारे पोस्टमास्टर कलकत्ता के थे। पानी से निकालकर सूखे मे डाल देने से मछली की जो दशा होती है वही दशा इस वडे गाँव मे आकर उन पोस्टमास्टर की हुई। एक अँधेरी आठचाला[1] मे उनका ऑफिस था। पास ही काई से घिरा एक तालाव था, जिसके चारो ओर जगल था। कोठी मे गुमाश्ते वगैरह जितने भी कर्मचारी थे उन्हे अक्सर फुरसत नही रहती थी, न वे भले आदमियो से मिलने-जुलने के योग्य ही थे।

खास तौर से कलकत्ता के वावू ठीक तरह से मिलना-जुलना नही जानते। नई जगह मे पहुँचकर वे या तो उद्धत हो जाते है या अप्रतिम। इसलिए स्थानीय लोगो से उनका मेल-जोल नही हो पाता। इधर काम भी ज़्यादा नही था। कभी-कभी एकाध कविता लिखने की कोशिश करते। उनमे इस प्रकार के भाव व्यक्त करते—दिन-भर तरु-पल्लवो का कम्पन और आकाश के वादल देखते-देखते जीवन वड़े सुख से कट जाता है, लेकिन अन्तर्यामी जानते है कि यदि अरवी उपन्यास का कोई दैत्य आकर एक ही रात मे तरु-पल्लव-समेत इन सारे पेड़-पौधो को काटकर पक्का रास्ता तैयार कर देता और पक्तिवद्ध अट्टालिकाओ द्वारा वादलो को दृष्टि से ओझल कर देता तो यह मृतप्राय भद्र वशधर नवीन जीवन-लाभ कर लेता।

पोस्टमास्टर को वहुत कम तनख्वाह मिलती थी। अपने हाथो वनाकर खाना पड़ता और गाँव की एक मातृ-पितृ-हीन अनाथ वालिका उनका कामकाज कर देती थी। उसको थोडा-वहुत खाना मिल जाता। लड़की का नाम था रतन। उम्र वारह-तेरह। उसके विवाह की कोई विशेष सम्भावना नही दिखाई देती थी।

---

१ फूस के अठपहलू छप्पर से ढका वडा घर।

शाम को जव गाँव की गोशाला से कुंडलाकार धुआँ उठता, झाड़ियों मे झीगुर वोलते, दूर के गाँव मे नशेवाज वाउलों का दल ढोल-करताल वजाकर ऊँचे स्वर मे गाना छेड देता—जव अन्दर वरामदे मे अकेले वैठे-वैठे वृक्षों का कम्पन देखकर कवि-हृदय मे भी ईपत् हृत्कंप होने लगता तव कमरे के कोने मे एक टिमटिमाता हुआ दिया जलाकर पोस्टमास्टर आवाज लगाते—'रतन'।

रतन दरवाजे पर वैठी इस आवाज की प्रतीक्षा करती रहती। लेकिन पहली आवाज पर ही अन्दर नही आती। वही से कहती, "क्या है वावू, किस लिए वुला रहे हो?"

पोस्टमास्टर—तू क्या कर रही है?

रतन—वस चूल्हा जलाने ही जा रही हूँ रसोईघर मे।

पोस्टमास्टर—तेरा रसोई का काम पीछे होगा। पहले तम्वाकू भर ला!

थोड़ी देर मे अपने गाल फुलाए चिलम मे फूँक मारते-मारते रतन भीतर आती। उसके हाथ से हुक्का लेकर पोस्टमास्टर चट से पूछ वैठते, "अच्छा रतन, तुझे अपनी माँ की याद है?"

वडी लम्वी वाते है, वहुत-सी याद है, वहुत-सी याद भी नही। माँ की अपेक्षा पिता उसको अधिक प्यार करते थे। पिता की उसे थोडी-थोडी याद है। दिन-भर मेहनत करके उसके पिता शाम को घर लौटकर आते। भाग्य से उन्ही मे से दो-एक शामो की याद उसके मन मे चित्र के समान अकित है। उन्ही की वात करते-करते धीरे-धीरे रतन पोस्टमास्टर के पैरो के पास ही ज़मीन पर वैठ जाती। उसे ध्यान आता, उसका एक भाई था। वहुत दिन पहले वरसात मे एक दिन एक तालाव के किनारे दोनो ने मिलकर पेड की टूटी हुई टहनी की वसी वनाकर झूठ-मूठ मछली पकडने का खेल खेला था। अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओ की अपेक्षा इसी वात की याद उसे अधिक आती। इस तरह वाते करते-करते कभी-कभी काफी रात हो जाती। तव आलस के मारे पोस्टमास्टर को खाना वनाने की इच्छा न होती। सवेरे की वासी तरकारी रहती और रतन झटपट चूल्हा जलाकर कुछ रोटियाँ सेक लेती। उन्ही से दोनो के रात्रि-भोजन का काम चल जाता। कभी-कभी शाम को उस वृहत् आठचाला के एक कोने मे ऑफिस की काठ की चौकी पर वैठे-वैठे पोस्टमास्टर भी अपने घर की वात चलाते—छोटे भाई की वात, माँ और दीदी की वात। प्रवास मे एकान्त कमरे मे वैठकर जिन लोगो के लिए हृदय कातर हो उठता उनकी वात। जो वाते उनके मन मे वार-वार उदय होती रहती, पर जो नील-कोठी के गुमाश्तो के सामने किसी भी तरह नही उठाई जा सकती थी, उन्ही वातो को उस अपढ नन्ही वालिका से कहते उन्हे विलकुल सकोच न लगता। अन्त

मे ऐसा हुआ कि वालिका वातचीत करते समय उनके घर वालों को चिरपरिचितों के समान खुद भी माँ, दादा, दीदी कहने लगी.। यहाँ तक कि अपने नन्हे-से हृदय-पट पर उसने उनकी काल्पनिक मूर्त्ति भी चित्रित कर ली थी।

एक दिन वरसात की दोपहर मे वादल छँट गए थे और हल्का-सा ताप लिये सुकोमल हवा चल रही थी। धूप मे नहाई घास से पेड़-पौधो से एक प्रकार की गन्ध निकल रही थी; ऐसा लगता था मानो क्लान्त धरती का उष्ण नि.श्वास अगो को छू रहा हो और न जाने कहाँ का एक हठी पक्षी दोपहर-भर प्रकृति के दरवार मे लगातार एक लय से अत्यन्त करुण स्वर मे अपनी नालिश दुहरा रहा था। उस दिन पोस्टमास्टर के हाथ खाली थे। वर्षा से धुले लहलहाते चिकने मृदुल तरु-पल्लव और धूप मे चमकते-पराजित वर्षा के भग्नावशिष्ट स्तूपाकार वादल सचमुच देखने योग्य थे।

पोस्टमास्टर उन्हे देखते जाते और सोचते जाते कि इस समय यदि कोई आत्मीय अपने पास होता, हृदय के साथ एकान्त संलग्न कोई स्नेह की प्रतिमा मानव-मूर्त्ति। धीरे-धीरे उन्हे ऐसा लगने लगा मानो वह पक्षी भी वार-वार यही कह रहा हो, और मानो उस निर्जन मे तरु-छाया मे डूवी दोपहर के पल्लव-मर्मर का भी कुछ ऐसा ही अर्थ हो। न तो कोई विश्वास कर सकता, न जान पाता, लेकिन उस छोटे-से गाँव के सामान्य वेतन-भोगी उस सव-पोस्टमास्टर के मन मे छुट्टी के लम्वे दिनों मे गम्भीर सुनसान दोपहर में इसी प्रकार के भाव उदय होते रहते।

पोस्टमास्स्टर ने एक दीर्घ नि.श्वास लिया और फिर आवाज़ लगाई, "रतन!"

रतन उस समय अमरूद के पेड के नीचे पैर फैलाए कच्चा अमरूद खा रही थी। वह मालिक की आवाज सुनते ही तुरन्त दौड़ी हुई आई और हाँफती-हाँफती वोली, "भैयाजी, वुला रहे थे?"

पोस्टमास्टर ने कहा, "मैं तुझे थोड़ा-थोडा करके पढ़ना सिखाऊँगा।" और फिर दोपहर-भर उसके साथ 'छोटा अ', 'वड़ा अ' करते रहे। इस तरह कुछ दिनो मे संयुक्त अक्षर भी पार कर लिये।

सावन का महीना था। लगातार वर्षा हो रही थी। गड्ढे, नाले, तालाव सव पानी से भर गए थे। रात-दिन मेढक की टर्र-टर्र और वर्षा की आवज। गाँव के रास्तो मे चलना-फिरना लगभग वन्द हो गया था। हाट के लिए नाव मे चढकर जाना पड़ता।

एक दिन सवेरे से ही वादल खूव घिरे हुए थे। पोस्टमास्टर की शिष्या वड़ी

देर से दरवाजे के पास बैठी प्रतीक्षा कर रही थी, लेकिन और दिनों की तरह जब यथासमय उसकी बुलाहट न हुई तो वह खुद किताबों का थैला लिये धीरे-धीरे भीतर आई। देखा, पोस्टमास्टर अपनी खटिया पर लेटे हुए है। यह सोचकर कि वे आराम कर रहे है, वह चुपचाप फिर बाहर जाने लगी। तभी अचानक सुनाई पड़ा, "रतन!" झटपट लौटकर भीतर जाकर उसने कहा, "भैयाजी, सो रहे थे ?"

पोस्टमास्टर ने कातर स्वर मे कहा, "तबियत ठीक नही मालूम होती। जरा मेरे माथे पर हाथ रखकर तो देख!"

घोर वर्षा के समय प्रवास मे इस तरह बिलकुल अकेले रहने पर रोग से पीड़ित शरीर को कुछ सेवा पाने की इच्छा होती है। तप्त ललाट पर शंख की चूड़ियाँ पहने कोमल हाथ याद आने लगते है। ऐसे कठिन प्रवास मे रोग की पीड़ा मे यह सोचने की इच्छा होती है कि पास ही स्नेहमयी नारी के रूप में माता और दीदी बैठी है। और प्रवासी के मन की यह अभिलाषा व्यर्थ नही गई। बालिका रतन बालिका न रही। उसने फौरन माता का पद ग्रहण कर लिया। वह जाकर वैद्य को बुला लाई, यथासमय गोली खिलाई, सारी रात सिरहाने बैठी रही, अपने हाथो पथ्य तैयार किया और सैकड़ो बार पूछती रही, "भैयाजी, कुछ आराम है क्या ?"

बहुत दिनो बाद पोस्टमास्टर जब रोग-शय्या छोड़कर उठे तो उनका शरीर दुर्बल हो गया था। उन्होने मन मे तय किया, अब और नही। जैसे भी हो अब यहाँ से बदली करानी चाहिए। अपनी अस्वस्थता का उल्लेख करते हुए उन्होने उसी समय अधिकारियो के पास बदली के लिए कलकत्ता दरख्वास्त भेज दी।

रोगी की सेवा से छुट्टी पाकर रतन ने दरवाजे के बाहर फिर अपने स्थान पर अधिकार जमा लिया। लेकिन अब पहले की तरह उसकी बुलाहट नही होती थी। वह बीच-बीच मे झाँककर देखती—पोस्टमास्टर बड़े ही अनमने भाव से या तो चौकी पर बैठे रहते या खाट पर लेटे रहते। जिस समय इधर रतन बुलाहट की प्रतीक्षा मे रहती, वे अधीर होकर अपनी दरख्वास्त के उत्तर की प्रतीक्षा करते रहते। दरवाजे के बाहर बैठी रतन ने हजारो बार अपना पुराना पाठ दुहराया। बाद मे यदि किसी दिन सहसा उसकी बुलाहट हुई तो उस दिन कही उसका सयुक्त अक्षरो का ज्ञान गड़बड़ न हो जाये इसकी उसे आशका थी। आखिर लगभग एक सप्ताह के बाद एक दिन शाम को उसकी पुकार हुई। काँपते हृदय से उसने भीतर प्रवेश किया और पूछा, "भैयाजी, मुझे बुलाया था ?"

पोस्टमास्टर ने कहा—"रतन, मैं कल ही चला जाऊँगा।"

रतन—कहाँ चले जाओगे, भैयाजी!

पोस्टमास्टर—घर जाऊँगा।

रतन—फिर कब लौटोगे ?

पोस्टमास्टर—अब नही लौटूँगा।

रतन ने और कोई बात नही पूछी। पोस्टमास्टर ने स्वयं ही उसे बताया कि उन्होने बदली के लिए दरख्वास्त दी थी, पर दरख्वास्त नामंजूर हो गई, इसलिए वे काम छोड़कर घर वापस जा रहे हैं। बहुत देर तक दोनो मे से किसी ने और कोई बात नही की। दीया टिमटिमाता रहा और घर के जीर्ण छप्पर को भेदकर वर्षा का पानी मिट्टी के सकोरे मे टप-टप करता टपकता रहा।

बडी देर के बाद रतन धीरे-धीरे उठकर रसोईघर मे रोटियाँ बनाने चली गई। पर आज और दिनों की तरह उसके हाथ जल्दी-जल्दी नही चल रहे थे। शायद उसके मन मे रह-रहकर तरह-तरह की आशंकाएँ उठ रही थी। जब पोस्टमास्टर भजन कर चुके तब उसने पूछा, "भैयाजी, मुझे अपने घर ले चलोगे ?"

पोस्टमास्टर ने हँसकर कहा, "वाह, यह कैसे हो सकता है!" किन कारणों से यह बात सम्भव न थी, बालिका को यह समझाना उन्होने आवश्यक नही समझा।

रात-भर जागते और स्वप्न देखते हुए बालिका के कानो मे पोस्टमास्टर के हँसी-मिश्रित स्वर गूँजते रहे: 'वाह, यह कैसे हो सकता है।'

सवेरे उठकर पोस्टमास्टर ने देखा कि उनके नहाने के लिए पानी पहले से ही रख दिया गया है। कलकत्ता की अपनी आदत के अनुसार वे ताजे पानी से ही स्नान करते थे। न जाने क्यो बालिका यह नही पूछ सकी थी कि वे सवेरे किस समय यात्रा करेगे। बाद मे कही तडके ही जरूरत न पड़ जाय, यह सोचकर रतन उतनी रात मे ही नदी से उनके नहाने के लिए पानी भरकर ले आई थी। स्नान समाप्त होते ही रतन की पुकार हुई। रतन ने चुपचाप भीतर प्रवेश किया और आदेश की प्रतीक्षा मे मौन भाव से एक बार अपने मालिक की ओर देखा।

मालिक ने कहा, "रतन, मेरी जगह जो सज्जन आयँगे मैं उन्हे कह जाऊँगा। वे मेरी ही तरह तेरी देख-भाल करेगे। मेरे जाने से तुझे कोई चिंता करने की जरूरत नही है।" इसमे कोई सन्देह नही कि ये बातें अत्यन्त स्नेहपूर्ण और दयार्द्र हृदय से निकली थी, किन्तु नारी के हृदय को कौन समझ सकता है! रतन इसके पहले बहुत बार अपने मालिक के हाथों अपना तिरस्कार चुपचाप सहन कर चुकी थी, लेकिन इस कोमल बात को वह सहन न कर पाई। उसका हृदय एकाएक

उमड आया और उसने रोते-रोते कहा, "नही, नही। तुम्हे किसी से कुछ कहने की जरूरत नही है, मैं रहना नही चाहती।"

पोस्टमास्टर ने रतन का ऐसा व्यवहार पहले कभी नही देखा था, इसलिए वे अवाक् रह गए।

नया पोस्टमास्टर आया। उसको सारा चार्ज सौप देने के बाद पुराने पोस्ट-मास्टर चलने को तैयार हुए। चलते-चलते रतन को बुलाकर वोले, "रतन, तुझे मैं कभी भी कुछ दे नही सका, आज जाते समय कुछ दिये जा रहा हूँ, इससे कुछ दिन तेरा काम चल जायगा।"

तनख्वाह मे जो रुपये मिले थे उनमे से राह-खर्च के लिए कुछ वचा लेने के बाद उन्होने बाकी रुपये जेव से निकाले। यह देखकर रतन धूल मे लोटकर उनके पैरो से लिपटकर वोली, "भैयाजी, मैं तुम्हारे पैरो पडती हूँ, मेरे लिए किसी को कुछ चिन्ता करने की जरूरत नही।" और यह कहते-कहते वह तुरन्त वहाँ से भाग गई।

भूतपूर्व पोस्टमास्टर दीर्घ निःश्वास लेकर हाथ मे कारपेट का वैग लटकाए, कन्धे पर छाता रखे, कुली के सिर पर नीली-सफेद धारियो से चित्रित टीन की पेटी रखवाकर धीरे-धीरे नाव की ओर चल दिए।

जब वे नौका पर सवार हो गए और नाव चल पडी, वर्षा से उमडी नदी धरती की छलछलाती अश्रु-धारा के समान चारो ओर छलछल करने लगी, तव वे अपने हृदय मे एक तीव्र व्यथा अनुभव करने लगे। एक साधारण ग्रामीण वालिका के करुण मुख का चित्र मानो विश्व-व्यापी बृहत् अव्यक्त मर्म-व्यथा प्रकट करने लग गया।

एक वार बड़े जोर से उनकी इच्छा हुई कि लौट जायँ और जगत् की गोद से वचित उस अनाथिनी को साथ ले आयँ। लेकिन तव तक पाल मे हवा भर गई थी, वर्षा का प्रवाह और भी तेज हो गया था। गाँव को पार करने पर नदी-किनारे का श्मशान दिखाई दे रहा था और नदी की धारा के साथ बढते हुए पथिक के उदास हृदय मे यह सत्य उदित हो रहा था—'जीवन मे न जाने कितना वियोग है, कितना मरण है, लौटने से क्या लाभ! संसार मे कौन किसका है!'

लेकिन रतन के हृदय मे किसी भी सत्य का उदय नही हुआ। वह उस पोस्ट ऑफिस के चारों ओर चुपचाप आँसू बहाती चक्कर काटती रही। शायद उसके मन मे हल्की-सी आशा जीवित थी कि हो सकता है, भैयाजी लौट आयँ। आशा के इसी वन्धन मे बँधी वह किसी भी तरह दूर नही जा पा रही थी।

हाय रे बुद्धिहीन मानव-हृदय ! तेरी भ्रान्ति किसी भी तरह नही मिटती। युक्ति-शास्त्र का तर्क बड़ी देर बाद मस्तिष्क में प्रवेश करता है। प्रबल-से-प्रबल प्रमाण पर भी अविश्वास करके मिथ्या आशा को अपनी दोनो बांहो से जकडकर तू भरसक छाती से चिपकाए रहता है। अन्त में एक दिन सारी नाड़ियाँ काटकर, हृदय का सारा रक्त सोखकर वह निकल भागती है। तब होश आते ही मन किसी दूसरी भ्रान्ति के जाल मे बँध जाने के लिए व्याकुल हो उठता है।

एक रात

सुरवाला के संग एक ही पाठशाला मे पढा हूँ, और वउ-वउ[1] खेला है। उसके घर जाने पर सुरवाला की माँ मेरा बडा दुलार करती और हम दोनो को साथ विठाकर आपस मे कहती, 'वाह, कितनी सुन्दर जोडी है!'

छोटा था, किन्तु बात का अभिप्राय प्राय. समझ लेता था। सुरवाला पर अन्य सर्वसाधारण की अपेक्षा मेरा कुछ विशेष अधिकार था, यह धारणा मेरे मन में वद्धमूल हो गई थी। इस अधिकार-मद से मत्त होकर उस पर मै शासन और अत्याचार न करता होऊँ, ऐसी बात नही। वह भी सहिष्णुभाव से हर तरह से मेरी फरमाइश पूरी करती और दण्ड वहन करती। मुहल्ले मे उसके रूप की प्रशसा थी, किन्तु वर्बर वालक की दृष्टि मे उस सौदर्य का कोई महत्त्व नही था—मै तो बस यही जानता था कि सुरवाला ने अपने पिता के घर मे मेरा प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए ही जन्म लिया है, इसीलिए वह विशेप रूप से मेरी अवहेलना की पात्री है।

मेरे पिता चौधुरी जमीदार के नायब थे। उनकी इच्छा थी, मेरे काम करने योग्य होते ही मुझे जमीदारी-सरिश्ते का काम सिखाकर कही गुमाश्ता-गिरी दिला दे। किन्तु, मै मन-ही-मन इसका विरोधी था। हमारे मुहल्ले के नीलरतन जिस तरह भागकर कलकत्ता मे पढना-लिखना सीखकर कलक्टर साहव के नाजिर हो गए थे उसी तरह मेरे जीवन का लक्ष्य भी अत्युच्च था—'कलक्टर का नाजिर न वन सका तो जजी अदालत का हेड क्लर्क हो जाऊँगा', मैने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था।

मै हमेशा देखता कि मेरे पिता इन अदालतजीवियो का वहुत सम्मान करते थे—अनेक अवसरो पर मछली-तरकारी, रुपये-पैसे से उनकी पूजार्चना करनी

---

१ छोटी वालिकाओ का खेल, जिसमे वे बहू के समान सजकर, घूँघट निकाल गृहिणी का अभिनय करती है।

पडती यह बात भी मैं बाल्यावस्था से ही जानता था; इसलिए मैंने अदालत के छोटे कर्मचारी, यहाँ तक कि हरकारों को भी अपने हृदय मे बडे सम्मान का स्थान दे रखा था। ये हमारे बंगाल के पूज्य देवता थे, तेंतीस कोटि देवताओ के छोटे-छोटे नवीन संस्करण। कार्य-सिद्धि-लाभ के सम्बन्ध मे स्वयं सिद्धिदाता गणेश की अपेक्षा उनके प्रति लोगो मे आन्तरिक निर्भरता कहीं अधिक थी, अतएव पहले गणेश को जो कुछ प्राप्त होता था वह आजकल इन्हे मिलता था।

नीलरतन के दृष्टात से उत्साहित होकर मैं भी एक दिन विशेष सुविधा पाकर कलकत्ता भाग गया। पहले तो गाँव के एक परिचित व्यक्ति के घर ठहरा, उसके बाद पढाई के लिए पिता से भी थोड़ी-बहुत सहायता मिलने लग गई। पढना-लिखना नियमपूर्वक चलने लगा।

इसके अतिरिक्त मैं सभा-समितियो मे भी योग देता। देश के लिए प्राण-विसर्जन करने की तत्काल आवश्यकता है, इस विषय मे मुझे कोई सन्देह नही था। किन्तु, यह दुःस्साध्य कार्य किस प्रकार किया जा सकता है, यह मैं नही जानता था; न इसका कोई दृष्टांत ही दिखाई पड़ता था। किन्तु इससे मेरे उत्साह मे कोई कमी नही आई। हम देहाती थे, कम उम्र मे ही प्रौढ बुद्धि रखने वाले कलकत्ता वालो की तरह हर चीज का मजाक उडाना हमने नही सीखा था; इसलिए हम लोगो की निष्ठा अत्यन्त दृढ थी। हमारी सभा के कार्यकर्ता व्याख्यान देते, और हम लोग चन्दे की किताब लेकर भूखे-प्यासे दोपहर की धूप मे दर-दर भीख माँगते फिरते, सडक के किनारे खड़े होकर विज्ञापन बाँटते, सभा-स्थल मे जाकर बेंच-चौकी लगाते, दलपति के बारे मे किसी के कुछ कहने पर कमर बाँधकर मार-पीट करने पर उतारू हो जाते। शहर के लड़के हमारे ये लक्षण देखकर हमे गँवार कहते।

आया तो था नाजिर सरिश्तेदार बनने, पर मैजिनी, गैरीबाल्डी बनने की तैयारी करने लग गया।

इसी समय मेरे पिता और सुरबाला के पिता ने एकमत होकर सुरबाला के साथ मेरा विवाह कर देने का निश्चय किया।

मैं पन्द्रह वर्ष की अवस्था में कलकत्ता भाग आया था। उस समय सुरबाला की अवस्था आठ वर्ष थी, अब मैं अठारह वर्ष का था। पिता के अनुसार मेरे विवाह की आयु धीरे-धीरे निकली जा रही थी। पर इधर मैंने मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि आजीवन अविवाहित रहकर स्वदेश के लिए मर मिटूँगा। मैंने पिता से कहा, 'पढाई पूरी किये बिना मैं विवाह नही कर सकता।'

दो-चार महीने के बाद ही खबर मिली कि वकील रामलोचन बाबू के साथ

सुरवाला का विवाह हो गया है। मैं तो पतित भारत की चंदा-वसूली के काम मे व्यस्त था, मुझे यह समाचार अत्यन्त तुच्छ मालूम पडा।

एन्ट्रेस पास कर लिया था, फर्स्ट ईयर आर्ट्‌स मे जाने का विचार था कि तभी पिता की मृत्यु हो पई। परिवार मे मैं अकेला नही था; माता थी और दो वहने। अतएव कॉलेज छोडकर काम की तलाश मे निकलना पडा। वहुत कोशिशों के वाद नोआखाली डिवीजन मे एक छोटे-से शहर के एक एन्ट्रेस स्कूल मे असिस्टैण्ट मास्टर का पद मिला।

सोचा, 'मेरे उपयुक्त काम मिल गया। उपदेश तथा उत्साह प्रदान करके प्रत्येक विद्यार्थी को भावी भारत का सेनापति वना दूंगा।'

काम आरम्भ कर दिया। देखा, भारतवर्प के भविष्य की अपेक्षा आसन्न इम्तहान की चिन्ता कही ज्यादा की जाती थी। छात्रो को ग्रामर और एलजेवरा के वाहर की कोई वात वताते ही हेडमास्टर नाराज हो जाते। दो-एक महीने मे मेरा उत्साह भी ठडा पड गया।

हमारे-जैसे प्रतिभाहीन लोग घर मे वैठकर तो अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते रहते हैं, पर अन्त में कर्म-क्षेत्र मे उतरते ही कन्धे पर हल का वोझ ढोते हुए पीछे मे पूँछ मरोड़ी जाने पर भी सिर झुकाए सहिष्णु भाव से प्रति-दिन खेत गोडने का काम कर सध्या को भर-पेट चारा पाकर ही सन्तुष्ट रहते है; फिर कूद-फाँद करने का उत्साह नही वचता।

आग लगने के डर से एक-न-एक मास्टर को स्कूल मे ही रहना पड़ता। मैं अकेला था, इसलिए यह भार मेरे ही ऊपर आ पडा। स्कूल के वड़े आठ-चाला से सटी हुई एक झोपडी मे मैं रहता।

स्कूल वस्ती से कुछ दूर एक वडी पुष्करिणी के किनारे था। चारो ओर सुपारी, नारियल और मदार के पेड़ तथा स्कूल से लगे आपस मे सटे हुए नीम के दो पुराने विशाल पेड छाया देते रहते।

अभी तक मैने एक वात का उल्लेख नही किया, न मैंने उसे इस योग्य ही समझा। यहाँ के सरकारी वकील रामलोचन राय का घर हमारे स्कूल के पास ही था। और उनके साथ उनकी स्त्री मेरी वाल्य-सखी सुरवाला थी, यह मैं जानता था।

रामलोचन वावू के साथ मेरा परिचय हुआ। सुरवाला के साथ मेरा वचपन मे परिचय था यह रामलोचन वावू जानते थे या नही, मैं नही जानता। मैंने भी नया परिचय होने के कारण उस विषय मे कुछ कहना उचित नही समझा। यही नहीं, सुरवाला किसी समय मेरे जीवन के साथ किसी रूप मे जुडी हुई थी, यह

वात मेरे मन मे ठीक तरह से उठी ही नही।

एक दिन छुट्टी के रोज रामलोचन वावू से भेट करने उनके घर गया था। याद नही किस विषय पर वातचीत हो रही थी, शायद वर्तमान भारतवर्ष की दुरवस्था के सम्बन्ध मे। यह वात नही थी कि वे इसके लिए विशेप चिंतित और उदास थे, किन्तु विषय ऐसा था कि तम्वाकू पीते-पीते उस पर एक डेढ़ घण्टे तक यो ही शौकिया दु.ख प्रकट किया जा सकता था।

तभी वगल के कमरे से चूडियो की हल्की-सी खनखनाहट, साडी की सरसराहट और पैरो की भी कुछ आहट सुनाई पड़ी। मै अच्छी तरह समझ गया कि जँगले की संध से कोई कुतूहलपूर्ण ऑखे मुझे देख रही है।

मुझे तत्काल वे आँखे याद हो आईं—विश्वास, सरलता और वालसुलभ प्रीति से छलछलाती दो वड़ी-वडी आँखे, काली-काली पुतलियाँ, घनी काली पलके, और स्थिर स्निग्ध दृष्टि। सहसा मेरे हृत्पिड को मानो किसी ने अपनी कड़ी मुट्ठी मे भीच लिया। वेदना से मेरा अन्तर झनझना उठा।

लौटकर घर आ गया, किन्तु वह व्यथा वनी रही। पढना-लिखना, जो भी करता किसी भी तरह मन का भार दूर न हो पाता, मन सहसा एक भारी वोझ के समान हो हृदय की शिराओ को पकड़कर झूलने लग गया।

सध्या समय मैं कुछ शांत-चित्त होकर सोचने लगा कि आखिर ऐसा हुआ क्यो! उत्तर मे मन वोल उठा, 'तुम्हारी वह सुरवाला कहाँ गई?'

मैंने प्रत्युत्तर दिया, 'मैंने तो उसे स्वेच्छा से ही छोड दिया था। वह क्या चिरकाल तक मेरे लिए वैठी रहती?'

मन के भीतर से कोई वोला, 'उस समय जिसे चाहते ही पा सकते थे अव उसे सिर पटकर मर जाने पर भी एक वार देखने तक का अधिकार तुम्हे नही मिल सकता। वाल्यावस्था की वह सुरवाला तुम्हारे कितने ही निकट क्यो न रहे, चाहे तुम उसकी चूडियों की खनक सुनते रहो, उसके वालों की सुगन्ध की महक पाते रहो, किन्तु तुम्हारे वीच मे एक दीवार वरावर वनी रहेगी।'

मैंने कहा, 'जाने भी दो, सुरबाला मेरी कौन है?'

उत्तर मिला, 'आज सुरवाला तुम्हारी कोई नही है, लेकिन सुरवाला तुम्हारी क्या नही हो सकती थी?'

सच वात है, सुरवाला मेरी क्या नही हो सकती थी। जो मेरे सवसे अधिक अंतरग, सवसे निकटवर्तिनी, मेरे जीवन के समस्त सुख-दु:ख की समभागिनी हो सकती थी—वह अव इतनी दूर, इतनी पराई हो गई है कि आज उसको देखना भी निपिद्ध है, उससे वात करना अपराध है, उसके विषय मे सोचना पाप है।

और यह रामलोचन न जाने कहाँ से आ धमका, बस दो-एक रटे-रटाए मन्त्र पढकर सुरवाला को पलक मारते ही एक झपट्टे मे धरती के और सब लोगो से छीन ले गया।

मै मानव-समाज मे किसी नई नीति का प्रचार करने नही वैठा हूँ, न समाज-भंग करने आया हूँ, बन्धन तोड़ना भी नही चाहता। मैं तो बस अपने मन का प्रकृत भाव व्यक्त कर रहा हूँ। हमारे मन मे जो भाव उदित होते है वे क्या सब-के-सब तर्कसगत होते है ? रामलोचन के घर की दीवार की आड मे जो सुरवाला विराजमान थी वह रामलोचन की भी अपेक्षा मेरी अधिक थी, यह वात मैं किसी भी प्रकार मन से नही निकाल पाता था। इस प्रकार का विचार नितान्त असंगत और अन्याययुक्त था, यह स्वीकार करता हूँ, किन्तु अस्वाभाविक नही था।

तव से और किसी भी काम मे मन को एकाग्र नही कर सका। दोपहर के समय क्लास मे जब छात्र गुनगुनाते रहते, वाहर सन्नाटा छाया रहता, हल्की उत्तप्त वायु नीम की पुष्प-मंजरियो की सुगध वहन कर लाती, तब इच्छा होती—क्या इच्छा होती नही जानता—बस, इतना कह सकता हूँ कि भारतवर्ष के इन समस्त भावी आशास्पदो के व्याकरण की भूलो का संशोधन करते हुए जीवन-यापन करने की इच्छा नही होती।

स्कूल की छुट्टी हो जाने पर अपने वड़े कमरे मे अकेले मन न लगता, किन्तु किसी सज्जन के मिलने आने पर भी असह्य लगता। सन्ध्या समय पुष्करिणी के किनारे सुपारी-नारियल के वृक्षो की अर्थहीन मर्मर ध्वनि सुनते-सुनते सोचता, 'मनुष्य-समाज एक जटिल भ्रम-जाल है। ठीक समय पर ठीक काम करना किसी को नही सूझता, वाद मे अनुपयुक्त समय पर अनुचित वासना लेकर अस्थिर होकर मर जाता है।'

'तुम्हारे-जैसा आदमी सुरवाला का पति होकर वृद्धावस्था पर्यंत वड़े सुख से रह सकता था; तुम होने तो चले थे गैरीवाल्डी, और अन्त मे हुए एक देहाती स्कूल के असिस्टैण्ट मास्टर! और रामलोचन राय वकील, जिसे विशेष रूप से सुरवाला का ही पति होना कोई खास आवश्यक नही था, विवाह के एक मुहूर्त्त पहले तक जिसके लिए जैसी सुरवाला थी वैसी ही भवशंकरी, अब निश्चित होकर विवाह करके सरकारी वकील वनकर अच्छा-खासा रोजगार करने लगा। जिस दिन दूध मे धुएँ की वू आती, वह सुरवाला को डाँट देता और जिस दिन उसका मन प्रसन्न रहता उस दिन सुरवाला के लिए गहने बनवा देता। अपनी मोटी थल-थल देह पर अचकन डाटे वह परम सतुष्ट रहता; वह कभी भी तालाव के किनारे वैठ-कर आकाश के तारो की ओर देखता हुआ आहे भरते हुए सन्ध्या नही विताता था।'

एक बड़े मुकदमे मे रामलोचन कुछ दिन के लिए बाहर गया था। अपने स्कूल भवन में मैं जिस तरह अकेला था, कदाचित् उस दिन सुरबाला भी अपने घर मे उसी तरह अकेली थी।

मुझे याद है, उस दिन सोमवार था। सवेरे से ही आकाश मे बादल छाए हुए थे। दस बजे से टप्-टप् करके वर्षा शुरू हो गई थी। आकाश की दशा देखकर हैडमास्टर ने जल्दी छुट्टी कर दी। काले-काले मेघ-खण्ड जैसे किसी विराट् आयोजन के लिए सारे दिन आकाश-भर मे गमनागमन करते घूम रहे थे। दूसरे दिन तीसरे पहर से मूसलाधार वृष्टि होनी शुरू हुई और साथ-साथ आँधी चलने लगी। ज्यो-ज्यो रात होने लगी वर्षा और आँधी का वेग भी बढने लगा। पहले पुरवैया चल रही थी, फिर उत्तर तथा उत्तर-पूर्व की ओर से हवा बहने लगी।

उस रात सोने का प्रयत्न करना व्यर्थ था। ख्याल आया, 'इस दुर्योग के समय सुरबाला घर मे अकेली है!' हमारा स्कूल-भवन उनके घर की अपेक्षा कही अधिक मजबूत था। कई बार मन मे आया,'उसे स्कूल-भवन मे बुला लाऊँ और मैं पुष्करिणी के किनारे रात्रि बिता लूँ।' किन्तु किसी भी तरह निश्चय नही कर पाया।

रात एक-डेढ पहर गई होगी कि सहसा बाढ़ आने की आवाज सुनाई पड़ी। समुद्र बढ़ा चला आ रहा था। घर से बाहर निकला। सुरबाला के घर की ओर चला। रास्ते मे अपनी पुष्करिणी का किनारा पड़ा—वहाँ तक आते-आते पानी मेरे घुटनो तक पहुँच गया था। मैं ज्यो ही किनारे पर जाकर खड़ा हुआ त्यो ही एक और तरंग आ पहुँची।

हमारे तालाब के किनारे का एक हिस्सा लगभग दस-ग्यारह हाथ ऊँचा था। जिस समय मैं किनारे के ऊपर चढा उसी समय विपरीत दिशा से एक और व्यक्ति भी चढा। व्यक्ति कौन था, यह सिर से लेकर पैर तक मेरी सपूर्ण अन्तरात्मा समझ गई थी। और उसने भी मुझे पहचान लिया था, इसमे मुझे सन्देह नही।

और तो सब-कुछ जलमग्न हो गया था, केवल पाँच-छै हाथ के उस द्वीप के ऊपर हम दोनो प्राणी आकर खड़े हुए थे।

प्रलय-काल था, आकाश मे तारो का प्रकाश नही था और धरती के सब प्रदीप बुझ गए थे—उस समय कोई बात करने मे भी हानि नही थी—किन्तु एक भी शब्द नही निकला। एक-दूसरे से कुशल प्रश्न भी नही किया।

दोनो केवल अन्धकार की ओर ताकते रहे। पैरो के नीचे गाढे कृष्णवर्ण का उन्मत्त मृत्यु-स्रोत गर्जन करता हुआ बढ चला।

आज समस्त विश्व को छोडकर सुरबाला मेरे पास आकर खड़ी थी। मुझे

छोड़कर आज सुरबाला का कोई नही था। उस कब के बीते हुए शैशव-काल मे सुरबाला किसी जन्मान्तर के बाद, किसी प्राचीन रहस्यान्धकार पर उतराती हुई इस सूर्य-चन्द्रालोकित जनाकीर्ण पृथ्वी के ऊपर मेरी ही बगल मे आकर खडी हुई थी; और आज कितने दिनो के बाद उसी आलोकमय जनपूर्ण जगत् को छोड़कर इस भयकर जन-शून्य प्रलयान्धकार मे एकाकिनी सुरबाला मेरे ही निकट आकर उपस्थित हुई। जन्म-स्रोत ने उस नवकलिका को मेरे पास लाकर फेक दिया था, मृत्यु-स्रोत ने उस विकसित पुष्प को मेरे ही पास लाकर फेका—इस समय केवल एक और लहर के आते ही धरती के इस प्रदेश से, विच्छेद के इस वृन्त से छूटकर हम दोनो एक हो जाते।

वह लहर न आवे। पति-पुत्र, घर-धन-जन को लेकर सुरबाला चिरकाल सुख से रहे। मैने इसी रात मे महाप्रलय के किनारे खड़े होकर अनन्त आनन्द का स्वाद पा लिया।

रात प्राय. समाप्त होने को आई—आँधी थम गई, पानी उतर गया—सुरबाला बिना कुछ कहे घर चली गई, मैं भी बिना कुछ कहे अपने घर चला आया। मैंने सोचा,'मैं नाजिर भी नही हुआ, सरिश्तेदार भी नही हुआ, गैरीबाल्डी भी नही हुआ, मैं एक टूटे-फूटे स्कूल का असिस्टैण्ट मास्टर रह गया, मेरे इस सम्पूर्ण जीवन मे केवल क्षण-भर के लिए एक अनन्त रात्रि का उदय हुआ था—मेरे सुदीर्घ जीवन के सारे दिन-रातो मे केवल वही एक रात मेरे तुच्छ जीवन की एक मात्र चरम सार्थकता थी।'

जीवित और मृत

: १ :

रानीहाट के जमीदार बाबू शारदाशंकर के परिवार की विधवा बहू के पितृ-कुल मे कोई नही था; एक-एक करके सब मर गए। पति-कुल में भी सचमुच अपना कहने योग्य कोई नही था, पति भी नही, पुत्र भी नही। जेठ का एक लड़का था, शारदाशंकर का छोटा पुत्र, वही उसकी आँखो का तारा था। उसके जन्म के बाद उसकी माता बहुत दिनो तक कठिन रोग से पीड़ित रही, इसलिए उसकी विधवा काकी कादम्बिनी ने ही उसका पालन-पोषण किया। पराये लड़के का पालन-पोषण करने पर उसके प्रति स्नेह का आकर्षण मानो और भी अधिक हो जाता है, क्योकि उस पर कोई अधिकार नही होता, न उस पर कोई सामाजिक दावा रहता है, बस केवल स्नेह का अधिकार रहता है। किन्तु अकेला स्नेह समाज के सामने अपने अधिकार को तर्क द्वारा प्रमाणित नही कर पाता, और वह करना भी नही चाहता, केवल अनिश्चित प्राण-धन को दुगुनी व्याकुलता से प्यार करने लगता है। विधवा की सारी रुद्ध प्रीति से इस बालक को सीचकर श्रावण की एक रात मे अकस्मात् कादम्बिनी की मृत्यु हो गई। न जाने किस कारण सहसा उसका हृत्स्पदन स्तब्ध हो गया-- बाकी सारे ससार मे समय की गति चलती रही, केवल उस स्नेह-कातर छोटे कोमल वक्ष के भीतर समय की घड़ी की कल चिरकाल के लिए बन्द हो गई।

कही पुलिस का उपद्रव न हो इस डर से बिना विशेष आडम्बर के जमीदार के चार ब्राह्मण कर्मचारी मृत देह को तुरन्त दाह-सस्कार के लिए ले गए।

रानीहाट का श्मशान बस्ती से बहुत दूर था। पोखर के किनारे एक झोपड़ी थी और उसके निकट ही एक विशाल वट वृक्ष था, विस्तृत मैदान मे और कही कुछ नही था। पहले यहाँ होकर नदी बहती थी, इस समय नदी बिलकुल सूख गई थी। उसी शुष्क जल-धारा के एक अश को खोदकर श्मशान के पोखर का निर्माण

कर लिया गया था। वर्तमान निवासी उस पोखर को ही पुण्य-स्रोतस्विनी का प्रतिनिधि स्वरूप मानते थे।

मृत देह को झोपडी में रखकर चिता के लिए लकडी आने की प्रतीक्षा में चारो जने बैठे रहे। समय इतना लम्बा मालूम होने लगा कि अधीर होकर उनमे से निताइ और गुरुचरण तो यह देखने के लिए चल दिए कि लकड़ी आने मे इतनी देर क्यों हो रही है। और विधु तथा वनमाली मृत देह की रक्षा करते बैठे रहे।

सावन की अँधेरी रात थी। सघन बादल छाए हुए थे, आकाश में एक भी तारा नही दिखता था। अँधेरी झोपडी में दोनो चुपचाप बैठे रहे। एक की चादर मे दियासलाई और बत्ती बँधी हुई थी। वर्षा ऋतु की दियासलाई बहुत प्रयत्न करने पर भी नही जली—जो लालटेन साथ थी वह भी बुझ गई।

बहुत देर चुप बैठे रहने के बाद एक ने कहा, "भाई, एक चिलम तम्बाकू का प्रबन्ध होता तो बडी सुविधा होती। जल्दी-जल्दी मे कुछ भी नही ला सके।"

दूसरे ने कहा, "मैं झट से एक सपाटे मे सब-कुछ इकट्ठा करके ला सकता हूँ।"

वनमाली के भागने के अभिप्राय को ताडकर विधु ने कहा, "मैया री! और मैं क्या यहाँ अकेला बैठा रहूँगा?"

बातचीत फिर बन्द हो गई। पाँच मिनट एक घंटे के समान लगने लगे। जो जने लकडी लेने गए थे उनको ये लोग मन-ही-मन गाली देने लगे—'वे कही खूब आराम से बैठे बाते करते हुए तम्बाकू पी रहे होंगे,' धीरे-धीरे यह सन्देह उनके मन मे दृढ होने लगा।

कही कोई आहट नही – पोखर के किनारे से झिल्लियो और मेढको की अविरल पुकार सुनाई पड रही थी। इतने मे प्रतीत हुआ जैसे खाट कुछ हिली, जैसे मृत देह ने करवट बदली।

विधु और वनमाली राम नाम जपते-जपते काँपने लगे। हठात् झोपडी मे दीर्घ नि श्वास लेने की आवाज सुनाई पड़ी। विधु और वनमाली पलक मारते झोपडी से झपटकर बाहर निकले और गाँव की ओर दौड़े।

लगभग डेढ कोस रास्ता पार करने पर उन्होने देखा, उनके बाकी दो साथी हाथ मे लालटेन लिये चले आ रहे है। वे वास्तव मे तम्बाकू पीने ही गए थे, लकडी का उन्हे कोई पता नही था, तो भी उन्होने समाचार दिया कि पेड़ काटकर लकडी चीरी जा रही है—जल्दी ही पहुँच जायगी। तब विधु और वनमाली ने झोपडी की सारी घटना का वर्णन किया। निताइ और गुरुचरण ने अविश्वास करते हुए उसे उडा दिया, और कर्तव्य त्यागकर भाग आने के लिए उन दोनो पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और डाँटने-फटकारने लगे।

अविलम्ब चारो व्यक्ति उस झोंपड़ी मे आकर उपस्थित हुए। भीतर घुसकर देखा—मृत देह नही है, खाट सूनी पड़ी है।

वे परस्पर एक-दूसरे का मुँह देखते रह गए। शायद शृगाल ले गए हो ? किन्तु आच्छादन वस्त्र तक नही था। खोजते-खोजते वाहर जाकर देखा, झोंपड़ी के द्वार के पास थोड़ी कीचड़ जमी थी, उस पर किसी स्त्री के छोटे पैरों के ताज़े चिह्न थे।

शारदाशंकर सहज आदमी नही थे, उनसे भूत की यह कहानी कहने पर सहसा कोई शुभ फल मिलेगा, ऐसी सम्भावना नहीं थी। इसलिए चारों व्यक्तियो ने खूब सलाह करके निश्चय किया कि यही खबर देना ठीक होगा कि दाह-कार्य पूरा कर दिया है।

भोर मे जो लोग लकडी लेकर आए उन्हे खबर मिली कि देर होती देखकर पहले ही कार्य सम्पन्न कर दिया गया, झोंपडी मे लकडी मौजूद थी। इस विषय मे किसी को भी सहज ही सन्देह उत्पन्न नही हो सकता—क्योकि मृत देह ऐसी कोई वहुमूल्य सम्पत्ति नही है, जिसे धोखा देकर कोई चुरा ले जायगा।

: २ :

सभी जानते है, जीवन का जब कोई लक्षण नही मिलता तब भी कई वार जीवन प्रच्छन्न रूप मे बना रहता है, और समयानुकूल फिर मृतवत् देह मे उसका कार्य आरम्भ होता है। कादम्बिनी भी मरी नही थी – सहसा न जाने किस कारण से उसके जीवन की गति बन्द हो गई थी।

जब उसकी चेतना लौटी तो देखा, चारो ओर निविड़ अन्धकार था। हमेशा की आदत के अनुसार जहाँ होती थी, उसे लगा यह वह जगह नही है। एक वार पुकारा 'दीदी'—अँधेरी झोपडी मे किसी ने उत्तर नही दिया। भयभीत होकर उठ बैठी, उसे उस मृत्युशय्या की वात याद आई! एकाएक छाती मे हुई पीडा—साँस रुकने की वात। उसकी वडी जिठानी कमरे के कोने मे बैठी चूल्हे पर बच्चे के लिए दूध गरम कर रही थी—कादम्बिनी खडी न रह सकी और पछाड़ खाकर बिछौने पर गिर पड़ी—रुँधे गले से पुकारा 'दीदी, एक वार बच्चे को ले आओ, मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है।' उसके वाद सब-कुछ काला पड गया—जैसे किसी लिखी हुई पुस्तिका पर दावात की पूरी स्याही उलट गई हो—कादम्बिनी की सारी स्मृति एवं चेतना, विश्व-ग्रन्थ के समस्त अक्षर एक मुहूर्त्त मे एकाकार हो गए। बच्चे ने उसको अन्तिम वार अपने उस मोटे प्यार-भरे स्वर मे 'काकी' कहकर पुकारा था या नही, उसकी अनन्त अज्ञात मरण-यात्रा के पथ के लिए चिर-

परिचित पृथ्वी से यह अन्तिम स्नेह पाथेय-मात्र इकट्ठा करके लाया था या नही, विधवा को यह भी याद नही आ रहा था।

पहले तो लगा, यम-लोक कदाचित् इसी प्रकार चिर-निर्जन और चिरान्धकारपूर्ण है। वहाँ कुछ भी देखने को नही है, सुनने को नही है, काम करने को नही है। केवल सदा इसी प्रकार जागते हुए बैठे रहना पड़ेगा।

उसके पश्चात् जब मुक्त द्वार से एकाएक वर्षा-काल की ठंडी हवा का झोका आया और वर्षा के मेढको की पुकार कानों मे पडी, तब क्षण-भर मे इस लघु जीवन की आशैशव समस्त वर्षा की स्मृति घनीभूत होकर उसके मन मे उदित हुई और वह पृथ्वी के निकट स्पर्श का अनुभव कर सकी। एक बार बिजली चमकी; सामने के पोखर, वट वृक्ष, विस्तृत मैदान, और सुदूर की तरु-श्रेणी पर अचानक उसकी दृष्टि पडी। उसे याद आया कि पुण्य तिथियों के अवसर पर बीच-बीच मे आकर उसने इस पोखर मे स्नान किया था और यह भी याद आया कि उस समय श्मशान मे मृत देह को देखकर मृत्यु कैसी भयानक प्रतीत होती थी।

पहले तो मन मे आया कि घर लौटना चाहिए ? किन्तु साथ ही सोचा, 'मैं तो जीवित नही हूँ, मुझे वे घर मे क्यो घुसने देगे। वहाँ तो अमंगल माना जायगा। जीव-जगत् से मै निर्वासित होकर आई हूँ—मैं अपनी ही प्रेतात्मा हूँ।'

यदि यह सही नही है तो इस अर्धरात्रि मे शारदाशंकर के सुरक्षित अन्त.पुर से इस दुर्गम श्मशान मे आई कैसे ? यदि उसकी अन्त्येष्टि क्रिया अभी समाप्त नही हुई है तो दाह-क्रिया करने वाले आदमी गए कहाँ ? शारदाशंकर के आलोकित घर मे अपनी मृत्यु के अन्तिम क्षण उसे याद आए और उसके बाद ही इस बहुदूरवर्ती जन-शून्य अँधेरे श्मशान मे अपने को अकेली देखकर उसने अनुभव किया, 'मैं इस पृथ्वी के जन-समाज की अब कोई नही—मैं अति भीषण, अकल्याणकारिणी; मैं अपनी ही प्रेतात्मा हूँ।'

मन मे यह बात आते ही लगा, जैसे उसके चारो ओर से विश्व-नियमो के समस्त बन्धन टूट गए है। जैसे उसमे अद्भुत शक्ति हो, उसे असीम स्वाधीनता हो—वह जहाँ चाहे जा सकती है, जो चाहे कर सकती है। इस अभूतपूर्व नूतन विचार के आविर्भाव से वह उन्मत्त की भाँति प्रबल वायु के झोके के समान झोंपडी से बाहर निकलकर अन्धकारपूर्ण श्मशान को रौंदती हुई चल पड़ी—मन मे लज्जा, भय, चिन्ता का लेश-मात्र न रहा।

चलते-चलते पैर थकने लग गए, देह दुर्बल लगने लगी; एक मैदान पार करते न करते दूसरा आ जाता था। बीच-बीच मे धान के खेत पार करने पडते या फिर कही-कही घुटनों तक पानी भरा मिलता। जब भोर का प्रकाश कुछ-कुछ

दिखाई देने लगा तब जाकर थोडी दूर पर बस्ती के बाँस के झाड़ो से दो-एक पक्षियो की चहचहाहट सुनाई दी।

तब उसे न जाने कैसा भय लगने लगा! जगत् और जीते-जागते लोगो के साथ इस समय उसका कैसा नया सम्पर्क स्थापित हो गया था, यह वह तनिक भी नही जानती थी। जब तक मैदान मे थी, श्मशान मे थी, श्रावण-रजनी के अँधेरे मे थी, तब तक वह जैसे निर्भय थी, जैसे अपने राज्य मे थी। दिन के प्रकाश में लोगों की बस्ती उसे अत्यन्त भयकर स्थान लगने लगी थी। मनुष्य भूत से डरता है, भूत भी मनुष्य से डरता है; मृत्यु-नदी के अलग-अलग किनारे पर उनका वास है।

: ३ :

कपडो मे कीचड लपेटे, अद्भुत भावों मे डूबी और रात्रि-जागरण के कारण पागल के समान कादम्बिनी के चेहरे की जो दशा हो गई थी उसे देखकर यह सम्भव था कि लोग डर जाते और लडके शायद दूर भागकर उस पर ढेले फेंकने लगते। सौभाग्य से उसे सबसे पहले इस अवस्था मे एक सज्जन पथिक ने देखा।

उसने आकर कहा, "बेटी, तुम भले परिवार की वधू लगती हो, तुम भला इस अवस्था मे अकेली कहाँ जा रही हो?"

पहले तो कादम्बिनी कोई उत्तर न देकर ताकती रह गई। सहसा कुछ भी नही सोच पाई। वह संसार मे है, वह भद्र कुलवधू-जैसी दीखती है, गाँव के रास्ते मे पथिक उससे प्रश्न पूछ रहा है, वे सारी बाते उसे कल्पनातीत लगी।

पथिक ने उससे फिर कहा, "चलो बेटी, मैं तुम्हे घर पहुँचा दूँ—तुम्हारा घर कहाँ है, मुझे बताओ!"

कादम्बिनी सोचने लगी। ससुराल लौटने की बात मन मे ला भी नही सकती थी, पिता का घर था ही नही—तभी उसे बचपन की सहेली याद आई।

यद्यपि सहेली योगमाया का साथ बचपन मे ही छूट गया था फिर भी कभी-कभी चिट्ठी-पत्री आती-जाती रहती थी। कभी-कभी बाकायदा प्रेम-कलह छिड़ जाता। कादम्बिनी जताना चाहती कि उसीका स्नेह प्रबल है; योगमाया जताना चाहती कि कादम्बिनी उसके स्नेह का यथोचित प्रतिदान नही देती। यदि किसी सुयोग से वे एक बार मिल सके तो फिर वे क्षण-भर के लिए भी एक-दूसरे को आँख की ओट नही करेगी, इस विषय मे उन दोनो मे से किसी को भी कोई सन्देह नही था।

कादम्बिनी ने उन सज्जन से कहा, "निशिन्दापुर मे श्रीपतिचरण वावू के घर जाना है।" पथिक कलकत्ता जा रहे थे; निशिन्दापुर पास तो नही था, पर फिर भी उनके मार्ग मे पडता था। उन्होंने स्वय वन्दोवस्त करके कादम्बिनी को श्रीपतिचरण वावू के घर पहुँचा दिया।

दोनो सखियो का मिलन हुआ। पहले पहचानने मे कुछ देर हुई, फिर दोनो के नेत्रो के सामने वचपन का चित्र धीरे-धीरे परिपुष्ट हो उठा।

योगमाया ने कहा, "वाह-वाह, मेरा भाग्य कितना अच्छा है! फिर से तुम्हारे दर्शन कर सकूँगी, इसकी तो मै कल्पना भी नही कर सकती थी। लेकिन वहन, तुम आई कैसे? तुम्हारी ससुराल के लोगो ने क्या तुम्हे छोड दिया।"

कादम्बिनी चुप लगा गई। अत मे वोली, "वहन ससुराल की वात मुझसे मत पूछो! मुझे दासी की भाँति घर के कोने मे जगह दे दो, मैं तुम लोगों का काम-काज कर दिया करूँगी।"

योगमाया वोली, "वाह री, यह खूव कही, दासी की तरह क्यों रहोगी? तुम मेरी सहेली हो, तुम मेरी ··" इत्यादि।

इसी समय श्रीपति ने कमरे मे प्रवेश किया। कादम्बिनी कुछ देर उनके मुँह की ओर ताकती रही, फिर धीरे-धीरे कमरे से वाहर निकल गई—सिर पर पल्ला ठीक कर लेने का, या किसी प्रकार के सकोच या सभ्रम का कोई लक्षण नही दिखाई पडा।

वाद मे श्रीपति कही उसीकी सहेली के विरुद्ध कुछ सोच न वैठे, इसी संभावना से विकल होकर योगमाया ने अनेक प्रकार से उनको समझाना शुरू किया। किन्तु समझाना इतना कम पडा और श्रीपति ने योगमाया के सारे प्रस्तावों का इतनी आसानी से अनुमोदन किया कि योगमाया मन-ही-मन विशेष सतुष्ट न हो सकी।

कादम्बिनी सहेली के घर आ तो गई, पर सहेली के साथ हिल-मिल नही सकी—वीच मे मृत्यु की दीवार थी। अपने वारे मे निरन्तर कोई सन्देह एवं चेतना वनी रहने पर दूसरे के साथ घुला-मिला नही जा सकता। कादम्बिनी योगमाया के मुँह की ओर देखती और न जाने क्या सोचती—सोचती, 'अपने पति और अपनी घर-गृहस्थी लिये वह मानो वहुत दूर किसी दूसरे लोक मे हो। स्नेह-ममता और समस्त कर्तव्य लिये हुए वह मानो धरती की निवासिनी हो, और मैं मानो कोई शून्य छाया। वह जैसे अस्तित्व के देश मे हो, और मैं जैसे किसी अनन्त मे।'

योगमाया को भी न जाने कैसा-कैसा लगा, कुछ भी नही समझ पाई। स्त्री

की जाति रहस्य नहीं सह सकती; क्योकि अनिश्चित को लेकर कवित्व किया जा सकता है, वीरत्व प्रदर्शित किया जा सकता है, पाण्डित्य दिखाया जा सकता है, किन्तु घर-गृहस्थी नही चलाई जा सकती। इसी कारण स्त्री जाति जिसको समझ नही सकती, या तो वह उसके अस्तित्व का विलोप करके उसके साथ कोई सपर्क ही नही रखती या फिर उसको अपने हाथ से नया रूप देकर उसे अपने व्यवहार के योग्य वस्तु गढ लेती है—यदि दोनों मे से एक भी नही कर पाती, तो फिर उसके ऊपर वह भीपण क्रोध करती रहती है।

कादम्विनी जितनी ही दुर्वोध होने लगी, योगमाया उसके ऊपर उतनी ही क्रोधित होने लगी। उसने सोचा, 'सिर पर यह क्या मुसीवत आ पडी !'

तिस पर एक और भी आफत थी। कादम्विनी स्वय अपने से डरती थी। वह अपने सामीप्य से स्वय किसी प्रकार भी नही भाग पाती थी। जो भूत से डरते है उन्हे अपने पिछाड़ी का डर सताया करता है—जहाँ दृष्टि नही जा पाती वही का भय लगता है। लेकिन कादम्विनी को अपने से ही सवसे अधिक डर लगता था, वाहर का उसे कोई भय नही था।

इसीलिए निर्जन दोपहरी मे वह कभी-कभी कमरे मे अकेली चीख उठती और सध्या समय दिये के उजाले मे अपनी छाया देखकर उसका शरीर थर-थर करने लग जाता।

उसका यह डर देखकर घर के सभी जनो के मन मे न जाने कैसा एक भय समा गया। नौकर-चाकर, दास-दासियाँ यहाँ तक कि योगमाया को भी जव-तव जहाँ-तहाँ भूत दिखाई पड़ने लगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि अचानक आधी रात को कादम्विनी रोती हुई सोने के कमरे मे से वाहर निकली और योगमाया के कमरे के द्वार पर आकर वोली, "दीदी, दीदी, तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ ! मुझे अकेली मत छोडा करो !"

योगमाया को एक ओर डर लगा, तो दूसरी ओर क्रोध भी आया। उसकी इच्छा हुई कादम्विनी को उसी क्षण निकाल दे। श्रीपति ने दयापूर्वक जैसे-तैसे उसको शात करके पास के कमरे मे स्थान दिया।

दूसरे दिन असमय श्रीपति को अत पुर मे तलव किया गया। योगमाया ने उनको अचानक डॉटना-फटकारना आरभ किया, "क्यो जी तुम कैसे आदमी हो ! एक औरत अपनी ससुराल छोड़कर तुम्हारे घर मे आकर डट गई है, महीना होने को आया, फिर भी टलने का नाम नही लेती, और तुम्हारे मुँह से विरोध का एक शव्द भी नही सुनाई पड़ा। तुम्हारे मन मे क्या है साफ-साफ कहो न ! पुरुषो की तो जात ही ऐसी होती है।"

वास्तव मे, साधारणतः स्त्री जाति पर पुरुषो का एक तर्कहीन पक्षपात रहता है और इसके लिए स्त्रियाँ ही उनको अधिक अपराधी ठहराती है। नि सहाय किन्तु सुन्दर कादम्बिनी के प्रति उनकी करुणा यथोचित मात्रा से कुछ अधिक थी, इस बात के विरोध मे श्रीपति योगमाया की देह छूकर सौगध खाने को भी तैयार थे। फिर भी, उनके व्यवहार मे उसका प्रमाण मिल ही जाता।

वे सोचते, 'इसकी ससुराल के लोग जरूर इस पुत्रहीना विधवा के प्रति अन्याय-अत्याचार करते होगे, तभी तो किसी भी प्रकार सहन न कर सकने पर ही वहाँ से भागकर कादम्बिनी ने मेरा आश्रय लिया है। जब इसके माँ या बाप कोई है ही नही तब इसे मैं कैसे त्याग दूँ!' इसी कारण वे किसी प्रकार की खोज-खबर लेने की ओर से उदासीन थे और इस अप्रीतिकर विषय पर प्रश्न करके कादम्बिनी को व्यथित करने की भी उनकी इच्छा नही होती थी।

हारकर उनकी पत्नी उनकी निष्क्रिय कर्तव्य-बुद्धि पर नाना प्रकार से आघात करने लगी। कादम्बिनी की ससुराल मे समाचार भिजवाना उनके घर की शाति-रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है, यह वे अच्छी तरह समझ गए। अंत मे उन्होने निश्चय किया, अचानक चिट्ठी लिख भेजने का परिणाम शायद अच्छा न भी हो, अतएव स्वय रानीहाट जाकर पता लगाने के बाद अपना कर्तव्य तय करेंगे।

श्रीपति तो चले गए, इधर योगमाया ने आकर कादम्बिनी से कहा, "बहन, तुम्हारा यहाँ पर अब और टिके रहना अच्छा नही दिखता। लोग क्या कहेंगे?"

गभीरता से योगमाया के मुँह की ओर देखकर कादम्बिनी बोली, "लोगों से मुझे क्या लेना-देना है?"

योगमाया सुनकर अवाक् रह गई। जरा झल्लाकर बोली, "तुम्हे न हो, हमे तो लेना-देना है। हम पराए घर की बहू को क्या कहकर टिकाए रहे?"

कादम्बिनी ने कहा, "मेरी ससुराल है ही कहाँ?"

योगमाया ने सोचा, 'मर गए, न जाने क्या कहती है, जलमुँही!'

कादम्बिनी धीरे-धीरे बोली, "मैं क्या कोई तुम लोगो की हूँ? मै क्या इस जगत् की हूँ? तुम लोग हँसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, सब अपने मे मगन हो, मैं तो बस देखती रहती हूँ। तुम लोग मनुष्य हो, और मै हूँ छाया। समझ नही आता भगवान् ने मुझे तुम लोगो के इस जगत् में क्यो ला रखा है? तुम लोगो को भी डर लगा रहता है कि कही मैं तुम लोगों के हँसी-खेल मे अमंगल न ले आऊँ—मैं भी नही समझ पाती कि तुम लोगो के साथ मेरा क्या संबध है। किन्तु, ईश्वर ने जब हमारे लिए कोई दूसरा स्थान बनाया ही नही, तब चाहे बात-

वात मे वन्धन टूटता रहे फिर भी तुम्ही लोगो के आस-पास चक्कर काटती रहती हूँ ।"

उसने ये वातें कुछ इस ढंग से देखते हुए कही कि योगमाया जैसे-तैसे मोटे तौर पर कुछ तो समझ पाई किन्तु असल वात वह नही समझी, जवाव भी नही दे सकी। दुवारा प्रश्न भी नही कर सकी। वह अत्यंत भारग्रस्त होकर गंभीर भाव से चली गई।

: ४ :

जव रात के लगभग दस वज रहे थे तव श्रीपति रानीहाट होकर लौटे। मूसलाधार वर्षा मे धरती डूवी जा रही थी। उसकी निरतर झर-झर ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था कि यह वर्षा समाप्त नही होगी, आज रात-भर चलती रहेगी।

योगमाया ने पूछा, "क्या हुआ ?"

श्रीपति ने कहा, "ढेरों बातें है, फिर होगी।" कहकर उन्होने कपड़े वदलकर भोजन किया और हुक्का पीकर सोने चले गए। मुद्रा अत्यन्त चिन्तित थी।

योगमाया वहुत देर से कौतूहल दवाए हुए थी, विस्तर पर पहुँचते ही उसने पूछा, "क्या सुन आए, वताओ !"

श्रीपति ने कहा, "तुमने जरूर एक भूल की है।"

सुनते ही योगमाया मन-ही-मन कुछ नाराज हुई। औरते कभी भूल नही करती; यदि करे भी तो किसी वुद्धिमान पुरुप के लिए उसका उल्लेख करना उचित नही है। उसे अपने ही सिर पर ले लेना वुद्धिमानी है। योगमाया ने थोड़ा गर्म होकर कहा, "कैसी, सुनूँ तो !"

श्रीपति ने कहा, "तुमने जिस स्त्री को अपने घर मे स्थान दिया है वह तुम्हारी सखी कादम्विनी नही है।"

ऐसी वात सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है—विशेष रूप से अपने पति के मुँह से सुनने पर तो कहना ही क्या। योगमाया ने कहा, "अपनी सहेली को मैं नही पहचानती, तुमसे पहचान करवा लेनी होगी—खूव कही !"

श्रीपति ने समझाया,"यहाँ वात की खूवी को लेकर किसी प्रकार का तर्क नही हो रहा है, प्रमाण देखना होगा। योगमाया की सहेली कादम्विनी मर गई है इसमे कोई सन्देह नही।"

योगमाया ने कहा, "लो, और सुनो ! तुम जरूर कोई गड़वड कर आए हो। न जाने कहाँ-के-कहाँ पहुँचे और क्या-का-क्या सुन आए, भला कोई ठिकाना है !

तुम्हे खुद वहाँ जाने के लिए किसने कहा था, एक चिट्ठी लिख देते, सब बात साफ हो जाती।"

अपनी कर्म-कुशलता के प्रति स्त्री के ऐसे विश्वासाभाव से श्रीपति अत्यन्त खिन्न होकर विस्तारपूर्वक सब प्रमाणो का उल्लेख करने लगे, किन्तु कोई फल नही हुआ। उभय पक्ष के हाँ-ना करते-करते आधी रात हो गई।

यद्यपि कादम्बिनी को उसी क्षण घर से बाहर निकाल देने के विषय मे पति-पत्नी किसी मे मतभेद नही था---क्योकि, श्रीपति का विश्वास था कि उनके अतिथि ने छद्म परिचय देकर उनकी स्त्री को इतने दिन तक धोखा दिया है, और योगमाया का विश्वास था कि वह कुल-त्यागिनी है—तथापि प्रस्तुत तर्क के सम्बन्ध मे दोनो मे से कोई भी हार मानने को तैयार न था।

धीरे-धीरे दोनो की आवाज चढने लगी। वे भूल गए कि बगल के ही कमरे मे कादम्बिनी सो रही है।

एक ने कहा, "अच्छी आफत मे पड गए! मै अपने कानों से सुन आया हूँ।"

दूसरे ने दृढ स्वर मे कहा, "तो क्या तुम्हारे कहने से मान लूं, मैं अपनी आंखो देख रही हूँ।"

अन्त मे योगमाया ने पूछा, "कादम्बिनी कब मरी थी, बताओ तो।"

उसने सोचा कि कादम्बिनी की किसी चिट्ठी की तारीख से इस बात का विरोध दिखाकर श्रीपति के भ्रम को प्रमाणित कर देगी।

श्रीपति ने जिस तारीख की बात कही, दोनो ने हिसाब करके देखा कि वह तारीख जिस दिन सध्या-समय कादम्बिनी उनके घर आई थी, ठीक उसके पहले दिन पडती थी। सुनते ही योगमाया का हृदय सहसा काँप उठा, श्रीपति को भी न जाने कैसा लगने लगा।

इतने मे उनके कमरे का द्वार खुल गया, चौमासे की हवा के एक झोके से दिया भक् से बुझ गया। पलक मारते ही बाहर अँधेरा सारे कमरे मे ऊपर से नीचे तक भर गया। कादम्बिनी एकाएक कमरे के भीतर आ खडी हुई। उस समय ढाई पहर रात बीत चुकी थी, बाहर लगातार वर्षा हो रही थी।

कादम्बिनी ने कहा, "बहन, मै तुम्हारी वही कादम्बिनी हूँ, किन्तु अब मै जीवित नही हूँ। मैं मर चुकी हूँ।"

योगमाया भय से चीख पडी। श्रीपति की बोलती बन्द हो गई।

"लेकिन मैने मरने के अलावा तुम लोगो की दृष्टि मे और क्या अपराध किया है। मेरे लिए अगर न इस लोक मे स्थान है, न परलोक में—हाय! तो फिर मैं

कहाँ जाऊँ ?"

जोर से चीखकर वह मानो उस घोर वर्षा की रात मे सोते हुए विधाता को जगाकर पूछ उठी, "हाय ! तो फिर मैं कहाँ जाऊँ ?"

यह कहकर मूर्छित दम्पति को अँधेरे कमरे मे छोडकर कादम्बिनी विश्व मे अपना स्थान खोजने निकल पड़ी।

: ५ :

कादम्बिनी किस प्रकार वापस रानीहाट पहुँची, यह कहना कठिन है। किन्तु पहले किसी को भी दिखाई नही पड़ी। उसने सारा दिन विना खाए-पिए एक टूटे मन्दिर के खण्डहर मे विताया।

वर्षा ऋतु की अकाल संध्या जव अत्यन्त सघन हो गई और आसन्न दुर्योग की आशंका से गाँव के लोगो ने घवराकर अपने-अपने घरों की शरण ली, तव कादम्बिनी वाहर निकली। ससुराल के दरवाजे पर पहुँचकर एक वार तो उसका हृदय काँप उठा, लेकिन जव वह लम्वा घूँघट निकालकर भीतर जाने लगी तो उसको दासी समझकर दरवानो ने कोई रोक-टोक नही की। तभी वड़े जोर की वर्षा होने लगी, और हवा भी तेजी से चलने लगी।

उस समय घर की मालकिन शारदाशकर की स्त्री अपनी विधवा ननद के साथ ताश खेल रही थी। नौकरानी रसोईघर मे थी और वीमार मुन्ना ज्वर उतर जाने पर सोने के कमरे मे विछौने पर सो रहा था। कादम्बिनी सवकी आँख वचाकर उसी कमरे मे प्रविष्ट हुई। वह क्या सोचकर ससुराल आई थी पता नही, वह स्वयं भी नही जानती थी, वस इतना जानती थी कि एक वार आकर मुन्ने को एक नजर देख लेने की इच्छा थी। उसके वाद कहाँ जायगी, क्या होगा, यह तो उसने सोचा भी नही था।

दिन के उजाले मे उसने देखा, रुग्ण, क्षीणकाय मुन्ना मुट्ठी वाँधे सोया हुआ है। देखते ही उसका उत्तप्त हृदय मानो तृपातुर हो उठा—उसकी सारी वलाएँ लेकर उसको एक वार छाती से लगाए विना क्या रहा जा सकता है ! और, फिर उसे याद आया, 'मैं रही नही, अव इसको देखने वाला कौन है। इसकी माँ को सगत अच्छी लगती है, गप-शप अच्छी लगती है, खेल-तमाशा अच्छा लगता है, इतने दिन तक इसका भार मुझे सौपकर वे निश्चिन्त थी, लडके के पालन-पोपण का कोई झझट उन्हे नही उठाना पड़ा। आज इसकी उस प्रकार देख-भाल कौन करेगा ! "

तभी मुन्ना अचानक करवट वदलकर अर्धनिद्रित अवस्था मे वोल पड़ा,

"काकी, पानी दो।" हाय ! मै वारी ! मेरे लाल, अपनी काकी को तू अब भी नही भूला ! झटपट सुराही से पानी लेकर मुन्ने को छाती से चिपटाकर कादम्बिनी ने उसे पानी पिलाया।

जब तक वह नीद के झोंके मे रहा, अपनी आदत के अनुसार काकी के हाथ से पानी पीने मे मुन्ने को कोई आश्चर्य नही हुआ। अन्त मे कादम्बिनी ने जब अपनी बहुत दिनो की आकाक्षा पूरी करने के लिए उसका मुंह चूमकर उसे फिर लिटा दिया, तो उसकी नीद खुल गई और उसने काकी से लिपटकर पूछा, "काकी, तू मर गई थी ?"

काकी बोली, 'हाँ, बेटा !"

"तू फिर मुन्ने के पास लौट आई है ? अब तो नही मरेगी ?"

उसका उत्तर देने के पहले ही हल्ला मच गया—नौकरानी कटोरी मे साबूदाना लिये कमरे मे घुसी थी, अकस्मात् कटोरी फेककर 'मैया री !' पुकारती हुई वह पछाड़ खाकर गिर पडी।

उसकी चीख सुनकर मालकिन ताश फेंककर दौड़ी हुई आई, कमरे मे घुसते ही उन्हे मानो काठ मार गया, न तो भाग ही सकी, न मुँह से एक भी बात निकली।

ये सब बातें देखकर मुन्ने के मन मे भी भय का सचार होने लगा—वह रोते-रोते बोला, "काकी, तू जा !"

बहुत दिनों बाद आज कादम्बिनी को अनुभव हुआ कि वह मरी नही है—वही पुराना घर-द्वार, वही सब-कुछ, वही मुन्ना, वही स्नेह, उसके लिए ज्यो-के-त्यों जीवित है, बीच मे कोई विच्छेद, कोई व्यवधान उत्पन्न नही हुआ। सहेली के घर जाकर उसे अनुभव हुआ था कि बाल्य-काल की वह सखी मर चुकी है, पर मुन्ने के कमरे मे आकर उसने अनुभव किया कि मुन्ने की काकी तनिक भी नही मरी है।

उसने विकल होकर कहा, "दीदी, मुझे देखकर तुम लोग डर क्यो रही हो ? ये देखो, मैं तो आज भी उसी तरह तुम्हारी हूँ।"

मालकिन ज्यादा खडी नही रह सकीं, मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बहन से समाचार पाकर शारदाशकर बाबू स्वय अन्त पुर मे आकर उपस्थित हुए, हाथ जोडकर उन्होने कादम्बिनी से कहा, 'छोटी बहू, यह क्या तुम्हारे लिए उचित है ? सतीश मेरे कुल का इकलौता लड़का है, उसको तुम नजर क्यो लगा रही हो ? हम क्या कोई पराए है ? तुम्हारे जाने के बाद से वह दिनो-दिन सूखता जा रहा है, बीमारी जाने का नाम नही लेती, बस रात-दिन 'काकी काकी' रटता रहता है।

काबुलीवाला

मेरी पाँच वरस की छोटी वेटी मिनी विना वोले पल-भर भी नही रह सकती। ससार मे जन्म लेने के वाद भाषा सीखने मे उसने केवल एक वर्ष का समय खर्च किया था, उसके वाद से जव तक वह जगती रहती है एक पल भी मौन रहकर नष्ट नही करती। उसकी माँ वहुत वार डाँटकर उसका मुँह वन्द कर देती है, किन्तु मै यह नही कर पाता। चुपचाप वैठी मिनी देखने मे ऐसी अस्वाभाविक लगती है कि मुझे वहुत देर तक सहन नही होता। इसलिए मेरे साथ उसका वार्तालाप कुछ उत्साह के साथ चलता है।

सुवह मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवे परिच्छेद मे हाथ लगाया था कि मिनी ने आते ही वात छेड दी, "पिताजी, रामदयाल दरबान काक को कौआ कहता था, वह कुछ नही जानता। है न ?"

ससार की भापाओ की विभिन्नता के सम्वन्ध मे उसे ज्ञानदान करने के लिए मेरे प्रवृत्त होने के पहले ही वह दूसरे प्रसंग पर चली गई, "देखो पिताजी, भोला कह रहा था कि आकाश मे हाथी सूँड से पानी ढालता है, उसी से वर्षा होती है। मैया री! भोला कैसी वेकार की वाते करता रहता है! खाली वकवक करता रहता है, दिन-रात बकवक लगाये रहता है।"

इस वारे मे मेरी हाँ-ना की तनिक भी प्रतीक्षा किये विना वह अचानक प्रश्न कर वैठी, "पिताजी, माँ तुम्हारी कौन होती है ?"

मन-ही-मन कहा, 'साली', ऊपर से कहा, "मिनी, जा तू भोला के साथ खेल। मुझे इस समय काम है।"

तव वह मेरे लिखने की मेज के किनारे मेरे पैरो के पास वैठकर अपने दोनो घुटनो पर हाथ रखकर बडी तेजी से 'आग्डूम वाग्डूम कहते हुए खेलने लगी। मेरे सत्रहवे परिच्छेद मे उस समय प्रतापसिंह काञ्चनमाला को लेकर अँधेरी रात मे कारागार के उच्च वातायन से नीचे वहती नदी के जल मे कूद रहे थे।

मेरा कमरा सड़क के किनारे पर था। सहसा मिनी 'आगड़ूम वागड़ूम' का खेल छोड़कर जंगले की तरफ भागी और जोर-जोर से पुकारने लगी, "कावुलीवाले, ओ कावुलीवाले!"

मैले-से ढीले-ढाले कपडे पहने, सिर पर पगडी वाँधे, पीठ पर झोली लिये, हाथो मे अंगूरों के दो-चार वक्स लिये एक लम्बा कावुलीवाला सड़क कर धीरे-धीरे जा रहा था—उसे देखकर मेरी कन्या-रत्न के मन में कैसे भाव उठे, कहना कठिन है। उसने उसको ऊँची आवाज मे वुलाना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, 'वस अव पीठ पर झोली लिये एक आफत आ खड़ी होगी, मेरा सत्रहवाँ परिच्छेद अव पूरा नही हो सकता।'

किन्तु मिनी की चीख पर ज्यो ही कावुलीवाले ने हँसकर मुँह फेरा और मेरे घर की ओर आने लगा, त्यो ही वह झपटकर अन्त पुर में भाग गई—उसका नाम-निशान भी दिखाई नही पडा। उसके मन मे एक तरह का अन्धविश्वास था कि उस झोली के भीतर खोज करने पर उसके समान दो-चार जीवित मानव-सन्तान मिल सकती हैं।

इधर कावुलीवाला आकर मुस्कराता हुआ मुझे सलाम करके खड़ा हो गया। मैंने सोचा, 'यद्यपि प्रतापसिह और काञ्चनमाला की अवस्था अत्यन्त संकटापन्न है तथापि आदमी को घर पर वुला लेने के वाद उससे कुछ न खरीदना शोभा नही देता।'

कुछ खरीदा। उसके वाद दो-चार वातें हुई। अब्दुर्रहमान रूस, अग्रेजो आदि को लेकर सीमान्तप्रदेश की रक्षा-नीति के सम्वन्ध मे वातचीत होने लगी।

अन्त मे उठकर चलते समय उसने पूछा, "वावू, तुम्हारी लड़की कहाँ गई?"

मैंने मिनी के भय को समूल नष्ट कर देने के अभिप्राय से उसे भीतर से वुलवा लिया—वह मेरी देह से सटकर कावुली के चेहरे और झोली की ओर सदिग्ध दृष्टि से देखती खडी रही। कावुली उसे झोली से किशमिश, खुवानी निकालकर देने लगा, पर वह लेने को किसी तरह राजी नही हुई। दुगुने सन्देह से मेरे घुटने से सटकर रह गई। प्रथम परिचय इस प्रकार पूरा हुआ।

कुछ दिन वाद एक दिन सवेरे किसी काम से घर से वाहर जाते समय देखा, मेरी दुहिता द्वार के पास वेंच के ऊपर वैठकर अनर्गल वाते कर रही है और कावुलीवाला उसके पैरो के पास वैठा मुस्कराता हुआ सुन रहा है और वीच-वीच मे प्रसगानुसार अपना मतामत भी मिश्रित वंगाली मे व्यक्त कर रहा है। मिनी को अपने पंचवर्षीय जीवन की अभिज्ञता मे पिता के अतिरिक्त ऐसा धैर्यवान श्रोता कभी नही मिला था। मैंने यह भी देखा कि उसका छोटा आँचल वादाम-किशमिश

से भरा था। कावुलीवाले से कहा, "उसे यह सब क्यों दिया ? अव फिर मत देना!" और मैंने जेव से एक अठन्नी निकालकर उसको दे दी। विना सकोच के अठन्नी लेकर उसने झोली मे रख ली।

घर लौटकर देखा, उस अठन्नी को लेकर पूरा झगड़ा मचा हुआ है।

मिनी की माॅ सफेद चमचमाते हुए गोलाकार पदार्थ को लेकर कड़े स्वर मे मिनी से पूछ रही थी, "तुझे यह अठन्नी कहाॅ मिली ?"

मिनी कह रही थी, "कावुलीवाले ने दी है।"

उसकी माँ कह रही थी, 'कावुलीवाले से अठन्नी लेने तू क्यो गई ?"

मिनी ने रोने की तैयारी करते हुए कहा, "मैंने माॅगी थोडे ही थी, उसने स्वयं दी।"

मैंने आकर आसन्न विपद् से मिनी का उद्धार किया और उसे वाहर ले गया।

पता लगा, कावुलीवाले के साथ मिनी की यह दूसरी मुलाकात हो, ऐसा नही था। इस वीच मे उसने प्राय: प्रतिदिन आकर पिस्ता-वादाम, घूँस मे देकर मिनी के नन्हे लुव्ध हृदय पर वहुत-कुछ अधिकार कर लिया है।

मालूम हुआ, उन दो मित्रो मे कुछ बॅधी हुई वाते और परिहास प्रचलित है—जैसे रहमत को देखते ही मेरी कन्या हॅसते-हॅसते पूछती, "कावुलीवाले! ओ कावुलीवाले! तुम्हारी झोली मे क्या है ?"

रहमत अनावश्यक चन्द्रविन्दु जोडकर हॅसते हुए उत्तर देता, "हाँति।"

अर्थात् उसकी झोली मे एक हाथी है उसकी हँसी का यही गूढ रहस्य था। यह रहस्य वहुत ज्यादा गूढ था यह तो नही कहा जा सकता, किन्तु इस परिहास से दोनो ही काफी विनोद का अनुभव करते रहते—और शरत्काल के प्रभात मे एक वयस्क और एक अप्राप्तवयस्क शिशु का सरल हास्य देखकर मुझे भी अच्छा लगता।

इनमे एक और वात भी प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता, "मुन्नी, तुम क्या ससुराल कभी नही जाओगी!"

वगाली परिवार की लड़की जन्म-काल से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती है, किन्तु हम लोगो के कुछ आधुनिक ढग के लोग होने के कारण शिशु वालिका को ससुराल के सम्वन्ध मे परिचित नही कराया गया था। इसीलिए वह रहमत के अनुरोध को ठीक से नही समझ पाती थी, फिर भी प्रश्न का कुछ-न-कुछ उत्तर दिये विना चुप रह जाना उसके स्वभाव के विलकुल विपरीत था—वह उलटकर पूछती, "तुम ससुराल जाओगे ?"

रहमत काल्पनिक ससुर के प्रति खूब मोटा घूँसा तानकर कहता, "मैं ससुर को मारूँगा।"

सुनकर मिनी 'ससुर'-नामक किसी एक अपरिचित जीव की दुरवस्था की कल्पना करके खूब हँसती।

शुभ्र शरत्काल था। प्राचीन काल मे राजे-महाराजे दिग्विजय के लिए इसी ऋतु मे निकलते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कभी कही नही गया, किन्तु इसी से मेरा मन पृथ्वी-भर मे चक्कर काटता फिरता है। मैं मानो अपने घर के कोने मे चिर-प्रवासी होऊँ, वाहर के जगत् के लिए मेरा मन सदा विकल रहता है। विदेश का कोई नाम सुनते ही मेरा मन दौड पड़ता है, उसी प्रकार विदेशी व्यक्ति को देखते ही नदी-पर्वत-अरण्य के वीच कुटी का दृश्य मन मे उदित होता है और एक उल्लासपूर्ण स्वाधीन जीवन-यात्रा की वात कल्पना मे साकार हो उठती है।

दूसरी ओर मैं ऐसा उद्भिजप्रकृति हूँ कि अपना कोना छोड़कर वाहर निकलते ही सिर पर वज्राघात हो जाता है। इसलिए सुवह अपने छोटे कमरे मे मेज के सामने वैठकर इस कावुली के साथ वातचीत करने से भ्रमण का मेरा काफी काम हो जाता। दोनो ओर वन्धुर दुर्गम दग्ध रक्तवर्ण उच्च गिरि-श्रेणी, वीच मे सकीर्ण मरुपथ, भार से लदे ऊँटो की चलती हुई पंक्ति; साफा वाँधे वणिक, पथिकों मे से कोई ऊँट के ऊपर, कोई पैदल, किसी के हाथ मे वल्लम, किसी के हाथ मे पुरानी चाल की चकमच जडी वन्दूक—कावुली मेघ-मन्द्र स्वर मे टूटी-फूटी वँगला मे अपने देश की वाते कहता और उसकी तसवीर मेरी आँखो के सामने आ जाती।

मिनी की माँ वहुत शंकालु स्वभाव की महिला थी। रास्ते मे कोई आवाज सुनते ही उन्हे लगता, धरती के सारे शरावी उन्ही के घर को लक्ष्य वनाकर दौड़े चले आ रहे है। यह पृथ्वी सर्वत्र चोर, डकैत, शरावी, साँप, वाघ, मलेरिया, शूक-कीट, तिलचट्टों और गोरो से परिपूर्ण है, इतने दिन (वहुत अधिक दिन नही) धरती पर वास करने पर भी यह विभीषिका उनके मन से दूर नही हुई थी।

रहमत कावुलीवाले के सम्वन्ध मे वे पूर्ण रूप से नि संशय नही थीं। उस पर विशेष दृष्टि रखने के लिए उन्होने मुझसे वार-वार अनुरोध किया था। उनके सन्देह को मेरे हँसकर उडा देने के प्रयत्न करने पर उन्होने मुझसे एक-एक करके कई प्रश्न पूछे, "क्या कभी किसी के वच्चे चोरी नही हो जाते? कावुल देश मे क्या दास-व्यवसाय प्रचलित नही है? एक भीमकाय कावुली के लिए एक छोटे-से वच्चे को चुरा ले जाना क्या नितान्त असम्भव है?"

मुझे स्वीकार करना पड़ा, बात असम्भव हो, ऐसा तो नही, किन्तु अविश्वास्य है। पर विश्वास करने की शक्ति सबमे समान नही होती, इसीलिए मेरी पत्नी के मन मे भय बना रहा। किन्तु, मै इस कारण निर्दोष रहमत को अपने घर आने से मना नही कर सका।

प्रतिवर्ष माघ के महीने के बीचो-बीच रहमत अपने देश चला जाता। इस समय वह अपना सारा उधार रुपया वसूल करने में बडा व्यस्त रहता। दूर-दूर घूमना पड़ता, पर फिर भी वह मिनी को एक बार दर्शन दे जाता। देखने पर सच-मुच ऐसा लगता मानो दोनो मे कोई षड्यन्त्र चल रहा हो। जिस दिन वह सवेरे नही आ पाता, उस दिन देखता कि वह सन्ध्या को आ पहुँचा है। अँधेरे में कमरे के कोने मे उसे ढीले-ढाले कुरता-पायजामा पहने, झोला-झोली वाले उस लम्बे आदमी को देखने पर मन मे सचमुच ही अचानक एक आशंका उठती। किन्तु, जब देखता कि मिनी 'काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले' कहती हँसती हुई दौड़ी चली आती एवं उन दो असमान वय वाले मित्रों में पुराना सरल परिहास चलता रहता, तो हृदय प्रसन्नता से भर उठता।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे मे बैठा प्रूफ-सशोधन कर रहा था। विदा होने के पहले आज दो-तीन दिन से जाड़ा खूब कँप-कँपा रहा था, चारो ओर एका-एक सीत्कार मच गई थी। जंगले को पार करके सुबह की धूप टेबिल के नीचे आकर मेरे पैरो पर पड रही थी, उसकी गरमाहट बड़ी मीठी लग रही थी। लगता है, आठ बजे का समय रहा होगा, सिर पर गुलूबन्द लपेटे तडके टहलने वाले प्राय: सभी सवेरे की सैर पूरी करके घर लौट आए थे। तभी सड़क पर बड़े जोर का हल्ला सुनाई पडा। आँख उठाई तो देखा दो पहरे वाले अपने रहमत को बाँधे लिये आ रहे है—उसके पीछे तमाशबीन लड़कों की टोली चली आ रही है। रहमत के शरीर तथा कपडों पर खून के दाग है और एक पहरे वाले के हाथ मे खून से सना छुरा है। मैंने दरवाजे के बाहर जाकर पहरे वालों को रोककर पूछा, "मामला क्या है ?"

कुछ उससे, कुछ रहमत से सुनकर मालूम हुआ कि हमारे एक पड़ोसी ने रामपुरी चादर के लिए रहमत से कुछ रुपया उधार लिया था—उसने झूठ बोल-कर रुपया देने से इंकार कर दिया, और इसी बात को लेकर कहा-सुनी करते-करते रहमत ने उसके छुरा भोक दिया।

रहमत उस झूठे को लक्ष्य करके भाँति-भाँति की अश्राव्य गालियाँ दे रहा था, तभी 'काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

पलक मारते रहमत का चेहरा कौतुकपूर्ण हँसी से प्रफुल्लित हो उठा। उसके

कन्धे पर आज झोली नही थी, इसलिए झोली के सम्वन्ध मे उनकी नियमित आलोचना नही हो सकी। मिनी ने छूटते ही उससे पूछा, "तुम ससुराल जाओगे ?"

रहमत ने हँसकर कहा, "वही जा रहा हूँ।"

देखा, उत्तर मिनी को विनोदपूर्ण नही लगा, तव वह हाथ दिखाकर बोला, "ससुर को मारता, पर क्या करूँ—हाथ वँधे है।"

घातक प्रहार करने के अपराध मे रहमत को कई वर्ष की जेल हो गई।

उसकी वात करीव-करीव भूल गया। हम जिस समय घर में वैठकर सदा के समान नित्य नियमित काम में एक के वाद एक दिन काट रहे थे, उस समय एक स्वाधीन पर्वतचारी पुरुष कारा-प्राचीर मे किस प्रकार वर्ष विता रहा था। यह वात हमारे मन मे उठी भी नही।

और चचलहृदया मिनी का आचरण तो अत्यन्त लज्जाजनक था, यह उसके पिता को भी स्वीकार करना पड़ेगा। उसने स्वच्छंदतापूर्वक अपने पुराने मित्र को भुलाकर पहले तो नवी सईस के साथ साख्य स्थापित किया। वाद मे धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो उसकी उम्र वढ़ने लगी त्यो-त्यो सखा के वदले एक-एक करके सखियाँ जुटने लगी। यही नही अव वह अपने पिता के लिखने-पढ़ने के कमरे मे भी नहीं दिखाई पड़ती थी। मैंने तो उसके साथ एक प्रकार से कुट्टी कर ली थी।

न जाने कितने वर्ष वीत गए! एक और शरत्काल आया। मेरी मिनी का विवाह-सम्वन्ध निश्चित हो गया। पूजा की छुट्टियो मे उसका विवाह होगा, कैलाशवासिनी के साथ मेरे घर की आनन्दमयी भी पितृ-भवन मे अँधेरा करके पतिगृह चली जायगी।

अत्यन्त सुहावना प्रभात था। वर्षा के वाद शरत् की नई धुली धूप ने जैसे सुहागे मे गलाये हुए निर्मल सोने का-सा रंग धार लिया हो। यही नही, कलकत्ता की गलियो के भीतर के घुटनदार जर्जर ईंटो वाले सटे हुए मकानो पर भी इस धूप की आभा ने एक अपूर्व लावण्य विखेर दिया था।

आज मेरे घर मे रात वीतते-न-वीतते ही शहनाई वज उठी थी। वह वाँसुरी मानो मेरे हृदय के अस्थि-पिंजर मे से क्रन्दन करती वज रही हो। करुण भैरवी रागिनी में मेरी आसन्न वियोग-व्यथा को शरद् की धूप के साथ समस्त ससार-भर मे व्याप्त कर रही थी। आज मेरी मिनी का विवाह था।

सवेरे से ही वड़ी भीड़-भाड़ थी, लोग आ-जा रहे थे। आँगन मे वाँस वाँधकर मण्डप ताना जा रहा था, घर के कमरो और वरामदो मे झाड़ टाँगने की ठक्-ठक् आवाज हो रही थी; शोर-गुल की हद नही थी।

मैं अपने लिखने के कमरे मे वैठा हिसाव देख रहा था, तभी रहमत आकर

सलाम करके खड़ा हो गया।

मैं पहले उसे पहचान नही सका। उसके पास न वह झोली थी, न उसके वे लम्बे बाल थे; और न उसकी देह मे पहिले-जैसा तेज था। आखिर उसकी हँसी देखकर उसे पहचाना।

मैने कहा, "क्यो रे रहमत, कब आया ?

उसने कहा, "कल शाम को जेल से छूटा हूँ।"

बात सुनकर कानो मे जैसे खटका हुआ। कभी किसी खूनी को प्रत्यक्ष नही देखा, इसे देखकर सारा अन्त:करण जैसे सकुचित हो गया। मन हुआ, आज के इस शुभ दिन पर यह आदमी यहाँ से चला जाता तो अच्छा होता।

मैंने उससे कहा, "आज हमारे घर मे एक काम है, मैं कुछ व्यस्त हूँ, आज तुम जाओ!"

बात सुनते ही वह तत्क्षण चले जाने को उद्यत हुआ, अन्त मे दरवाजे के पास पहुँचकर थोडा इधर-उधर करके बोला, "क्या एक बार मुन्नी को नही देख सकूँगा ?"

कदाचित् उसे विश्वास था, मिनी अब भी वैसी ही होगी। मानो उसने सोचा हो, मिनी अब भी पहले की भाँति 'काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले' करती दौड़ी आयगी। उनके उस अत्यन्त उत्सुकतापूर्ण पुरानी हँसी-विनोद की बातो मे किसी प्रकार का अन्तर नही होगा। यही नही, पुरानी मित्रता का स्मरण करके शायद अपने किसी स्वदेशीय मित्र से माँग-जाँचकर वह एक डिब्बा अगूर और कागज़ के ठोगे मे थोड़े-से किशमिश, बादाम जुटा लाया था। उसकी वह अपनी झोली अब नही थी।

मैंने कहा, "आज घर मे काम है, आज और किसी के भी साथ भेंट नही हो सकेगी।"

वह मानो कुछ दुखी हुआ। चुपचाप खडे-खडे एक बार स्थिर दृष्टि से उसने मेरे मुख की ओर देखा, फिर 'सलाम बाबू' कहकर दरवाजे से बाहर चला गया। मुझे अपने मन मे न जाने कैसी एक व्यथा का अनुभव हुआ। सोच रहा था कि उसको वापस बुलवा लूँ, तभी देखा कि वह स्वयं लौटा चला आ रहा है।

पास आकर बोला, "ये अगूर और थोडे-से किशमिश, बादाम मुन्नी के लिए लाया था, दे दीजिएगा।"

उन्हे लेकर दाम देने के लिए मेरे तैयार होते ही उसने तुरत मेरा हाथ कसकर पकड लिया। बोला, "आपकी बडी कृपा है, मुझे सदा याद रहेगी— मुझे पैसा मत दीजिए। बाबू, जिस तरह तुम्हारे एक लडकी है उसी तरह देश मे मेरे भी एक

लडकी है। मै उसी का चेहरा याद करके तुम्हारी मुन्नी के लिए हाथ मे थोडी-वहुत मेवा लेकर आया हूँ, सौदा करने नही।"

यह कहते हुए उसने अपने खूब ढीले कुरते में हाथ डालकर कहीं छाती के पास से मैले कागज का एक टुकड़ा निकाला और वड़े यत्न से उसकी तह खोलकर दोनों हाथो से मेरी टेविल पर विछा दिया।

देखा, कागज पर किसी नन्हे हाथ की छाप थी। फोटोग्राफ नही, तैलचित्र नही, हाथ मे थोडी-सी कालिख लगाकर कागज़ के ऊपर उसकी छाप ले ली गई थी। कन्या के इस स्मरण-चिह्न को छाती से लगाए रहमत हर साल कलकत्ता की सड़को पर मेवा वेचने आता—मानो उस सुकोमल नन्हे शिशुहस्त का स्पर्श-मात्र उसके विराट् विरही वक्ष मे सुधा-संचार करता रहता हो।

देखकर मेरी आँखे छलछला आई। वह एक कावुली मेवा वाला है और मैं एक सभ्रातवंशीय वंगाली—उस समय मैं भूल गया—उस समय मैंने समझा कि जो वह है, वही मैं हूँ। वह भी पिता है, मैं भी पिता हूँ। उसकी पर्वत-गृहवासिनी नन्ही पार्वती की उस हस्तछाप ने मुझे भी अपनी मिनी का स्मरण दिला दिया। मैंने तत्क्षण उसे भीतर से वुलवाया। अन्त.पुर मे इस वात पर वहुत-सी आपत्तियाँ की गई। किन्तु मैंने उन पर कोई ध्यान नही दिया। लाल चेली[1] पहने, माथे पर चन्दन लगाए, वधूवेशिनी मिनी सलज्ज भाव से मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसको देखकर पहले तो कावुलीवाला सकपका गया, अपना पुराना वार्तालाप नही जमा पाया। अन्त मे हँसकर वोला, "मुन्नी, तू ससुराल जायगी?"

मिनी अव ससुराल का अर्थ समझती थी, इस समय वह पहले के समान उत्तर नही दे सकी— रहमत का प्रश्न सुनकर लज्जा से लाल होकर मुँह फेरकर खड़ी हो गई। कावुलीवाले से मिनी की जिस दिन पहले भेंट हुई थी, मुझे उस दिन की वात याद हो आई। मन न जाने कैसा व्यथित हो उठा!

मिनी के चले जाने पर गहरी साँस लेकर रहमत ज़मीन पर वैठ गया। अचानक उसकी समझ मे साफ आ गया, इस वीच उसकी पुत्री भी इसी तरह वड़ी हो गई होगी। उसके साथ भी अव नया परिचय करना होगा। वह उसे विलकुल पहले-जैसी नही मिलेगी। इन आठ वर्षो मे उस पर क्या वीती होगी, यह भी भला कौन जानता है! सवेरे के समय शरत्कालीन स्निग्ध सूर्य की किरणों मे शहनाई

१ वंगालियो मे पुराने समय मे विवाह के अवसर पर वधू को लाल रेशमी वस्त्र पहनाया जाता था, जिसे चेली कहते थे।

वजने लगी, रहमत कलकत्ता की किसी गली मे बैठकर अफगानिस्तान के किसी मरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकालकर उसे दिया। कहा, "रहमत, तुम अपनी लड़की के पास अपने देश लौट जाओ; तुम्हारा मिलन-सुख मेरी मिनी का कल्याण करे।"

इन रुपयो का दान करने के कारण हिसाब मे से उत्सव-समारोह के दो-एक अंग छाँट देने पडे। जैसा सोचा था, विजली की वैसी रोशनी नही की जा सकी। फौजी बैंड भी नही आ सका। अन्तःपुर मे स्त्रियाँ वड़ा असन्तोष प्रकट करने लगी, किन्तु मंगल-आलोक से मेरा शुभ-उत्सव उज्ज्वल हो उठा।

सजा

: १ :

दुखीराम रूइ और छिदाम रूइ दोनो भाई सुवह जव हाथ में हँसिया लेकर मज़दूरी करने बाहर निकले तव उन दोनों की पत्नियों में चख-चख चिल्ल-पो मची हुई थी। किन्तु, प्रकृति के अन्यान्य नानाविध नित्य कलरव के समान इस कलह-कोलाहल का भी मुहल्ले-भर के लोगो को अभ्यास हो गया था। तीव्र कंठ-स्वर सुनते ही लोग एक-दूसरे से कहते, "वह देखो, छिड़ गई।" अर्थात्, जैसी आशा की जा रही थी ठीक वैसा ही हुआ, आज भी स्वाभाविक नियम में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नही हुआ। प्रातःकाल पूर्व दिशा मे सूर्य के निकलने पर जैसे कोई उसके निकलने का कारण नही पूछता वैसे ही इन कोरियों के घर मे दोनो देवरानी-जेठानी मे जव कोई हो-हल्ला होने लगता तव उसका कारण जानने के लिए किसी के भी मन मे किसी प्रकार का कौतूहल उत्पन्न नही होता।

इसमें सन्देह नही कि यह कलह-कोलाहल पड़ोसियों की अपेक्षा दोनो पतियो को ही अधिक स्पर्श करता, किन्तु वे इसमे किसी प्रकार की असुविधा नही मानते थे। वे दोनों भाई मानो इस दीर्घ संसार-पथ पर किसी इक्के मे वैठे जा रहे हों। अपने दोनो ओर विना स्प्रिंग के दो पहियो की निरन्तर घड-घड, खड-खड को उन्होने जीवन-रथ-यात्रा के विधि-विहित नियमो मे ही मान लिया हो।

उलटे जिस दिन घर मे कोई शोर न होता, और चारो ओर सन्नाटा छाया रहता, उस दिन उन्हे किसी आसन्न अनैसर्गिक उपद्रव की आशंका होने लगती, उस दिन कोई भी हिसाव करके यह नही वता सकता था कि कव क्या हो जायगा।

हमारी कहानी की घटना जिस दिन आरम्भ हुई उस दिन सन्ध्या के कुछ पहले दोनो भाई जव मजदूरी करके थके हुए घर लौटे तो उन्होने देखा कि स्तव्ध घर साँय-साँय कर रहा है।

वाहर भी वड़ी उमस थी। दोपहर के समय वर्षा की जोरदार वौछार हो चुकी

थी। अब भी चारो ओर मेघ छाए थे। हवा का नाम-निशान न था। वर्षा के दिनो में घर के चारो ओर के जंगल और झाड-झखाड़ बहुत बढ गए थे, वहाँ से और पार के जलमग्न खेतो से गीली वनस्पतियो की सघन गन्ध-वाष्प अटल प्राचीर के समान चारो ओर डटी हुई थी। गोशाला के पीछे वाले गड्ढे मे मेढक टर्रा रहे थे और झिल्ली-रव से सन्ध्या का निस्तब्ध आकाश एकदम परिपूर्ण था।

थोडी दूर पर बरसात की पद्मा नवीन मेघो की छाया मे बड़ा अटल भयंकर रूप धारण किये बह रही थी। अनाज के खेतो का अधिकाश बहकर बस्ती के पास आ पहुँचा था। यही नही, टूटे किनारे के पास दो-चार आम और कटहल के पेडों के तने पानी के बाहर दिखाई दे रहे थे, मानो उनके निस्सहाय हाथो की फैली हुई अँगुलियाँ शून्य मे किसी अन्तिम अवलम्बन को अपनी मुट्ठी मे कसकर पकडने की चेष्टा कर रही हो।

दुखीराम और छिदाम उस दिन जमीदार की कचहरी मे काम करने गये थे। उस नदी के पार किनारे की भूमि मे जलिधान[1] पक गया था। वर्षा मे नदी के किनारे डूब जाने के पहले ही धान काट लेने के लिए बस्ती-भर के गरीब लोग या तो अपने खेत मे या फिर मजदूरी पर पाट काटने मे लगे हुए थे, बस केवल इन दोनो भाइयो को कचहरी का सिपाही आकर जबर्दस्ती पकड ले गया था। कचहरी के छप्पर को भेदकर जगह-जगह से पानी चू रहा था—उसी की मरम्मत मे और कुछ झाँप तैयार करने मे वे दिन-भर जुटे रहे। घर नही आ सके, कचहरी में ही कुछ जल-पान कर लिया था। बीच-बीच मे वर्षा मे भीगना भी पड़ा था—वाजिब मजदूरी तो मिली ही नही, उसके बदले मे जो बहुत-सी अनुचित कड़वी बातें सुननी पडी, वे उनकी मजदूरी से बहुत ज्यादा थी।

रास्ते की कीचड़ और पानी को पार करके सन्ध्या समय घर लौटकर दोनो भाइयो ने देखा, देवरानी चन्दरा जमीन पर अचल बिछाए चुपचाप पसरी हुई है। आज के मेघाच्छन्न दिन के समान वह भी मध्याह्न मे प्रचुर अश्रु-वर्षा करने के कारण साँझ होते-होते थककर अत्यन्त घुटी-घुटी हो गई थी; और जेठानी राधा मुँह भारी किये ओसारे मे बैठी थी, उसका डेढ वर्ष का छोटा बच्चा सो रहा था। दोनो भाइयो ने अन्दर पहुँचकर देखा, बच्चा आँगन मे नगा एक कोने मे चित पडा सो रहा था।

भूखे दुखीराम ने और विलम्ब न करके कहा, "भात दे।"

बारूद के बोरे मे जैसे आग की चिनगारी गिर पडी हो, जेठानी क्षण-भर मे

---

१ एक प्रकार का धान, जो अधिक जल मे होता है।

तीव्र आकाश-भेदी स्वर मे चीख़ उठी, "भात कहाँ है, जो भात दूं। तू क्या चावल दे ग़या था ? मैं क्या स्वय रोजगार करके लाती ?"

सारे दिन की थकावट और लाछना के बाद अन्नहीन निरानन्द अँधेरा घर, प्रज्वलित क्षुधानल गृहिणी के रूक्ष वचन, विशेपकर अन्तिम वाक्य मे निहित कुत्सित श्लेष दुखीराम को एकाएक कैसा असह्य हो उठा ! उसने क्रुद्ध व्याघ्र के समान गम्भीर गर्जन करते हुए कहा, "क्या कहा ?" और दूसरे ही क्षण उसने हँसिया उठाकर आव देखा न ताव, चट से स्त्री के सिर पर दे मारा। राधा अपनी देवरानी की गोद के पास गिर पड़ी और प्राण निकलने मे क्षण-भर की भी देर नही हुई।

रक्त से सने वस्त्रो मे चन्दरा "अरे यह क्या हुआ रे" कहकर चीख़ उठी। छिदाम ने उसका मुँह दवा दिया। दुखीराम हँसिया पटककर हाथो से मुँह ढँके हतवुद्धि के समान धरती पर बैठ गया। वच्चा जाग पडा और डर से चीख़कर रोने लगा।

वाहर उस समय पूर्ण रूप से शान्ति थी। ग्वाल-वाल गाएँ चराकर गाँव की ओर लौट रहे थे। उस पार के चर मे नये पके धान काटने गए हुए लोग पाँच-पाँच, सात-सात के दल मे एक-एक छोटी नौका करके पार लौटकर परिश्रम के पुरस्कार-रूप दो-चार मुट्ठा धान सिर पर लिये प्राय· सभी अपने-अपने घर आ पहुँचे थे।

चक्रवर्ती-परिवार के रामलोचन काका गाँव के डाकघर मे चिट्ठी छोडकर घर लौटकर निश्चिन्त भाव से चुपचाप हुक्का पी रहे थे। अचानक याद आया, उनके अपने कोरी आसामी दुखी पर लगान के वहुत-से रुपये वाकी है, आज उसने कुछ अश चुकाने का वादा किया था। इस समय तक वे घर लौट आए होगे, यह सोच-कर वे कधे पर चादर डाल छाता ले वाहर निकल पड़े।

कोरियो के घर मे घुसते ही उनका शरीर सुन्न पड गया। देखा, घर मे दिया नही जलाया गया था। अँधेरे ओसारे मे दो-चार अँधेरी मूर्तियाँ अस्पष्ट दिख रही थी। रह-रहकर ओसारे के एक कोने मे से रोने की अस्फुट आवाज फूट रही थी— और वच्चा ज्यो ही 'माँ' 'माँ' पुकारता हुआ रोने की चेप्टा करता था, छिदाम उसका मुँह दवा देता था।

कुछ भयभीत होकर रामलोचन ने पूछा, "दुखी, घर मे हो क्या ?"

अव तक दुखी पत्थर की मूर्ति के समान निश्चल वैठा हुआ था। उसका नाम लेकर पुकारते ही वह अबोध वालक के समान उच्छ्वसित होकर रोने लगा।

छिदाम तुरत ओसारे से आँगन मे उतरकर चक्रवर्ती के पास आ गया। चक्रवर्ती ने पूछा, "औरतें शायद झगडा कर बैठी है ? आज तो दिन-भर चिल्ल-पो सुनी है।"

अभी तक किंकर्त्तव्यविमूढ छिदाम कुछ भी नही सोच पाया था। अनेक प्रकार की असंभव कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क मे उठ रही थी। आखिर उसने निश्चय किया, रात थोडी अधिक हो जाने पर मृत देह को कही गायब कर देगा। इस बीच चक्रवर्ती आ उपस्थित होगे, यह उसके ध्यान मे भी नही आया था। चटपट कोई उत्तर नही सूझा। कह बैठा, "हाँ, आज बडा कलह हो गया है।"

ओसारे की ओर बढने की चेष्टा करते हुए चक्रवर्ती बोले, "किन्तु उसके लिए रोता क्यो है, रे दुखी !"

छिदाम को लगा, अब खैर नही, हठात् कह बैठा, "झगड़े मे छोटी बहू ने बडी बहू के सिर मे हँसिया दे मारा है।"

उपस्थित विपत्ति को छोड़कर और कोई विपद् भी हो सकती है, यह बात सहज ही मन में नही आती। उस समय छिदाम सोच रहा था, 'कठोर सत्य के हाथ से किस प्रकार रक्षा होगी !'

मिथ्या उसकी भी अपेक्षा अधिक भीषण हो सकता है। इसका उसे ज्ञान नही था। रामलोचन का प्रश्न सुनते ही उसके दिमाग मे तत्काल जो उत्तर सूझा वह उसने उसी क्षण कह डाला।

रामलोचन ने चौककर कहा, "ऐं क्या कहा ! मरी तो नही ?"

छिदाम ने कहा, "मर गई है," और यह कहते हुए उसने चक्रवर्ती के पैर पकड़ लिये।

चक्रवर्ती को भागने का रास्ता नही मिला। सोचा, 'राम राम ! संध्या के समय इस कैसी विपद् मे पड गया ! अदालत मे गवाही देते-देते ही प्राण निकल जाएँगे।' पर छिदाम ने किसी भी तरह उनके पैर नही छोड़े, और बोला, "पण्डितजी महाराज, अब अपनी बहू को बचाने के लिए क्या उपाय करूँ ?"

मामलो-मुकद्दमो मे परामर्श देने के लिए रामलोचन सारे गाँव के प्रधान मन्त्री थे। थोडा सोचकर बोले, "देख, इसका एक उपाय है। तू इसी समय दौडकर थाने जा—और कह कि तेरे बडे भाई दुखी ने सध्या समय घर लौटकर भात माँगा था, भात तैयार नही था इसलिए स्त्री के सिर पर हँसिया दे मारा है। मै निश्चित रूप से कहता हूँ, यह बात कहने से छोकरी बच जायगी।"

छिदाम का गला सूख गया। उठकर वोला, "पण्डितजी, वहू चली गई तो वहू तो मिल जायगी, किन्तु भाई को फाँसी होने पर भाई तो फिर नही मिलेगा।" किन्तु, जव उसने अपनी स्त्री के नाम दोषारोषण किया था तव ये सारी वाते नही सोची थी। जल्दी मे एक काम कर डाला, अव अलक्षित भाव से मन अपने पक्ष मे युक्ति और सान्त्वना सचित कर रहा था।

चक्रवर्ती को भी यह वात युक्ति-संगत प्रतीत हुई। वे वोले, "तव जो घटित हुआ है, वही कहो ? सव ओर से रक्षा करना असंभव है।"

यह कहकर रामलोचन अविलव चले गए और देखते-देखने गाँव मे शोर मच गया कि कोरियो के घर मे चन्दरा ने गुस्से मे आकर अपनी जेठानी के सिर में हँसिया दे मारा है।

वाँध टूट जाने पर जैसे पानी का रेला आता है उसी प्रकार हुकार करती हुई पुलिस गाँव में आ पहुँची; अपराधी और निरपराधी सभी वड़े उद्विग्न हो उठे।

: २ :

छिदाम ने सोचा, 'जो रास्ता वनाया है उसी पर चलना पडेगा।' उसने चक्रवर्ती के सामने अपने मुँह से एक वात कह दी है, वह वात सारे गाँव मे फैल गई है, अव फिर कोई नई वात फैलने से क्या जाने क्या-क्या हो जाय—वह स्वय कुछ भी नही सोच सका। सोचा, 'किसी तरह उस वात को रखते हुए उसके साथ और पाँच वाते जोड़कर स्त्री को वचाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नही है।'

छिदाम ने अपनी स्त्री चन्दरा से अपराध अपने ऊपर ले लेने का अनुरोध किया। उस पर जैसे वज्रपात हुआ। छिदाम ने आश्वासन देते हुए उससे कहा, "जो कह रहा हूँ, वही कर। तुझे कोई भय नही नही है, हम तुझे वचा लेगे।"

आश्वासन तो दे दिया, किन्तु गला सूख गया और मुँह का रंग फीका पड़ गया।

चन्दरा की अवस्था सत्रह-अठारह से अधिक नही थी। मुँह हृष्ट-पुष्ट, गोल था। मँझला कद, गठी हुई देह, स्वस्थ-सवल अग-प्रत्यगो मे एक ऐसा सौष्ठव था कि चलने-फिरने मे, हिलने-डुलने मे देह को कही मानो कोई रुकावट ही प्रतीत नही होती थी। किसी नई वनी नाव के समान, खूव छोटी एवं सुडौल वह अत्यन्त सहज भाव से चलती और कही कोई गाँठ ढीली नही हुई थी। दुनिया के सभी विपयों के प्रति उसको एक कौतुक और कौतूहल था, मुहल्ले मे गप-शप करना

उसे अच्छा लगता और कमर पर घडा रखकर घाट आते-जाते अपनी दो अँगुलियो से घूँघट को जरा-सा ढककर दो उज्ज्वल चचल घनी काली आँखो से रास्ते मे जो कुछ भी दर्शनीय होता सब देखती रहती।

वडी वहू ठीक इससे उल्टी थी; अत्यन्त अस्त-व्यस्त, ढीली-ढाली और अव्यवस्थित। सिर का पल्ला, गोद का वच्चा, घर-गृहस्थी का काम कुछ भी वह नही सँभाल पाती थी। हाथ मे कोई विशेप काम भी नही था, तो भी उसे मानो कभी फुरसत नही मिल पाती थी। छोटी देवरानी उससे कुछ अधिक वात नही करती थी, मृदु स्वर मे दो-एक चुभती वात कह देती और वह 'हाय-हाय' करती, गुस्से से लाल-पीली होकर वकती-झकती रहती और दूसरे मुहल्ले को अस्थिर कर देती।

पति-पत्नी के इन दो जोडो के स्वभाव मे एक आश्चर्यजनक मेल था। दुखी-राम कुछ वृहदाकार आदमी था—खूब चौड़े हाड़, छोटी नाक, दो आँखें जैसे एक दृश्यमान ससार को अच्छी तरह न समझती हो, न इससे किसी प्रकार का प्रश्न करना चाहती हों। ऐसा निरीह, किन्तु भीषण, सवल किन्तु निरुपाय मनुष्य अति दुर्लभ है।

और छिदाम को मानो किसी ने वड़े यत्न से किसी चमकीले काले पत्थर से तराशकर गढा हो, उसके अग सुघड थे, अनुपात मे कही भी लेश-मात्र भी कमी नही थी। प्रत्येक अग मे वल और नैपुण्य-मिश्रित पूर्णता दिखती थी। नदी के ऊँचे कगार से कूद पड़े, लग्गी लेकर नौका ठेले, वाँस के पेड पर चढ़कर छाँट-छाँटकर उसकी शाखाएँ काट लाए, सभी कामो मे उसकी एक अनोखी निपुणता, एक सहज शोभा प्रकट होती थी। वड़े-वड़े काले वालो को तेल लगाकर सँवारे रहता था, जो कन्धे तक लटकते रहते थे—वेश-भूपा तथा सजावट मे कुछ विलक्षण सावधानी दिखती थी।

अन्यान्य ग्राम-वधुओ के सौन्दर्य के प्रति यद्यपि उसकी दृष्टि उदासीन नही थी, और उनकी आँखो को वह मनोरम लगे इसकी उसे काफी चाह थी, तो भी छिदाम अपनी युवती पत्नी को कुछ विशेष प्रेम करता था। दोनो मे झगडा भी होता, प्रेम भी होता, कोई किसी को परास्त नही कर पाता था। एक अन्य कारण से भी दोनो मे वन्धन कुछ सुदृढ था। छिदाम सोचता, 'चन्दरा जिस प्रकार की चटुल चचल स्वभाव की स्त्री है, उसका पूरा विश्वास नही किया जा सकता', और चन्दरा सोचती,'मेरे पति की निगाहे चारो ओर रहती है, उनको जरा मजबूती से न वाँधने पर किसी भी दिन हाथ से छूट जाने में कोई वाधा नही है।'

प्रस्तुत घटना घटने के कुछ समय पहले से पति-पत्नी मे वडी भारी खीच-तान

चल रही थी। चन्दरा ने देखा कि उसका पति वीच-वीच में काम का वहाना करके दूर चला जाता, यहाँ तक कि दो-एक दिन विताकर आता और कुछ भी कमाकर नही लाता। वुरे लक्षण देखकर वह भी कुछ अति करने लगी। जव-तव घाट पर चली जाती, मुहल्ले मे घूम आती और लौटकर काशी मजूमदार के मँझले लडके की खूव चर्चा करती।

छिदाम के दिन और रातों मे किसी ने जैसे विष घोल दिया हो। काम-काज में कही भी पल-भर के लिए भी मन शान्त नही रह पाता था। एक दिन आकर उसने भाभी को खूव फटकारा। वह हाथ हिलाकर गरजते हुए मृत पिता को संवोधित करते हुए वोली, "वह औरत तो तूफान से भी तेज़ है, उसे भला मैं सँभालूँगी! मैं जानती हूँ, वह एक-न-एक दिन सर्वनाश करके रहेगी।"

पास की कोठरी से आकर चन्दरा ने धीरे-धीरे कहा, "क्यों दीदी, तुम्हे किस वात का डर है?" वस, देवरानी-जेठानी दोनो में विषम द्वन्द्व छिड़ गया।

छिदाम आँखे लाल करके वोला, "अव यदि कभी सुना कि तू अकेली घाट पर गई है तो तेरी हड्डी-पसली चूर कर दूँगा!"

चन्दरा वोली,' 'तव तो छाती मे ठण्डक पड़ जायगी।" और यह कहकर उसी क्षण वह वाहर जाने को तैयार हुई।

छिदाम ने लपककर उसके वाल पकड़े और उसे खीचकर कोठरी मे वन्द करके वाहर से दरवाज़ा वन्द कर दिया।

शाम काम पर से लौटकर देखा, कोठरी खुली हुई है, घर मे कोई नही है। चन्दरा तीन गाँव पार करके सीधी अपने मामा के घर जा धमकी थी।

छिदाम वहाँ से वहुत प्रयत्न करके अनेक मिन्नतो के वाद उसे घर लौटा लाया, किन्तु इस वार उसने हार मान ली। उसने समझ लिया, जिस तरह अंजली-भर पारे को मुट्ठी मे जोर से दवाए रखना कठिन है वैसे ही इस मुट्ठी-भर स्त्री को भी ज़ोर से पकडकर रखना असम्भव है— वह मानो दसो उँगलियों की फाँक मे से वाहर निकल पडी।

फिर कोई जवरदस्ती नही की, किन्तु उसके दिन वडी अशान्ति से कटने लगे। इस चचल युवती स्त्री के प्रति उसका चिर-शंकित प्रेम एक तीव्र वेदना के समान विषम दुखदायी हो गया। यहाँ तक कि कभी-कभी उसके मन मे आता कि यदि वह मर जाती तो वह निश्चिन्त होकर कुछ शान्ति पा सकता।

मनुष्य के ऊपर मनुष्य की जितनी ईर्ष्या होती है उतनी यम के ऊपर नही।

तभी घर मे यह विपद् घटी।

चन्दरा से जव उसके पति ने खून स्वीकार कर लेने को कहा तो वह स्तम्भित

होकर देखती रह गई। उसकी काली आँखे काली अग्नि के समान नीरव भाव से उसके पति को दग्ध करने लगी। उसका समस्त तन-मन मानो धीरे-धीरे संकुचित होकर अपने पति-राक्षस के हाथो से छूटने की कोशिश करने लगा। उसकी संपूर्ण अन्तरात्मा नितान्त विमुख होकर खडी हो गई।

छिदाम ने आश्वासन दिया, "तुम्हारे लिए डर की कोई बात नही।" इतना कहकर वह पुलिस तथा मजिस्ट्रेट के सामने क्या कहना होगा यह बार-बार सिखाने लगा। चन्दरा ने यह सारी लम्बी कहानी तनिक भी नही सुनी, काठ की मूर्ति बनकर बैठी रही।

सभी कामो मे दुखीराम पूरी तौर से छिदाम के ऊपर निर्भर रहता था। छिदाम ने जब चन्दरा के ऊपर दोषारोपण करने को कहा तो दुखी बोला, "तो फिर बहू का क्या होगा?"

छिदाम ने कहा, "उसको मै बचा लूँगा।" बृहत्काय दुखीराम निश्चिन्त हो गया।

: ३ :

छिदाम ने अपनी स्त्री को सिखा दिया था कि, "तू कहना, जेठानी मुझे हँसिया लेकर मारने आई थी, मै उसको कटार लेकर रोकने गई, हठात् न जाने वह कैसे लग गई।" यह सब रामलोचन की सूझ थी। इसको ध्यान मे रखकर जो-जो अलकार और प्रमाण देने की आवश्यकता थी उसने वह भी विस्तारपूर्वक छिदाम को सिखा दिया था।

पुलिस आकर जाँच-पड़ताल करने लगी। चन्दरा ने ही अपनी जेठानी का खून किया है, गाँव के सभी लोगो के मन मे यह धारणा बद्धमूल हो गई। सारे साक्षियो द्वारा भी यही प्रमाणित हुआ। पुलिस ने जब चन्दरा से पूछा, तो उसने कहा, "मैंने खून किया है।"

"खून क्यो किया?"

"वह मुझे सुहाती नही थी।"

"कोई झगडा हुआ था?"

"नही।"

"वह तुम्हे पहले मारने आई थी?"

"नही।"

"तुम्हारे ऊपर कोई अत्याचार किया था?"

'नही।"

इस प्रकार के उत्तर सुनकर सभी अवाक् रह गए।

छिदाम तो विलकुल वेचैन हो उठा। उसने कहा, "वे सही वात नही वता रही है। वडी वहू ने पहले···"

दारोगा ने उसे कडी फटकार लगाकर रोक दिया। अन्त मे उससे वाकायदा जिरह करने पर वार-वार वही एक उत्तर मिला। वड़ी वहू की ओर से किसी भी प्रकार का आक्रमण चन्दना ने किसी भी भाँति स्वीकार नही किया।

ऐसी अदम्य औरत भी नही मिलती। एकदम प्राणपण से फाँसी के तख्ते पर चढ़ने के लिए तुली थी, किसी भी तरह उसको घेरकर रखना सम्भव नही था। यह कैसा भीपण हठ था! चन्दरा मन-ही-मन पति से कह रही थी, 'मैं तुम्हे छोड़कर अपने इस नवयौवन को लेकर फाँसी के तख्ते को वरण कर रही हूँ—मेरे इस जीवन का अन्तिम वन्धन अव उसीके साथ है।'

वन्दिनी होकर वह निरीह सामान्य चचल विनोद-प्रिय ग्राम-वधू, चन्दरा अपने चिर-परिचित ग्राम-पथ से, रथतला से, वीच हाट से, घाट के किनारे से, मजूमदारो के घर के सामने से, पोस्टआफिस और पाठशाला के पास से, समस्त परिचित व्यक्तियो के नेत्रों के सामने से गुजरती कलक की छाप लेकर सदा के लिए घर छोडकर चली गई। लडको का एक दल पीछे-पीछे चला जा रहा था और गाँव की औरते, उसकी सखी-सहेलियाँ कोई घूँघट मे से, कोई दरवाजे की ओट से, कोई पेड़ की आड़ मे खड़े होकर पुलिस द्वारा चालित चन्दरा को देखकर लज्जा, घृणा और भय से रोमाचित हो उठी।

डिप्टी मजिस्ट्रेट के सामने भी चन्दरा ने दोप स्वीकार कर लिया। और वडी वहू ने खून के समय उसके प्रति किसी प्रकार का अत्याचार किया था, यह प्रकट नही हुआ।

किन्तु, उस दिन छिदाम साक्ष्य-स्थल पर आते ही एकाएक रो पड़ा और हाथ जोड़कर बोला, "दुहाई है हजूर की. मेरी स्त्री का कोई दोष नही है हाकिम डाँट लगाकर उसके उच्छ्वास को ठण्डा करके उससे प्रश्न करने लगे।" वह एक-एक करके सच्ची घटना वताने लगा।

हाकिम ने उसकी वातो पर विश्वास नही किया, क्योकि प्रधान विश्वस्त प्रतिष्ठित गवाह रामलोचन ने कहा, "खून के थोड़ी देर वाद ही मैं घटना-स्थल पर पहुँचा था। साक्षी छिदाम ने मेरे सामने सव-कुछ स्वीकार करके मेरे पैर पकड़कर कहा था, 'वहू का कैसे उद्धार करूँ, मुझे तरकीव वताइए।' मैंने भला-वुरा कुछ नही कहा। साक्षी ने मुझसे कहा था, "मैं अगर कहूँ कि मेरे वड़े भाई को माँगने पर भात नही मिला इसलिए उसने गुस्से की झोक मे पत्नी को मार

डाला, तो क्या वह बच जायगी ?' मैंने कहा, 'खबरदार हरामजादे, अदालत मे एक अक्षर भी झूठ मत बोलना—इससे बडा महापाप और कोई नही।' इत्यादि।"

रामलोचन ने पहले तो चन्दरा को बचाने के लिए बहुत-सी बातो की कल्पना की थी, किन्तु जब उसने देखा कि चन्दरा स्वय अडकर खड़ी हो गई है तो सोचा, 'अरे, बाप रे बाप, अन्त मे क्या झूठी गवाही के झंझट मे फँसना पड़ेगा। जितना जानता हूँ उतना ही कहना ठीक है।' यही सोचकर रामलोचन ने वही कहा, जो वह जानता था। बल्कि उससे भी कुछ अधिक कहने में उसने कसर नही छोडी।

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन के सुपुर्द कर दिया।

इस बीच मे खेती-बाडी, हाट-बाजार, हास्य-रुदन—पृथ्वी के सभी काम चलते रहे। और गत वर्षों की भाँति धान के नवीन खेतों मे श्रावण की अविरल वृष्टि-धारा बरसने लगी।

अपराधी और साक्षी को लेकर पुलिस अदालत मे हाजिर हुई। सामने बैठे मुन्सिफ की कचहरी मे बहुत-से आदमी अपने-अपने मुकद्दमे की प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे। रसोईघर के पिछवाड़े के एक गड्ढे के एक विशेष भाग को लेकर कलकत्ता के एक वकील आए थे और उस प्रसग मे वादी के पक्ष की ओर से उनतालीस साक्षी आए हुए थे। सैकड़ों आदमी अपने-अपने पाई-पाई के हिसाब की बाल की खाल निकालने वाली विवेचना करने के लिए व्यग्र होकर आए थे। उनकी धारणा थी कि जगत् मे अभी तक उससे बडी और कोई घटना कभी हुई ही नही। छिदाम खिडकी से प्रतिदिन के इस अत्यन्त व्यस्ततापूर्ण जगत् की ओर अपलक दृष्टि से देखता रहा है। उसे सारी बाते स्वप्न के समान लग रही है। अहाते के विशाल वट वृक्ष से एक कोयल कूक रही है, उसके लिए किसी प्रकार की कानून-अदालत नही।

चन्दरा ने जज के सामने कहा, "अजी साहब, एक बात को बार-बार और कितनी बार कहूँ।"

जज साहब ने समझाते हुए कहा, "जो अपराध तुम स्वीकार कर रही हो, उसका दण्ड क्या है, तुम जानती हो ?"

चन्दरा ने कहा, "नही।"

जज साहब ने कहा, "उसका दण्ड फाँसी है।"

चन्दरा ने कहा, "अजी साहब, मैं तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ, मुझे वही दे दो न ! तुम लोगो को जो खुशी हो करो, मैं अब और सहन नही कर सकती।"

जब छिदाम को अदालत मे उपस्थित किया गया, चन्दरा ने मुँह फेर लिया।

जज ने कहा, "साक्षी की ओर देखकर वोलो, यह तुम्हारा कौन लगता है ?"

दोनों हाथो से मुँह ढाँककर चन्दरा वोली, "वह मेरा पति लगता है।"

प्रश्न हुआ, "वह तुम्हे प्यार नही करता ?"

उत्तर—"उँह, वडा प्यार करता है ?"

प्रश्न—"तुम उसे प्यार नही करती ?"

उत्तर—"खूव करती हूँ।"

जव छिदाम से पूछा तो छिदाम ने कहा, "खून मैंने किया है।"

प्रश्न—"क्यों ?"

छिदाम—"भात माँगा था, वड़ी वहू ने भात नही दिया।"

दुखीराम गवाही देने के लिए आते हुए मूर्छित होकर गिर पडा। मूर्छा टूटने पर उसने उत्तर दिया, "साहव, खून मैंने किया है।"

"क्यों ?"

"भात माँगा था, भात नही दिया।"

विस्तृत जिरह करके तथा अन्यान्य साक्ष्य सुनकर जज साहव को यह वात स्पष्ट समझ मे आ गई कि घर की महिला को फाँसी के अपमान से वचाने के लिए ये दोनो भाई अपराध को स्वीकार कर रहे है। किन्तु, चन्दरा पुलिस से लेकर सेशन अदालत तक वरावर एक ही वात कहती चली आ रही है, उसकी वात मे तिल-मात्र भी हेर-फेर नही हुआ है। दो वकीलो ने स्वेच्छापूर्वक आगे आकर उसको प्राण-दण्ड से वचाने के लिए वहुत कोशिश की, किन्तु अन्त मे उससे हार माननी पडी।

जिस दिन नन्ही-सी उम्र मे एक काली-कलूटी छोटी-सी वालिका अपना गोल-मटोल चेहरा लिये खेलने की गुडिया पटककर अपने वाप के घर से ससुराल आई थी, उस दिन रात मे शुभलग्न के समय आज की इस वात की कल्पना कौन कर सकता था ! उसका पिता मरते समय यह कहकर निश्चिन्त हो गया था, "चलो, अपनी वेटी तो ठिकाने से लग गई।"

जेलखाने मे फाँसी के पहले दयालु सिविल सर्जन ने चन्दरा से पूछा, "किसी से मिलना चाहती हो ?"

चन्दरा ने कहा, "एक वार अपनी माँ से मिलना चाहती हूँ।"

डॉक्टर ने कहा, "तुम्हारा पति तुम्हे देखना चाहता है, क्या उसे वुलवा लूँ ?"

चन्दरा ने कहा, "मरे !"

समाप्ति

: १ :

अपूर्वकृष्ण बी० ए० पास करके कलकत्ता से लौट रहे थे।

नदी छोटी थी। वर्षा के बाद प्राय: सूख जाती। इस समय श्रावण के अन्त मे बाढ से उमडकर एकाएक गांव की सीमा और बाँस-झाडों के तल-प्रदेश को चूमती हुई बह रही थी।

कई दिन की घनघोर वर्षा के बाद आज मेघमुक्त आकाश मे धूप निकली थी। अगर हम नौका मे बैठे हुए अपूर्वकृष्ण के अन्तर की एक झांकी देख पाते तो देखते कि वहाँ भी इस युवक को मानस-नदी नव-वर्षा के कारण लबालब भरकर प्रकाश से झिलमिला रही है और वायु से छलछला रही है।

नौका यथास्थान घाट पर आ लगी। नदी के किनारे से अपूर्व के घर की पक्की छत वृक्षो के बीच मे से दिखाई दे रही थी। अपूर्व के आने का समाचार घर का कोई व्यक्ति नही जानता था, अत. घाट पर कोई आदमी नही आया था। माझी को बैग उठाने के लिए उद्यत होते देखकर अपूर्व उसे मना करता हुआ स्वय ही बैग उठाकर प्रसन्न मन से झटपट उतर पडा।

किनारे पर कीचड़ थी, उतरते ही अपूर्व बैग समेत कीचड़ मे गिर पड़ा। जैसे ही वह गिरा, वैसे ही कही से एक मधुर उच्च कण्ठ से तरल हास्य-लहरी उठी जिसने पास के वट पर बैठे पक्षियों को चौका दिया।

अपूर्व ने अत्यन्त लज्जित होकर शीघ्र ही सँभलकर आँख उठाकर देखा। किनारे महाजन की नौका से उतारा हुआ नई ईंटों का ढेर रखा था, उसी के ऊपर बैठी एक लडकी ऐसी लग रही थी मानो अभी हास्यावेग से सौ धाराओ मे फूट पडेगी।

अपूर्व ने पहचान लिया, यह उन्ही के नए पडोसी की लडकी मृण्मयी थी। दूर की बड़ी नदी के किनारे इनका घर था, वहाँ नदी के कटाव के कारण देश त्याग-

कर, दो-तीन वर्ष से इसी गाँव मे आकर वस गए है।

इस लड़की की अख्याति की बहुत-सी वाते सुनाई पडती है। गाँव के पुरुष स्नेह के कारण इनको 'पगली' कहते है, किन्तु गाँव की स्त्रियाँ इसके उच्छृंखल स्वभाव से सर्वदा भीत, चिन्तित, शकित रहती हैं। गाँव के लडको के साथ ही इसका सारा खेल चलता है; समवयस्क लडकियो के प्रति अनादर भाव की सीमा नही है। शिशु राज्य मे यह लडकी वर्गियो[1] के के छोटे-मोटे उपद्रव के समान थी।

पिता की लाड़ली लड़की थी न, इसीलिए उसका इतना दुर्दान्त प्रताप था। इस सम्वन्ध मे मृण्मयी की माँ अपनी सहेलियो से पति के विरुद्ध शिकायत करने से कभी न चूकती; लेकिन पिता इसको प्यार करते थे, पिता के पास रहते मृण्मयी की आँखों के आँसू उनके हृदय को वडे अखरते, यही सोचकर प्रवासी पति का स्मरण करती हुई मृण्मयी की माँ लडकी को किसी प्रकार रुला नही पाती।

देखने मे मृण्मयी साँवली थी, छोटे घुँघराले वाल पीठ तक लटकते रहते थे। चेहरे का भाव विलकुल वालको के समान था। वडी काली आँखो मे न लज्जा थी, न भय; और न हाव-भाव-लीला का लेश-मात्र। कद ऊँचा, हृष्टपुष्ट, स्वस्थ, सवल, किन्तु उसकी उम्र ज्यादा है या कम, यह प्रश्न किसी के भी मन मे नही उठता था, यदि उठता, तो अव तक उसके अविवाहित रहने के कारण लोग उसके माता-पिता की वुराई करते। गाँव मे अवगाली जमीदार की नाव समयानुसार जिस दिन घाट पर आकर लगती उस दिन गाँव के लोगो मे हलचल मच जाती, घाट की स्त्रियो के मुख की रगभूमि पर अकस्मात् नाक के अग्रभाग तक यवनिका-पात हो जाता, किन्तु मृण्मयी कही से एक नगे वच्चे को गोद मे लेकर घुँघराले बालो को पीठ पर लहराते हुए दौड़कर घाट पर उपस्थित होती। जिस प्रदेश मे व्याध नही है, विपत्ति नही है, उस प्रदेश के हरिण-शिशु के समान वह निर्भीक उत्सुकता से भरकर खडी ध्यानपूर्वक देखती रहती, और अन्त मे अपने दल के सगी वालको के पास जाकर नवागत लोगो के आचार-व्यवहार का विस्तार से वर्णन करती।

हमारे अपूर्व ने इसके पहले छुट्टियो मे घर आते समय दो-चार वार इस वन्धनहीन वालिका को देखा है और फुरसत के वक्त, यहाँ तक कि, व्यस्त रहते हुए भी इसके सम्वन्ध मे सोचा है। यो तो ससार मे अनेक चेहरे नजर आते है, पर कोई-कोई चेहरा चुपचाप अचानक हृदय मे समा जाता है। ऐसा केवल

१ मराठा अश्वारोही लुटेरो का सैन्यदल।

सौन्दर्य के कारण होता हो, सो नही, इसका कारण एक और ही गुण है। लगता है, वह गुण है स्वच्छता। अधिकाश चेहरो मे मानव-प्रकृति अपने-आपको स्पष्ट रूप से प्रकट नही कर पाती, जिस चेहरे पर वह अन्तरगुहावासी रहस्यमय व्यक्ति निर्बाध रूप से निखर आता है वह चेहरा हजारो मे दृष्टि आकर्षित कर लेता है और पलक मारते मन पर अकित हो जाता है। इस बालिका के चेहरे पर, आँखो मे एक दुरन्त, अबाध्य नारी-प्रकृति उन्मुक्त वेगवान अरण्य-मृग के समान सदा दिखाई पडती, खेलती रहती, इसी कारण इस सप्राण चचल मुख को एक बार देख लेने पर सहज ही नही भुलाया जा सकता।

पाठको से कहना व्यर्थ है, मृण्मयी की कौतुक-हास्य-ध्वनि कितनी ही सुमधुर क्यो न हो, अभागे अपूर्व के लिए वह कुछ क्लेशदायक हो गई थी। वह चटपट माझी को बैग सौपकर अपना लाल चेहरा लेकर तेजी से घर की ओर चल पड़ा।

आयोजन बहुत सुन्दर हुआ था। नदी का तीर, वृक्षो की छाया, पक्षियो का सगीत, प्रभातकालीन धूप, बीस वर्ष की अवस्था, ईटो का ढेर वैसे तो उल्लेख-योग्य नही है, किन्तु जो व्यक्ति उसके ऊपर बैठा था उसने इस शुष्क, कठिन आसन पर भी एक मनोरम श्री बिखेर दी थी। हा! ऐसे दृश्य के बीच प्रथम पदक्षेप-मात्र मे ही समस्त कवित्व प्रहसन मे परिणत हो जाय, इससे बढकर अदृष्ट की निष्ठुरता और क्या हो सकती है!

: २ :

ईट के उस ढेर के ऊपर से बहती हुई हास्य-ध्वनि सुनते हुए चादर और बैग मे कीचड लपेटे वृक्षो की छाया मे होकर अपूर्व घर पहुँचा।

पुत्र के अकस्मात् आगमन से उसकी विधवा माता पुलकित हो उठी। तत्क्षण रबड़ी, दही, रोहू मछली की खोज मे आदमी इधर-उधर दौड़ पडे और पास-पडोस में भी हलचल मच गई।

भोजन के पश्चात् माँ ने अपूर्व के विवाह-प्रस्ताव की चर्चा की। अपूर्व इसके लिए तैयार था। क्योकि प्रस्ताव तो बहुत पहले ही रखा गया था, किन्तु पुत्र नई रोशनी की नई टेक लिये जिद् किये बैठा था कि 'बी० ए० पास किये बिना विवाह नही करूँगा।' इतने दिन माता ने इसी की प्रतीक्षा की थी, अत अब और कोई उज्र करना व्यर्थ था। अपूर्व ने कहा, "पहले पात्री देख ली जाय, उसके बाद तय होगा।" माँ ने कहा, "पात्री देख ली है, उसके लिए तुझे चिन्ता करने की जरूरत नही।" अपूर्व उस विषय मे स्वयं ही चिन्ता करने को प्रस्तुत हो गया और बोला, "लड़की देखे बिना विवाह नही कर सकूँगा।" माँ ने सोचा, 'भला ऐसी अनहोनी

वात भी कहीं सुनाई पड़ती है', लेकिन राजी हो गई।

उस रात अपूर्व के दिया बुझाकर बिछौने पर लेटने के वाद वर्षा-निशीथ की समस्त ध्वनि एवं सम्पूर्ण निस्तव्धता के भीतर से निर्जन निद्राहीन शय्या पर एक उच्छ्वसित उच्च मधुर कण्ठ की हास्य-ध्वनि आकर निरतर उसके कानो मे गूँजने लगी। मन लगातार अपने-आपको यह कह-कहकर तग करने लगा कि मानो सवेरे के पैर फिसलने की घटना का किसी-न-किसी प्रकार से सशोधन कर लेना उचित है। वालिका यह नही जान पाई कि, 'मैं अपूर्वकृष्ण हूँ। मैने वहुत विद्या प्राप्त की है, कलकत्ता मे वहुत दिन विताकर आया हूँ, सयोग से पैर फिसलकर कीचड़ में गिर पड़ने पर भी मै हँसने या उपेक्षा करने योग्य कोई साधारण ग्रामीण युवक नही हूँ।'

दूसरे दिन अपूर्व कन्या देखने जायगा। अधिक दूर नही, मुहल्ले मे ही उसका घर है। थोडे ध्यान से सज-धज की। धोती और चादर उतारकर सिल्क की अचकन, चूडीदार पायजामा, सिर पर गोल पगडी, और पैरों मे पालिश किये हुए जूते पहनकर हाथ मे सिल्क का छाता लिये वह प्रात काल घर से निकला।

होने वाले ससुर के घर मे पदार्पण करते ही महा समारोह-समादर की धूम मच गई। अन्त मे यथासमय कम्पितहृदया लडकी को झाड़-पोछकर, रगकर, पन्नी से जूडा वाँधकर, एक रंगीन पतली साड़ी मे लपेटकर वर के सामने लाकर उपस्थित किया गया। वह एक कोने मे चुपचाप घुटनो पर सिर टेककर बैठी रही और एक प्रौढा दासी उसे साहस देने के लिए पीछे खड़ी रही। कन्या का एक छोटा भाई अपने परिवार मे एक नये अनधिकार-प्रवेशोद्यत व्यक्ति की पगडी, घड़ी की चेन, और नवोद्गत मूँछो का एकाग्रचित्त से निरीक्षण करने लगा। कुछ देर तक मूँछो पर ताव देने के वाद गम्भीर भाव से अपूर्व ने पूछा, "तुम क्या पढती हो?" वस्त्राभूषणो से ढके लज्जा-स्तूप से इसका कोई उत्तर नही मिला। दो-तीन वार प्रश्न दुहराने तथा प्रोत्साहन के लिए प्रौढा दासी द्वारा कई वार पीठ ठोके जाने के वाद अत्यन्त धीमी आवाज मे एक साँस मे वड़ी शीघ्रता से वालिका कह गई, 'चारुपाठ द्वितीय भाग, व्याकरणसार प्रथम भाग, भूगोल विवरण, पाटीगणित भारतवर्ष का इतिहास।' तभी वाहर से अधीर पैरो की धम-धम सुनाई दी और मुहूर्त्त-भर मे दौड़ती, हाँफती हुई पीठ पर वाल फैलाए मृण्मयी कमरे मे घुस आई। उसने अपूर्वकृष्ण की ओर दृष्टि डाले अचानक कन्या के भाई राखाल का हाथ पकडकर खीचातानी शुरू कर दी। उस समय राखाल एकाग्र मन से अपनी पर्यवेक्षण शक्ति की विवेचना मे निमग्न था, वह किसी प्रकार उठने को तैयार नही हुआ। नौकरानी अपनी सयत कंठ-ध्वनि की कोमलता की

रक्षा पर दृष्टि रखते हुए यथासंभव कड़े ढंग से मृण्मयी को फटकारने लगी। अपूर्वकृष्ण अपने संपूर्ण गाम्भीर्य एवं गौरव को समेटकर पगड़ी धारण किये सिर को अभ्रभेदी किये बैठा रहा और पेट के पास घड़ी की चेन हिलाने लगा। संगी को किसी प्रकार विचलित न कर पाने पर अन्त मे उसकी पीठ पर जोर से थप्पड मारकर और चट से खीचकर कन्या के सिर से घूँघट खोलकर मृण्मयी आँधी की भाँति कमरे से निकल गई। दासी गुर्राती हुई गरजने लगी और अकस्मात् बहन का घूँघट उठ जाने से राखाल खिलखिलाकर हँसने लगा। अपनी पीठ पर पड़े जोर के थप्पड को उसने अन्यायपूर्ण नही समझा, क्योकि इस प्रकार का लेन-देन उनमे सदा चला करता था। यही नही, पहले मृण्मयी के बाल कधो को पार करके पीठ के बीचो-बीच पहुँच जाते थे। राखाल ने ही एक दिन हठात् पीछे से आकर उसके झोंटे पर कैंची चला दी थी। मृण्मयी ने इस पर अत्यन्त गुस्सा होकर उसके हाथ से कैंची छीनकर पीछे बचे बालो को कच्-कच् करते निर्दयतापूर्वक काट डाला, उसके घुँघराले बालो के स्तबक शाखाच्युत काले अगूरो के स्तूप के समान गुच्छे-गुच्छे होकर धरती पर गिर पडे। दोनो मे इस प्रकार की शासन-पद्धति प्रचलित थी।

इसके बाद यह नीरव परीक्षा-सभा और अधिक देर न चल सकी। पिण्डाकार कन्या किसी प्रकार फिर दीर्घाकार होकर दासी के सहारे अन्तःपुर मे चली गई। अपूर्व बडे गम्भीर भाव से विरल मूँछो की रेखा पर ताव देता हुआ उठकर कमरे से बाहर आने लगा। दरवाजे के पास पहुँचकर देखा, पालिश किया हुआ नया जूता जहाँ था वहाँ नही है और कहाँ है, यह बहुत प्रयत्न करने पर भी मालूम नही हो सका।

घर के सब लोग बहुत परेशान हुए और अपराधी को लक्ष्य करके गालियो और फटकार की अजस्र वर्षा होने लगी। बहुत खोज करने के पश्चात् अन्त मे और कोई उपाय न देखकर घर के मालिक की पुरानी फटी ढीली चट्टी पहनकर, पतलून-अचकन-पगडी से सुसज्जित अपूर्वकृष्ण कीचड से भरे गाँव के रास्ते मे बडी सावधानी से चलने लगा।

पुष्करिणी के किनारे निर्जन मार्ग मे फिर अकस्मात् उसी उच्च कण्ठ की अजस्र हास्य-ध्वनि सुनाई पडी मानो तरु-पल्लवो मे से कौतुकप्रिया वनदेवी अपूर्व की उन बेमेल चट्टियो की ओर देखकर हठात् अपनी हँसी न रोक सकी हो।

अपूर्व सहमकर ठहरकर इधर-उधर देख रहा था कि सघन वन से निकलकर एक निर्लज्ज अपराधिनी उसके सामने नए जूते रखकर भागने की तैयारी करने लगी। अपूर्व ने शीघ्रता से उसके दोनो हाथ पकड़कर उसे बन्दी बना लिया।

मृणमयी ने खीच-तान करके हाथ छुडाकर भागने की चेष्टा की, किन्तु सफल न हो सकी। घुँघराले वालों से ढके उसके स्वस्थ हँसमुख नटखट मुँह के ऊपर वृक्षो की शाखाओ मे से छनकर आती हुई सूर्य की किरणें पड रही थी। धूप मे झिलमिलाती निर्मल चचल निर्झरिणी पर झुककर कौतूहलप्रिय पथिक जिस प्रकार दृष्टि गड़ाकर उसके तल को देखता हो उसी प्रकार अपूर्व ने मृणमयी के ऊपर को उठे हुए मुख पर गम्भीर दृष्टि डालकर, तड़ित-तरल नेत्रों की ओर ताका और अत्यन्त धीरे-धीरे मुट्ठी ढीली करके कर्तव्य को मानो अधूरा ही रखकर वंदिनी को छोड दिया। क्रोधित होकर अपूर्व यदि मृणमयी को पकडकर मारता तो उसे तनिक भी आश्चर्य न होता, किन्तु निर्जन मार्ग मे इस विचित्र नीरव दण्ड का वह कोई अर्थ नही समझ सकी।

नृत्यमयी प्रकृति की नूपुर-ध्वनि के समान चचल हास्य-ध्वनि सारे आकाश मे भरकर गूँजने लगी और चिन्तामग्न अपूर्वकृष्ण अत्यत धीरे-धीरे पैर रखता हुआ घर पहुँच गया।

: ३ :

दिन-भर तरह-तरह के वहाने वनाकर अपूर्व माँ से भेट करने अन्त पुर मे नही गया। वाहर दावत थी, वही जीम आया। अपूर्व-जैसा एक कृतविद्य, गम्भीर भावुक व्यक्ति एक सामान्य अशिक्षिता वालिका के सामने अपने लुप्त गौरव का उद्धार करने, अपने आतरिक माहात्म्य का सम्पूर्ण परिचय देने के लिए क्यो इतना अधिक उत्कण्ठित हो उठा, यह समझना कठिन है। देहात की एक चंचल लडकी उसे साधारण व्यक्ति समझे तो इससे क्या! वह यदि क्षण-भर के लिए उसे हास्यास्पद समझे और उसके वाद उसके अस्तित्व को भुलाकर राखाल नामक एक निर्वोध निरक्षर लडके के साथ खेलने के लिए व्यग्रता प्रकट करने लगे, तो इसमे भला उसकी क्या हानि है। उसके सामने यह प्रमाणित करने की क्या आयश्यकता थी कि वे 'विश्वदीप' नामक मासिक पत्र मे ग्रन्थ-समीक्षा करते है, और उनके वक्स मे एसेन्स, जूते, रूवीनी का कैम्फर, चिट्ठी लिखने का रगीन कागज और 'हारमोनियम-शिक्षा' पुस्तक के साथ हस्तलिखित पूरी पुस्तक निशीथ के गर्भ मे छिपी भावी उषा के समान प्रकाशित होने की प्रतीक्षा मे पडी थी। किन्तु, मन को समझाना कठिन था और उस देहाती चचला लड़की के सामने श्रीयुत अपूर्णकृष्ण राय, वी० ए०, किसी प्रकार भी हार मानने को तैयार न थे।

संध्या समय अन्त'पुर मे प्रवेश करने पर माँ ने उससे पूछा, "क्यो रे अप्पू,

लडकी देखी, कैसी लगी ? पसद आई ?"

अपूर्व ने कुछ अप्रतिम भाव से कहा, "लडकी देख आया हूँ माँ, उनमे से एक मुझे पसंद है।"

माँ आश्चर्य से बोली, "तो तूने कितनी लडकियाँ देखी है ?"

काफी इधर-उधर करने पर अन्त में मालूम हुआ, पडोस मे रहने वाली शरत् की लडकी मृण्मयी को उनके लडके ने पसंद किया है। इतना पढ-लिखकर लडके की ऐसी पसद !

पहले अपूर्व ने बहुत अधिक लज्जा का अनुभव किया, किन्तु जब माँ बहुत आपत्ति करने लगी तो उसकी लज्जा छूट गई। वह जिद मे आकर कह बैठा, "मृण्मयी के अलावा मै और किसी से विवाह नही करूँगा।" अन्य जड़ पुतली के समान दूसरी लडकी के विषय मे वह जितनी ही कल्पना करता उतनी ही विवाह के सम्बन्ध मे उसके मन मे विषम वितृष्णा का उद्रेक होता।

दो-तीन दिन उभय पक्ष मे मान-अभिमान, अनाहार-अनिद्रा चलने के बाद अपूर्व ही विजयी हुआ। माँ ने अपने मन को समझा लिया कि मृण्मयी बच्ची है और मृण्मयी की माँ उसे उपयुक्त शिक्षा देने मे असमर्थ है, विवाह के बाद उनके हाथों मे पडते ही उसके स्वभाव मे परिवर्तन हो जायगा। और धीरे-धीरे उन्हे इसका भी विश्वास हो गया कि मृण्मयी का चेहरा सुन्दर है। किन्तु, साथ ही उसकी बिखरी केश-राशि उनके कल्पना-पथ मे उदित होकर हृदय को निराशा से भरने लगी, फिर उन्हे यह आशा थी कि बालो को कसकर बाँधने और खूब तेल लगाने से धीरे-धीरे यह दोष भी मिटाया जा सकेगा।

मुहल्ले के सभी लोग अपूर्व की इस पसंद को अपूर्व-पसंद कहकर पुकारने लगे। पगली मृण्मयी को बहुत-से लोग प्यार करते थे, किन्तु फिर भी अपने पुत्र के विवाह-योग्य उसे कोई नही समझता था।

यथासमय मृण्मयी के पिता ईशान मजूमदार को समाचार दिया गया। वे किसी स्टीमर-कम्पनी के क्लर्क की हैसियत से दूर नदी-तीरवर्ती एक बहुत छोटे स्टेशन पर टीन की छत वाली एक साधारण कुटीर मे माल लादने-उतारने तथा टिकट बेचने के काम पर नियुक्त थे।

मृण्मयी के विवाह-प्रस्ताव की बात सुनकर उनकी आँखो से आँसू झरने लगे। उनमे से कितने दुःख के थे एवं कितने आनन्द के, इसका हिसाब लगाकर बताने का कोई उपाय नही है।

कन्या के विवाह के उपलक्ष्य मे ईशान ने छुट्टी की प्रार्थना करते हुए हैड-आफिस के साहब के पास दरख्वास्त भेजी। साहब ने उपलक्ष्य को नितात तुच्छ

समझकर छुट्टी नामजूर कर दी। तव पूजा के अवसर पर एक सप्ताह की छुट्टी पाने की सम्भावना वताकर विवाह को तव तक के लिए स्थगित रखने के लिए घर को चिट्ठी लिख दी। किन्तु अपूर्व की माँ ने कहा, "इस महीने मे दिन अच्छा है, अव और देर नही कर सकूँगी।"

दोनो ओर से ही प्रार्थना अस्वीकृत होने पर व्यथित हृदय ईशान और कोई आपत्ति किये विना पहले की भाँति सामान तोलने और टिकटों की विक्री करने लगे।

इसके वाद मृण्मयी की माँ और मुहल्ले के सारे वुजुर्ग मिलकर मृण्मयी को भावी कर्तव्य के सम्वन्ध मे रात-दिन उपदेश देने लगे। क्रीडा-सिक्त, द्रुतगमन, उच्चहास्य, लडकों से वातचीत और भूख के अनुसार भोजन के विपय मे सव निषेध परामर्श देकर विवाह को विभीपिका सिद्ध करने मे पूर्ण मफल हुए। उत्कण्ठित शकित हृदय मृण्मयी ने सोचा कि उसको आजन्म कारावास और अन्त मे फाँसी का हुक्म हुआ है।

वह दुष्ट पोनी घोड़े की भाँति गरदन टेढी करके पीछे हटकर कह वैठी, "मैं विवाह नही करूँगी।"

: ४ :

किन्तु, तो भी विवाह करना पड़ा।

उसके वाद शिक्षा आरम्भ हुई। एक ही रात मे मृण्मयी की सारी दुनिया अपूर्व की माँ के अन्त:पुर मे आकर घिर गई।

सास सशोधन-कार्य मे प्रवृत्त हुई। मुखाकृति अत्यन्त कठोर वनाकर उन्होंने कहा, "देखो वेटी, अव तुम अवोध लडकी नही हो, हमारे घर ऐसी वेहयाई नही चलेगी।"

सास ने जिम अभिप्राय से वात कही थी मृण्मयी ने उस अर्थ मे उसे ग्रहण नहीं किया। उसने सोचा, 'यदि इस घर में न चले, तो अन्यत्र जाना होगा।' अपराह्न मे वह वहाँ नही दिखी। कहाँ गई, इसकी खोज शुरू हुई। अन्त मे विश्वासघाती राखाल ने उसके छिपने की जगह पर उसे पकडवा दिया। वह वट के नीचे राधाकान्त ठाकुर के परित्यक्त टूटे रथ मे जा वैठी थी।

सास, माँ और मुहल्ले की समस्त हितैषी महिलाओ ने मृण्मयी को जिस प्रकार फटकारा, पाठक-पाठिकागण उसकी सहज ही कल्पना कर सकते है।

रात मे घने वादल छा गए और छपाछप वर्पा होने लगी। अपूर्वकृष्ण ने विछौने पर वहुत धीरे-धीरे मृण्मयी की ओर जरा वढकर उसके कान मे कोमल स्वर मे

कहा, "मृणमयी, तुम मुझे प्यार नही करती ?"

मृणमयी ने आवेश मे आकर कहा, "नही, मै तुम्हे कभी प्यार नही करूँगी।" उसके मन मे जितना क्रोध और जितना दण्ड-विधान था वह सब उसने पुञ्जीभूत वज्र के समान अपूर्व के सिर पर दे मारा।

अपूर्व ने खिन्न होकर पूछा, "क्यो, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है ?"

मृणमयी ने कहा, "तुमने मेरे साथ विवाह क्यो किया ?"

इस अपराध की संतोषजनक कैफियत देना कठिन था। किन्तु अपूर्व ने मन-ही-मन कहा, "जैसे भी हो इस उच्छृङ्खल मन को वश मे करना ही पडेगा।'

दूसरे दिन सास ने मृणमयी मे विद्रोह की भावना के सारे लक्षण देखकर उसे किवाड लगाकर कमरे मे वन्द कर दिया। वह पिंजरे मे वन्द नये पक्षी के समान पहले तो वहुत देर तक कमरे मे छटपटाती हुई इधर-उधर घूमती रही। अन्त मे निकल भागने का कोई मार्ग न देखकर निष्फल क्रोध मे विछौने की चादर दाँतो से फाडकर टुकड़े-टुकड़े कर डाली, और पेट के वल धरती पर पसरकर मन-ही-मन पिता को पुकारती हुई रोने लगी।

तभी धीरे-धीरे आकर कोई उसके पास वैठ गया और स्नेह से उसके धूल मे विखरे वालो को कपोलों से हटा देने की चेष्टा करने लगा। मृणमयी ने ज़ोर से सिर हिलाकर उसका हाथ हटा दिया। कान के पास मुँह झुकाकर अपूर्व ने धीरे से कहा, "मैंने छिपाकर किवाड खोल दिए है। चलो हम लोग पीछे वगीचे मे भाग चले!" मृणमयी ने जोर से सिर हिलाकर क्रोधपूर्वक रोते हुए कहा, "नही।" अपूर्व ने उसकी ठोडी पकड़कर मुँह उठाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "एक वार देखो तो, कौन आया है।" राखाल धराशायी मृणमयी की ओर ताकता हतवुद्धि की भाँति दरवाजे के पास खडा था। मृणमयी ने मुँह उठाए विना अपूर्व का हाथ ठेल दिया। अपूर्व वोला, "राखाल तुम्हारे साथ खेलने आया है, खेलने जाओगी ?" उसने खीझ भरे उच्छ्वसित स्वर मे कहा, "नही।" राखाल ने भी कोई सुविधा न देखकर किसी प्रकार कमरे से भागकर मुक्ति की साँस ली। अपूर्व चुपचाप वैठा रहा। मृणमयी जव रोते-रोते थककर सो गई, तव अपूर्व दवे पॉव वाहर आकर दरवाजे की साँकल लगाकर चला गया।

दूसरे दिन मृणमयी को पिता का एक पत्र मिला। उन्होने अपनी प्राण-प्रतिमा मृणमयी के विवाह के अवसर पर उपस्थित न हो सकने के लिए दु:ख प्रकट करते हुए नवदम्पति को हार्दिक आशीर्वाद भेजा था।

मृणमयी ने सास से जाकर कहा, "मैं पिता के पास जाऊँगी।" अकस्मात् यह असंभव प्रार्थना सुनकर सास उसे फटकारती हुई वोली, "इसका वाप कहाँ रहता है,

कोई ठिकाना नही; कहती है 'पिता के पास जाऊँगी'।" वाह री दुनिया! वह विना कुछ कहे चली गई। अपने कमरे मे जाकर द्वार वन्द करके जिस प्रकार अत्यंत निराश व्यक्ति देवता से प्रार्थना करता है उसी प्रकार कहने लगी, "पिताजी, तुम मुझे ले जाओ! यहाँ मेरा कोई नही है। यहाँ रही तो मैं वचूँगी नही।"

घोर रात मे अपने पति के सो जाने पर द्वार खोलकर धीरे-धीरे मृण्मयी वाहर निकली। यद्यपि कभी-कभी वादल आ जाते थे तथापि चाँदनी रात मे रास्ता दिखने के लायक पर्याप्त प्रकाश था। पिता के यहाँ जाने के लिए कौन-सा रास्ता लेना चाहिए, मृण्मयी यह कुछ न जानती थी। उसके मन मे तो वस यह विश्वास था कि जिस रास्ते डाक ले जाने वाले 'रनर' लोग चलते है उसी रास्ते पृथ्वी के सारे ठिकानो पर जाया जा सकता है। मृण्मयी डाक वाले का वही रास्ता पकडकर चलने लगी। चलते-चलते देह थक गई। रात भी प्राय समाप्त हो गई। जिस समय वन मे दो-एक पक्षी वेचैनी से अनिश्चित स्वर मे वोलने की तैयारी कर रहे थे अथच ठीक समय का निर्णय न कर पाने के कारण हिचकिचा रहे थे, तभी मृण्मयी रास्ते के सिरे पर नदी के किनारे किसी वडे वाजार-जैसे स्थान मे आकर उपस्थित हुई। अव किस ओर जाना चाहिए, वह यही सोच रही थी कि तभी कोई परिचित 'झम्-झम्' शब्द सुनाई पडा। कन्धे पर चिट्ठियो का थैला लिये डाक का 'रनर' हाँफता हुआ पहुँचा। मृण्मयी ने झटपट उसके पास जाकर कातर श्रात स्वर में कहा, "मैं पिता के पास कुशीगञ्ज जाऊँगी, तुम मुझे साथ लिये चलो न!"
"कुशीगञ्ज कहाँ है मैं नही जानता।" यह कहकर उसने घाट पर वँधी डाक ले जाने वाली नाव के मल्लाह को जगाकर नाव खोल दी। उसके पास दया दिखाने या प्रश्न करने का समय नही था।

देखते-देखते हाट और वाजार सजग हो उठे। घाट पर पहुँचकर मृण्मयी ने एक मल्लाह को पुकारकर कहा, "माझी, मुझे कुशीगञ्ज ले चलोगे?" उसने उत्तर देने के पहले ही पास की नाव से एक आदमी वोल उठा, "अरे कौन है, ओह वेटी मिनू, तुम यहाँ कहाँ से?" मृण्मयी उच्छ्वसित व्यग्रता के साथ वोल उठी, "वनमाली! मैं कुशीगञ्ज जाऊँगी पिता के पास, मुझे अपनी नाव मे ले चल!" वनमाली उसके गाँव का मल्लाह था, वह इस उच्छृंखल स्वभाव की वालिका को अच्छी तरह से जानता था; वह वोला, "पिता के पास जायगी? यह तो अच्छी वात है। चलो, मैं तुम्हे ले चलता हूँ।" मृण्मयी नाव पर चढ गई।

माझी ने नाव खोल दी। मेघ घिर आए और मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। भादो के महीने की भरी नदी उफन-उफनकर नाव को झोटे देने लगी; मृण्मयी

का सारा शरीर निद्रा से आच्छन्न हो आया; अञ्चल बिछाकर वह नौका मे लेट गई और यह दुर्दमनीय बालिका नदी के हिण्डोले मे प्रकृति के स्नेहपालित शांत शिशु के समान निश्चिन्त भाव से सो गई।

जगकर उठी तो देखा, वह सुसराल मे खाट पर लेटी है। उसको जगा हुआ देखकर नौकरानी ने झल्लाना आरम्भ किया। नौकरानी की आवाज से सास आकर बडी कठोर बाते कहने लगी। मृण्मयी आँखे फाडे चुपचाप उनके मुँह की ओर ताकती रही। अन्त मे जब उन्होंने उनकी शिक्षा की कमी के लिए उसके पिता पर कटाक्ष किया तो मृण्मयी ने तेजी से पास के कमरे मे घुसकर भीतर से सांकल लगा ली।

लज्जा त्यागकर अपूर्व ने माँ से आकर कहा, "माँ, बहू को एक-दो दिन के लिए पिता के घर पहुँचा देने मे हर्ज क्या है?"

माँ अपूर्व की 'न भूतो न भविष्यति' भर्त्सना करने लगी, और संसार मे इतनी लडकियों के रहते छाँट-छूँटकर इस अस्थिदाहकारी दस्यु-कन्या को घर मे लाने के लिए उसकी काफी लाछना की।

: ५ :

उस दिन, दिन-भर बाहर आँधी-पानी और घर मे भी वैसी ही विभीपिका चलती रही।

दूसरे दिन अँधेरी रात मे अपूर्व ने मृण्मयी को धीरे-से जगाकर कहा, "मृण्मयी, अपने पिता के पास जाओगी?"

मृण्मयी ने झट से अपूर्व का हाथ पकडकर विस्मय से कहा, "जाऊँगी।"

अपूर्व ने धीरे से कहा, "तो चलो, हम दोनो चुपचाप भाग चले। मैंने घाट पर नाव ठीक कर रखी है।"

मृण्मयी ने अत्यत कृतज्ञतापूर्ण हृदय से एक बार पति के मुँह की ओर ताका। उसके बाद झटपट उठकर कपडे पहनकर बाहर जाने के लिए तैयार हो गई। अपूर्व, ने अपनी माता की चिन्ता दूर करने के लिए एक चिट्ठी लिखकर रख दी; और दोनो बाहर निकल गए।

उस अँधेरी रात मे जन-शून्य निस्तब्ध निर्जन ग्राम-पथ मे मृण्मयी ने पहली बार स्वेच्छा और आन्तरिक विश्वास से पति का हाथ पकड़ा; उसके हृदय का आनन्द-उद्वेग उस सुकोमल स्पर्श द्वारा उसके पति की शिराओ मे सचारित होने लगा।

रात मे ही नाव खोल दी। हर्षोच्छ्वास से अधीर होने पर भी थोड़ी ही देर

मे मृण्मयी सो गई। दूसरे दिन कैसी मुक्ति, कैसा आनन्द था! दोनों ओर अनगिनत गाँव, वाजार, अनाज के खेत और वन थे और अनेक नौकाएँ यातायात कर रही थी। मृण्मयी छोटी-से-छोटी वात पर पति से हजारो प्रश्न पूछने लगी— इस नाव मे क्या है? ये कहाँ से आ रही है? इस जगह का नाम क्या है? इस प्रकार के अनेक प्रश्न, जिनका उत्तर न तो अपूर्व को कॉलेज की किसी पुस्तक में मिला था, और न कलकत्ता की उसकी जानकारी मे समा पाया था। वन्धुगण सुनकर लज्जित होगे, अपूर्व ने इन सव प्रश्नों मे से प्रत्येक का उत्तर दिया था और अधिकाश उत्तरो मे सत्य का मेल नही था। यथा, उसने तिल से भरी नाव को अलसी की वताया, पाँच वेड़े को रायनगर और मुन्सिफ की अदालत को जमीदारी कचहरी कहने मे तनिक भी सकोच का अनुभव नही किया। और इन सारे भ्रान्त उत्तरो से विश्वस्त-हृदय प्रश्नकारिणी के सन्तोष को तिल-मात्र भी व्याघात नही पहुँचा।

दूसरे दिन सन्ध्या-समय नाव कुशीगज जा पहुँची। टीन की छत वाले कमरे मे एक मैले चौकोर काँच वाली तेल की लालटेन जलाकर छोटे-से डैस्क पर एक चमड़े की जिल्द वाले वड़े खाते मे नगे वदन स्टूल पर वैठे ईशानचन्द्र हिसाव लगा रहे थे। इसी समय नवदम्पति ने कमरे मे प्रवेश किया। मृण्मयी ने पुकारा, "पिताजी!" उस कमरे मे ऐसी कण्ठ-ध्वनि इस प्रकार पहले कभी ध्वनित नही हुई थी।

ईशान की आँखों मे से टप-टप आँसू टपकने लगे। वे क्या कहे, क्या करें, कुछ भी नही सोच सके। उनकी लड़की और दामाद मानो साम्राज्य के युवराज और युवराज महिषी हो; जूट के वोरो के वीच उनके उपयुक्त सिंहासन किस प्रकार निर्मित हो सकेगा, उनकी दिक्भ्रान्त वुद्धि मानो यही नही तय कर पा रही थी।

फिर भोजन का प्रवन्ध—वह भी एक चिन्ता थी। दरिद्र क्लर्क स्वयं अपने हाथ से दाल-भाते[1] पकाकर खाता—आज ऐसे आनन्द के दिन वह क्या करे, क्या खिलाए? मृण्मयी वोली, "पिताजी, आज हम सव मिलकर पकायँगे।" अपूर्व ने इस प्रस्ताव पर अत्यधिक उत्साह प्रकट किया।

घर मे स्थानाभाव, लोकाभाव और अन्नाभाव था, किन्तु छोटे छिद्र मे से जैसे फव्वारा चौगुने वेग से फूट पड़ता है उसी तरह दारिद्रय के सकीर्ण मुँह से आनन्द

---

१ कई तरह की तरकारी और मसूर की दाल (कपडे मे वाँधकर) चावल डालकर पका लेते हैं और फिर घी-नमक मिलकर खाते हैं।

परिपूर्ण धारा मे उच्छ्वसित होने लगा।

इसी तरह तीन दिन कट गए। दोनो समय नियमित रूप से आकर स्टीमर लगता। कितनी भीड ! कितना कोलाहल ! सन्ध्या-समय नदी का किनारा बिलकुल निर्जन हो जाता, तव कैसी अवाध स्वाधीनता रहती; और तीनो व्यक्ति मिलकर नाना प्रकार से सामग्री जुटाते, भूले करते, और कुछ की जगह कुछ और रसोई वना बैठते। उसके वाद मृण्मयी के वलय-झकृत स्नेहपूर्ण हाथों से परोसा हुआ ससुर-जामाता का एक साथ भोजन और गृहिणीत्व की सहस्रो त्रुटियो के प्रदर्शन द्वारा मृण्मयी का परिहास और उसको लेकर बालिका का आनन्द-कलह और मान-मनौवल चलता। अन्त मे अपूर्व ने वताया कि अब और अधिक दिन ठहरना उचित नही होगा। मृण्मयी ने करुण स्वर मे और भी कुछ अधिक दिनो की प्रार्थना की। ईशान ने कहा, "कोई जरूरत नही।"

विदाई के दिन कन्या को छाती से लगाकर उसके सिर पर हाथ रखकर अश्रु-गद्गद कण्ठ से ईशान ने कहा, "वेटी, तुम ससुराल मे उजाला करके लक्ष्मी वनकर रहना ! मेरी मीनू मे कोई कही दोप न देख पाये।"

मृण्मयी रोते-रोते पति के साथ विदा हुई और ईशान उस द्विगुणित निरान्द सकीर्ण कोठरी मे लौटकर दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीने नियमित रूप से माल तोलते रहे।

: ६ :

अपराधियो की इस जोडी के घर लौट आने पर माँ अत्यन्त गम्भीर मुद्रा वनाए रही, कोई वात ही नही की। किसी के भी व्यवहार के प्रति ऐसा कोई भी दोषारोपण नही किया जिसे वह धोने की चेष्टा कर सकता। यह नीरव अभियोग, निस्तब्ध मान लौह-भार की भाँति घर के सम्पूर्ण काम-काज को अटल भाव से दवाए रहा।

अन्त मे असह्य हो उठने पर अपूर्व ने जाकर कहा, "माँ, कॉलेज खुल गया है, अव मुझे कानून पढने जाना पडेगा।"

माँ ने उदासीन भाव से कहा, "वहू का क्या करोगे ?"

अपूर्व ने कहा, "वहू यही रहे।"

माँ वोली, "न वावा, कोई जरूरत नही, तुम उसे अपने सग ले जाओ।" माँ अपूर्व से हमेशा 'तू' कहकर वोलती थी।

अपूर्व ने अभिमानपीड़ित स्वर मे कहा, "अच्छा।"

कलकत्ता जाने की तैयारी होने लगी। जाने के पूर्व की रात को अपूर्व ने

बिछौने पर पहुँचकर देखा, मृण्मयी रो रही थी।

सहसा उसके मन को आघात लगा। खिन्न स्वर मे बोला, "मृण्मयी, क्या तुम्हारा मन मेरे साथ कलकत्ता जाने को नही होता ?"

मृण्मयी बोली, "नही।"

अपूर्व ने प्रश्न किया, "तुम मुझे प्यार नही करती ?" इस प्रश्न का कोई उत्तर नही मिला। बहुधा इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त सहज होता है, पर फिर कभी-कभी इसमे मनस्तत्त्वघटित इतनी जटिलता का मिश्रण रहता है कि बालिका से उत्तर की प्रत्याशा नही की जा सकती।

अपूर्व ने प्रश्न किया, "क्या राखाल को छोड जाने के कारण तुम्हारा मन दुखी हो रहा है ?"

मृण्मयी ने अनायास ही उत्तर दिया, "हाँ।"

बालक राखाल के प्रति इस बी० ए० परीक्षोत्तीर्ण कृतिविद्य युवक मे सुई के समान अति सूक्ष्म किन्तु अत्यन्त सुतीक्ष्ण ईर्ष्या का उदय हुआ। बोला, "मैं अब काफी दिन तक घर नही आ पाऊँगा।" इस सूचना के सम्बन्ध मे मृण्मयी को कुछ कहना ही नही था।

"कदाचित् दो वर्ष या उससे अधिक लग सकता है।"

मृण्मयी ने आदेश दिया, "तुम लौटते समय राखाल के लिए एक तीन मुँह वाली रॉजर्स की छुरी लेते आना !"

अपूर्व ने थोड़ा उठकर कहा, "तो तुम यही रहोगी ?"

मृण्मयी ने कहा, "हाँ, मैं माँ के यहाँ जाकर रहूँगी।"

अपूर्व ने नि.श्वास छोड़ते हुए कहा, "अच्छा, तो फिर रहो ! जब तक तुम मुझे आने के लिए चिट्ठी नही लिखोगी, मै नही आऊँगा। अब तो खुश हुई ?"

इस प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ समझकर मृण्मयी सोने लगी। किन्तु अपूर्व को नीद नही आई, तकिया ऊँचा करके उसके सहारे बैठा रहा।

काफी रात बीतने पर अचानक चाँद निकला और चन्द्रमा का प्रकाश आकर बिछौने पर पड़ा। उस प्रकाश मे अपूर्व मृण्मयी की ओर निहारने लगा। देखते-देखते उसे लगा मानो कोई राज-कन्या को चाँदी की छडी[1] छुआकर अचेत

---

१. लोक-प्रचलित एक राजकुमार की कहानी, जिसमे वह सोने की छड़ी छुआकर राजकुमारी को जगा लेता था और चाँदी की छड़ी छुआकर सुला देता था। सोने की छड़ी प्रेम के उदय की प्रतीक है।

करके चला गया हो। बस एक वार सोने की छडी मिलते ही इस निद्रित आत्मा को जगाकर मालावदल[1] कर लिया जा सकता है। चाँदी की छडी हास्य है और सोने की छडी अश्रु-जल।

भोर वेला मे अपूर्व ने मृण्मयी को जगा दिया। वोला, "मृण्मयी, मेरे जाने का समय हो गया है। चलो, तुम्हे तुम्हारी माँ के घर छोड़ आऊँ!"

मृण्मयी विस्तर से उठकर खडी हो गई। अपूर्व ने उसके दोनो हाथ पकडकर कहा, "अव मेरी एक प्रार्थना है। मैंने वहुत वार तुम्हारी वहुत सहायता की है, आज जाने के समय उसका एक पुरस्कार दोगी!"

मृण्मयी ने विस्मित होकर कहा, "क्या!"

अपूर्व ने कहा, "तुम अपनी इच्छा से प्रेमपूर्वक मुझे एक चुम्बन दो!"

अपूर्व की यह विचित्र प्रार्थना तथा गम्भीर मुख-मुद्रा देखकर मृण्मयी हँस पडी। हँसी रोककर मुँह वढाकर चुम्बन करने के लिए उद्यत हुई—पास जाकर चूम न सकी, खिलखिलाकर हँस पड़ी। इसी प्रकार दो वार चेष्टा करके अन्त मे निरस्त होकर मुँह पर अचल ढाँपकर हँसने लगी। सजा के वहाने अपूर्व ने उसके कान मल दिए।

अपूर्व का प्रण वडा कठिन था। दस्यु के समान छीनकर, लूटकर पाने से वह आत्मावमानना का अनुभव करता। वह देवता के समान गौरवपूर्वक रहकर स्वेच्छा से दिया हुआ उपहार चाहता था, अपने हाथो उठाकर वह कुछ भी नही लेगा।

मृण्मयी फिर नही हँसी। भोर के प्रकाश मे निर्जन पथ मे होकर उसे उसकी माँ के यहाँ पहुँचाकर अपूर्व ने घर लौटकर माँ से कहा, "मैंने सोच-विचार कर देखा, बहू को अपने साथ कलकत्ता ले जाने से मेरी पढाई-लिखाई मे वाधा पडती, वहाँ उसकी कोई सहेली भी नही है। और तुम उसको इस घर में रखना नही चाहती, इसलिए मैं उसे उसकी माँ के घर पहुँचा आया हूँ।"

घोर मान के वीच माता-पुत्र का विच्छेद हुआ।

: ७ :

मायके आकर मृण्मयी ने देखा, अव उसका किसी भी तरह मन नही लगता। वह घर मानो आद्योपान्त वदल गया हो। समय काटे नही कटता। क्या करे, कहाँ

---

१ वगालियो मे विवाह के अवसर पर एक रस्म होती है जिसमे वर-वधू परस्पर माला की अदला-वदली करते है।

जाय, किससे मेल-जोल करे, कुछ भी समझ नही पाई।

हठात् मृण्मयी के मन मे आया, मानो सारे घर मे एव सारे गाँव मे कोई आदमी ही न हो। मानो मध्याह्न मे सूर्य-ग्रहण लगा हो। वह किसी भी प्रकार नही समझ सकी कि आज कलकत्ता चले जाने के लिए इतनी उत्कट इच्छा क्यो हो रही है, कल रात यह इच्छा कहाँ चली गई थी, कल वह नही जानती थी कि जीवन के किस अश का परिहार करने के लिए उसका मन तडप रहा था उसके पहले ही उसका सारा स्वाद वदल गया है। वृक्ष के परिपक्व पत्ते के समान आज उसने वृन्त-च्युत अतीत के जीवन को स्वेच्छा से अनायास ही दूर फेक दिया है।

कहानियों मे सुना जाता है कि निपुण अस्त्रकार ऐसी तेज तलवार का निर्माण कर सकता है कि उससे आदमी के दो टुकड़े करने पर भी उसे पता न चले, अन्त मे हिलाने पर ही आधे-आधे भाग अलग हो जाते है। विधाता की तलवार भी ऐसी ही है, उन्होने कव मृण्मयी की वाल्यावस्था और यौवनावस्था के वीच आघात किया वह नही जान सकी; आज न जाने कैसे आन्दोलित होने पर शैशव का अंश यौवन से विच्युत हो पड़ा और मृण्मयी विस्मय और व्यथा से ताकती रह गई।

मायके मे अव वह अपना पुराना शयन-कक्ष भी उसे अपना नही लगा, वहाँ जो रहता था वह हठात् चला गया। अव उसके हृदय की सारी स्मृतियाँ किसी और घर मे, किसी और कमरे मे, किसी और शय्या के आस-पास गुन-गुन करती मँडराने लगी।

मृण्मयी को फिर कोई वाहर नही देख पाया। फिर उसकी हास्य-ध्वनि सुनाई नही पड़ी। राखाल उसके सामने आते हुए डरता। खेलने की वात भी मन मे नही आती।

मृण्मयी ने माँ से कहा, "माँ, मुझे ससुराल छोड़ आओ!"

उधर पुत्र के विदा होते समय के उदास मुख का स्मरण करके अपूर्व की माँ का हृदय विदीर्ण हो रहा था। वह नाराज होकर वहू को समधिन के घर छोड आया था, यह वात उनके मन को वहुत चुभ रही थी।

इसी स्थिति मे एक दिन सिर पर पल्ला किये म्लानमुख मृण्मयी ने सास के पैरो पड़कर प्रणाम किया। सास ने उसी क्षण अश्रुपूरित नेत्रो से उठाकर उसे वक्ष से लगा लिया। क्षण-भर मे दोनो मे मेल हो गया। सास वहू के मुँह की ओर देखती हुई आश्चर्य मे पड गई। अव वह मृण्मयी नही थी। साधारणत: ऐसा परिवर्तन हर एक के लिए सभव नही है। वड़े परिवर्तन के लिए वड़ी शक्ति आवश्यक होती है।

सास ने निश्चय किया था कि मृण्मयी के दोषों को एक-एक करके ठीक करेगी, किन्तु एक अन्य अदृश्य सशोधनकर्ता ने एक अज्ञात संक्षिप्त उपाय का सहारा लेकर मृण्मयी को जैसे नया जन्म प्रदान कर दिया हो।

अव मृण्मयी भी सास को समझ गई और सास ने भी मृण्मयी को पहचान लिया। वृक्ष के साथ शाखा-प्रशाखाओ का जिस प्रकार संयोग रहता है, सारा घर-वार उसी प्रकार परस्पर अभिन्न रूप से एक हो गया।

मृण्मयी के सम्पूर्ण तन-मन की एक-एक रेखा एक गभीर स्निग्ध विशाल रमणी-प्रकृति से परिपूर्ण हो उठी और इससे उसे मानो वेदना होने लगी। आपाढ के पहले श्याम-सजल नवमेघों के समान उसके हृदय मे एक अश्रुपूर्ण व्यापक अभिमान का सचार हो गया। उस अभिमान ने उसकी छायामय सुदीर्घ पलको के ऊपर एक और अधिक गहरी छाप डाल दी। वह मन-ही-मन कहने लगी, 'मैं अपने-आपको नही समझ सकी, पर भला तुमने मुझे क्यो नही समझा ? तुमने मुझे दण्ड क्यो नही दिया ? मुझे अपनी इच्छानुसार क्यो नही चलाया ? मैं दुष्टा जव तुम्हारे साथ कलकत्ता जाना नही चाहती थी तव तुम मुझे जवरन पकड़कर क्यो नही ले गए ? तुमने मेरी वात क्यो सुनी, मेरा अनुरोध क्यो माना ? मेरा हठ क्यो सहा ?'

इसके वाद, अपूर्व ने जिस दिन प्रात.काल पुष्करिणी के किनारे वाले निर्जन पथ मे उसको वन्दी वनाकर विना कुछ कहे केवल उसके मुँह की ओर निहारा था, वह पुष्करिणी, वह पथ, वह तरुतल, वह प्रभातकालीन धूप और वह हृदय-भारावनत गहरी दृष्टि उसे याद हो आई और वह अचानक उसका सारा अर्थ समझ गई। वाद मे विदाई के दिन जो चुम्वन अपूर्व के मुँह की ओर वढकर लौट आया था, वह अधूरा चुम्वन अव मृगमरीचिकाभिमुखी तृपार्त्त पक्षी के समान क्रमश. उस वीते हुए अवसर की ओर छूटने लगा। अव उसकी पिपासा किसी भी प्रकार शात नही हो पाती। अव रह-रहकर उसके मन मे केवल यही आता, 'हाय ! अमुक समय यदि ऐसा करती, अमुक प्रश्न का यदि यह उत्तर देती, उस समय यदि ऐसा होता।'

अपूर्व के मन मे यह सोचकर क्षोभ हो रहा था कि 'मृण्मयी को मेरा पूरा परिचय नही मिला।' मृण्मयी भी आज वैठी-वैठी सोच रही थी, 'उन्होने न जाने मेरे विपय मे क्या सोचा-समझा होगा !' अपूर्व ने उसे दुर्दमनीय, चपल, अविवेचक, निर्वोध वालिका समझा, परिपूर्ण हृदयामृतधारा मे प्रेम-पिपासा मिटाने की क्षमता से युक्त रमणी के रूप मे नही जाना, इसी को लेकर वह परिताप, लज्जा और धिक्कार से पीड़ित हो उठी। चुम्वन और सुहाग के उन ऋणों का वह अपूर्व के सिर

के तकिए के ऊपर परिशोध करने लगी। इसी प्रकार कितने ही दिन बीत गए।

अपूर्व कह गया था, 'तुम्हारे चिट्ठी लिखे विना मैं घर नही लौटूँगा।' इसीका स्मरण करके एक दिन वह कमरे का द्वार वन्द करके चिट्ठी लिखने बैठी। अपूर्व ने उसको सुनहली किनारी वाला जो रंगीन कागज दिया था उसीको निकालकर बैठी-बैठी सोचने लगी। स्याही मे उँगलियाँ सानकर खूब सँभाल-सँभालकर टेढी-मेढ़ी पक्तियो मे छोटे-वड़े अक्षरो से ऊपर विना किसी सवोधन के चट-से लिखा कि, "तुम मुझे चिट्ठी क्यो नही लिखते ? तुम कैसे हो, और तुम घर आओ!' और क्या कहना था, वह कुछ नही सोच सकी। असल मे जो वाते कहनी थी, वे तो खैर लिख दी गईं, किन्तु मनुष्य-समाज मे मन के भावो को, कुछ थोडा वढाकर प्रकट करना आवश्यक होता है। मृण्मयी भी यह समझ गई थी, इसीलिए उसने भी वहुत देर तक सोचते रहने के वाद और कई नई वाते जोड़ दी—'इस वार तुम मुझे चिट्ठी लिखना, और कैसे हो, लिखो, और घर आओ, माँ अच्छी हैं, विशु पूँटि अच्छे ह, कल हमारी काली गाय के वछड़ा हुआ है।' और इस प्रकार चिट्ठी पूरी कर दी। लिफाफे मे चिट्ठी वन्द करके अक्षर-अक्षर मे प्यार ढालकर लिखा, "श्रीयुक्त वावू अपूर्वकृष्ण राय'। प्रेम कितना ही क्यो न ढाला हो; न तो पक्ति सीधी हुई, न अक्षर सुन्दर वने, न भाषा शुद्ध हो सकी।

लिफाफे पर नाम के अतिरिक्त और भी कुछ लिखना आवश्यक था, यह मृण्मयी नही जानती थी। कही सास या और किसी की दृष्टि न पड़ जाय, इस लज्जा से वचने के लिए उसने चिट्ठी एक विश्वस्त दासी के द्वारा डाक मे छुड़वा दी।

कहना व्यर्थ है, इस पत्र का कोई परिणाम नही हुआ, अपूर्व घर नही आया।

: ८ :

माँ ने देखा, छुट्टी हो गई तो भी अपूर्व घर नही आया। उन्होने सोचा, 'अव भी वह मुझसे नाराज है।'

मृण्मयी ने भी यही समझा कि अपूर्व उससे खीझा हुआ है और तव वह अपनी चिट्ठी की वात याद करके लज्जा से गडने लग गई। वह चिट्ठी कितनी तुच्छ थी, उसमे तो कोई वात ही नही लिखी जा सकी, उसके मन का कोई भाव ही प्रकट नही हुआ, उसको पढकर तो अपूर्व मृण्मयी को और भी अवोध लकड़ी समझने लगा होगा, मन-ही-मन और भी तिरस्कार करने लगा होगा, यह सोचकर वह शरविद्ध पक्षी की भाँति मन-ही-मन छटपटाने लगी। दासी से वार-वार पूछा, "वह चिट्ठी क्या तू डाक मे छोड़ आई थी ?" नौकरानी ने उसको सहस्र

वार आश्वासन देते हुए कहा, "हाँ जी, मैंने अपने हाथों से वक्स मे डाली है, अब तक तो वह वावू की कभी की मिल गई होगी ।"

अन्त मे एक दिन अपूर्व की माँ ने मृण्मयी को बुलाकर कहा, "बहू, अपू बहुत दिनो से घर नही आया, इसलिए सोच रही हूँ, कलकत्ता जाकर उसे देख आऊँ। तुम सग चलोगी ?" मृण्मयी ने सम्मतिसूचक गर्दन हिला दी और कमरे में आकर किवाड वन्द करके विछौने पर लेटकर तकिये को हृदय से चिपटाकर हँसती हुई लोट-पोट होकर उसने अपने मन का आवेग उन्मुक्त कर दिया; उसके पश्चात् वह धीरे-धीरे गम्भीर होकर, खिन्नता तथा आशका मे भरकर वैठी-वैठी रोने लगी।

अपूर्व को कोई सूचना दिये विना इन दोनो अनुतप्त रमणियों ने उसकी प्रसन्नता -की भीख माँगने के लिए कलकत्ता की यात्रा की। अपूर्व की माँ वहाँ अपने जमाई के यहाँ ठहरी।

उस दिन संध्या समय मृण्मयी से पत्र पाने मे निराश होकर अपूर्व अपनी प्रतिज्ञा तोडकर स्वय उसको पत्र लिखने वैठा था। कोई वात वन ही नही पाती थी। वह एक ऐसा संवोधन खोज रहा था, जिससे प्रेम भी प्रकट हो और साथ ही मान भी व्यक्त हो, शब्द न मिलने के कारण मातृभापा के ऊपर उसकी अश्रद्धा दृढतर हो रही थी। इसी समय उसे वहनोई की चिट्ठी मिली, 'माँ आई हैं, जल्दी आओ और रात को भोजनादि यही करना। समाचार सव अच्छे हैं।' अन्तिम आश्वासन के रहते हुए भी अपूर्व अमगल की आशंका से चिन्तित हो उठा। वह अविलम्व वहन के यहाँ जा पहुँचा।

नजर पडते ही माँ से पूछा, "माँ, सव कुशल तो है ?"

माँ ने कहा, "सव ठीक है। तू छुट्टी मे घर नही आया, इसीलिए मैं तुझे लेने आई हूँ।"

अपूर्व ने कहा, "इसके लिए इतना कष्ट करके आने की क्या आवश्यकता थी, कानून-परीक्षा की पढाई-लिखाई···" इत्यादि।

भोजन के समय वहन ने पूछा, "दादा, इस वार तुम वहू को अपने साथ क्यो नही लाए ?"

दादा गम्भीर भाव से कहने लगा, "कानून की पढ़ाई-लिखाई···" इत्यादि।

वहनोई हँसकर वोले, "यह सव झूठा वहाना है। हमारे डर के मारे लाने की हिम्मत नही होती।"

वहन वोली, "सचमुच वड़े खतरनाक हो! वच्ची अचानक देख ले तो चौंक-कर डर जाए।"

इसी प्रकार हँसी-मजाक चलने लगा, किन्तु अपूर्व अत्यन्त चिन्तित वना रहा।

कोई भी वात उसे अच्छी नही लग रही थी। वह सोच रहा था, 'जव माँ कलकत्ता आई तो मृणमयी चाहती तो अनायास ही उनके साथ आ सकती थी। हो सकता है, माँ ने उसको साथ लाने का प्रयत्न भी किया हो; किन्तु कोई फल न निकला हो।' इस विपय में सकोच के कारण माँ से कोई प्रश्न भी नही पूछ सका—उसे समस्त मानव-जीवन और विश्व-सृष्टि सिरे से ही भ्रमपूर्ण प्रतीत होने लगी।

भोजन समाप्त होते ही बड़े जोर की हवा चली और जोरो से वर्षा शुरू हो गई।

वहन ने कहा, "दादा, आज हमारे यहाँ ही रह जाओ!"

दादा ने कहा, "नही, घर जाना होगा, काम है।"

वहनोई ने कहा, "रात को तुम्हे ऐसा क्या काम है? अगर एक रात यहाँ रह जाओगे तो तुम्हे किसी से जवावदेही तो करनी नही पडेगी तुम्हे क्या चिन्ता है?"

वहुत कहने-सुनने के वाद वडी अनिच्छा होते हुए भी अपूर्व उस रात ठहरने के लिए राजी हो गया।

वहन ने कहा, "दादा, तुम थके हुए हो, और अव देर मत करो, चलो, सोने चलो!"

अपूर्व की भी यही इच्छा थी। अँधेरे मे विछौने पर अकेला पड सके तो जान वचे। वात-वात पर सवाल-जवाव उसे अच्छे नही लग रहे थे।

सोने के कमरे के दरवाजे पर जाकर देखा कि कमरे मे अँधेरा था। वहन वोली, "लगता है कि हवा से वत्ती वुझ गई। दादा, क्या वत्ती ला दूँ!"

अपूर्व ने कहा, "नही, कोई जरूरत नही, रात मे मैं वत्ती जली नही रखता।"

वहन के चले जाने पर अपूर्व अँधेरे मे सावधानी से खाट की ओर वढा।

खाट पर वैठने ही वाला था कि अचानक वलयनिक्वण ध्वनि से युक्त एक सुकोमल वाहु-पाश ने उसे कठिन वन्धन मे वाँध लिया और पुष्पपुट तुल्य ओष्ठाधरो ने दस्यु के समान कूदकर अविरल अश्रुजल-सिक्त आवेगपूर्ण चुम्वन के कारण उसे विस्मय प्रकट करने का अवसर नही दिया। अपूर्व पहले तो चौक पडा, उसके वाद समझ गया कि वहुत दिनो का एक हास्य-वाधित अपूर्ण प्रयत्न आज अश्रु-जल-धारा मे पूरा हुआ है।

धूप और छाया

: १ :

पिछले दिन वर्षा हो चुकी है। आज सवेरे वृष्टिशान्त मे म्लान धूप और मेघखड मिलकर प्राय परिपक्व आउस धान के खेतों पर क्रमश. अपनी-अपनी लम्बी तूलिका फेरते जा रहे थे, सुविस्तृत श्याम चित्रपट एक बार आलोक के स्पर्श से उज्ज्वल पाण्डुवर्ण धारण कर लेता और दूसरे ही क्षण छायालेपन द्वारा गहरी स्निग्धता से अकित हो जाता।

इस समय जब सम्पूर्ण आकाश-रगभूमि मे बादल और धूप, बस ये दो अभिनेता अपने-अपने अश का अभिनय कर रहे थे तब नीचे ससार-रगभूमि मे कितने स्थानो पर कितने अभिनय चल रहे थे, उनकी कोई गिनती नही।

हमने जिस स्थान पर एक छोटे-से जीवन-नाटक का पर्दा उठाया है, वहाँ गाँव की सडक के किनारे एक घर दिखाई दे रहा है। बाहर का बस एक कमरा पक्का है और उस कमरे की दोनो बगल से जीर्णप्राय' ईंटो की दीवार ने मिट्टी के कई-एक कमरो को घेर रखा है। रास्ते से जँगले के सीखचो मे होकर दिखाई दे रहा है कि एक युवापुरुष नगे बदन तख्त पर बैठे बाएँ हाथ में तालपत्र का पखा लेकर क्षण-क्षण मे गर्मी और मच्छर दूर करने की कोशिश कर रहे है और दाहिने हाथ मे पुस्तक लिये पाठ मे रत है।

बाहर गाँव की सडक पर डोरिये की साड़ी पहने एक बालिका अपने आँचल मे थोडी-सी काली जामुने लेकर एक-एक कर समाप्त करती हुई उक्त सीखचे वाले जँगले के सामने से बार-बार आ-जा रही थी। चेहरे के भाव से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि भीतर जो व्यक्ति तख्त पर बैठा पुस्तक पढ रहा है उसके साथ बालिका का घनिष्ठ परिचय है—और किसी-न-किसी प्रकार वह उसका ध्यान आकर्षित कर मौन अवज्ञा के भाव से उसे जता देना चाहती है कि अभी मैं काली जामुने खाने मे अत्यन्त व्यस्त हूँ, तुम्हारी मैं परवाह तक नही करती।

दुर्भाग्यवश. कमरे के भीतर वैठे हुए अध्ययनशील व्यक्ति को कम दिखाई देता है, दूर से वालिका की मौन उपेक्षा उन्हे छू नहीं पाती। वालिका भी यह जानती थी, फलतः बहुत देर तक निष्फल आने-जाने के वाद मौन उपेक्षा के वदले उसे काली जामुन की गुठली का प्रयोग करना पडा। अन्धे के सामने मान की विशुद्धता की रक्षा करना कितना दुरूह है!

जव क्षण-क्षण मे दो-चार कडी गुठलियों ने मानो दैवयोग से लकड़ी के दरवाजे पर गिर-गिर कर ठक-ठक शव्द किया तव पाठ-रत व्यक्ति ने सिर उठाकर देखा। नटखट वालिका यह जानते ही दुगुने मनोयोग से आँचल मे से खाने योग्य सुपक्व काली जामुनें चुनने में मग्न हो गई। वह व्यक्ति भौहें सिकोडे विशेष प्रयत्न से निरीक्षण करने पर वालिका को पहचान पाया और किताव रखकर जँगले के पास खड़े होकर हँसते हुए पुकारा, "गिरिवाला!"

अविचलित भाव से अपने अंचल की जामुनो के परीक्षण मे पूरी तौर से ध्यान-मग्न गिरिवाला धीरे-धीरे मन की मौज मे एक-एक पैर वढाती हुई चलने लगी।

तव उस सूक्ष्मदर्शी युवक को यह समझते देर नही लगी कि यह अनजान मे किये गए किसी अपराध का दण्ड-विधान हो रहा है। झट से वाहर आकर वोले, "क्यों, आज मुझे जामुनें नही दी?" गिरिवाला ने इस वात पर कान न देकर वहुत खोज और परीक्षा के वाद एक जामुन चुनकर अत्यन्त निश्चित भाव से खाना शुरू किया।

ये जामुनें गिरिवाला के वाग की थी और उस युवक व्यक्ति को प्रतिदिन मिलती थी। पता नही क्यो उस वात का आज गिरिवाला को किसी प्रकार स्मरण नही रहा, उसके व्यवहार से ऐसा प्रकट होता था कि ये जामुनें वह केवल अपने ही लिए लाई है। किन्तु अपने वाग से फल तोड़कर दूसरे के दरवाजे के सामने आकर धूमधाम से खाने का क्या अर्थ है—यह स्पष्ट रूप से नही समझा जा सका। तव उस पुरुष ने पास आकर उसका हाथ पकड लिया। पहले तो गिरिवाला ने इधर-उधर करके हाथ छुडाकर भागने का यत्न किया, उसके वाद सहसा आँसू वहाती हुई रोने लगी, और आँचल की जामुनो को धरती पर विखेरकर भाग गई।

सवेरे की चंचल धूप तथा चचल मेघो ने शाम को शान्त और श्रान्त भाव धारण कर लिया था, शुभ्र स्फीत मेघ आकाश-प्रान्त मे स्तूपाकार दिख रहे थे और अपराह्न वेला का अस्तोन्मुख प्रकाश वृक्षो के पत्तो पर, पुष्करिणी के जल मे एवं वर्षा-स्नात प्रकृति के प्रत्येक अग-प्रत्यंग मे झिलमिला रहा था। फिर वह वालिका उस सीखचों वाले जँगले के सामने दिखाई पड़ी और कमरे के भीतर वही युवक वैठा था। इस समय अन्तर यह था कि वालिका के आँचल मे जामुन नहीं थी,

और युवक के हाथ मे भी पुस्तक नही थी। उससे भी अधिक कोई एक गुरुतर और गहरा भेद भी था।

इस समय भी क्या बालिका किसी विशेष आवश्यक कार्य से उस विशेष स्थान पर आकर इधर-उधर कर रही थी, यह कहना कठिन है। और जो भी आवश्यक क्यों न हो, कमरे के भीतर के व्यक्ति के साथ बातचीत करना आवश्यक है यह बात बालिका के व्यवहार से किसी भी प्रकार प्रकट नही होती थी। वरच ऐसा लगता था, मानो वह यह देखने आई हो कि सवेरे जो जामुन फेक गई थी शाम को उनमे से किसी मे कोई अकुर फूटा या नही।

किन्तु अकुर फूटने के अन्यान्य कारणो मे से एक गुरुतर कारण यह भी था कि वे फल इस समय युवक के सामने तख्त के ऊपर इकट्ठे थे, और बालिका जब बार-बार झुककर किसी एक अनिर्दिष्ट काल्पनिक पदार्थ के अनुसधान में लगी थी तब युवक मन की हँसी छिपाकर अत्यन्त गम्भीर भाव से एक-एक जामुन चुन-कर यत्न से खा रहा था। अन्त मे जब दो-एक गुठली संयोग से बालिका के पैरो के पास, यहाँ तक कि पैर के ऊपर आकर पडी तब गिरिबाला ने समझा कि युवक बालिका के मान का प्रतिशोध ले रहा है। किन्तु क्या यह उचित था! जिस समय वह अपने छोटे-से हृदय का समस्त गर्व विसर्जित करके आत्म-समर्पण करने का अवसर खोज रही थी तब क्या उसके इस अत्यन्त दुरूह मार्ग मे बाधा डालना निष्ठुरता नही थी ? वह पकड़े जाने के लिए आई थी, यह बात प्रकट हो जाने पर जब बालिका लाल होकर भागने का रास्ता खोजने लगी थी तभी युवक ने बाहर आकर उसका हाथ पकड लिया।

सवेरे के समान इस समय भी बालिका ने इधर-उधर करके हाथ छुडाकर भागने की बहुत कोशिश की, किन्तु रोई नही। वरच लाल होकर मुँह मोड़कर अत्याचारी की पीठ मे मुँह छिपाकर खूब जोर से हँसने लगी और मानो केवल मात्र बाहरी आकणर्ष के सामने झुककर बदी भाव से लोहे के सीखचो से घिरे कारागार मे प्रवेश किया।

आकाश मे बादल और धूप का खेल जिस प्रकार साधारण बात थी, पृथ्वी पर इन दो व्यक्तियो का खेल भी उसी प्रकार साधारण, उसी प्रकार क्षण-स्थायी था। और जिस प्रकार आकाश मे बादल और धूप का खेल न तो कोई साधारण बात है और न खेल ही है, केवल खेल की भाँति दिखाई पडता है उसी, तरह इन दो अप्रसिद्ध व्यक्तियो का वर्षा के किसी एक खाली दिन का क्षुद्र इतिहास ,ससार को सैकडो घटनाओ के बीच तुच्छ प्रतीत हो सकता है। किन्तु यह तुच्छ था नही, जो पुरातन विराट्, अदृष्ट, अविचलित गभीर मुख से अनन्त काल से युग के साथ

युगान्तर को गूँथता चला जाता है वही पुरातन वालिका के इस सुवह्-साँझ के तुच्छ हास्य-रुदन मे जीवन-व्यापी सुख-दु ख के वीज अंकुरित कर रहा था। तो भी वालिका का यह अकारण मान-प्रदर्शन वड़ा ही अर्थहीन प्रतीत हुआ। केवल दर्शको के लिए ही नही, इस छोटे नाटक के प्रधान पात्र उक्त युवक के लिए भी। क्यो यह वालिका किसी दिन नाराज़ हो जाती है, किसी दिन अपरिमित स्नेह प्र दर्शित करती है, किसी दिन दैनिक खुराक वढ़ा देती है, किसी दिन विलकुल ही वद कर देती है? इसका कारण खोज पाना आसान नही है। किसी-किसी दिन मानो उसकी सम्पूर्ण कल्पना, भावना और निपुणता एकत्र होकर युवक को सन्तुष्ट करने मे प्रवृत्त हो जाती और कभी-कभी अपनी सम्पूर्ण अल्प शक्ति, अपनी सम्पूर्ण कठोरता को एकत्र करके उसको चोट पहुँचाने का प्रयत्न करती। वेदना न पहुँचा सकने पर उसकी कठोरता दुगुनी हो जाती, सफल हो जाने पर वह कठोरता अनुताप के अश्रु-जल की सैकड़ो धाराओ मे विगलित होकर अजस्र स्नेह-धारा के रूप मे प्रवाहित होती रहती।

वादल और धूप के इस तुच्छ खेल का प्रथम तुच्छ इतिहास अगले परिच्छेद मे सक्षेप मे वर्णित किया जा रहा है।

: २ :

गाँव मे और सव तो दलवन्दी, षड्यन्त्र, ईख की खेती, झूठे मुकद्दमे, और पटसन के कार-वार को लेकर व्यस्त रहते, भाव-विमर्श और साहित्य-चर्चा करते केवल शशिभूपण और गिरिवाला।

इसमे किसी के लिए उत्सुकता या उत्कण्ठा की कोई वात नही थी। क्योकि गिरिवाला की उम्र दस वर्ष थी, और शशिभूपण अभी हाल के एक एम० ए०, वी० एल० थे। दोनो पडौसी-भर थे।

गिरिवाला के पिता हरकुमार किसी समय गाँव के पट्टेदार थे। इस समय दुरवस्था मे पडकर उन्होने अपना सव-कुछ वेचकर अपने विदेशी जमीदार की नायवी का पद स्वीकार कर लिया था। जिस परगने मे उनका घर था उसी परगने की नायवी थी, अतएव उनको जन्म-स्थान से टलना नही पड़ा।

शशिभूपण एम० ए० पास करके कानून की परीक्षा मे उत्तीर्ण हो चुके हैं। किन्तु किसी भी प्रकार किसी काम मे नहीं जुट पाए। लोगों से मिलना या सभा मे दो वाते कहना, यह भी उनसे नही हो पात'। आँखो से कम दिखता है इसलिए परिचित व्यक्ति को भी नही पहचान पाते, और इसी कारण उन्हें भौहे सिकोड़कर देखना पड़ता है, इसे लोग औद्धत्य समझते हैं।

कलकत्ता के जन-समुद्र में अपने-आपमे रमे रहना शोभा देता है। किन्तु देहातो मे खास तौर से उसको अहंकार माना जाता है। शशिभूषण के पिता ने जब बहुत प्रयत्न करके परास्त होकर अन्त मे अपने अकर्मण्य पुत्र को गाँव मे अपनी मामूली जायदाद की देख-भाल के काम मे नियुक्त कर दिया तब शशिभूषण को ग्रामवासियो की ओर से बडी प्रतारणा, उपहास और लाछना सहनी पडी। लाछना का और भी एक कारण था, शान्तिप्रिय शशिभूषण विवाह करने के लिए तैयार नही थे—कन्या-भारग्रस्त माता-पितागण उनकी इस अनिच्छा को दुःसह अहंकार समझकर उनको किसी भी प्रकार क्षमा नही कर पाते थे।

शशिभूषण पर जितना ही अत्याचार होने लगा, वे उतना ही अपने बिल मे समाने लग गए। कोने के एक कमरे मे एक चौकी के ऊपर कुछ जिल्द-बँधी अँग्रेजी किताबे लेकर बैठे रहते, जब जो इच्छा होती पढते रहते, बस यही तो उनका काम था—जायदाद की रक्षा किस तरह होती थी, यह तो जायदाद ही जाने।

और इसका आभास तो पहले ही दिया जा चुका है कि मानव-जगत् मे उसका सम्पर्क था केवल गिरिबाला से।

गिरिबाला के भाई स्कूल जाते और लौटकर मूढ बहन से किसी दिन प्रश्न करते—पृथ्वी का आकार कैसा है ? या किसी दिन प्रश्न करते—सूर्य बड़ा है या पृथ्वी ? जब वह गलत उत्तर देती तो उसके प्रति बडी अवज्ञा दिखाते हुए उसकी भूल सुधार देते। सूर्य पृथ्वी की अपेक्षा बडा है, यदि यह मत प्रमाण के अभाव मे गिरिबाला को निराधार लगता और यदि वह साहस करके यह सन्देह प्रकट कर देती तो उसके भाई दुगुनी उपेक्षा से कहते, "वाह, हमारी किताब मे लिखा है और तू ."

छपी हुई किताब मे ऐसी बात लिखी है, यह सुनकर गिरिबाला बिलकुल निरुत्तर हो जाती, किसी और प्रमाण की उसे आवश्यकता प्रतीत नही होती।

किन्तु मन-ही-मन उसे बड़ी इच्छा होती कि वह भी अपने बड़े भाइयो की भाँति किताब लेकर पढे। किसी-किसी दिन वह अपने कमरे मे बैठकर कोई एक पुस्तक खोलकर बड़बड़ाती हुई पढने का स्वाँग करती और यो ही पन्ने उलटती जाती। छापे के काले-काले छोटे अपरिचित अक्षर मानो किसी महा रहस्यशाला के सिंह-द्वार पर दल-के-दल पक्तिबद्ध होकर कधो पर इकार, ऐकार, रेफ उठाए पहरा देते, गिरिबाला के किसी भी प्रश्न का कोई उत्तर नही देते। कथामाला अपनी बाघ, गीदड, अश्व, गर्दभ की एक भी कहानी कौतूहलकातर बालिका के हाथ न आने देती और आख्यानमजरी अपने समस्त आख्यान लिये मौनव्रती की भाँति चुपचाप देखती रहती।

गिरिवाला ने अपने भाइयों से पढाई सीखने का प्रस्ताव किया था, किन्तु उसके भाइयों ने उसकी वात पर कान ही नही दिया। एक-मात्र शशिभूषण उसका सहायक था।

गिरिवाला के लिए जिस प्रकार कथामाला और आख्यानमंजरी दुर्भेद्य रहस्य-पूर्ण थीं, शशिभूषण भी शुरू-शुरू मे वहुत-कुछ ऐसा ही था। लोहे के सीखचों वाले रास्ते के पास के छोटे-से वैठकखाने में तख्त पर अकेला युवक पुस्तकों से घिरा वैठा रहता। गिरिवाला सीखचा पकडे वाहर खडी अवाक् होकर इस नत-पृष्ठ पाठनिविष्ट विचित्र व्यक्ति को ध्यानपूर्वक देखती, पुस्तकों की संख्या की तुलना करके मन-ही-मन निश्चय करती कि शशिभूषण उसके भाइयो की अपेक्षा वहुत ज्यादा विद्वान् है। उसके लिए इससे अधिक विस्मयजनक वात और कोई नही थी। कथामाला इत्यादि पृथ्वी की प्रधान-प्रधान पठनीय पुस्तके शशिभूषण ने आद्योपात पढ डाली है, इस विषय में उसे तनिक भी संदेह नही था। इसीलिए, शशिभूषण जव पुस्तक के पृष्ठ उलटता तो वह स्थिर भाव से खडी-खडी उसके ज्ञान की सीमा का निर्णय नही कर पाती थी।

अन्त मे इस विस्मयमग्न वालिका ने क्षीणादृष्टि शशिभूषण का भी ध्यान आकर्षित कर लिया। शशिभूषण एक दिन चमचमाती जिल्द की एक पुस्तक खोलकर वोला, "गिरिवाला, तसवीर देखेगी, आ।" गिरिवाला तुरन्त दौडकर भाग गई।

किन्तु दूसरे दिन वह फिर डोरिये की साडी पहने उसी जँगले के वाहर खडी होकर उसी तरह गम्भीर मौन मनोयोग से शशिभूषण के अध्ययन-कार्य का निरी-क्षण करती हुई देखने लगी। शशिभूषण ने उस दिन भी उसे वुलाया और उस दिन भी वह चोटी हिलाती एक साँस मे दौडकर भाग गई।

इस प्रकार उनके परिचय का सूत्रपात होकर धीरे-धीरे वह कव घनिष्ठतर हो गया और कव वालिका ने सीखचों के वाहर से शशिभूषण के कमरे मे प्रवेश किया, उसके तख्त पर के सजिल्द पुस्तक-स्तूप के वीच स्थान ले लिया, उस तारीख का सही निर्णय करने के लिए ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता होगी।

शशिभूषण से गिरिवाला के पढने-लिखने की चर्चा आरम्भ हुई। सुनकर सव हँसेंगे, ये मास्टर अपनी तुच्छ छात्रा को केवल अक्षर, शब्दरूप और व्याकरण ही नही सिखाते वहुत-से वड़े-वडे काव्य तर्जुमा करके सुनाते और उसकी राय भी लेते रहते। वालिका क्या समझती यह तो अंतर्यामी ही जानते है; किन्तु उसको अच्छा लगता इसमे संदेह नही। जो कुछ समझती —जो कुछ न समझती—सवको मिलाकर वह अपने वाल्य हृदय मे नाना प्रकार के अपूर्व कल्पना-चित्र अंकित कर

कर लेती। नीरव भाव से नेत्र विस्फारित करके मन लगाकर सुनती, बीच-बीच मे कोई-कोई अत्यन्त असगत प्रश्न पूछती और कभी-कभी अकस्मात् किसी असवद्ध प्रसगान्तर मे जा पहुँचती। शशिभूषण उसमे कभी कोई बाधा न देता—वड़े-वड़े काव्यो के सम्वन्ध मे इस अत्यन्त छोटे समालोचक की निन्दा-प्रशंसा, टीका, भाष्य सुनकर वह विशेष आनन्द का अनुभव करता। गाँव-भर मे वस यह गिरिबाला ही उसकी एक-मात्र समझदार मित्र थी।

जब गिरिबाला के साथ शशिभूषण का प्रथम परिचय हुआ था, तव गिरि की उम्र आठ थी। इस समय उसकी अवस्था दस वर्ष की हो गई थी। इन दो सालों मे उसने अंग्रेजी और बगला वर्णमाला सीखकर दो-चार सरल पुस्तके भी पढ डाली थी। और शशिभूषण को भी गँवई-गाँव के ये दो वर्ष नितान्त निस्सग नीरस न लगे।

: ३ :

किन्तु गिरिबाला के पिता हरकुमार के साथ शशिभूषण का अच्छी तरह मेल भी नही हो सका। हरकुमार शुरू-शुरू मे इस एम०ए०, बी०एल० के पास मामले-मुकद्दमे के विषय मे परामर्श लेने आते। एम० ए० बी० एल० उस पर कोई खास ध्यान न देता और कानून-विद्या के सम्वन्ध मे नायव के सामने अपना अज्ञान स्वीकार करने मे सकोच न करता। नायव इसको निरा कपट समझता। इस प्रकार दो वर्ष बीत गए।

इन्ही दिनों एक उद्दण्ड आसामी को जब्त करना जरूरी हो गया। नायव महाशय ने उसके नाम भिन्न-भिन्न अपराधो और अभियोगो की नालिश जारी कर देने का मन्तव्य प्रकट करते हुए परामर्श के लिए शशिभूषण पर जरा विशेष जोर डाला। परामर्श देना तो दूर रहा; शशिभूषण ने शान्त किन्तु दृढ रूप मे हरकुमार से दो-चार ऐसी बाते कही जो उनको तनिक भी मीठी नही लगी।

दूसरी ओर आसामी के नाम चलाए एक भी मुकद्दमे मे हरकुमार नही जीत पाए। उनके मन मे यह धारणा दृढ हो गई कि शशिभूषण उस अभागे आसामी का सहायक था। उन्होने प्रतिज्ञा की कि ऐसे आदमी को गाँव से अविलम्ब भगाना होगा।

शशिभूषण ने देखा कि उनके खेत मे गाएँ घुस जाती है, उनके मटर के खेत मे आग लग जाती है, उनकी जमीन की हद को लेकर झगडा खडा हो जाता है; उनके आसामी आसानी से लगान अदा नही करते और उल्टे उनके नाम झूठा मुकद्दमा चलाने का प्रयत्न करते है। यही नही, सध्या-समय बाहर सड़क पर निक-

लने पर उनको पीटेंगे और रात में उनके घर-द्वार मे आग लगा देंगे, इस प्रकार की चर्चा भी सुनी जाने लगी।

अंत मे शान्तिप्रिय निरीह प्रकृति शशिभूषण ने गाँव छोड़कर कलकत्ता भाग जाने की तैयारी की।

यात्रा की तैयारी कर ही रहे थे कि इसी वीच गाँव मे ज्वाइट मजिस्ट्रेट साहव का तम्वू तन गया। वन्दूकधारी कॉन्स्टेवल, खानसामा, कुत्ता, घोडा, सईस, मेहतर से सारे गाँव मे हलचल मच गई। लड़को की टोली वाघ के अनुवर्ती शृगाल के झुण्ड के समान साहव के अड्डे के पास शंकित कौतूहल से चक्कर काटने लगी।

नायव महाशय यथारीति आतिथ्य खाते मे खर्च लिखकर साहव के लिए मुर्गी, अण्डा, घृत, दूध की व्यवस्था करने लगे। ज्वाइंट साहव को जितनी खाद्य-सामग्री की आवश्यकता थी नायव महाशय ने मुक्तचित्त से उसकी अपेक्षा वहुत अधिक जुटा दी थी, किन्तु जव प्रात:काल साहव का मेहतर आकर साहव के कुत्ते के लिए एकदम चार सेर घी का आदेश कर वैठा तव कुग्रहवश से उसे सहन नही कर सके। उन्होने मेहतर को उपदेश दिया कि यद्यपि साहव का कुत्ता देशी कुत्ते की अपेक्षा वहुत सारा घी विना कष्ट के हज़म कर सकता है तथापि इतनी ज्यादा मात्रा मे स्नेह पदार्थ उसके स्वास्थ्य के लिए कल्याणजनक नही होगा। उसे घी नही दिया।

मेहतर ने जाकर साहव को जताया कि वह नायव के पास इस वात का पता करने गया था कि कुत्ते के लिए मास कहाँ से मिल सकता है, किन्तु जाति का मेहतर होने के कारण नायव ने उसे अवज्ञापूर्वक सव लोगो के देखते-देखते दूर भगा दिया। यही नही, उसे साहव के प्रति भी उपेक्षा प्रदर्शित करते सकोच नहीं हुआ।

एक तो ब्राह्मण का जात्यभिमान साहव लोगो को यो ही असह्य लगता है, तिस पर उनके मेहतर का अपमान करने का साहस कर डाला, इसलिए उन्हे अपने धैर्य की रक्षा करना असम्भव हो उठा। तुरन्त चपरासी को आदेश दिया, "वुलाओ नायव को।"

नायव कॅपकॅपाते दुर्गा का नाम जपते-जपते साहव के तम्वू के सामने आ खड़े हुए। साहव ने चर-मर चर-मर करते हुए तम्वू से वाहर आकर नायव से उच्च स्वर मे विलायती उच्चारण मे प्रश्न किया, "टुमने किस कारण से अमारे मेठर को भगा डिया?"

हरकुमार ने घवराकर हाथ जोडते हुए वताया, साहव के मेहतर को भगा दे, ऐसा दुस्साहस उनके लिए कभी भी सभव नही। हाँ, कुत्ते के लिए एकदम चार सेर घी माँग वैठने पर पहले तो उन्होने उक्त चतुष्पद के मंगल के लिए

विनम्र भाव से आपत्ति प्रकट की, फिर बाद में घी जमा करने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों मे लोग भेज दिए।

साहब ने पूछा, "किसको भेजा गया है और कहाँ भेजा गया है?" हरकुमार ने फौरन जो नाम मुँह मे आए, बता दिए। उन नामो के लोग उन-उन गाँवो मे घी लेने के लिए गए है या नही, इसका पता लगाने के लिए तुरन्त आदमी भेजकर साहब ने नायब को तम्बू मे बैठा लिया।

तीसरे पहर लौटकर दूतों ने साहब को बताया, घी जमा करने कोई कही गया। नायब की सारी बात झूठ है और मेहतर ने सच ही कहा है, इसमे हाकिम को अब और सन्देह नही रहा। तब ज्वाइंट साहब ने क्रोध से गरजते हुए मेहतर को बुलाकर कहा, "इस साले के कान पकड़कर तम्बू के चारो ओर घुड़दौड़ कराओ।" मेहतर ने जरा भी देर न करके चारो ओर घिरे लोगो की भीड़ के बीच साहब के आदेश का पालन किया।

देखते-देखते बात घर-घर फैल गई। हरकुमार घर आकर भोजन त्यागकर अधमरे-से होकर पड गए।

जमीदारी के काम के सिलसिले मे नायब के ढेरों शत्रु थे, उनको इस घटना से अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ, किन्तु कलकत्ता जाने के लिए तैयार शशिभूषण ने जब यह सवाद सुना तो उनके सारे शरीर का रक्त खौल उठा। उन्हे रात-भर नीद नही आई।

दूसरे दिन प्रात वे हरकुमार के घर जा पहुँचे। हरकुमार उनका हाथ पकड़कर व्याकुल भाव से रोने लगे। शशिभूषण ने कहा, "साहब के नाम मान-हानि का मुकद्दमा चलाना होगा, मैं तुम्हारे वकील की हैसियत से लड़ूँगा।"

स्वय मजिस्ट्रेट साहब के नाम मुकद्दमा चलाना होगा, यह सुनकर हरकुमार पहले तो भयभीत हुए, किन्तु शशिभूषण ने किसी तरह नही छोड़ा।

हरकुमार ने विचार करने का समय माँगा। किन्तु जब देखा, बात चारो ओर फैल गई है एव शत्रु आनन्द प्रकट कर रहे है तब वे और न रह सके, शशिभूषण की शरण मे गए, बोले, "भैया, सुना है तुम अकारण ही कलकत्ता जाने की तैयारी कर रहे हो, यह तो किसी प्रकार नही हो सकता। तुम-जैसे एक व्यक्ति के गाँव मे रहने से हमे कितना साहस रहता है! जैसे भी हो इस घोर अपमान से मेरा उद्धार करना होगा।"

: ४ :

जो शशिभूषण चिरकाल से लोगो की निगाह से दूर निभृत निर्जनता मे अपनी

रक्षा करने की चेष्टा करते आ रहे थे वे आज अदालत मे आकर हाजिर हुए। मजिस्ट्रेट साहव ने उनकी नालिश मुनकर उन्हे अपने प्राइवेट कमरे मे वुलाकर वडी खातिर करके कहा, "शशि वावू, इस मुकद्दमे को चुपचाप मिल-जुलकर तय कर लेना अच्छा नही होगा क्या ?"

शशिभूपण ने मेज पर रखे कानून के एक ग्रन्थ की जिल्द पर अपनी सिकुड़ी भौहे और क्षीण दृष्टि अत्यन्त गम्भीर भाव से गड़ाये हुए कहा, "अपने मुवक्किल को मैं ऐसा परामर्श नही दे सकता। वे खुलेआम अपमानित हुए हैं, चुपचाप इसका फैसला कैसे हो सकता है ?"

साहव ने दो-चार वाते करके समझ लिया, इस स्वल्पभापी, स्वल्पदृष्टि व्यक्ति को आसानी से विचलित करना सभव नही है, कहा, "ऑलराइट, वावू देखा जाय, कहाँ तक क्या होता है ?"

यह कहकर मजिस्ट्रेट साहव मुकद्दमे पर अगली तारीख डालकर देहात मे भ्रमण के लिए निकल पड़े।

इधर ज्वाइण्ट साहव ने ज़मीदार को पत्र लिखा, "तुम्हारे नायव ने हमारे नौकरो का अपमान करके हमारे प्रति अवज्ञा प्रदर्शित की है, आशा करता हूँ तुम इसका समुचित प्रतिकार करोगे।"

घवराकर जमीदार ने उसी वक्त हरकुमार को तलव किया। नायव ने आद्यो-पान्त सारी घटना खोलकर वताई। जमीदार ने अत्यन्त खीझकर कहा, "जव साहव के मेहतर ने चार सेर घी माँगा था तभी तुमने विना कहे-सुने क्यो नही दे दिया ? क्या तुम्हारे वाप की कमाई लगती ?"

हरकुमार अस्वीकार नही कर सके कि इसमे उनकी पैतृक सम्पति की किसी प्रकार क्षति न होती। अपराध स्वीकार करते हुए कहा, "हमारे ग्रह खराव है, इसीसे ऐसी दुर्वुद्धि हो गई।"

जमीदार ने कहा, "उसके वाद फिर साहव के नाम नालिश करने के लिए तुमसे किसने कहा ?"

हरकुमार ने कहा, "धर्मावतार, नालिश करने की मेरी इच्छा नही थी, ये हमारे गाँव के शशि है उनको कही से कोई मुकद्दमा जुटता नही, उस छोकरे ने विलकुल जोर-जवरदस्ती लगभग मेरी सम्मति लिये विना ही यह हगामा खडा कर दिया है।"

सुनकर जमीदार शशिभूपण के ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। वे समझ गए, यह तुच्छ व्यक्ति नया-नया वकील है। किसी वहाने वखेडा खडा करके साधारण लोगो के समक्ष परिचित होने की चेष्टा मे है। नायव को हुक्म दिया, "तुरन्त मुकद्दमा

वापिस लेकर छोटे-बडे मजिस्ट्रेटों को ठण्डा किया जाय।"

साहव के लिए कुछ फल-मूल शीतलभोग[1] उपहार लेकर नायव ज्वॉइंट मजिस्ट्रेट के निवास-स्थान पर जाकर हाज़िर हुए। साहव को वताया, साहव के नाम मुकद्दमा चलाना उनके स्वभाव के विलकुल विरुद्ध है; केवल शशिभूषण नामक गाँव के एक अल्पवयस्क नए वकील ने उनको एक प्रकार से विना वताए ही इस प्रकार दुस्साहस का काम किया है। साहव शशिभूषण से वहुत रुष्ट और नायव से वहुत सन्तुष्ट हुए, क्रोध के आवेश मे नायव वावू को 'डण्ड विढान' करने के कारण वे 'डु:खिट्' है। साहव वँगला भाषा की परीक्षा मे हाल ही मे पुरस्कार प्राप्त करके साधारण लोगो के साथ परिमार्जित भाषा मे वार्तालाप किया करते थे।

नायव ने कहा, "माँ-वाप कभी क्रोध करके दण्ड भी देते है तो कभी प्यार से गोद मे भी उठा लेते है, इसमे सन्तान या माँ-वाप के लिए दु:ख का कोई कारण नही है।"

इसके पश्चात् ज्वॉइंट साहव के समस्त भृत्यवर्ग को यथायोग्य पारितोषिक देकर हरकुमार देहात मे मजिस्ट्रेट साहव के साथ भेंट करने गए। मजिस्ट्रेट ने उनके मुँह से शशिभूषण के दुस्साहस की वात सुनकर कहा, "मुझे भी आश्चर्य हो रहा था कि नायव वावू को तो वरावर सज्जन के रूप मे ही जानता आया हूँ, वे सवसे पहले मुझे वताकर चुपचाप फैसला कर लेने के वजाय अचानक मुकद्दमा चलायँगे, यह तो वडी अनहोनी वात है! अव सव समझ मे आ रहा है।"

अंत मे नायव से प्रश्न किया, "शशि ने कांग्रेस मे भाग लिया है या नही?"

नायव ने अम्लानमुख से कहा, "हाँ।"

साहव अपनी साहवी वुद्धि से स्पष्ट समझ गए, यह सव कांग्रेस की ही चाल है। कोई षड्यन्त्र रचकर, 'अमृत वाजार' मे लेख लिखकर गवर्नमेण्ट के साथ खटपट करने के लिए कांग्रेस के छोटे-मोटे चेले छिपे रूप मे चारो ओर अवसर खोज रहे है। इन समस्त तुच्छ कंटकों को एकदम कुचल डालने के लिए सीधे मजिस्ट्रेट के हाथ में अधिकार नही दिया गया, इसलिए साहव ने भारतीय गवर्नमेंट को अत्यन्त दुर्वल गवर्नमेंट समझकर मन-ही-मन धिक्कारा। किन्तु कांग्रेसी शशिभूषण का नाम मजिस्ट्रेट के मन मे वैठ गया।

---

१ वंगाल मे ठाकुरजी की पूजा के लिए चढाई जाने वाली मूँग-किशमिश आदि से वनी एक मिठाई। यह शाम के चार वजे वाली पूजा मे चढ़ाई जाती है।

: ५ :

संसार मे जब बडी-बड़ी समस्याएँ अकुरित होकर तेजी से बढने लगती है तब छोटी-छोटी बातो की क्षुधित क्षुद्र जड़े भी जगत् मे अपना अधिकार जताए विना नही रहती।

शशिभूषण जब इस मजिस्ट्रेट के झमेले को लेकर विशेष व्यस्त थे, जब विस्तृत पोथी-पत्रो से कानून उद्धृत कर रहे थे, मन-ही-मन वक्तृता पर शान चढा रहे थे, कल्पना मे साक्षी से जिरह करने बैठ जाते थे और प्रकट रूप से अदालत की भीड़ का दृश्य और युद्धपर्व के भावी अध्यायो की मन मे कल्पना करके प्रति-क्षण कम्पित और स्वेदयुक्त हो उठते थे, तभी उनकी क्षुद्र छात्री अपने फटे चारु-पाठ और स्याही-रंजित लिखने की कापी, बगीचे से कभी फूल, कभी फल, माता के भण्डार मे से किसी दिन अचार, किसी दिन नारियल की गरी की मिठाई, किसी दिन पत्ते मे लिपटा केतकी-केशर-सुगन्धियुक्त घर मे तैयार कत्था लाकर नियमित समय पर उनके द्वार पर उपस्थित हो जाती।

उसने शुरू मे कई दिन देखा, शशिभूषण एक चित्रहीन विपुल कठोर आकार का ग्रन्थ खोलकर अन्यमनस्क भाव से पृष्ठ उलट रहे है। उसको मनोयोग से पढ रहे हों, ऐसा नही लगा। और किसी समय तो शशिभूषण जो पुस्तक पढ़ते, उसमे से कोई-न-कोई अंश गिरिबाला को समझाने की चेष्टा करते, किन्तु इस स्थूलकाय काली जिल्द वाली पुस्तक मे गिरिबाला को सुनाने योग्य क्या दो बाते भी न थी ! न सही, फिर भी क्या वह पुस्तक इतनी ही बड़ी और गिरिबाला क्या इतनी ही छोटी थी !

पहले तो गुरु का ध्यान आकर्षित करने के लिए गिरिबाला ने गा-गाकर, हिज्जे बोल-बोलकर, वेणी समेत देह के ऊपरी भाग को वेग से हिला-हिलाकर उच्च स्वर मे स्वय ही पढ़ना आरम्भ कर दिया। देखा, इससे कोई विशेष लाभ नही हुआ। काली मोटी पुस्तक पर मन-ही-मन अत्यन्त कुपित हुई। उसको एक कुत्सित कठोर-निष्ठुर मनुष्य के रूप मे देखने लगी यह पुस्तक गिरिबाला को बालिका समझकर उसकी नितान्त अवज्ञा करती है, उसका प्रत्येक दुर्बोध पृष्ठ मानो दुष्ट मनुष्य की-सी मुखाकृति धारण करके नीरव रूप से यह बात प्रकट करने लगा। यदि उस पुस्तक को कोई चोर चुराकर ले जाता तो वह उसे अपनी माता के भण्डार का केवडे से सुवासित सारा कत्था चुराकर पुरस्कार मे दे देती। उस पुस्तक के विनाश के लिए उसने मन-ही-मन देवता से जो सारी असंगत और असभव प्रार्थना की थी, वह देवताओं ने नही सुनी और पाठको को भी सुनाने की

कोई आवश्यकता नही दिखाई देती। इसके वाद व्यथित-हृदय वालिका ने चारुपाठ हाथ मे लेकर गुरु के घर जाना दो-एक दिन वन्द रखा। और इन्ही दो-एक दिनो के वाद इस विच्छेद के फल की परीक्षा करके देखने के लिए उसने दूसरे वहाने से शशिभूपण के घर के सामने वाले रास्ते पर आकर कटाक्षपात करके देखा, शशिभूपण उस काली पुस्तक को पटककर अकेले खड़े हुए हाथ हिला-हिलाकर लोहे के सीखचों को संवोधित करके विदेशी भापा मे भापण कर रहे थे। विचार-पति के मन को किस प्रकार पिघलायँगे, इन लोहे के सीखचों पर शायद उसी की परीक्षा हो रही थी। संसार से अनभिज्ञ ग्रन्थविहारी शशिभूपण की धारणा थी कि प्राचीन काल मे डेमोस्थनीज, सिसेरो, वर्क, शेरिडन आदि वक्तागण अपने वाक्‌वल से जो सारे असामान्य कार्य कर गए है—शव्दभेदी शरवर्पण से जिस प्रकार अन्याय को छिन्न-भिन्न, अत्याचार को लाछित और अहकार को धूलिशायी कर गए है, आज के इस दुकानदारी के जमाने में भी वह असंभव नही है। प्रभुत्व-मद-गर्वित उद्धत अग्रेज को वे दुनिया के सामने किस प्रकार लज्जित और अनुतप्त करेंगे, तिलकुचि गाँव के उस जीर्ण छोटे घर मे खड़े होकर शशिभूपण उसी की चर्चा कर रहे थे। आकाश के देवता सुनकर हँसे थे या उनके देवचक्षु अश्रुसिक्त हो रहे थे, यह कोई नही कह सकता।

फलस्वरूप उस दिन गिरिवाला उनको नही-दिखी; उस दिन वालिका के आँचल मे जामुने नही थी; पहले एक वार जव जामुन की गुठली के कारण वह पकडी गई थी तभी से वह इस फल के वारे मे वहुत लज्जित थी। यही नही यदि शशिभूपण किसी दिन निरीह भाव से पूछते, "गिरि, आज जामुने नही है ?" तो भी वह उसे गंभीर उपहास समझकर क्षोभपूर्वक "जाओ" कहकर धमकाती हुई भागने की तैयारी करती। जामुन की गुठली के अभाव मे आज उसको एक युक्ति का सहारा लेना पडा। सहसा दूर की ओर दृष्टिपात करती हुई वालिका उच्च स्वर से चिल्ला उठी, "स्वर्ण वहन जाना मत, मैं अभी आती हूँ।"

पुरुप पाठक सोच सकते है कि वात स्वर्णलता नामक किसी दूरवर्तिनी सगिनी को लक्ष्य करके उच्चरित की गई थी, किन्तु पाठिकाएँ सहज हो समझ सकेंगी कि दूर पर कोई नही था; लक्ष्य अत्यन्त निकट ही था। किन्तु हाय ! अन्ध पुरुष को लक्ष्य करके साधा गया वह निशाना व्यर्थ चला गया। यह नही कि शशिभूपण सुन नही पाए, वे उसका मर्म नही समझ सके। उन्होने सोचा, वालिका वास्तव मे खेलने के लिए उत्सुक है—और उसको खेल से अध्ययन की ओर आकर्पित करने का धैर्य उनमे उस दिन नही था, क्योकि वे स्वयं भी उस दिन किसी-न-किसी हृदय को लक्ष्य करके तीक्ष्ण शर-सन्धान कर रहे थे। वालिका के क्षुद्र

हाथो का सामान्य लक्ष्य जिस प्रकार व्यर्थ हो गया था उनके शिक्षित हाथो का महत् लक्ष्य भी उसी प्रकार व्यर्थ हो चुका था, पाठक इस समाचार से पहले ही अवगत हो चुके हैं।

जामुन की गुठली का एक गुण यह है कि एक-एक करके ढेरों फेकी जा सकती है, चार के निष्फल जाने पर अन्तत. पाँचवी जाकर ठीक स्थान पर लग सकती है। किन्तु स्वर्ण हजार काल्पनिक हो, उसको 'अभी आती हूँ' आशा देकर अधिक देर तक खडा नही रहा जा सकता। खड़े रहने पर स्वर्ण के अस्तित्व के सम्वन्ध मे लोगो को स्वभावत: सन्देह हो सकता है। अतएव वह उपाय जव निष्फल हो गया तव गिरिवाला को अविलम्व चला जाना पडा। तथापि हृदय मे स्वर्ण नामक किसी दूरस्थित सहचरी का सग-लाभ करने की अभिलापा होने पर जिस प्रकार सवेग सोत्साह पैर वढ़ाना स्वाभाविक होता, गिरिवाला की चाल मे वह नही दिखाई पड़ा। वह मानो अपनी पीठ द्वारा यह अनुभव करने की चेष्टा कर रही थी कि पीछे कोई आ रहा है या नही, जव पक्की तौर से समझ गई कि कोई नही आ रहा है तव उसने आशा का अन्तिम क्षीणतम भग्नाश लिये हुए एक वार पीछे फिरकर देखा और किसी को भी न देखकर उस क्षुद्र आशा को और शिथिल पत्न चारुपाठ के टुकडे-टुकड़े करके रास्ते मे विखेर दिया। शशिभूपण ने उसको जो अल्पविद्या दी थी, यदि वह उसे किसी प्रकार लौटा सकती तो [कदाचित परित्याज्य जामुन की गुठली की भाँति वह सारी-की-सारी शशिभूपण के दरवाज़े के सामने जोर से पटककर चली आती। वालिका ने प्रतिज्ञा की, दूसरी वार शशिभूपण के साथ भेट होने से पहले ही वह सारी पढ़ाई-लिखाई भूल जायगी, वे जो प्रश्न पूछेगे उनका वह कोई भी उत्तर नही दे पायेगी। किसी का—किसी का—किसी का भी नही! तव! तव शशिभूषण को खूव मजा मिल जायगा।

गिरिवाला के नेत्न जल से भर आए। पढाई भूल जाना शशिभूपण के लिए कैसे तीव्र अनुताप का कारण होगा यह सोचकर उसने अपने पीडित हृदय मे थोडी सान्त्वना का अनुभव किया और केवल मात्न शशिभूपण के दोष के कारण भविष्य की उस विस्मृतशिक्षा हतभागिनी गिरिवाला की कल्पना करके उसके हृदय मे अपने प्रति करुण रस उमड पडा। आकाश मे मेघ घिरने लगे, वर्पाकाल मे ऐसे मेघ प्रतिदिन छाए रहते है। गिरिवाला रास्ते के किनारे एक पेड की आड मे खड़ी होकर मान से फूट-फूटकर रोने लगी, ऐसा अकारण रोदन प्रतिदिन जाने कितनी वालिकाएँ करती रहती है। उसमे ध्यान देने की कोई वात भी नही थी।

: ६ :

शशिभूषण की कानूनी गवेषणा एवं वक्तृता-चर्चा किस कारण व्यर्थ हो गई, यह पाठको से छिपा नही है। मजिस्ट्रेट के नाम चलाया गया मुकद्दमा अकस्मात् रद्द हो गया। हरकुमार अपने जिले की बेच पर ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। एक मैली अचकन और तेल मे सनी पगडी बाँधकर अब हरकुमार प्राय: जिला कचहरी जाकर साहबों को नियमित रूप से सलाम कर आते है।

शशिभूषण की उस काली मोटी पुस्तक के प्रति गिरिबाला का अभिशाप इतने दिनो बाद फलना आरम्भ हुआ, वह निर्वासित होकर एक अँधेरे कोने मे अनादृत विस्मृतभाव से धूल से ढके संग्रह मे जा पहुँची। किन्तु उसका अनादर देखकर जो बालिका आनदित होती वह गिरिबाला अब है कहाँ ?

शशिभूषण जिस दिन कानूनी ग्रन्थ बन्द करके बैठे उसी दिन अचानक ध्यान आया कि गिरिबाला नही आई। तब एक-एक करके कई दिन का इतिहास उन्हे कुछ-कुछ याद आने लगा। याद आई कि एक दिन उज्ज्वल प्रभात मे गिरिबाला आँचल भरकर नववर्षा से आर्द्र मौलश्री के फूल लाई थी। उसे देखने को भी जब उन्होने ग्रन्थ से दृष्टि नही उठाई, तब उसके उच्छ्वास को सहज धक्का लगा, वह अपने आँचल मे बँधा सुई-धागा निकालकर सिर झुकाए एक-एक करके फूल उठाती माला गूँथने लगी, माला बहुत धीरे-धीरे गूँथी, बहुत देर मे पूरी हुई, देर हो चली, गिरिबाला के घर लौटने का समय हो गया तो भी शशिभूषण का पढना समाप्त नही हुआ। गिरिबाला माला को चौकी पर रखकर म्लान-भाव से चली गई। याद आई—उसका मान प्रतिदिन किस प्रकार घनीभूत होता गया। कब से वह उनके कमरे मे प्रवेश न करके कभी-कभी सामने वाले रास्ते पर दिखाई पडती और चली जाती, और अन्त मे कब से बालिका ने उस रास्ते पर आना भी बन्द कर दिया; इस बात को भी आज कई दिन हो गए। गिरिबाला का मान इतने दिनों तक तो स्थायी नही रहता था। शशिभूषण लम्बी साँस छोडकर हतबुद्धि कर्महीन के समान दीवाल से पीठ लगाकर बैठे रहे। क्षुद्र छात्री के न आने से उनके पाठ्यग्रन्थादि नितान्त नीरस हो उठे। पुस्तके निकाल-निकालकर दो-चार पन्ने पढकर छोड़ देनी पडती। लिखते-लिखते प्रतिक्षण चौक-चौककर घर के सामने वाले रास्ते की ओर प्रतीक्षापूर्ण दृष्टि चली जाती और लिखना रुक जाता।

शशिभूषण को आशंका हुई, गिरिबाला अस्वस्थ न हो गई हो। चुपचाप पता लगाकर मालूम किया, वह आशका निर्मूल थी। अब गिरिबाला घर से बाहर ही नही निकलती। उसके लिए वर तय हो गया है।

गिरि ने जिस दिन चारुपाठ के टुकडों को गाँव के धूल-भरे मार्ग में बिखेर दिया था उसके दूसरे दिन सवेरे अपने क्षुद्र आँचल मे विचित्र उपहार इकट्ठे करके वह बड़े वेग से घर से बाहर आ रही थी। अत्यन्त गर्म हवा के कारण निद्राहीन रात बिताकर हरकुमार तड़के से ही नगे बदन बाहर बैठे हुक्का पी रहे थे। गिरि से पूछा, "कहाँ जाती है ?" गिरि ने कहा, "शशि भैया के घर।" हरकुमार ने धमकाते हुए कहा, "शशि भैया के घर जाने का कोई काम नही, घर लौट जा।" यह कहकर जल्दी ही ससुराल जाने वाली वयस्का कन्या मे लज्जा के अभाव को लेकर खूब डाँटने-फटकारने लगे। उस दिन से उसका बाहर निकलना बन्द हो गया। फिर उसके मान-भंग करने का और कोई अवसर नही मिला। अमावट, केवडे से सुवासित कत्था, नीबू का अचार भण्डार मे यथास्थान लौट गए। वर्षा होने लगी, मौलश्री के फूल झरने लगे, पके अमरूदो से पेड भर उठे एवं पक्षी-चञ्चु-क्षत सपक्व काली जामुने डाल से गिरकर प्रतिदिन पेड के नीचे इकट्ठी होने लगी। हाय ! वह छिन्नप्राय चारुपाठ भी तो अब नही था।

: ७ :

गाँव मे गिरिबाला के विवाह के दिन जब शहनाई बज रही थी उस दिन अनिमन्त्रित शशिभूषण नाव पर चढकर कलकत्ता की ओर चले जा रहे थे।

मुकद्दमा वापिस ले लेने के बाद से हरकुमार शशि को विषभरी नजर से देखते थे, क्योकि उन्होने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि शशि उनसे अवश्य घृणा करता है। शशि के हाव-भाव, व्यवहार मे वे उसके हजारो काल्पनिक रूप देखने लगे। गाँव के सभी लोग उनके अपमान की बात धीरे-धीरे भूल रहे थे, केवल एक शशिभूषण उस दुस्मृति को जीवित रखे हुए है, यह सोचकर वे उसको फूटी आँख भी नही देख पाते थे। उससे भेट होते ही उनके अन्त.करण मे एक सलज्ज सकोच और साथ ही एक प्रबल विद्वेष की भावना का सचार होता। शशि को गाँव से हटाना होगा, हरकुमार यह प्रतिज्ञा कर बैठे थे।

शशिभूषण-जैसे व्यक्ति को गाँव से निकालने का काम कोई ऐसा कठिन नही था। नायब महाशय का उद्देश्य बहुत शीघ्र ही सफल हो गया। एक दिन सवेरे पुस्तको का बोझ और दो-चार टीन के बक्स संग लेकर शशि नौका पर सवार हुए। गाँव के साथ उनका जो एक सुख का बन्धन था वह भी आज धूमधाम से टूट रहा था। सुकोमल बन्धन ने कितनी दृढता से उनके हृदय को वेष्टित करके पकड रखा था इसको वे पहले सपूर्ण रूप से नही जान सके थे। आज जब नौका रवाना हुई, ग्राम के वृक्षो की चोटियाँ अस्पष्ट हो चली और उत्सव की वाद्य-

जहाज के पिछले भाग मे थे, मशीन की फट-फट और जल की कलकल ध्वनि में वहाँ से बन्दूक की आवाज सुनने की भी कोई संभावना नही थी।"

देश के लोगो को हृदय से धिक्कारते हुए शशिभूषण ने मजिस्ट्रेट के यहाँ मुकद्दमा चलाया।

साक्षी की कोई जरूरत नही हुई। मैनेजर ने स्वीकार कर लिया कि उसने बन्दूक चलाई थी। कहा, "आकाश मे एक बगुलो का झुण्ड उड रहा था उसीकी ओर निशाना लगाया था। स्टीमर उस समय पूरे वेग से चल रहा था और उसी समय नदी के मोड की आड मे प्रविष्ट हुआ था। इसलिए वह जान भी नही पाए कि कौआ मरा, या बगुला मरा या नौका डूबी। आकाश और धरती पर शिकार खेलने की इतनी चीजे है कि कोई बुद्धिमान व्यक्ति इच्छापूर्वक 'डर्टी रैग' अर्थात् मैले चिथडे पर कौडी के मोल का कण भी अपव्यय नही कर सकता।"

रिहाई पाकर बेकसूर मैनेजर साहब चुरट पीते हुए क्लब मे ह्विस्ट खेलने चले गए। जो व्यक्ति नाव मे मसाला पीस रहा था उसकी मृतदेह नौ मील दूर पर किनारे आकर लगी और शशिभूषण जी की जलन लिये अपने गाँव लौट आए।

जिस दिन लौटकर आए उस दिन नौका सजाकर गिरिबाला को ससुराल ले जाया जा रहा था। यद्यपि उनको किसी ने बुलाया न था तथापि शशिभूषण धीरे-धीरे नदी के किनारे आ उपस्थित हुए। घाट पर लोगो की भीड थी, वहाँ न जाकर कुछ दूर पर आगे बढकर खडे हो गए। जब नौका घाट छोड़कर उनके सामने से निकल गई तब मानो चौककर उन्होने देखा--मुँह पर घूँघट डाले नववधू सिर झुकाए बैठी है। बहुत दिनो से गिरिबाला को आशा थी कि गाँव छोड़कर जाने से पहले किसी-न-किसी प्रकार एक बार शशिभूषण से भेट होगी, किन्तु आज वह जान भी न सकी कि उसके गुरु पास ही किनारे पर खडे है। उसने एक बार मुँह उठाकर भी नही देखा, केवल नीरव रुदन से उसके कपोलो पर से अश्रु-जल ढुलकने लगा।

नौका क्रमश: दूर जाकर अदृश्य हो गई। जल के ऊपर प्रभात की धूप चिलचिलाने लगी, पास की आम की डाली पर एक पपीहा उच्छ्वसित कण्ठ से बार-बार गाना गाकर मन के आवेग को किसी भी प्रकार समाप्त नही कर सका। नावें लोगो को चढाकर एक पार से दूसरे पार जाने-आने लगी, घाट पर जल लेने आई हुई स्त्रियो ने उच्च मधुर स्वर से गिरि की ससुराल-यात्रा की चर्चा शुरू कर दी, शशिभूषण ने चश्मा उतारकर अपनी आँखे पोंछकर उसी रास्ते के किनारे सीखचे वाले उसी छोटे कमरे मे जाकर प्रवेश किया। सहसा एक बार उन्हे लगा मानो गिरिबाला की आवाज सुनाई दी हो, 'शशि भैया!'—कहाँ है? अरे कहाँ

है ? कहीं भी नही । न उस घर मे, न उस सडक पर, न उस गाँव मे, वह तो उनके अश्रु-जल से अभिषिक्त अन्तर मे है ।

: ८ :

शशिभूषण फिर सामान बाँधकर कलकत्ता की ओर रवाना हुए। कलकत्ता मे कोई काम नही था, न वहाँ जाने का कोई विशेष उद्देश्य था; इसीलिए रेल से न जाकर उन्होने बराबर नाव से ही जाने का निश्चय किया।

उस समय वर्षा की झरन से बगाल मे चारो ओर छोटी-बड़ी टेढी-मेढी हजारो जल-धाराओं का जाल बिछा हुआ था। सरस श्यामल वङ्गभूमि की समस्त धमनियाँ मानो परिपूर्ण होकर तरु-लता, तृण-गुल्म, झाड-झाड़ियो, धान-पाट-ईख से दसो दिशाओ मे उन्मत्त यौवन के प्राचुर्य से बिलकुल उद्दाम उच्छृंखल हो उठी हो।

शशिभूषण की नाव उन्ही समस्त सकीर्ण वक्र जल-स्रोतो मे होकर चलने लगी। उस समय जल किनारे से एकसार हो गया था। काँस का वन, सरकण्डे का वन और कही-कही अनाज के खेत जलमग्न हो गए थे। गाँव का बेडा, बाँस-झाड़ और आम का बाग मानो जल के किनारे आकर खड़े हो गए थे—देवकन्याओ ने मानो बगाल के वृक्षो के थालो को जल-सिंचन से परिपूर्ण कर दिया हो।

यात्रा के शुरू मे स्नात-स्निग्ध वनश्री धूप से अपनी उज्ज्वल मुस्कान बिखेर रही थी, थोडी देर बाद ही बादल घिर आए और वर्षा आरम्भ हो गई। उस समय जिधर भी दृष्टि जाती वही विषण्णता और मलिनता दिखाई देती। बाढ आने पर जिस प्रकार गाएँ जल से घिरे मलिन पकिल सकीर्ण गोष्ठ प्रांगण मे जमा होकर सहिष्णुभाव से खड़ी-खड़ी करुण नेत्रो से सावन की मूसलाधार वर्षा मे भीगती रहती है, उसी प्रकार बंगाल अपने कीचड की फिसलन वाले घनसिक्त बन्द जगल मे मूक म्लानमुख होकर पीड़ित भाव से लगातार भीगने लगा। बाँस की टोपियो से सिर ढाँके किसान बाहर निकल आए थे, स्त्रियाँ भीगती हुई वर्षा की शीतल वायु मे सिकुड़ती हुई एक झोपडी से दूसरी झोपड़ी मे घर के काम से आ-जा रही थी, और रपटीले घाट पर अत्यन्त सावधानी से पैर रखती हुई भीगे कपड़े पहने जल भर रही थी, और गृहस्थ लोग बरामदे मे बैठे हुक्का पी रहे थे, काम के मारे लाचार होने पर कमर से चादर लपेटकर हाथ मे जूते लेकर सिर पर छाता ताने बाहर निकल रहे थे—अबला रमणी के सिर पर छाता इस ताप-दग्ध वर्षा-प्लावित वगदेश की सनातन पवित्र प्रथा मे सम्मिलित नही है।

वर्षा जब किसी भी प्रकार बन्द नही हुई तब बन्द नाव मे बैठे-बैठे ऊबकर

के प्रति अन्याय ।

ऐसी स्थिति मे बेचारे शशिभूषण को सजा हो गई, इसे अन्याय नही कहा जा सकता । जो हो, दण्ड कुछ भारी हो गया । तीन-चार अभियोग-आघात, अनधिकार प्रवेश, पुलिस के कर्त्तव्य मे बाधा इत्यादि, उनके विरुद्ध सभी कुछ प्रमाणित हो गए ।

शशिभूषण अपने उसी छोटे घर मे अपने प्रिय पाठ्य-ग्रन्थो को छोड़कर पाँच साल की जेल भुगतने चले गए । उनके पिता अपील करने के लिए तैयार हुए तो शशिभूषण ने बारबार मना किया, बोले, "जेल अच्छी ! लोहे की बेड़ियाँ झूठ नही बोलती, किन्तु जेल के बाहर जो स्वाधीनता है वह हम लोगो को प्रताडित करके विपद मे डाल देती है । और यदि सत्सग की बात कहो तो जेल के भीतर मिथ्यावादी, कृतघ्न, कापुरुषो की संख्या कम है, क्योकि स्थान सीमित है, बाहर बहुत ज्यादा है ।"

१०

शशिभूषण के जेल जाने के कुछ ही समय बाद उनके पिता की मृत्यु हो गई । उनके और कोई गुरुजन नही था । एक भाई थे, जो बहुत समय से सेण्ट्रल प्रॉविन्स मे काम करते थे, गाँव आने का उनको अधिक मौका नही मिलता था । वे घर बना कर वही स्थायी रूप से सपरिवार बस गए थे । गाँव मे जो जायदाद-सम्पत्ति थी नायब हरकुमार ने उसका अधिकाश नाना कौशलो द्वारा हडप लिया ।

जेल मे अधिकाश कैदियो को जितना दु ख भोगना पड़ता है, शशिभूषण को दैव-विपाक से उसकी अपेक्षा बहुत ज्यादा सहन करना पडा । तथापि लम्बे पाँच वर्ष कट गए ।

एक बार फिर वर्षा के दिन जीर्ण शरीर और शून्य हृदय लेकर शशिभूषण कारागार की प्राचीर के बाहर आ खड़े हुए । स्वाधीनता पाई, किन्तु उसे छोडकर जेल के बाहर उनका और कोई अथवा और कुछ नही था । गृहहीन, आत्मीयहीन, समाजहीन उन अकेले के लिए इतना बडा विस्तृत जगत् अत्यन्त अनुपयुक्त लगने लगा ।

जीवन-यात्रा के टूटे सूत्र को फिर कहाँ से शुरू करे वे जब सोच रहे थे तभी एक बड़ी बग्घी उनके सामने आकर खडी हो गई । एक भृत्य ने नीचे उतरकर पूछा, "आपका नाम है शशिभूषण बाबू ?"

उन्होने कहा, "हाँ ।"

तत्क्षण गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर वह उनके प्रवेश की प्रतीक्षा मे खड़ा हो गया।

आश्चर्य मे पडकर उन्होने प्रश्न किया, "मुझे कहाँ चलना होगा ?"

उसने कहा, "मालिक ने आपको बुलाया है।"

राहगीरों के कौतूहलपूर्ण दृष्टिपात के असह्य हो जाने के कारण वे वहाँ और अधिक पूछ-ताछ न करके गाड़ी मे बैठ गए। उन्होने सोचा, अवश्य ही इसमे कोई भ्रम हुआ है। किन्तु किसी-न-किसी ओर तो जाना ही होगा—और इसी प्रकार भ्रम से ही इस नवीन जीवन की भूमिका आरम्भ हो।

उस दिन भी बादल और धूप सम्पूर्ण आकाश में एक-दूसरे का शिकार करते फिर रहे थे, पथ के किनारे वर्षा के जल-प्लावित गहरे काले धान के खेत चचल छायालोक से विचित्र हो उठते थे। हाट के पास एक बड़ा रथ पड़ा था। और उसके पास मोदी की दुकान पर वैष्णव भिक्षुओं का एक दल गपीयत्र (गोपीयत्र)[1] और खोल-करताल के साथ गीत गा रहा था—

आओ आओ लौट आओ—हे नाथ लौट आओ !
हमारा चित्त क्षुधित तृषित तापित है; हे बंधु ! लौट आओ !

गाडी अग्रसर हुई, गीत की पक्तियाँ क्रमश. दूर से दूरतर होती हुई कानों में प्रवेश करने लगी।

ओ निष्ठुर लौट आओ ! हे मेरे करुण कोमल ! आओ !
ओ सजल जलद स्निग्ध कान्त सुन्दर, लौट आओ !

गीत के शब्द क्रमश क्षीणतर, अस्पष्टतर होते गए, फिर सुनाई ही नही आए। किन्तु गीत के छन्द ने शशिभूषण के हृदय मे एक आन्दोलन मचा दिया। वे मन-ही-मन गुनगुनाते हुए पद-पर-पद रचते हुए छन्द-योजना करने लगे, मानो किसी भी प्रकार अपने को रोक न पाते हों—

मेरे नित्य सुख, लौट आओ ! मेरे चिर दुख लौट आओ !
मेरे सब-सुख-दुख-मन्थन-धन, अन्तर में लौट आओ !
मेरे चिरवाञ्छित, आओ ! मेरे चिरसञ्चित, आओ !
हे चञ्चल, हे चितरंजन, भुज बन्धन में लौट आओ !
मेरे हृदय में लौट आओ, मेरे नयन में लौट आओ !
मेरे शयन, स्वप्न, वसन, भूषण निखिल भुवन में आओ !
मेरी मुस्कान मे आओ !

---

१ एक-तारयुक्त वाद्ययत्र—एकतारा।

मेरे नयनों के जल में आओ !
मेरे प्यार में, मेरी छलना में,
मेरे मान में लौट आओ !
मेरे सर्वस्मरण में आओ, मेरी सर्वभ्रान्ति में आओ—
मेरे धरम, करम, सुहाग, शरम, जनम, मरण में आओ !

गाडी जव एक प्राचीरवेष्टित उद्यान मे प्रविष्ट होकर एक दुमंज़िली अट्टालिका के सामने ठहरी तव शशिभूपण का गीत रुका।

वे विना कोई प्रश्न किये भृत्य के आदेशानुसार घर मे प्रविष्ट हुए।

जिस कमरे मे आकर वे वैठे उसके चारो ओर वड़ी-वड़ी काँच की अलमारियो मे विविध रगों की विविध जिल्दो की पुस्तके पंक्तिवद्ध सजी हुई थी। यह दृश्य देखते ही उनका पुराना जीवन फिर कारामुक्त होकर वाहर आ गया। सोने के पानी से अंकित नाना रंगो मे रँगी ये पुस्तके उन्हे आनन्द-लोक में प्रवेश करने के लिए सुपरिचित रत्नखचित सिंहद्वार के समान प्रतीत हुईं।

मेज पर भी न जाने क्या-क्या चीज़े थी। शशिभूपण ने अपनी क्षीण दृष्टि से झुककर देखा, एक टूटी स्लेट, उसके ऊपर कई पुरानी कापियाँ, पहाड़ों की एक फटी-सी पुस्तक, कथामाला और काशीरामदास के महाभारत की एक प्रति।

स्लेट के काठ के फ्रेम के ऊपर शशिभूपण के हाथ के अक्षरो मे स्याही से खूव मोटे अक्षरो मे लिखा था—गिरिवाला देवी। कापी और पुस्तकों के ऊपर भी उसी एक लिखावट मे वही एक नाम लिखा था। कहाँ आए है, शशिभूषण समझ गए। उनके हृदय मे रक्तस्रोत तरगित हो उठा। खुली हुई खिड़की से वाहर दृष्टि डाली—वहाँ क्या दिखाई पडा, वही छोटा सीखचों वाला कमरा, वही ऊवड़-खावड़ गाँव का रास्ता, वही डोरिये की साड़ी पहने छोटी-सी लड़की। और वही अपनी शान्तिमय निश्चिन्त निभृत जीवन-यात्रा।

उस दिन उस सुखी जीवन मे कुछ भी असामान्य या अत्यधिक नही था; एक के वाद एक दिन क्षुद्र कामो मे क्षुद्र सुख मे अनजाने ही कट जाते थे; और उनके अपने अध्ययन-कार्य मे एक वालिका छात्रा का अध्यापन-कार्य तुच्छ घटना के रूप मे ही गिनने लायक था; किन्तु ग्राम-प्रदेश का वह निर्जन दिन-यापन, वह क्षुद्र शान्ति, वह क्षुद्र सुख, उस क्षुद्र वालिका का वह क्षुद्र सुख सभी जैसे स्वर्ग के समान देश-काल से वाहर, पहुँच से परे केवल आकाक्षा राज्य की कल्पना छाया मे विराजने लगे। उन दिनो के उन सारे चित्रो और स्मृतियो ने आज के इस वर्षा-म्लान प्रभात के आलोक के साथ और मन मे मृदुगुंजित उस कीर्तन के गीत के साथ घुल-मिलकर एक प्रकार का संगीतमय ज्योतिर्मय अपूर्व रूप धारण कर लिया। उस

जगल से घिरे कीचड़-भरे सकीर्ण ग्राम-पथ मे उस अनादृत-दुखी वालिका के मान-मलिन मुख की अन्तिम स्मृति मानो विधाता-विरचित एक असाधारण, आश्चर्य-पूर्ण, अतुलनीय, अत्यन्त गम्भीर वेदनापरिपूर्ण स्वर्गीय चित्र के समान उनके मानस-पटल पर प्रतिविंवित हो उठी। उसके साथ ही कीर्तन की करुण रागिनी वजने लगी और लगा, मानो उस ग्राम-वालिका के मुख पर समस्त विश्व-हृदय के एक अनिर्वचनीय दु.ख ने अपनी छाया डाल दी हो। शशिभूपण दोनो वाँहों मे मुँह छिपाकर उसी टेविल के ऊपर उस स्लेट, किताव, कापी के ऊपर मुह रखकर वहुत समय वाद पुराने दिनों का स्वप्न देखने लगे।

वहुत देर वाद उन्होने मृदु शव्द से चौककर सिर उठाकर देखा। उनके सामने चाँदी के थाल मे फल-मूल-मिष्टान्न लिये गिरिवाला पास ही खडी चुपचाप प्रतीक्षा कर रही थी। उनके सिर उठाते ही निराभरणा शुभ्रवसना विधवा वेशधारिणी गिरिवाला ने घुटने टेककर भूमिष्ठ होकर उन्हे प्रणाम किया।

विधवा ने उठकर खड़े होकर जव कृशमुख, म्लानवर्ण, भग्नशरीर शशिभूपण की ओर सकरुण स्निग्ध-नेत्रो से निहारा, तो उसकी आँखों से झरते हुए आँसू उसके कपोलो को सिक्त कर वहने लगे।

शशिभूपण ने उसका कुशल-वृत्त पूछने की चेष्टा की, किन्तु ढूँढ़ने पर भी वे शव्द न पा सके, अवरुद्ध उच्छ्वास ने उनकी वाणी को वलपूर्वक वाँध लिया; वाणी और आँसू दोनो ही निरुपाय होकर हृदय और कंठ के द्वार पर आवद्ध रह गए। वह कीर्तन-मडली भिक्षा जुटाती अट्टालिका के सामने आकर खडी हो गई और आवृति करती गाने लगी—**आओ आओ हे !**

आधी रात में

: १ :

"डॉक्टर ! डॉक्टर !"

"परेशान कर डाला ! इतनी रात गए—"

आँखे खोलकर देखा, अपने जमीदार दक्षिणाचरण वावू थे। हड़वडाकर उठकर टूटी पीठ की चौकी घसीटकर उन्हे बैठने को दी और उद्विग्न भाव से मुँह की ओर देखा। घड़ी देखी, रात के ढाई वजे थे।

दक्षिणाचरण बावू ने विवर्ण मुख विस्फारित नेत्रो से कहा, "आज रात को फिर वही उपद्रव मच गया है—तुम्हारी औपधि कुछ काम नही आई।"

मैने कुछ सकोच के साथ कहा, "मालूम होता है, आपने शराव की मात्रा फिर बढा दी है।"

दक्षिणाचरण वावू ने अत्यन्त खीझकर कहा, "यह तुम्हारा भारी भ्रम है। शराव की वात नही; आद्योपान्त विवरण सुने बिना तुम असली कारण का अनुमान नही कर पाओगे।"

आले मे मिट्टी के तेल की छोटी-सी ढिबरी मंद-मंद जल रही थी, मैंने उसे उकसा दिया, प्रकाश थोडा जगमगा उठा और वहुत-सा धुआँ निकलने लगा। धोती का छोर देह के ऊपर खीचकर अखवार विछे चीड के खोखे पर वैठ गया। दक्षिणाचरण वावू कहने लगे—

"मेरी पहली स्त्री जैसी गृहिणी मिलना वडा कठिन है। किन्तु तव मेरी अवस्था ज्यादा नही थी, सहज ही रसाधिक्य हो गया था, तिस पर काव्य-शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन किया था, इससे निरे गृहिणीपन से मन नही भर पाता था। कालिदास का यह श्लोक प्राय: मन मे उभर आता—

'गृहिणी सचिव: सखी मिथ:
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।'

किन्तु मेरी पत्नी पर ललित कलाविधि का कोई उपदेश नही चल पाता था और यदि सखीभाव से प्रथय-सम्भाषण करता तो वे हँसकर उड़ा देती। गंगा के प्रवाह से जिस प्रकार इन्द्र का ऐरावत परास्त हो गया था वैसे ही उनकी हँसी के सामने वड़े-वड़े काव्यो के टुकड़े और प्यार के अच्छे-अच्छे सम्भापण क्षण-भर मे ही खिसककर वह जाते। हँसने की उनमे अपूर्व क्षमता थी।

उसके वाद, आज लगभग चार वरस हुए मुझे भयंकर रोग ने धर दवाया। ओष्ठ-व्रण हुआ, ज्वर-विकार हुआ, मरने की-सी हालत हो गई। वचने की कोई आशा नही थी। एक दिन ऐसा हुआ कि डॉक्टर भी जवाव दे गया। तभी मेरे एक आत्मीय ने कही से एक ब्रह्मचारी को ला उपस्थित किया; उसने गाय के घी के साथ एक जड़ी पीसकर मुझे खिला दी। चाहे औषधि के गुण से हो या भाग्य के फेर से हो, उस वार मैं वच गया।

वीमारी के समय मेरी स्त्री ने दिन-रात एक क्षण भी विश्राम नही किया। उन कई-एक दिनो एक अवला स्त्री ने, मनुष्य की सामान्य शक्ति के सहारे प्राण-पण से व्याकुलता के साथ द्वार पर आए हुए यमदूतो से अनवरत युद्ध किया। अपने सम्पूर्ण प्रेम, समस्त हृदय, सारी सेवा से उसने मेरे इस अयोग्य प्राण को स्वयं मानो दुधमुँहे शिशु के समान दोनों हाथो से छिपाकर ढक लिया था। आहार नही, नीद नही, संसार मे और किसी का कोई ध्यान न रहा।

यम तो पराजित वाघ के समान मुझे अपने चंगुल से छोडकर चले गए, किन्तु जाते-जाते मेरी स्त्री पर एक प्रवल पंजा मार गए।

मेरी स्त्री उस समय गर्भवती थी, कुछ समय वाद उन्होने एक मृत सन्तान प्रसव की। उसके वाद से ही उसके नाना प्रकार के जटिल रोगो का सूत्रपात हुआ। तव मैंने उनकी सेवा आरम्भ कर दी। उससे वे वहुत व्याकुल हो उठी। कहने लगीं, "अरे! क्या करते हो! लोग क्या कहेंगे! इस प्रकार दिन-रात तुम मेरे कमरे मे मत आया-जाया करो।"

स्वय पंखे की हवा खाने के वहाने यदि रात को उनके ज्वर के समय मैं पंखा करने चला जाता तो भारी छीना-झपटी मच जाती। किसी दिन उनकी शुश्रूषा के कारण यदि मेरे नियमित भोजन के समय मे दस मिनट की देर हो जाती, वह भी नाना प्रकार के अनुनय, अनुरोध, अनुयोग का कारण वन जाती। थोड़ी-सी भी सेवा करने पर लाभ के वदले हानि होने लगती। वे कहती, "पुरुषो का इतना अति करना अच्छा नही है।"

हमारे वरानगर के उस घर को, मेरा खयाल है तुमने देखा है। घर के सामने ही वगीचा है और वगीचे के सामने ही गंगा वहती है। हमारे सोने के कमरे के

नीचे ही दक्षिण की ओर मेहदी की बाड लगाकर कुछ जमीन घेरकर मेरी पत्नी ने अपने मनपसन्द वगीचे का एक टुकडा तैयार किया था। सम्पूर्ण वगीचे मे वही भाग अत्यन्त सीधा-सादा और बिलकुल एकदम देशी था। अर्थात् उसमे गन्ध की अपेक्षा वर्ण की वहार, फूल की तुलना मे पत्तों का वैचित्र्य नही था, और गमलों मे लगाए छोटे पौधो के समीप कमची के सहारे कागज की वनी लैटिन मे लिखे नाम की जय-ध्वजा नही उडती थी। वेला, जुही, गुलाव, गन्धराज, कनेर और रजनीगधा का ही प्रादुर्भाव कुछ अधिक था। एक विशाल मौलश्री वृक्ष के नीचे सफेद सगमर्मर पत्थर का एक चवूतरा वना था। स्वस्थ रहने पर वे स्वय खडी होकर दोनो समय उसको धोकर साफ करवाती थी। ग्रीष्मकाल मे काम से छुट्टी पाने पर सन्ध्या समय वही उनके वैठने का स्थान था। वहाँ से गंगा दिखती थी, किन्तु गगा से कोठी की छोटी नौका मे वैठे वावू लोग उनको नही देख पाते थे।

वहुत दिन तक चारपाई पर पड़े-पड़े एक दिन चैत्र मे शुक्लपक्ष की सन्ध्या को उन्होने कहा, "घर मे वन्द रहने से मेरा प्राण न जाने कैसा हो रहा है, आज एक वार अपने उस वगीचे मे जाकर वैठूँगी।"

मैंने उनको वहुत संभालकर पकडे हुए धीरे-धीरे ले जाकर उसी मौलश्री वृक्ष के नीचे वनी पत्थर की वेदी पर लिटा दिया। यो तो मैं अपनी जाँघ पर ही उनका सिर रख सकता था, किन्तु मैं जानता था कि वे उसे विचित्र-सा आचरण समझेंगी, इसलिए एक तकिया लाकर उनके सिर के नीचे रख दिया।

मौलश्री के दो-एक खिले हुए फूल झर रहे थे और शाखाओ के वीच से छायाकित ज्योत्स्ना उनके शीर्ण मुख के ऊपर आ पडी। चारो ओर शान्ति और निस्तव्धता थी, उस सघन गन्धपूर्ण छायान्धकार मे एक ओर चुपचाप वैठकर उनके मुख की ओर देखकर मेरी आँखों मे पानी भर आया।

मैंने धीरे-धीरे वहुत समीप पहुँचकर अपने हाथों मे उनका एक उत्तप्त जीर्ण हाथ ले लिया। इस पर उन्होने कोई आपत्ति नही की। कुछ देर तक इसी प्रकार चुप वैठे-वैठे मेरा हृदय न जाने कैसा उद्वेलित हो उठा! मैं वोल उठा, "तुम्हारे प्रेम को मैं कभी नही भूलूँगा।"

तभी समझा, इस वात के कहने की कोई आवश्यकता नही थी। मेरी पत्नी हँस पडी। उस हँसी मे लज्जा थी, सुख था और थोड़ा-सा अविश्वास था; और उसमे काफी मात्रा मे परिहास की तीव्रता भी थी। प्रतिवादस्वरूप कोई वात न कहकर उन्होने केवल अपनी उस हँसी से ही व्यक्त किया, "किसी दिन भूलोगे नही, यह कभी संभव नही और मैं इसकी प्रत्याशा भी नही करती।"

इस सुमिष्ट सुतीक्ष्ण हँसी के भय से ही मैंने कभी अपनी पत्नी के साथ अच्छी

तरह प्रेमालाप करने का साहस नही किया। उनके सामने न रहने पर जो अनेक वाते मन में आती उनके सामने जाते ही वे अत्यन्त व्यर्थ की लगने लगती। छपे अक्षरों मे जो वाते पढने पर नेत्रो से आँसुओ की धारा वहने लगती है उनको मुँह से कहते हुए क्यो हँसी आती है, यह मैं आज तक नही समझ सका।

वातचीत मे तो वाद-प्रतिवाद चल जाता है, किन्तु हँसी के ऊपर तर्क नही चलता, इसलिए चुप होकर रह जाना पड़ा। ज्योत्स्ना उज्ज्वलतर हो उठी, एक कोयल वार-वार कुहू-कुहू करती हुई चंचल हो गई। मैं वैठा-वैठा सोचने लगा, ऐसी ज्योत्स्ना-रात्रि मे भी क्या पिकवधू वधिर हो गई है ?

वहुत चिकित्सा करने पर भी मेरी पत्नी का रोग शान्त होने के कोई लक्षण नही दिखे। डॉक्टर ने कहा, "एक वार जलवायु परिवर्तन करके देखना अच्छा होगा।" मैं पत्नी को लेकर इलाहावाद चला गया।

इतना कहकर दक्षिण वावू सहसा चौककर चुप हो गए। सदेहपूर्ण भाव से मेरे मुख की ओर देखा, उसके वाद दोनो हाथो से सिर थामकर सोचने लगे। मैं भी चुप वैठा रहा। ताक मे केरोसीन की ढिवरी टिमटिमाकर जलने लगी और निस्तव्ध कमरे मे मच्छरो की भिनभिनाहट स्पप्ट सुनाई दे रही थी। हठात् मौन तोडकर दक्षिणा वावू ने कहना शुरू किया—

वहाँ हारान डॉक्टर मेरी पत्नी की चिकित्सा करने लगे।

अन्त मे वहुत दिन तक स्थिति मे कोई अन्तर होते न देखकर डॉक्टर ने भी कह दिया, मैं भी समझ गया और मेरी पत्नी भी समझ गई कि उनका रोग अच्छा होने वाला नही है। उनको सदा रुग्ण रहकर ही जीवन काटना पड़ेगा।

तव एक दिन मेरी पत्नी ने मुझसे कहा, "जव न तो व्याधि ही दूर होती है और न मेरे जल्दी मरने की ही कोई आशा है तव और कितने दिन इस जीवन्-मृत को लिये काटोगे ! तुम दूसरा विवाह करो।"

यह मानो केवल एक युक्तिपूर्ण और समझदारी की वात थी—इसमे कोई भारी महत्त्व, वीरत्व या कुछ असामान्य था, ऐसा लेश-मात्र भी उनका भाव नही था।

अव मेरे हँसने की वारी थी। किन्तु, मुझमे क्या उस प्रकार हँसने की क्षमता है ! मैं उपन्यास के प्रधान नायक के समान गम्भीर और सगर्व भाव से कहने लगा, "जितने दिन इस शरीर मे प्राण है.. "

वे टोककर वोली, "वस ! वस और अधिक मत वोलो ! तुम्हारी वात सुनकर तो मैं दंग रह जाती हूँ।"

पराजय स्वीकार न करते हुए मैं वोला, "इस जीवन मे और किसी से प्रेम

नही कर सकूँगा ।"

सुनकर मेरी पत्नी जोर से हँस पडी । तव मुझे परास्त होना पड़ा ।

मै नही जानता कि उस समय कभी अपने-आपसे भी स्पष्ट स्वीकार किया था या नही, किन्तु इस समय समझ रहा हूँ कि उस आरोग्य-आशाहीन सेवा-कार्य से मैं मन-ही-मन थक गया था । उस काम में चूक करूँगा, ऐसी कल्पना भी मेरे मन मे नही थी; अतएव, चिरजीवन इस चिररुग्ण को लेकर विताना होगा यह कल्पना भी मुझे पीडाजनक प्रतीत हुई । हाय ! यौवन की प्रथम वेला मे जव सामने देखा था तव प्रेम की कुहक में, सुख के आश्वासन मे, सौदर्य की मरीचिका मे मुझे अपना समस्त भावी जीवन खिलता हुआ दिखाई दिया था, अव आज से लेकर अन्त तक केवल आशाहीन सुदीर्घ प्यासी मरुभूमि ।

मेरी सेवा मे वह आन्तरिक थकान उन्होने अवश्य ही देख ली थी । उस समय मैं नही जानता था, किन्तु अव ज़रा भी संदेह नही है कि वे मुझे संयुक्ताक्षरहीन 'शिशुशिक्षा' के प्रथम भाग के समान वहुत ही आसानी से समझ लेती थी । इसीलिए जव उपन्यास का नायक वनकर मै गम्भीर मुद्रा से उनके पास कवित्व प्रदर्शित करने जाता तो वे वडे अकृत्रिम स्नेह, किन्तु अनिवार्य कौतुक के साथ हँस उठती । मेरे अपने अगोचर अन्तर की सव वातो को भी वे अन्तर्यामी के समान जानती थी, इस वात को सोचकर आज भी लज्जा से मर जाने की इच्छा होती है ।

हारान डॉक्टर हमारे स्वजातीय थे । उनके घर प्राय' मेरा निमन्त्रण रहता । कुछ दिनो के आने-जाने के वाद डॉक्टर ने अपनी कन्या के साथ मेरा परिचय करा दिया । कन्या अविवाहित थी, उसकी अवस्था पन्द्रह होगी । डॉक्टर ने कहा कि उनको मन के अनुकूल पात्र नही मिला इसलिए उन्होंने उसका विवाह नही किया। किन्तु, वाहर के लोगों से अफवाह सुनता—कन्या के कुल में दोप था ।

किन्तु, और कोई दोप नही था । जैसी सुन्दर थी वैसी ही सुशिक्षित । इस कारण कभी-कभी एकाध दिन उनके साथ नाना विपयो पर आलोचना करते-करते घर लौटते मुझे रात हो जाती, पत्नी को औपधि देने का समय निकल जाता । वे जानती थी कि मैं हारान डॉक्टर के घर गया हूँ, किन्तु उन्होंने एक भी दिन विलम्व के कारण के विषय मे प्रश्न तक नही किया ।

मरुभूमि मे फिर एक वार मरीचिका दिखाई देने लगी । तृष्णा जव गले तक आ गई थी तभी आँखो के सामने लवालव स्वच्छ जल कलकल, छलछल करने लगा । इस स्थिति मे मन को प्राणपण से रोकने पर भी मोड नही सका ।

रोगी का कमरा मुझे पहले से दुगुना निरानद लगने लगा । तव सेवा करने और औषधि खिलाने का नियम, सव प्राय भग होने लगा ।

हारान डॉक्टर वीच-वीच मे मुझसे प्रायः कहते रहते, जिनका रोग अच्छा होने की कोई सम्भावना नही है, उनका मरना ही भला है, क्योकि जीवित रहने से उनको स्वयं भी सुख नही मिलता, और दूसरों को भी दुःख होता है। साधारण रूप से ऐसी वात कहने मे कोई दोप नही तथापि मेरी स्त्री को लक्ष्य करके इस प्रकार के प्रसंग का उठाना उनके लिए उचित नही था। किन्तु, मनुष्य के जीवन-मरण के विपय मे डॉक्टरों के मन ऐसे अनुभूति-शून्य होते है कि वे ठीक प्रकार से हमारे मन की अवस्था नही समझ सकते।

सहसा एक दिन वगल के कमरे से सुना मेरी पत्नी हारान वावू से कह रही थी, "डॉक्टर, फिजूल ही इतनी औपधियाँ खिला-खिलाकर औपधालय का कर्ज क्यों वढा रहे हो ? जव मेरे प्राण ही एक व्याधि है तव तो कोई ऐसी औपधि दो जिससे शीघ्र ही ये प्राण चले जायँ।"

डॉक्टर ने कहा, "छि:! ऐसी वातें न करे।"

यह सुनकर मेरे हृदय को एकवारगी वड़ा आघात पहुँचा। डॉक्टर के चले जाने पर मैं अपनी स्त्री के कमरे मे जाकर उनकी चारपाई के सिरहाने वैठ गया, उनके माथे पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगा। वे वोली, "यह कमरा वडा गर्म है, तुम वाहर जाओ। तुम्हारे टहलने जाने का समय हो गया है। थोड़ा टहले विना रात को तुम्हे भूख नही लगेगी।"

टहलने जाने का अर्थ था डॉक्टर के घर जाना। मैंने ही उनको समझाया था कि भूख लगने के लिए थोडा टहल लेना विशेप आवश्यक है। आज मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ, वे प्रतिदिन ही मेरी इस छलना को समझती थी। मैं ही निर्वोध था जो सोचता था कि ये निर्वोध है।

यह कहकर दक्षिणाचरण वावू हथेली पर सिर टिकाए वहुत देर तक मौन वैठे रहे। अन्त मे वोले, "मुझे एक गिलास पानी ला दो!" पानी पीकर कहने लगे—

एक दिन डॉक्टर वावू की पुत्री मनोरमा ने मेरी पत्नी को देखने के लिए आने की इच्छा प्रकट की। पता नही क्यो, उनका वह प्रस्ताव मुझे अच्छा नही लगा। किन्तु प्रतिवाद करने का कोई कारण नही था। वे एक दिन संध्या को मेरे घर आ उपस्थित हुई।

उस दिन मेरी पत्नी की पीडा अन्य दिनो की अपेक्षा कुछ वढ गई थी। जिस दिन उनका कष्ट वढ़ता उस दिन वे अत्यन्त स्थिर और चुपचाप रहती; केवल वीच-वीच मे मुट्ठियाँ वँध जाती और मुँह नीला हो जाता, इसीसे उनकी पीड़ा का अनुमान होता। कमरे मे कोई आहट नहीं थी, मैं विस्तर के किनारे चुपचाप

वैठा था। उस दिन टहलने जाने का मुझसे अनुरोध करें, इतनी सामर्थ्य उनमे नही थी या हो सकता है मन-ही-मन उनकी यह इच्छा रही हो कि अत्यधिक कष्ट के समय मैं उनके पास रहूँ। चौंध न लगे, इससे केरोसीन की वत्ती दरवाज़े के पास थी। कमरा अँधेरा और निस्तब्ध था। केवल कभी-कभी पीड़ा के कुछ शान्त होने पर मेरी पत्नी का दीर्घ निश्वास सुनाई पड़ता था।

इसी समय मनोरमा कमरे के दरवाजे पर आ खडी हुई। उलटी ओर से वत्ती का प्रकाश आकर उनके मुख पर पडा। प्रकाश से चौंधिया जाने के मारे कमरे मे कुछ भी न देख पाने के कारण वे कुछ क्षणो तक दरवाजे के पास खडी इधर-उधर करने लगी।

मेरी स्त्री ने चौककर मेरा हाथ पकडकर पूछा, "वह कौन है ?"—अपनी उस दुर्वल अवस्था मे सहसा अपरिचित व्यक्ति को देखकर उन्होने डरकर मुझसे दो-तीन वार अस्पष्ट स्वर मे प्रश्न किया, "कौन है ! वह कौन है जी !"

न जाने मेरी कैसी दुर्वुद्धि हुई कि मैंने पहले ही कह दिया, "मैं नही जानता।" कहते ही मानो किसी ने मुझे चावुक मारा। दूसरे क्षण मैं वोला, "ओह, अपने डॉक्टर वावू की लडकी !"

पत्नी ने एक वार मेरे मुख की ओर देखा, मैं उनके मुख की ओर नही देख सका। दूसरे ही क्षण उन्होने क्षीण स्वर मे अभ्यागत से कहा, "आप आइए।" मुझसे वोली, "उजाला करो।"

मनोरमा कमरे मे आकर वैठ गई। उनके साथ मरीज़ की थोड़ी-वहुत वातचीत चलने लगी। इसी समय डॉक्टर वावू आ उपस्थित हुए।

वे अपने औपधालय से दो शीशी औपधि साथ लाए थे। उन शीशियो को वाहर निकालते हुए वे मेरी पत्नी से वोले, "यह नीली शीशी मालिश करने के लिए है और यह खाने के लिए है। देखिये, दोनो को मिलाइएगा नही, यह औपधि भयंकर विप है।"

मुझे भी एक वार सावधान करते हुए उन्होने दोनो दवाइयो को चारपाई के पास की टेविल पर रख दिया। विदा लेते समय डॉक्टर ने अपनी पुत्री को वुलाया।

मनोरमा ने कहा, "पिताजी, मैं रह क्यो न जाऊँ ? साथ मे कोई महिला नही है, इनकी सेवा कौन करेगा ?"

मेरी स्त्री व्याकुल हो उठी। वोली, "नही, नही, आप कष्ट न कीजिए। पुरानी नौकरानी है, वह माँ की भाँति मेरी सेवा करती है।"

डॉक्टर हँसते हुए वोले, "ये लक्ष्मी-स्वरूपा है, चिरकाल से दूसरों की सेवा

करती आ रही है, दूसरे की सेवा सहन नही कर सकती।"

पुत्री को लेकर डॉक्टर जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि उसी समय मेरी स्त्री वोली, "डॉक्टर वावू, ये इस वन्द कमरे मे वहुत समय से वैठे है, इनको थोडी देर वाहर घुमा ला सकते है ?"

डॉक्टर वावू ने मुझसे कहा, "चलिए न, आपको नदी के किनारे थोडा घुमा लाये।"

मै तनिक् आपत्ति प्रकट करने के वाद शीघ्र ही राजी हो गया। डॉक्टर वावू ने चलते समय दवाइयों की दोनो शीशियों के सम्वन्ध मे फिर मेरी पत्नी को सावधान कर दिया।

उस दिन मैंने डॉक्टर के घर ही भोजन किया। लौटने मे रात हो गई। आकर देखा मेरी स्त्री छटपटा रही थी। मैंने पश्चाताप से पीडित होकर पूछा, "क्या तुम्हारी तकलीफ वढ गई है ?"

वे उत्तर न दे सकी। चुपचाप मेरे मुख की ओर देखने लगी। उस समय उनका गला रुँध गया था।

मैं तुरन्त रात मे ही डॉक्टर को वुला लाया।

डॉक्टर आकर पहले तो वहुत देर तक कुछ समझ ही न सके। अन्त मे उन्होने पूछा, "क्या तकलीफ वढ गई है ? एक वार दवा की मालिश करके क्यो न देखा जाय।"

यह कहते हुए उन्होने टेविल से शीशी उठाकर देखी, वह खाली थी।

मेरी पत्नी से पूछा, "क्या आपने भूल से यह औषधि खाई है ?"

मेरी पत्नी ने गरदन हिलाकर चुपचाप वताया, "हाँ।"

डाक्टर तुरन्त अपने घर से पम्प लेने के लिए गाड़ी मे वैठकर दौडे। मैं अर्ध-मूर्छित-सा पत्नी के विस्तर पर पड़ गया।

उस समय, जिस प्रकार माता पीडित शिशु को सान्त्वना देती है उसी प्रकार उन्होंने मेरे सिर को अपने वक्ष.स्थल के पास खीचकर हाथो के स्पर्श द्वारा मुझे अपने मन की वात समझाने की चेष्टा की। केवल अपने उस करुण स्पर्श के द्वारा ही वे मुझसे वार-वार कहने लगी, "दु खी मत होना, अच्छा ही हुआ है, तुम सुखी रहोगे, यही सोचकर मैं सुख से मर रही हूँ।"

जव डॉक्टर लौटे तो जीवन के साथ-साथ मेरी स्त्री की सारी यन्त्रणाओ का भी अवसान हो गया था।

दक्षिणाचरण फिर एक वार पानी पीकर वोले, "ओह ! वड़ी गरमी है !" यह कहते हुए तेज़ी से वाहर निकलकर वरामदे मे दो-चार वार टहलने के वाद

फिर आ बैठे। अच्छी तरह स्पष्ट हो गया, वे कहना नही चाहते थे किन्तु मानो मैंने जादू करके उनसे बात निकलवा ली हो। फिर आरम्भ किया—

मनोरमा से विवाह करके घर लौट आया।

मनोरमा ने अपने पिता की सम्मति के अनुसार मुझसे विवाह किया, किन्तु जब मैं उससे प्रेम की बात कहता, प्रेमालाप करके उसके हृदय पर अधिकार करने की चेष्टा करता, तो वह हँसती नही, गम्भीर बनी रहती। उसके मन मे कहाँ किस जगह क्या खटका लग गया था, मैं कैसे समझता ?

इन्ही दिनो मेरी शराब पीने की लत बहुत बढ गई।

एक दिन शरद् के आरम्भ मे संध्या को मनोरमा के साथ अपने बरानगर के बाग मे टहल रहा था। घोर अन्धकार हो आया था। घोंसलों मे पक्षियो के पंख फड़फडाने तक की आहट नही थी, केवल घूमने के रास्ते के दोनो किनारे घनी छाया से ढँके झाऊ के पेड़ हवा मे सर-सर करते काँप रहे थे।

थकान का अनुभव करती हुई मनोरमा उसी मौलश्री वृक्ष के नीचे शुभ्र पत्थर की वेदी पर आकर अपने हाथो के ऊपर सिर रखकर लेट गई। मैं भी पास आकर बैठ गया।

वहाँ और भी घना अंधकार था; आकाश का जो भाग दिखाई दे रहा था, वह पूरी तरह तारो से भरा था; वृक्षो के तले की झींगुरों की ध्वनि मानो अनन्त गगन के वक्ष से च्युत निःशब्दता के अधोभाग पर ध्वनि की एक पतली किनारी बुन रही हो।

उस दिन भी शाम को मैंने कुछ शराब पी थी, मन खूब तरलावस्था मे था। अन्धकार जब आँखो को सहन हो गया तब वृक्षों की छाया के नीचे पाण्डु वर्ण वाली उस शिथिल-आँचल श्रान्त काय रमणी की अस्पष्ट मूर्ति ने मेरे मन में एक अनिवार्य आवेग का सचार कर दिया। मुझे लगा, वह मानो कोई छाया हो, मैं उसे मानो किसी भी प्रकार भुजाओ मे बाँध नही सकूँगा।

इसी समय अँधेरे झाऊ वृक्षो की चोटियों पर जैसे आग जल उठी हो; उसके पश्चात् कृष्ण पक्ष के क्षीण हरिद्रावर्ण चाँद ने धीरे-धीरे वृक्षो के ऊपर आकाश मे आरोहण किया। सफेद पत्थर पर सफेद साड़ी पहने उस थकी लेटी रमणी के मुख पर ज्योत्स्ना आकर पडी। मैं और न रह सका। पास आकर हाथों मे उसका हाथ लेकर बोला, "मनोरमा, तुम मेरा विश्वास नही करती, पर मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। मैं तुमको कभी नही भूल सकूँगा।"

बात कहते ही मैं चौंक उठा। याद आया; ठीक यही बात मैंने कभी किसी और से भी कही थी ! और तभी मौलश्री की शाखाओ के ऊपर होती हुई, झाऊ

वृक्ष की चोटी पर से होती हुई कृष्ण पक्ष के पीतवर्ण खण्डित चाँद के नीचे से, गंगा के पूर्वी किनारे से लेकर गंगा के सुदूर पश्चिमी किनारे तक हाहा-हाहा-हाहा—करती एक हँसी अत्यन्त तीव्र वेग से प्रवाहित हो उठी। वह मर्मभेदी हँसी थी या अभ्रभेदी हाहाकार था, कह नहीं सकता। मैं उसी क्षण मूर्छित होकर पत्थर की वेदी से नीचे गिर पड़ा।

मूर्च्छा भंग होने पर देखा, अपने कमरे मे विस्तर पर लेटा हूँ। पत्नी ने पूछा, "तुम्हे अचानक यह क्यों हुआ ?"

मैंने काँपते हुए कहा, "तुमने सुना नही, समस्त आकाश को परिपूर्ण करती हुई एक हा-हा करती हँसी ध्वनित हुई थी ?"

पत्नी ने हँसकर कहा, "वह हँसी थोड़े ही थी। पंक्ति बाँधकर पक्षियों का एक वहुत वड़ा झुण्ड उडा था, उन्ही के पखों का शव्द मुनाई दिया था। तुम इतने से ही डर जाते हो ?"

दिन के समय मैं स्पष्ट समझ गया कि वह सचमुच पक्षियो के झुण्ड के उड़ने का ही शव्द था। इस ऋतु मे उत्तर दिशा से हंस-श्रेणी नदी के कछार मे चुगने के लिए आती है, किन्तु सन्ध्या हो जाने पर यह विश्वास टिक नही पाता था। उस समय लगता, मानो चारो ओर समस्त अन्धकार को भरती हुई सघन हँसी जमा हो गई हो, किसी सामान्य वहाने से ही अचानक आकाशव्यापी अन्धकार को विदीर्ण करके ध्वनित हो उठेगी। अन्त मे ऐसा हुआ कि सन्ध्या के वाद मनोरमा से मुझे कोई भी वात कहने का साहस न होता।

तव मै वरानगर के अपने घर को त्यागकर मनोरमा को साथ लेकर नौका पर वाहर निकल पड़ा। अगहन के महीने मे नदी की हवा से सारा भय भाग गया। कुछ दिनो वड़े मुख मे रहा। चारो ओर के सौन्दर्य से आकर्पित होकर—मनोरमा भी मानो वहुत दिन वाद मेरे लिए अपने हृदय का रुद्ध द्वार धीरे-धीरे खोलने लगी।

गंगा पार कर, खड पार कर अंत मे हम पद्मा मे आ पहुँचे। भयंकरी पद्मा उस समय हेमन्त ऋतु की विवरलीन भुजगिनी के समान कृश निर्जीव-सी लम्वी शीतनिद्रा मे मग्न थी। उत्तर की ओर जन-तृण-शून्य दिगन्त प्रसारित वालुकापूर्ण कछार धू-धू कर रहा था और दक्षिण के ऊँचे किनारे पर गाँवो के आमो के वगीचे इस राक्षसी नदी के मुख के अत्यन्त समीप हाथ जोड़े खड़े काँप रहे थे। वीच-वीच मे पद्मा निद्रा के आवेश मे करवट वदलती और विदीर्ण तट-भूमि छपाक से टूट-टूटकर गिर पडती। यहाँ घूमने की सुविधा देखकर नौका वाँध दी।

एक दिन घूमते हुए हम दोनो वहुत दूर चले गए। सूर्यास्त की स्वर्णच्छाया

विलीन होते ही शुक्ल पक्ष का निर्मल चन्द्रलोक देखते-देखते खिल उठा। उस अन्तहीन शुभ्र बालू के कछार पर जव अजस्र, मुक्त, उच्छ्वसित ज्योत्स्ना एकदम आकाश की सीमाओं तक प्रसारित हो गई तव लगा मानो जन-शून्य चन्द्रलोक के असीम स्वप्न-राज्य मे केवल हम दो व्यक्ति ही भ्रमण कर रहे हो। एक लाल शाल मनोरमा के सिर से उतरता उसके मुख को वेष्ठित करते हुए उसके शरीर को ढँके हुए था। निस्तब्धता जव गहरी हो गई, केवल सीमाहीन, दिशाहीन शुभ्रता और शून्यता के अतिरिक्त जव और कुछ भी न रहा तव मनोरमा ने धीरे-धीरे हाथ बढाकर जोर से मेरा हाथ पकड लिया। अत्यन्त पास आकर वह मानो अपना सम्पूर्ण शरीर-मन-जीवन-यौवन मेरे ऊपर डालकर एकदम निर्भय होकर खडी हो गई। मैने पुलकित-उद्वेलित हृदय से सोचा, कमरे के भीतर क्या भला यथेष्ट प्रेम किया जा सकता है। यदि ऐसा अनावृत मुक्त अनन्त आकाश न हो तो क्या कही दो व्यक्ति वँध सकते है ? उस समय लगा—हमारे न घर है, न द्वार है, न कही लौटना है। वस हम इसी प्रकार हाथ मे हाथ लिये अगम्य मार्ग मे उद्देश्यहीन भ्रमण करते हुए चन्द्रालोकित शून्यता पर पैर धरते मुक्त भाव से चलते रहेगे।

इसी प्रकार चलते-चलते एक जगह पहुँचकर देखा, थोडी दूर पर वालुका-राशि के वीच एक जलाशय-सा बन गया है, पद्मा के उतर जाने पर उसमे पानी जमा रह गया था।

उस मरुवालुकावेष्टित निस्तरंग, गाढ निद्रामग्न, निश्चल जल पर विस्तृत ज्योत्स्ना की रेखा मूर्छित भाव से पडी थी। उसी स्थान पर आकर हम दोनो व्यक्ति खड़े हो गए—मनोरमा ने न जाने क्या सोचकर मेरे मुख की ओर देखा, अचानक उसके सिर पर से शाल खिसक गया। मैने ज्योत्स्ना से खिला हुआ उसका वह मुँह उठाकर चूम लिया।

उसी समय उन जनमानव-शून्य नि.संग मरुभूमि मे गभीर स्वर मे न जाने कौन तीन वार वोल उठा, "कौन है ? कौन है ? कौन है ?"

मैं चौक पडा, मेरी पत्नी भी काँप उठी। किन्तु दूसरे ही क्षण हम दोनो ही समझ गए कि यह शब्द मनुष्य का नही था, अमानवीय भी नहीं था। कछार मे विहार करने वाले जलचर पक्षी की आवाज थी। इतनी रात को अचानक अपने निरापद निभृत निवास के समीप जनसमागम देखकर वह चौक उठा था।

भय से चौककर हम दोनो झटपट नौका मे लौट आए। रात को आकर विस्तर पर लेट गए। थकी होने के कारण मनोरमा शीघ्र ही सो गई। उस समय अन्धकार मे न जाने कौन मेरी मसहरी के पास खड़ा होकर सुसुप्त मनोरमा की

ओर एक लम्वी जीर्ण अस्थि-पिंजर-मात्र अंगुली दिखाकर मानो मेरे कान मे विलकुल चुपचाप अस्फुट स्वर मे वारम्वार पूछने लगा, "कौन है ? कौन है ? वह कौन है जी ?"

झटपट उठकर दियासलाई घिसकर वत्ती जलाई। उसी क्षण वह छायामूर्ति विलीन हो गई। मेरी मसहरी को कँपाकर, नौका को डगमगाकर मेरे स्वेद-सने शरीर के रक्त को वर्फ करके हा-हा-हा हा-हा हा-हा करती हुई एक हँसी अन्धकार-रात्रि मे वहती चली गई। पद्मा को पार कर, पद्मा के कछार को पार कर, उसके तटवर्ती समस्त सुप्त देश, ग्राम, नगर पार कर—मानो वह चिरकाल से देश-देशान्तर, लोक-लोकान्तर को पार करती क्रमश. क्षीण, क्षीणतर, क्षीणतम होकर असीम सुदूर की ओर चली जा रही थी, धीरे-धीरे वह मानो जन्म-मृत्यु के देश को पीछे छोड गई, क्रमश वह मानो सुई के अग्रभाग के समान क्षीणतम हो आई। मैंने इतना क्षीण स्वर पहले कभी नही सुना, कल्पना भी नही की, मानो मेरे दिमाग मे अनन्त आकाश हो और वह शव्द कितनी ही दूर क्यों न जा रहा हो, किसी भी प्रकार मेरे मस्तिष्क की सीमा छोड़ नही पा रहा हो, अन्त मे जव नितान्त असह्य हो गया तव सोचा, वत्ती वुझाए विना सो नही पाऊँगा। जैसे ही रोशनी वुझाकर लेटा, वैसे ही मेरी मसहरी के पास, मेरे कान के समीप, अँधेरे मे वह अवरुद्ध स्वर फिर वोल उठा, "कौन है ? कौन है ? वह कौन है जी ?" मेरे हृदय का रक्त भी उसी पर ताल देता हुआ क्रमशः ध्वनित होने लगा, "कौन है, कौन है, वह कौन है जी ?" "कौन है, कौन है, वह कौन है जी ?" उसी गहरी रात मे निस्तव्ध नौका मे मेरी गोलाकार घड़ी भी सजीव होकर अपनी घण्टे की सुई को मनोरमा की ओर घुमाकर शेल्फ के ऊपर से ताल मिलाकर वोलने लगी, "कौन है ! कौन है, वह कौन है जी ! कौन है, कौन है, वह कौन है जी !"

कहते-कहते दक्षिणा वावू का रग फीका पड गया, उनका गला रुँध आया। मैंने उनको सहारा देते हुए कहा, "थोडा पानी पीजिए !" इसी समय सहसा किरोसीन की मेरी वत्ती लुप-लुप करती वुझ गई। अचानक देखा, वाहर प्रकाश हो गया है। कौआ वोल उठा। दहिगल पक्षी सिसकारी भरने लगा। मेरे घर के सामने वाले रास्ते पर भैंसा-गाडी का चरमर-चरमर शव्द होने लगा। दक्षिणा वावू के मुख की मुद्रा अव विलकुल वदल गई। अव भय का कोई चिह्न न रहा। रात्रि की कुहक मे काल्पनिक शका की मत्तता मे मुझसे जो इतनी वाते कह डाली उसके लिए वे अत्यन्त लज्जित और मेरे ऊपर मन-ही-मन क्रोधित हो उठे। शिष्टा-चार-प्रदर्शक शव्द के विना ही वे अकस्मात् उठकर द्रुतगति से चले गए।

उसी दिन आधी रात मे फिर मेरे दरवाजे पर खटखटाहट हुई, "डाक्टर ! डाक्टर !"

पितामह

: १ :

नयनजोड के जमीदार किसी समय बाबू के नाम से विशेष विख्यात थे। उस जमाने मे बाबूपने का आदर्श बहुत आसान नही था। इस समय जिस प्रकार राजा, रायबहादुर का खिताब प्राप्त करने के लिए बहुत-सा नाच, घुड़दौड़ एवं सलामी सिफारिश का श्राद्ध करना पडता है, उस समय भी साधारण जनता से बाबू की उपाधि प्राप्त करने के लिए बहुत दु.साध्य तपस्या करनी पडती थी।

नयनजोड के अपने बाबू किनारी फाडकर ढाका के कपड़े पहनते, क्योंकि किनारी की कर्कशता से उनका सुकोमल बाबूपन कष्ट पाता। वे लाख रुपये से बिल्ली के बच्चे का विवाह करते और कहा जाता है कि एक बार किसी उत्सव के उपलक्ष्य मे उन्होने रात को दिन करने की प्रतिज्ञा करके असंख्य दीपक जलाकर सूर्य की किरणो के अनुकरण मे ऊपर से सच्ची चाँदी की जरी बरसाई थी।

इससे सभी समझ सकते है कि उस समय बाबुओ का बाबूपन वंशानुक्रम से स्थायी नही हो पाता था। अनेक बाती वाले दीपक के समान वे अपना तेल आप ही थोड़े से समय की धूमधाम मे चुका देते।

अपने कैलाशचन्द्र राय चौधुरी उसी ख्यातनामा नयनजोड के एक बुझे हुए (बिगड़े हुए) बाबू थे। इन्होने जब जन्म ग्रहण किया था तब तेल दीपक की पैंदी मे ही रह गया था; इनके पिता की मृत्यु होने पर नयनजोड़ का बाबूपना कुछ असाधारण श्राद्ध शाति कार्यो मे अपनी अन्तिम ज्योति दिखाकर अचानक बुझ गया। सारी धन-सम्पत्ति कर्जे मे बिक गई—जो थोडी-सी बच रही उससे पूर्व-पुरुषो की ख्याति की रक्षा करना असभव था।

इसीलिए कैलाश बाबू नयनजोड को त्यागकर पुत्र को साथ लेकर कलकत्ता आकर रहने लगे—पुत्र भी अपनी एक-मात्र कन्या को छोड़कर इस हतगौरव संसार का परित्याग करके परलोक सिधार गए।

हम कलकत्ता में उनके पड़ौसी थे। हमारा इतिहास उनसे एकदम विपरीत था। मेरे पिता ने अपने प्रयत्न से धन कमाया था; वे कभी भी घुटने से नीचे तक की धोती नही पहनते थे, कौड़ी-कौडी का हिसाव रखते थे; और वावू की उपाधि पाने की उन्हे कोई लालसा नही थी। इसके लिए मैं, उनका एक मात्र पुत्र, उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। मैंने जो लिखना-पढना सीखा है और विना प्रयत्न के अपने शरीर और मान की रक्षा के लिए उपयोगी यथेष्ट धन पाया है, उसी को मैं परम गौरव की वात समझता हूँ—शून्य भाण्डार मे पैतृक वावूपन के उज्ज्वल इतिहास की अपेक्षा लोहे के संदूक मे कम्पनी के पैतृक कागज मुझे वहुत ज्यादा मूल्यवान प्रतीत होते है।

शायद इसी कारण जव कैलाश वावू अपने पूर्वगौरव के विगड़े हुए वैंक के नाम लम्वा-चौड़ा चैक काटते तो वह मुझे अत्यन्त असह्य लगता। मुझे लगता, मेरे पिता ने अपने हाथ से अर्थोपार्जन किया है, इसलिए कैलाश वावू शायद मन-ही-मन मेरे प्रति अवज्ञा का अनुभव करते है। मैं क्रोधित होता और सोचता कि अवज्ञा के योग्य कौन है? जो जीवन-भर कठोर त्याग स्वीकार करके, नाना प्रलोभनो का अतिक्रमण करके, लोगो के मुख की तुच्छ ख्याति की अवहेलना करके, अविश्रात एवं सतर्क वुद्धि-चातुर्य द्वारा समस्त प्रतिकूलताओ और वाधाओं पर विजय प्राप्त करके, समस्त अनुकूल अवसरो पर अपना अधिकार कर, चाँदी के एक-एक स्तर से सम्पत्ति के एक ऊँचे पिरामिड का अकेले अपने हाथों से निर्माण कर गए है, वे घुटनो के नीचे धोती नही पहनते थे इसी कारण वे छोटे आदमी थे, ऐसा नही है।

उस समय मेरी अवस्था कम थी इसीलिए मैं इस प्रकार का तर्क करता, नाराज हो जाता। अव अवस्था वढ गई है, अव सोचता हूँ, इसमे हानि भी क्या है? मेरे पास तो विपुल सम्पत्ति है, मुझे किस वात का अभाव है? जिसके पास कुछ नही है, वह यदि अहंकार करके सुखी हो ले, इसमे मेरा तो रत्ती-भर भी नुकसान नही है, उल्टे उस वेचारे को सान्त्वना मिल जाती है।

यह भी पता चला कि मुझे छोडकर और कोई कैलाश वावू के ऊपर क्रोध नही करता था। क्योंकि दुनिया मे इतना अधिक निरीह आदमी नही मिलता। काम-काज मे, सुख-दुःख मे पडोसियों के साथ उनका पूरा सहयोग रहता था। आवाल-वृद्ध किसी से भी भेट होते ही वे हँसते हुए सवसे स्नेहपूर्वक वात करते—जहाँ भी जिसका जो कोई था उन सवका कुशल-संवाद पूछकर ही उनकी शिष्टता विश्राम पाती। इसलिए किसी से भी उनकी भेट होते ही एक खूव लम्वी प्रश्नोत्तरमाला की सृष्टि हो जाती—अच्छे हो? शशी अच्छा है? हमारे वडे वावू अच्छे तो हैं? सुना था मधु के पुत्र को ज्वर आ गया था, वह अव अच्छा तो है? हरिचरण वावू

को वहुत समय से नही देखा, वे अस्वस्थ तो नहीं हो गए? तुम्हारे राखाल का क्या समाचार है? घर मे से सव लोग अच्छे तो है? इत्यादि।

वे वडे साफ-सुथरे व्यक्ति थे। कपड़े-लत्ते अधिक नही थे, किन्तु मिरजई, चादर, कुरता, यहाँ तक कि विस्तर पर विछने वाली एक पुरानी दुतई, तकिये का खोल, एक छोटी दरी—इन सवको वे अपने हाथो धूप देकर, झाड़कर, रस्सी मे लटकाकर, तहाकर, अरगनी पर टाँगकर वडे कायदे से रखते थे। जव भी वे दिखाई पडते तभी लगता मानो वे सुसज्जित होकर तैयार वैठे है। थोड़े-वहुत सामान से ही उनका घर-द्वार जगमगाता रहता। ऐसा लगता, मानो उनके पास और भी वहुत कुछ है।

नौकर के अभाव मे वे वहुत वार कमरे का दरवाजा वन्द करके अपने हाथ से वडे ढंग से धोती चुनियाते और चादर और कुरते की आस्तीन वड़े यत्न और परिश्रम से चुन्नट करके रखते। उनकी लम्वी-चौड़ी जमीदारी और वहुमूल्य धन-सम्पत्ति लुप्त हो चुकी थी, किन्तु वहुमूल्य गुलावपाश, इत्रदान, सोने की एक रकावी, चाँदी का एक हुक्का, वहुमूल्य शाल और पुरानी चाल के जामे की एक जोड और पगडी को उन्होने वडे यत्न से दरिद्रता के मुँह मे जाने से वचाया था। कोई भी अवसर आने पर यह सव सामान निकल आता और नयनजोड के जगद्विख्यात वावुओ के गौरव की रक्षा हो जाती।

इधर कैलाश वावू मिट्टी के माधो होने पर भी अपनी वातो मे जो अहंकार व्यक्त करते वह मानो पूर्व-पुरुपो के प्रति अपने कर्तव्य का अनुभव करके ही करते थे, सभी लोग उनको वढावा देते और विशेप विनोद का अनुभव करते।

मुहल्ले के लोग उनको दादाजी कहते और उनके यहाँ हमेशा वहुत-से लोगो का समागम रहता; किन्तु दैन्यावस्था के कारण कही उनका तम्वाकू का खर्च वहुत वढ न जाय इसलिए प्राय मुहल्ले का कोई-न-कोई दो-एक सेर तम्वाकू खरीद लाता और उनसे कहता, "दादाजी, एक वार परीक्षा करके तो देखो जरा, गया का वढिया तम्वाकू हाथ लगा है।"

दादाजी दो-एक कश खीचकर कहते, "खूव है भई, तम्वाकू खूव है!" और इसी वहाने साठ-पैंसठ रुपये तोले के तम्वाकू का किस्सा छेड देते और पूछते कि किसी को उस तम्वाकू का स्वाद लेकर देखने की इच्छा तो नही है।

सभी जानते थे कि यदि कोई इच्छा प्रकट कर दे तो अवश्य ही चावी का पता न लगेगा या फिर वहुत ढूँढने के वाद पता चलेगा कि पुराना नौकर गणेश का वच्चा कहाँ क्या रखता है, इसका कोई ठिकाना नही—गणेश भी विना प्रतिवाद किये समस्त अपवाद स्वीकार कर लेता। इसलिए सभी एक स्वर मे उत्तर देते,

"दादाजी, कोई ज़रूरत नही, वह तम्वाकू हमसे वर्दाश्त नही होगी, हमारे लिए यही अच्छी है।"

इतना सुनते ही दादाजी दुवारा कुछ न कहकर किंचित् मुस्कराते। सवके विदा होते समय वे सहसा वोल उठते, "खैर, इसे छोड़ो, तुम लोग मेरे यहाँ भोजन कव करोगे, वताओ तो भई!"

त्यो ही सव वोल पड़ते, "देखा जायगा, फिर किसी दिन तय कर लेगे।" दादाजी कहते, "यही अच्छा है, थोडा पानी वरस जाय, ठण्डक हो जाय, नही तो इस गर्मी मे भारी भोजन वेकार है।"

जव वरसात आती तव कोई भी दादाजी को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण न कराता, किन्तु वात चलने पर सभी कहते, "जव तक वूँदा-वाँदी वन्द न हो तव तक मज़ा नही आयगा।" किराए के छोटे घर में रहना उनके लिए शोभन नही है और कष्ट भी होता है, इस वात को उनके वन्धु-वान्धव उनके सामने स्वीकार करते, लेकिन कलकत्ता मे खरीदने योग्य घर खोज लेना कितना कठिन है, इस विषय मे भी किसी को कोई सन्देह नही था—यही नही, आज छ:-सात वर्ष से खोज करने पर भी कोई मुहल्ले वाला भाड़े पर लेने योग्य एक वड़ा मकान तक नही पा सका—आखिर दादाजी कहते, "जो हो, भाई तुम लोगो के पास हूँ, मेरे लिए यही सुख है, नयनजोड मे वड़ा घर तो पडा ही है, किन्तु वहाँ क्या मन टिकता है?"

मेरा विश्वास है, दादाजी भी जानते थे कि उनकी अवस्था सभी जानते है और जव वे भूतपूर्व नयनजोड को वर्तमान का रूप देकर दिखावा करते और जव और लोग भी उसमे उनका साथ देते तव वे मन-ही-मन समझ लेते कि परस्पर की यह छलना केवल एक-दूसरे के प्रति सौहार्द के कारण है।

किन्तु मुझे वडी चिढ छूटती। छोटी अवस्था मे दूसरो के निरीह गर्व का भी दमन करने की इच्छा होती है और हजारों गुरुतर अपराधों की तुलना में मूर्खता ही सवसे अधिक असह्य प्रतीत होती है। कैलाश वावू सचमुच निर्वोध नही थे, काम-काज मे उनकी सहायता और सलाह की सभी अपेक्षा करते। किन्तु नयनजोड़ का गौरव वर्णन करने मे उनको सहज औचित्य का तनिक भी ध्यान नही रहता था। सवके स्नेह और मनोरंजन के पात्र होने के कारण कोई भी उनकी किसी भी असम्भव वात का प्रतिवाद नहीं करता था, इससे वे अपनी वात की सीमा की रक्षा नही कर पाते थे। दूसरे व्यक्ति भी जव हँसी-मज़ाक मे अथवा उनको सन्तुष्ट करने के लिए नयनजोड के कीर्ति-कलाप के सम्वन्ध मे अस्वाभाविक मात्रा मे अत्युक्ति का प्रयोग करते तो वे विना किसी हिचकिचाहट के सव-कुछ

मान लेते और स्वप्न मे भी सदेह न करते कि कोई दूसरा इन सब बातों मे लेश-मात्र भी अविश्वास प्रकट कर सकता है।

कभी-कभी मेरी इच्छा होती कि वृद्ध जिस मिथ्या गढ़ के सहारे रह रहे हैं और सोचते हैं कि वह चिरस्थायी है उस दुर्ग को ही सबके सामने दो तोपों से उड़ा दूं। किसी पक्षी को डाल पर आराम से बैठा देखकर शिकारी की इच्छा होती है कि उसे गोली से उडा दे, पहाड के ऊपर किसी पतनोन्मुख पत्थर को पड़े देखकर बालक के मन मे आता है ठोकर मारकर उसे लुढका दे--जो वस्तु प्रतिक्षण अब गिरी तब गिरी की स्थिति मे है और किसी एक चीज से अटकी हुई रहती है, उसको गिरा देने मे ही मानो उसकी सम्पूर्णता निहित है और उससे दर्शक के मन को भी संतोष मिलता है। कैलाश बाबू की असत्य बातें जितनी ही सरस थी उनकी भित्ति उतनी ही दुर्बल थी, वे सत्य की बन्दूक के निशाने के ठीक सामने इस प्रकार छाती फुला-कर नाचने लगती कि उनको तुरन्त नष्ट कर डालने के लिए मन मे इच्छा उत्पन्न हो जाती--मैं केवल अत्यधिक आलस्य और सर्वजन-सम्मत प्रथा का अनुसरण करने के कारण ही इस कार्य मे हस्तक्षेप न करता।

: २ :

अतीत के अपने मनोभावो का विश्लेषण करने पर जो कुछ याद आता है उससे लगता है कि कैलाशबाबू के प्रति मेरे आन्तरिक द्वेष का और एक गूढ कारण था। उसको कुछ विस्तार से कहना आवश्यक है।

बड़े आदमी का पुत्र होने पर भी मैंने उचित अवस्था मे एम० ए० पास किया है, यौवनावस्था मे भी किसी प्रकार की कुसंगति और कुत्सित आमोद मे योग नही दिया, और अभिभावको की मृत्यु के बाद स्वयं मालिक होने पर भी मेरे स्वभाव मे किसी प्रकार की विकृति नही आई है। तिस पर शक्ल-सूरत ऐसी कि यदि मैं उसे अपने मुँह से सुन्दर कहूँ तो अहकार हो सकता है, किन्तु झूठी प्रशंसा नही होगी।

इसलिए बंगाल मे घटको के बाज़ार मे मेरी कीमत बहुत ज्यादा है। इसमे ज़रा भी सन्देह नही। इस बाजार मे मैं अपनी पूरी क़ीमत वसूल करके रहूँगा, मैंने यह दृढ प्रतिज्ञा की थी। धनी पिता की परम रूपवती विदुषी एक-मात्र कन्या आदर्श रूप से मेरी कल्पना मे विराज रही थी।

दस हजार, बीस हजार रुपये दहेज का प्रस्ताव लेकर देश-विदेश से मेरे विवाह-सम्बन्ध आने लगे। मैं अविचलित चित्त से तराजू पर रखकर उनकी योग्यता को तोलकर देख लेता था, मुझे कोई भी अपने बराबर योग्य प्रतीत नही हुई।

अन्त में भवभूति की उक्ति के समान मेरी धारणा वन गई कि—

हो सकता है, कभी कोई मेरे समान उत्पन्न हो

समय असीम है, वसुधा विपुल है।

किन्तु वर्तमान काल मे और क्षुद्र वंगदेश मे वह असंभव दुर्लभ पदार्थ उत्पन्न हुआ है या नहीं, इसमे सन्देह है।

कन्या-भार से ग्रस्त लोग प्रायः नाना प्रकार से मेरी स्तव-स्तुति करते हुए विविधोपचारो से मेरी पूजा करने लगे। कन्या चाहे पसन्द हो या न हो, यह पूजा मुझे वुरी नही लगती थी। वढ़िया लड़का मानकर कन्याओ के पिताओं द्वारा अपनी इस पूजा को मैं अपना उचित प्राप्य समझता था। शास्त्रो मे लिखा है कि देवता चाहे वर दे, या न दे, यथाविधि पूजा न मिलने पर वड़े क्रुद्ध हो जाते हैं। नियमित रूप से पूजा पाते हुए मेरे मन मे भी वैसा ही अत्युच्च देव-भाव पैदा हो गया था।

पहले ही कह चुका हूँ, दादाजी की एक पौत्री थी। उसको अनेक वार देखा था, किन्तु कभी भी रूपवती समझने का भ्रम नही हुआ। अतएव उससे विवाह की कल्पना भी मेरे मन मे नही उठी। किन्तु यह अच्छी तरह सोच रखा था कि कैलाश वावू किसी आदमी की मार्फत स्वयं पौत्री के अर्घ्य चढाने की मंशा से मेरी पूजा-वदना करने आयँगे, क्योकि मैं अच्छा लडका था। किन्तु उन्होने ऐसा नही किया।

मैंने सुना, मेरी किसी मित्र से उन्होने कहा था कि नयनजोड़ के वावू कभी किसी विषय मे आगे वढ़कर किसी से प्रार्थना नही करते — कन्या चाहे चिरकुमारी रह जाय, तो भी वे उस कुल-प्रथा को भंग नही कर पायँगे।

सुनकर मुझे वडा क्रोध आया। वह क्रोध वहुत दिनों तक मेरे मन मे वना रहा—केवल भला लड़का होने के कारण चुपचाप रह गया।

जिस प्रकार वज्र के साथ विजली रहती है, उसी तरह मेरे स्वभाव मे क्रोध के साथ कौतुकप्रियता जुडी हुई थी। वृद्ध को केवल पीडा पहुँचाना मुझसे सभव न होता—किन्तु एक दिन सहसा मन मे एक ऐसी कौतुकपूर्ण योजना आई कि उसे कार्यान्वित करने का लोभ सवरण नही कर सका।

पहले ही कह चुका हूँ कि वृद्ध को सतुष्ट करने के लिए अनेक व्यक्ति तरह-तरह की मिथ्या वातो की सृष्टि करते थे। मुहल्ले के एक पेंशनभोगी डिप्टी मजिस्ट्रेट प्रायः कहते—"दादा, छोटे लाट के साथ जव भी भेंट होती है वे नयनजोड़ के वावुओ का समाचार पूछे विना नही रहते। साहव कहते हैं कि वंगाल मे वर्दवान के राजा और नयनजोड़ के वावू—यथार्थ मे केवल यही दो

पुराने और सुप्रतिष्ठित वंश है।" दादा बहुत खुश होते और भूतपूर्व डिप्टी बाबू से भेंट होते ही अन्यान्य कुशल समाचारों के साथ पूछते, "छोटे लाटसाहब अच्छे है! उनकी मेम साहब अच्छी है? उनके लडके-लड़कियाँ सब अच्छी तरह है?" यह भी इच्छा प्रकट करते कि वे शीघ्र ही एक दिन साहब से मिलने जायँगे। किन्तु भूतपूर्व डिप्टी को निश्चित पता था कि नयनजोड की विख्यात चार घोडे वाली बग्घी के तैयार होकर दरवाजे पर पहुँचते-पहुँचते अनेक छोटे और बड़े लाट बदल जायँगे।

एक दिन प्रात.काल मैंने जाकर कैलाश बाबू को अलग बुलाकर धीरे से कहा, "दादा, कल लेफ्टिनेट गवर्नर के स्वागत-समारोह मे गया था, उनके नयनजोड़ के बाबुओ की बात छेडने पर मैंने कहा कि नयनजोड के कैलाश बाबू तो कलकत्ता में ही हैं, यह सुनकर छोटे लाट इतने दिन तक मिलने न आ सकने के कारण बड़े दुखी हुए—कहा कि आज दोपहर को वे छिपकर तुमसे मिलने आयँगे।"

और कोई होता तो बात की असभवता समझ जाता एवं और किसी के सम्बन्ध मे कही जाने पर कैलाश बाबू भी उस बात पर हँसते, किन्तु अपने से सम्बन्धित होने के कारण इस बात पर उनको लेश-मात्र भी अविश्वास नही हुआ। सुनकर जितने प्रसन्न हुए उतने ही अधीर हो उठे – कहाँ बैठाना होगा, क्या करना होगा, किस प्रकार अभ्यर्थना करनी होगी, किस प्रकार नयनजोड का गौरव बचेगा— वे कुछ भी नही समझ पा रहे थे। उसके अतिरिक्त वे अग्रेज़ी नही जानते, बात कैसे करेगे, यह भी तो एक समस्या थी।

मैंने कहा, "इसके लिए चिन्ता न करे, उनके साथ एक दुभाषिया रहता है; किन्तु छोटे लाट साहब की यह खास इच्छा है कि और कोई उपस्थित न रहे।"

मध्याह्न मे जब मुहल्ले के अधिकाश लोग आफिस चले गए एव शेष लोग द्वार बन्द करके निद्रामग्न थे तभी एक बग्घी कैलाश बाबू के घर के सामने आकर रुकी।

बिल्ला लगाए चपरासी ने उनको खबर दी, "छोटा लाट साहब आया।" दादाजी पुराने जमाने मे प्रचलित सफेद पाजामा और पगडी बाँधे हुए तैयार थे, अपने पुराने नौकर गणेश को भी उन्होने अपनी धोती, चादर, कुरता पहनाकर ठीक-ठाक करके रखा था। छोटे लाट के आगमन का समाचार सुनते ही हाँफते-हाँफते काँपते हुए दौड़कर द्वार पर जा उपस्थित हुए—और कमर झुकाकर बारबार सलाम करते हुए अंग्रेज वेशधारी मेरे एक प्रिय समवयस्क को अन्दर ले गए।

वहाँ चौकी पर उनका एक-मात्र बहुमूल्य शाल बिछा हुआ था, उसीके ऊपर

कृत्रिम छोटे लाट को बैठाकर उन्होने उर्दू भाषा मे एक अति विनीत लम्बी वक्तृता का पाठ किया और नज़र के रूप मे सोने की रकावी मे रखकर बड़े कष्ट से रक्षित अपनी कुल क्रम-आगत अशर्फियो की एक माला रखी। पुराना सेवक गणेश गुलाव-जल का पात्र और इत्रदान लिये उपस्थित था।

कैलाश वावू वारवार क्षोभ प्रकट करने लगे कि वे अपने नयनजोड़ वाले घर मे हुजूर वहादुर की पद-धूलि पडने पर उनके अतिथि-सत्कार का यथासाध्य यथोचित आयोजन कर सकते थे। कलकत्ता मे वे प्रवासी है—यहाँ वे जलहीन मीन के समान हर काम मे असमर्थ हैं इत्यादि।

मेरे मित्र वडा-सा हैट पहने अत्यन्त गम्भीर भाव से अपना सिर हिलाने लगे। अंग्रेजी कायदे के अनुसार ऐसे स्थलो पर सिर पर टोपी न रखने की प्रथा है, किन्तु मेरे मित्र ने पकड़े जाने के भय से यथासम्भव छिपे रहने के प्रयत्न मे टोपी नही उतारी। कैलाश वावू एव उनके गर्वान्ध प्राचीन भृत्य को छोडकर और सभी क्षण-भर मे बंगाली व्यक्ति के इस छद्मवेश को पहचान लेते।

दस मिनट तक सिर हिलाकर मेरे मित्र उठ खड़े हुए और पूर्व निश्चय के अनुसार चपरासियों ने सोने की रकावी समेत अशर्फियो की माला, चौकी पर से वह शाल एव भृत्य के हाथो से गुलाव जल छिड़कने का पात्र और इत्रदान लेकर उस छद्मवेशी की गाडी मे रख दिया—कैलाश वावू ने सोचा कि यही छोटे लाट की प्रथा होगी। मै पास के एक कमरे मे छिपा देख रहा था और हँसी के आवेग को रोकने के मारे मेरी छाती फटने की नौवत आई थी।

अन्त मे और किसी भी प्रकार रह न सकने पर मे भागकर थोडी ही दूर पर जाकर एक कमरे मे पहुँचा—और वहाँ हँसी का उच्छ्वास उन्मुक्त करते ही सहसा देखा कि एक वालिका चौकी पर उलटी पडी फूट-फूटकर रो रही है।

मुझे अचानक कमरे मे प्रवेश करके हँसते देखकर वह हडवडाकर चौकी छोडकर खडी हो गई और अश्रु-रुद्ध कण्ठ मे रोप की गर्जन भरकर मेरे मुख पर सजल विशाल कृष्णचक्षुओ से सुतीक्ष्ण विद्युत्-वर्षा करती हुई वोली, "मेरे दादा जी ने तुम लोगो का क्या विगाडा है, क्यो तुम लोग उनको ठगने आए हो, क्यो आए हो तुम लोग ?"—वस आगे और कोई वात नही निकली—उसका गला भर आया, साडी से मुँह ढककर रो उठी।

मेरी हँसी का आवेग कहाँ चला गया ? मैने जो काम किया था उसमे मजाक के अलावा और कुछ था, अभी तक मेरे दिमाग मे भी नही आया था—अचानक देखा, मैंने अत्यन्त कोमल स्थान पर अत्यन्त कठोर आघात किया है; सहसा मेरे द्वारा किये काम की वीभत्स निष्ठुरता मेरे सामने देदीप्यमान हो उठी—लज्जा

एवं अनुताप से लात खाए हुए कुत्ते के समान कमरे से चुपचाप वाहर निकल आया। वृद्ध ने मेरे प्रति क्या अपराध किया था? उनके निरीह अहंकार ने तो कभी किसी प्राणी को कष्ट नही पहुँचाया। मेरे अहंकार ने क्यो इस तरह हिंसा की मूर्ति धारण कर ली?

इसके अतिरिक्त और एक सम्वन्ध मे आज सहसा मेरी आँखें खुल गईं। इतने दिन तक मैं कुसुम को किसी अविवाहित पात्र की प्रसन्न दृष्टिपात की प्रतीक्षा मे संरक्षित रखे हुए विकने वाले पदार्थ के समान देखता था—सोचता था, मैंने इसे पसंद नही किया इसीलिए वह पड़ी हुई है। दैव योग से जिसको पसद आयगी वह उसीकी होगी। आज देखा, इस घर के कोने मे पड़ी उस वालिका-मूर्ति के अंतराल में एक मानव-हृदय है। अपने निजी सुख-दुःख, अनुराग-विराग को लिये उसका अपना अन्त.करण एक ओर अज्ञेय अतीत और दूसरी ओर अकल्पनीय भविष्य नामक दो अनन्त रहस्य-राज्यो की ओर पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ है। जिस व्यक्ति के पास हृदय है वह क्या केवल दहेज के रुपयो और आँख-नाक की लम्वाई-चौड़ाई नापकर पसद कर लेने योग्य है।

सारी रात नीद नही आई। दूसरे दिन तड़के ही मैं वृद्ध के समस्त अपहृत वहुमूल्य द्रव्यो को लेकर चोर की भाँति चुपके से दादाजी के घर पहुँचा—इच्छा थी, किसी से कुछ भी न कहकर चुपके से सव-कुछ नौकर के हाथो दे आऊँगा।

नौकर को न देख पाने के कारण इधर-उधर कर रहा था कि इसी वीच पास के कमरे मे वृद्ध के साथ वालिका की वातचीत सुनाई पडी। वालिका मीठे स्नेह-पूर्ण स्वर मे पूछ रही थी, "दादाजी, कल लाट साहव ने तुमसे क्या कहा?" पितामह अत्यंत हर्षित चित्त हो लाट साहव के शव्दो मे प्राचीन नयनजोड़ के वंश का विस्तृत काल्पनिक गुणानुवाद विठा रहे थे। वालिका उसे सुनकर वडा उत्साह प्रकट कर रही थी।

वृद्ध अभिभावक के प्रति मातृ-हृदय से पूर्ण इस छोटी वालिका की सकरुण छलना से मेरे दोनो नेत्रो मे अश्रु छलछला आए। मैं वहुत देर तक चुपचाप वैठा रहा— अंत मे पितामह के अपनी कहानी समाप्त करके चले जाने पर मैं प्रतारणा द्वारा अपहृत उस माल को लेकर वालिका के पास उपस्थित हुआ और चुपचाप उसके सामने रखकर चला आया।

आजकल की प्रथा के अनुसार और रोज तो वृद्ध को देखने पर किसी प्रकार का अभिवादन नही करता था—आज उनको प्रणाम किया। वृद्ध ने अवश्य ही अपने मन मे सोचा होगा, कि पिछले दिन उनके यहाँ छोटे लाट के आगमन से ही सहज उनके प्रति मेरी भक्ति का उद्रेक हुआ है। वे अत्यंत पुलकित हो शतमुख से

क्षुधित पाषाण

: १ :

मैं और मेरे सम्बन्धी पूजा की छुट्टी मे देश-भ्रमण समाप्त करके कलकत्ता लौट रहे थे, तभी रेलगाडी मे उन बावू से भेंट हुई। उनकी वेशभूपा देखकर शुरू मे उन्हे पश्चिमी प्रान्त का मुसलमान समझने का भ्रम हुआ था। उनकी वातचीत सुनकर और भी चक्कर मे पड गया। वे दुनिया-भर के विपयों पर इस प्रकार वातें करने लगे मानो विधाता उनके साथ परामर्श करने के वाद ही सारा काम-काज करते है। ससार मे भीतर-ही-भीतर भाँति-भाँति की जो नाना अश्रुत-पूर्व गूढ घटनाएँ घटित हो रही थी —रूसी कितने आगे वढ गए हैं, अंग्रेजों का क्या-क्या गुप्त अभिप्राय है, देशी राजाओ मे कैसी खिचडी पक रही है, इन सवसे वेखवर हम पूर्णत: निश्चिंत थे। हमारे नवपरिचित वक्ता ने कुछ हँसकर कहा : There happen more things in heaven and earth, Horatio, than are reported in your newspapers. (होरेशियो, स्वर्ग और पृथ्वी पर तुम्हारे समाचार-पत्रो मे छपने वाली वातों की अपेक्षा कही अधिक घटनाएँ घटती है।) हम पहली ही वार घर से वाहर निकले थे अतएव इस व्यक्ति का रंग-ढंग देखकर अवाक् हो गए। वह जरा-जरा-सी वात पर कभी विज्ञान की चर्चा करता, वेद की व्याख्या करता और कभी अचानक फारसी के वैतों की आवृत्ति करता, विज्ञान, वेद और फारसी भापा पर पर हमारा कोई अधिकार न होने के कारण उनके प्रति हमारी हमारी भक्ति क्रमश: वढने लगी। यही नही मेरे थियोसोफिस्ट सम्वन्धी के मन मे इसका दृढ विश्वास हो गया कि अपने इस सहयात्री से किसी अलौकिक कार्य का कुछ-न-कुछ सम्वन्ध है, कोई अद्‌भुत मैगनेटिज्म या कोई दैव-शक्ति, अथवा सूक्ष्म शरीर, या ऐसी ही कोई एक चीज। वे इस असामान्य व्यक्ति की साधारण-से-साधारण वात भी भक्ति-विह्वल होकर मुग्ध भाव से सुन रहे थे और चुपचाप नोट भी करते जा रहे थे, मुझे उनके भाव से लगा कि वे

असामान्य व्यक्ति भी मन-ही-मन यह समझ गए थे और कुछ खुश भी हुए थे।

जब गाडी जंकशन पर पहुँचकर रुकी, तो हम दूसरी गाडी की प्रतीक्षा मे वेटिंग रूम मे इकट्ठे हुए। उस समय रात के साढ़े दस बजे थे। सुनने मे आया कि रास्ते मे कुछ बाधा आ जाने के कारण गाड़ी बहुत देर से आयगी। इस बीच मैंने टेबिल के ऊपर बिछौना फैलाकर सोने का निश्चय किया, तभी उन असामान्य व्यक्ति ने निम्नलिखित कहानी छेड़ दी। उस रात मुझे फिर नीद नही आई।

राज्य-सचालन के सिलसिले मे दो-एक-बातो मे मतभेद होने के कारण मैं जूनागढ की नौकरी छोडकर जब हैदराबाद के निजाम की सरकारी नौकरी मे आया तब शुरू मे मुझे उम्र मे छोटा और मजबूत आदमी देखकर बरीच मे रुई का महसूल वसूल करने पर नियुक्त किया गया।

बरीच बडी रमणीय जगह थी। निर्जन पहाड़ के नीचे बड़े-बड़े वनों के भीतर से होकर शुस्ता नदी (सस्कृत स्वच्छतोया का अपभ्रंश) उपलमुखरित पथ मे निपुणा नर्तकी के समान पग-पग पर लहराती बल खाती द्रुत गति से नाचती चली गई थी। ठीक उसी नदी के किनारे पत्थर के बने डेढ़ सौ सीढियो के अत्युच्च घाट पर सफेद पत्थर का एक एकाकी प्रासाद पर्वत की तराई मे खड़ा था—आस-पास कही कोई बस्ती न थी। बरीच की रुई की हाट एव ग्राम यहाँ से दूर थे।

प्राय ढाई सौ वर्ष पूर्व द्वितीय शाह महमूद ने भोग-विलास के लिए इस निर्जन स्थान मे प्रासाद का निर्माण कराया था। उस समय स्नानागार के फव्वारे के मुख से गुलाब-सुगंधित जल-धारा छूटती रहती और उस सीकर-शीतल निभृत कक्ष मे सगमरमर-जटित स्निग्ध शिलासन पर बैठकर अपने कोमल नग्न पदपल्लवो को जलाशय की निर्मल जलराशि मे फैलाए फारस देश की तरुण रमणियाँ स्नान के पूर्व केश बिखेरे सितार गोद मे लिए द्राक्षावन की गजले गाती रहती।

अब वह फव्वारा क्रीडा नही करता था, न वह गीत था। सफेद पत्थर पर शुभ्र चरणो का सुन्दर आघात नही पड़ता था—अब तो वह हम जैसे निर्जनता-पीड़ित सगिनीहीन महसूल-कलैक्टर का अति वृहत् एव अति शून्य निवास-स्थान था। किन्तु दफ्तर के वृद्ध क्लर्क करीमखाँ ने मुझे इस प्रासाद मे रहने को बारम्बार मना किया था। कहा था, इच्छा हो तो दिन मे रहे, पर यहाँ रात्रि न बिताये। मैंने उसकी बात हँसी मे उडा दी। नौकरो ने कहा कि वे संध्या-पर्यंत काम करेगे, किन्तु रात मे यहाँ न रहेगे। मैंने कहा, तथास्तु। इस घर की ऐसी बदनामी थी कि रात के समय चोर भी यहाँ आने का साहस नही करते थे।

पहले-पहल आने पर इस परित्यक्त पाषाण-प्रासाद की जन-शून्यता मेरे हृदय को मानो किसी भयकर भार के समान दबाए रहती। मैं यथाशक्ति बाह

रहकर निरन्तर काम-काज करने के बाद रात को क्लान्त देह से घर लौटकर सो जाता।

पर अभी एक सप्ताह भी नही बीता था कि इस मकान का एक अपूर्व नशा क्रमश: आक्रमण करके मुझे घेरने लगा। अपनी उस अवस्था का वर्णन करना भी कठिन है और लोगो को उसका विश्वास दिलाना भी मुश्किल है। सारा घर मानो एक सजीव पदार्थ की भाँति मुझे अपने जठरस्थ मोह रस से धीरे-धीरे जीर्ण करने लगा।

शायद इस घर मे पदार्पण करते ही इस प्रक्रिया का आरम्भ हो गया था, किन्तु मैंने जिस दिन सचेत होकर पहली बार इसके सूत्रपात का अनुभव किया, उस दिन की बात मुझे अच्छी तरह याद है।

ग्रीष्म-काल के आरम्भ मे उस समय बाजार नरम था; हाथ मे कोई काम नही था। सूर्यास्त के कुछ पहले मैं नदी-किनारे घाट की सबसे नीची सीढी पर एक आरामकुरसी लिये बैठा था। शुस्ता नदी क्षीण हो गई थी; दूसरे किनारे पर विस्तृत बालुका-तट अपराह्न की आभा से रगीन हो उठा था; इस पार घाट की सीढियो के नीचे उथले स्वच्छ जल मे बटियाँ झिलमिला रही थी। उस दिन कही भी हवा नही थी। समीप के पर्वत पर वनतुलसी, पोदीना, और सौंफ के जंगल से उडती तीखी सुगन्ध ने शात आकाश को आक्रान्त कर रखा था।

सूर्य जब गिरि-शिखर के अन्तराल मे अवतीर्ण हो गए तभी दिन की नाट्यशाला पर एक दीर्घ छाया-यवनिका पड गई; पर्वत का व्यवधान होने के कारण यहाँ सूर्यास्त के समय प्रकाश और अन्धकार का सम्मिलन बहुत देर स्थायी नही रहता। घोडे पर बैठकर जरा घूम-फिर आऊँ यह सोचकर अब उठूँ, तब उठूँ कर रहा था कि सीढ़ी पर पैरो की आहट सुनाई पडी। पीछे फिरकर देखा, कोई नही था।

इन्द्रिय-भ्रम समझकर लौटकर दुबारा बैठते ही एकाएक बहुत-से पैरो का शब्द सुनाई पडा—जैसे बहुत-से लोग मिलकर भाग-दौड़ करते हुए उतरते आ रहे हो। किंचित् भय के साथ एक अपरूप रोमाञ्च से मेरा सर्वांग परिपूर्ण हो गया। यद्यपि मेरे सामने कोई मूर्ति नही थी तथापि प्रत्यक्ष के समान स्पष्ट जान पडा कि ग्रीष्म की उस सध्या मे प्रमोद-चचल नारियो का एक दल शुस्ता के जल मे स्नान करने उतरा है। यद्यपि उस संध्या-काल मे निस्तब्ध गिरि-तट पर नदी के किनारे निर्जन प्रासाद मे कही कोई शब्द नही था तथापि मैंने मानो स्पष्ट सुना कि निर्झर की शतधाराओ के समान क्रीडामग्न कलहास्य करती हुई मिलकर तेजी से दौड़ती हुई स्नानार्थिनियाँ मेरे पास से निकल गई हो। मुझे मानो उन्होने देखा भी न हो। जिस प्रकार वे मेरे निकट अदृश्य थी, मै भी मानो उसी प्रकार उनके निकट अदृश्य

था। नदी पहले की ही भाँति स्थिर थी, किन्तु मुझे स्पष्ट वोध हुआ मानो स्वच्छ-तोया का उथला स्रोत अनेक वलयसिंचित बाहु-विक्षेपों से विक्षुब्ध हो उठा हो, हँस हँसकर सखियाँ एक-दूसरे पर जल के छींटे मार रही हो एवं तैरती हुई रमणियो के पदाघात से जलविन्दु-राशि मुट्ठी-भर मोतियो की भाँति आकाश मे विखरी पड रही हो।

मेरे वक्ष मे एक प्रकार का कंपन होने लगा; वह उत्तेजना भय की, या आनंद की, या कौतूहल की थी, ठीक नही कह सकता। वडी इच्छा होने लगी कि अच्छी तरह से देखूँ, किन्तु देखने के लिए सामने कुछ नही था; लगता था, अच्छी तरह कान लगाने से उनकी सारी वातचीत स्पष्ट सुनाई पड़ेगी—किन्तु एकाग्र मन से कान लगाने पर केवल अरण्य के झींगुरों का शब्द सुनाई देता। मुझे लगा, मानो ढाई सौ वर्षों की कृष्ण वर्ण यवनिका ठीक मेरे सामने झूल रही हो, डरते-डरते एक सिरा उठाकर भीतर नजर डालूँ—वहाँ एक विराट सभा लगी है, किन्तु गाढ अंधकार में कुछ भी दिखाई नही दिया।

अचानक उमस को चीरती हुई हू-हू करके हवा चलने लगी—देखते-देखते शुस्ता का स्थिर जलतल अप्सरा के केश-पास की भाँति कुञ्चित हो उठा, एव संध्याछायाच्छन्न समस्त वनभूमि क्षण-भर मे एक साथ मर्मर ध्वनि करके मानो दु:स्वप्न से जाग उठी। चाहे स्वप्न कहो या सत्य कहो, ढाई सौ वर्ष के अतीत क्षेत्र से प्रतिफलित होकर मेरे सामने जो एक अदृश्य मरीचिका अवतीर्ण हुई थी वह पल-भर मे अन्तर्धान हो गई। जो मायामयी मुझे फलाँगती हुई देह-हीन द्रुत-पदों से शब्द-हीन उच्चकलहास्य से दौडकर शुस्ता के जल मे जाकर कूद पडी थी, अपने सिक्त अचलों से बूँदे टपकाती-टपकाती फिर मेरी वगल से होकर नही निकली। जिस प्रकार वायु गन्ध को उडाकर ले जाती है, उसी प्रकार वे वसन्त के एक निश्वास में उडकर चली गई।

उस समय मुझे वडी आशंका हुई कि हठात् निर्जन देखकर कही कविता देवी मेरे कंधे पर न आ वैठी हों; मैं वेचारा रुई का महमूल वसूल करके मेहनत करके खाता हूँ, सर्वनाशिनी शायद इस वार मेरे प्राण ही लेने न आई हो। सोचा, अच्छी तरह भोजन करना होगा; खाली पेट होने पर ही सव तरह के दु साध्य रोग आकर घेर लेते है। अपने रसोइये को वुलाकर मैंने खूव घी मे पकाकर मसाला सुगन्धि डालकर वाकायदा मुगलाई खाना तैयार करने का हुक्म दिया।

दूसरे दिन सवेरे यह सारा मामला अत्यन्त हास्यजनक प्रतीत हुआ। प्रसन्न चित्त से साहबों की भाँति सोला हैट पहनकर अपने हाथों से गाड़ी हाँककर गड-गडाहट करता तहकीकात के अपने काम पर चला गया। उस दिन त्रैमासिक

रिपोर्ट लिखने का दिन होने के कारण देर से घर लौटने की बात थी। किन्तु सध्या होते-न-होते ही मैं घर की ओर खिचने लगा। कौन खीचने लगा, यह नही कह सकता, किन्तु लगा, अब और देरी करना उचित न होगा। मुझे लगा, सब बैठे हुए है। रिपोर्ट असमाप्त छोडकर मैं सोला हैट लगाए सध्या-धूसर पेडो की सघन छाया वाले निर्जन पथ को रथचक्र-ध्वनि से चौकाते हुए उस अंधकारपूर्ण शैलान्तवर्ती निस्तव्ध प्रकाण्ड प्रासाद मे जाकर उपस्थित हुआ।

सीढियो के ऊपर वाला सामने का कमरा बहुत बडा था। बड़े-बड़े खम्भो की तीन पक्तियो पर नक्काशीदार मेहराबो ने विस्तीर्ण छत को धारण कर रखा था। वह विशाल कमरा अपनी अपार शून्यता को लिये हुए अहर्निशि ध्वनित होता रहता। उस दिन सध्या के कुछ पहले का समय था, अभी दीपक नही जलाए गए थे। दरवाजा ठेलकर मैंने ज्यो ही उस बडे कमरे मे प्रवेश किया त्यो ही मुझे लगा मानो कमरे मे कोई भारी विप्लव मच गया हो—मानो सहसा सभा भग करके चारो ओर के दरवाजो, खिडकियो, कमरो, रास्तो, बरामदो से होकर न जाने कौन किस ओर भाग गया। कही भी कुछ न देख पाने के कारण मैं अवाक् होकर खडा रह गया। शरीर एक प्रकार के आवेश से रोमाञ्चित हो उठा। मानो बहुत दिन के लुप्तप्राय· केश-द्रव्य और इत्र की मृदुगन्ध मेरी नाक मे प्रवेश करने लगी हो। उस दीपहीन जनहीन प्रकाण्ड कक्ष की प्राचीन प्रस्तरस्तम्भ-श्रेणी के बीच खड़े हुए मुझे सुनाई पडा— झर-झर करता हुआ फव्वारे का जल सफेद पत्थर पर आकर गिर रहा है, सितार मे कौन-सा सुर बज रहा है समझ नही पडता। कही स्वर्णभूषणो की झनकार सुनाई पड रही है, कही नूपुरो की रुनन, कभी ताँबे के बृहत् घटे पर पहर बजाने का शब्द, बहुत दूर पर बजती नौबत का आलाप, वायु से दोलायमान झाड की स्फटिक लटकनो की ठन-ठन ध्वनि, बरामदे से पिंजरे मे बंद बुलबुल का गीत, बगीचे से पालतू सारस का बोल मेरे चारो ओर किसी प्रेम-लोक की रागिनी रचने लगे।

मुझे एक ऐसे मोह ने आ घेरा कि लगा मानो यह अस्पृश्य, अगम्य, अवास्तव व्यापार ही जगत् मे एक मात्र सत्य हो, बाकी सब मिथ्या मरीचिका हो। मै, जो मै हूँ—अर्थात् मैं जो श्रीयुक्त अमुक हूँ, अमुक का ज्येष्ठ पुत्र हूँ, रुई का महसूल वसूल करके साढे चार सौ रुपये वेतन पाता हूँ, मैं जो सोला हैट और ऊँचा कुर्ता पहनकर टमटम हाँककर दफ्तर जाता हूँ, ये सारी बाते मुझे ऐसी अद्भुत हास्यकर निर्मूल और मिथ्या-सी लगी कि मैं उस विशाल निस्तव्ध अँधेरे कमरे के बीच खडा हा-हा करके हँस उठा।

उसी समय मेरे मुसलमान नौकर ने हाथ मे केरोसीन का जलता हुआ लैम्प

लिये घर मे प्रवेश किया। मालूम नही, उसने मुझे पागल समझा या नही, किन्तु उसी क्षण मुझे याद आई कि मैं स्वर्गीय अमुकचन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुक्त अमुकनाथ ही हूँ; यह भी सोचा कि जगत् के भीतर अथवा वाहर कही कोई अमूर्त्त फव्वारा सर्वदा झरता है या नही और अदृश्य अँगुली के आघात से किसी माया-सितार से कोई अनन्त रागिनी ध्वनित होती है या नही यह हमारे महाकवि और कविवर ही वता सकते है, किन्तु यह वात अवश्य सत्य है कि मैं वरीच के वाजार मे रूई का महसूल वसूल करके महीने मे साढे चार सौ रुपया वेतन लेता हूँ। तभी मै फिर अपने थोडी देर पहले के अद्भुत मोह की याद करके केरोसीन से प्रकाशित कैम्प-टेविल के पास समाचार-पत्र लिये विनोद से हँसने लगा।

समाचार-पत्र पढकर और मुगलाई खाना खाकर मैं कोने के एक छोटे-से कमरे मे वत्ती वुझाकर विस्तर पर जा लेटा। मेरे सामने वाले खुले जगले मे से अँधेरे वन-वेष्टित अरावली पर्वत के ऊर्ध्व देश का एक अत्युज्ज्वल नक्षत्र सहस्र कोटि योजन दूर आकाश से उस अति तुच्छ कैम्प—खाट के ऊपर श्रीयुक्त महसूल-कलेक्टर को एकटक देख रहा था—इस पर विस्मय और कौतुक अनुभव करते-करते मै कव सो गया, कह नही सकता। कितनी देर सोया, यह भी नही जानता। सहसा एक वार सिहरकर जग पडा, कमरे मे कोई आहट हुई हो, सो नही, किसी आदमी ने प्रवेश किया हो, यह भी नही देख सका। अंधकारपूर्ण पर्वत के ऊपर से निर्निमेष नक्षत्र अस्तमित हो गया था और कृष्णपक्ष के क्षीण चन्द्रालोक ने अन-धिकार सकुचित स्वभाव से मेरी खिडकी की राह प्रवेश कर लिया था।

कोई भी व्यक्ति दिखाई नही पडा। तो भी मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ, मानो कोई मुझे धीरे-धीरे ठेल रहा हो। मेरे जाग उठते ही उसने विना कुछ कहे मानो केवल अपनी अँगूठी-खचित पाँच उँगलियो के इशारे से मुझे अत्यन्त सावधानी से अपना अनुसरण करने का आदेश किया।

मैं विलकुल चुपके से उठा। यद्यपि उस शतकक्ष प्रकोष्ठमय, अपार शून्यता-पूर्ण, निद्रित ध्वनि एव सजग प्रतिध्वनिपूर्ण विशाल प्रासाद मे मेरे अतिरिक्त और कोई भी प्राणी न था, तथापि पग-पग पर भय लगता कि कही कोई जाग न पड़े। प्रासाद के अधिकाश कक्ष वद रहते थे और उन कमरों मे मैं कभी नही गया था।

उस रात मैं विना आहट किये पैर रखता हुआ साँस रोके उस अदृश्य आह्वान-कारिणी का अनुसरण करता किधर से होकर कहाँ जा रहा था, आज यह नही वता सकता। मैंने कितना सँकरा अँधेरा रास्ता, कितना लम्वा वरामदा, कितना गम्भीर निस्तव्ध विशाल सभागृह, कितनी रुद्धवायु सँकरी छिपी कोठरियाँ पार की, इसका कोई ठिकाना नही।

अपनी अदृश्य दूती को यद्यपि मैं आँखो से देख नही पा रहा था तथापि उसकी मूर्ति मेरे मन से अगोचर नही थी। अरव रमणी जिसकी झूलती आस्तीनों से संगमरमर के-से कठिन, सुडौल हाथ दिख रहे थे, टोपी से लेकर मुँह तक एक झीने कपड़े का पर्दा पड़ा था, कमरवद मे एक टेढ़ी छुरी बँधी थी।

मुझे लगा, आज आरव्य उपन्यास की एकाधिक सहस्र रजनियो मे से एक रजनी उपन्यास-लोक से उडकर आ गई है। मैंने मानो अधकारपूर्ण अर्धरात्रि मे निद्रामग्न वगदाद के आलोक-हीन सँकरे रास्ते में कोई संकट-संकुल अभिसार-यात्रा की हो।

अत मे मेरी दूती सहसा एक घने नीले परदे के सामने चौककर खड़ी हो गई और मानो अँगुली से नीचे की ओर संकेत किया। नीचे कुछ भी नही था, किन्तु भय से मेरे हृदय का रक्त जम गया। मैंने अनुभव किया, उस परदे के सामने जमीन पर कीमखाव की पोशाक पहने एक भीषण हब्शी खोजा गोद मे नंगी तलवार लिये दोनो पैर फैलाकर बैठा ऊँघ रहा था। दूती ने धीमी गति से उसके पैर लाँघकर परदे का एक कोना पकड़कर उठाया।

भीतर से कमरे का थोडा-सा भाग दिखाई पडा, जिस पर फारसी गलीचा बिछा हुआ था। तख्त के ऊपर कौन बैठा था यह नही दिखाई पडा—केवल जाफरानी रग के ढीले पाजामे के नीचे जरी की जूतियाँ पहने गुलावी मखमल के आसन पर अलस भाव से रखे हुए दो सुन्दर चरण दिखाई दिये। मेज पर एक ओर एक नीलाभ स्फटिक पात्र मे कुछ सेव, नाशपाती, नारगी और वहुत-से अगूरो के गुच्छे सजे हुए थे ओर उसकी वगल मे दो छोटे प्याले और स्वर्णाभ मदिरा का एक काँच-पात्र अतिथि के लिए प्रतीक्षा कर रहा था। कमरे के भीतर से किसी अपूर्व धूप के मादक-से सुगन्धित धूम्र ने आकर मुझे विह्वल कर डाला।

मैं ज्यो ही काँपते हृदय से उस खोजे के फैले हुए पैरों को लाँघने चला त्यो ही वह चौक उठा, उसकी गोद से तलवार पत्थर के फर्श पर आवाज करती हुई गिर पड़ी।

सहसा एक विकट चीत्कार सुनकर चौककर देखा, मै अपनी उसी कैम्प-खाट पर पसीने मे तर बैठा हुआ था—भोर के आलोक मे कृष्णपक्ष का खण्डित चन्द्र जागरण से क्लान्त रोगी के समान पाण्डुवर्ण हो गया था—एवं अपना पागल मेहरअली अपने प्रतिदिन के नियमानुसार प्रात.काल जनशून्य रास्ते मे हट जाओ, हट जाओ, चिल्लाता जा रहा था।

इस प्रकार आरव्य उपन्यास की मेरी एक रात अकस्मात् समाप्त हो गई—किन्तु अभी तो एक नजर रातें वाकी थीं।

मेरे दिन से रात का एक भारी विरोध ठन गया। दिन के समय मै श्रान्त-

क्लान्त-देह से काम करने जाता और शून्य स्वप्नमयी मायाविनी रात को कोसता रहता—और फिर सन्ध्या के वाद मुझे दिन के समय का अपना यह कर्मवद्ध अस्तित्व अत्यन्त तुच्छ, मिथ्या एवं हास्यकार लगने लगता।

संध्या के पश्चात् मै विह्वलभाव से एक नशे के जाल मे जकड जाता। मैं सैकडो वर्ष पहले के किसी अलिखित इतिहास का कोई अन्य अपूर्व व्यक्ति हो जाता, फिर उस समय मुझे विलायती ऊँचा कुर्ता एव चुस्त पतलून नही फवती। उस समय मैं सिर पर लाल मखमल की एक फैज़ लगाकर, ढीला पाजामा, फूलदार कावा और रेशम का लम्बा चोगा पहनकर रंगीन रूमाल मे इत्र लगाकर वड़े यत्न से साज करता एव सिगरेट छोड़कर गुलावजल से भरा वहुकुण्डलायित विशाल हुक्का लेकर एक ऊँची विशेष गद्दी वाले वड़े दीवान पर वैठ जाता। मानो रात मे होने वाले किसी अपूर्व प्रिय सम्मेलन के लिए वड़े आग्रह से तैयार हो जाता।

इसके वाद ज्यो-ज्यों अधकार घनीभूत होता जाता त्यों-त्यो न जाने कैसी अदभुत घटनाएँ घटती रहती कि मैं उनका वर्णन नही कर सकता। ठीक मानो किसी चमत्कारपूर्ण कहानी के कुछ फटे हुए अंश वसन्त की आरम्भिक वायु से इस विशाल प्रासाद के विचित्र कमरो मे उड़ते रहते। थोड़ी दूर तक मिलते, फिर उसके वाद वाकी दिखाई नही देते थे। मैं भी उन मँडराते विच्छिन्न अंशो का अनुसरण करता हुआ रात-भर कमरे-कमरे मे चक्कर काटता रहता।

स्वप्न-खण्ड के इस आवर्त्त मे कभी हिना की सुगन्धि, कभी सितार के शब्द, कभी सुरभि-जल-सीकर-मिश्रित वायु के झोंको के वीच क्षण-क्षण में विद्युत-शिखा के समान एक नायिका अचानक दीख जाती। उसका जाफरानी रंग का पाजामा एवं कोमल विमल लाल चरणो मे पहनी घुण्डीदार उठी हुई जरी की जूतियाँ, वक्ष पर कसकर वँधी जरी की फूलोदार चोली, सिर पर लाल टोपी और उससे झूलती सोने की झालर ने उसके शुभ्र ललाट एव कपोलो को घेर लिया था।

उसने मुझे पागल वना दिया। मैं उसी के अभिसार मे रोज रात को निद्रा के पाताल-लोक मे जटिल पथ-संकुल स्वप्नो की मायापुरी की गली-गली, कमरे-कमरे मे चक्कर काटता रहता था।

किसी-किसी दिन सध्या के समय वड़े आईने के दोनों ओर दो वत्ती जलाकर यत्नपूर्वक शहजादे के समान सजावट कर रहा होता कि तभी अचानक देखता आईने मे मेरे प्रतिविंव के पास क्षण-भर के लिए उसी ईरानी तरुणी की छाया आ पड़ी है—और पलक मारते ही गर्दन झुकाकर अपने गहरे काले विशाल नेत्रो के तारको से सुगंभीर तीव्र आवेगमय, वेदनापूर्ण आग्रहयुक्त कटाक्ष-पात करके, सरस सुन्दर विवाधरो पर एक अस्फुट भाषा का आभास मात्र देकर, लघु

ललित नृत्य द्वारा अपनी यौवन-पुष्पित देह-लता को द्रुत गति से ऊपर की ओर लहराकर मुहूर्त्त-भर मे ही वेदना, वासना, विभ्रम, हास्य, कटाक्ष तथा भूषणों की चमक के स्फुलिंगों की वर्षा करके दर्पण मे ही विलीन हो गई है। गिरि-कानन की समस्त सुगंधि को लूटकर उद्दाम वायु का एक उच्छ्वास आकर मेरी दोनो बत्तियों को बुझा देता। मैं राज-सज्जा छोड़कर प्रसाधन कक्ष के पास वाली शैया मे पुलकित तन से नयन मूँदकर लेटा रहता—मेरे चारों ओर उस वायु मे अरावली के उस पर्वत-कुंज के समस्त मिश्रित सौरभ मे मानो प्रचुर प्रेम, अनेक चुम्बन, अनेक कोमल कर-स्पर्श निभृत अंधकार को भरकर तैरते रहते, कानो के पास प्रचुर कलगुंजन सुनाई देता, मेरे माथे पर सुगन्धित निश्वास आकर टकराते। और कोई मृदु-सौरभ रमणीय सुकोमल ओढनी बारम्बार उड-उड़कर मेरे कपोलों का स्पर्श करती रहती। धीरे-धीरे मानो कोई मोहिनी सर्पिणी अपने मादक वेष्टन मे मेरा सर्वांग कस लेती। मैं गहरी साँस लेकर वेसुध तन से गहरी नीद मे अभिभूत हो जाता।

एक दिन अपराह्न मे मैंने घोड़े पर चढकर बाहर जाने की ठानी, न जाने कौन मुझे निषेध करने लगा—किन्तु उस दिन मैंने निषेध नही माना। काठ की एक खूँटी पर मेरा साहसी हैट और ऊँचा कुर्ता लटक रहा था, उनको उतारकर मैं पहनने ही वाला था कि तभी शुस्ता नदी की बालू एव अरावली पर्वत की सूखी पल्लव-राशि की ध्वजा फहराता एक प्रबल बवंडर अचानक मेरे उस कुरते और टोपी को उड़ाकर घुमाता-घुमाता ले चला एवं एक अत्यन्त सुमिष्ट कलहास्य उस हवा के साथ चक्कर काटता हुआ कौतूहल के एक-एक परदे पर आघात करता हुआ उच्च-से-उच्चतर सप्तक पर चढता सूर्यास्त-लोक के पास पहुँचकर विलीन हो गया।

उस दिन फिर घोड़े की सवारी नही हुई और उसके दूसरे दिन से उस विचित्र ऊँचे कुरते और साहबी टोप का पहनना एकदम छोड दिया।

उसी दिन आधी रात को बिछौने पर उठकर बैठने पर सुनाई पड़ा, मानो कोई भीतर-ही-भीतर फूट-फूटकर रो रही हो—मानो मेरी खाट के नीचे, फर्श के नीचे, इस वृहत् प्रासाद की पाषाणभित्ति के तले किसी आर्द्र अन्धकारपूर्ण कब्र मे से रो-रोकर कह रही हो, 'तुम मेरा उद्धार करके ले चलो—कठिन माया-पाश, गम्भीर निद्रा, निष्फल स्वप्न के सारे दरवाजे चूर-चूरकर तुम मुझे घोड़े पर बिठाकर अपनी छाती से चिपकाकर, वन के बीच से, पहाड़ के ऊपर से, नदी पार करके अपने सूर्यालोकित कमरे मे ले चलो! मेरा उद्धार करो!'

मैं कौन हूँ? मैं कैसे उद्धार करूँगा? मैं इस घूर्णमान परिवर्तनशील स्वप्न-

प्रवाह मे डूबी हुई किस कामना-सुन्दरी को किनारे खीच लाऊँगा ? हे दिव्य-रूपिणी ! तुम कब हुई थी ? कहाँ थी ? तुमने किस शीतल उत्स के किनारे खजूर-कुज की छाया मे किस गृह-हीना मरुवासिनी की गोद मे जन्म ग्रहण किया था ? कौन वेदुईं दस्यु, वनलता से पुष्पकोरक के समान तुम्हे मातृ-क्रोड़ से वियुक्त करके विद्युतगामी अश्व पर विठाकर दग्ध वालुका-राशि के पार किस राजपुरी की दासी-हाट मे वेचने के लिए ले गया था ? वहाँ पर किस वादशाह के भृत्य ने तुम्हारी नवविकसित सलज्जकातर यौवन-शोभा का निरीक्षण करके स्वर्णमुद्राएँ गिनकर समुद्र पार करके तुम्हे सोने की शिविका मे विठाकर प्रभुगृह के अन्त पुर को तुम्हारा उपहार दिया था ? कैसा विचित्र इतिहास था वहाँ का ! वही सारगी का सगीत, नूपुरो की ध्वनि और शीराज की स्वर्णमदिरा के वीच छुरी की झलक, विप की ज्वाला, कटाक्ष का आघात ! कैसा असीम ऐश्वर्य, कैसा अनन्त कारागार ! दोनो ओर दो दासियाँ कगनो के हीरो मे विजली चमकाती हुई चँवर डुलाती थी । शहशाह वादशाह शुभ्र चरणो की मणिमुक्ताजटित पादुकाओ पर लोटता था, वाहर दरवाजे पर यमदूत के समान हब्शी देवदूत की भाँति सजकर हाथ मे नगी तलवार लिये खड़ा रहता । उसके पश्चात् उस रक्त-कलुषित ईर्ष्या-फेनिल षड्यन्त्र-सकुल भीषणोज्ज्वल ऐश्वर्य के प्रवाह मे उतराती हुई तुम मरुभूमि की पुष्प-मजरी किस निष्ठुर मृत्यु मे समा गई अथवा किस निष्ठुरतर महिमा-तट पर जा पडी ?

इसी समय वह पागल मेहरअली अकस्मात् चिल्ला उठा, "हट जाओ, हट जाओ ! सव झूठ है, सव झूठ है ।" आँख खोलकर देखा, सवेरा हो गया था, चपरासी ने डाक की चिट्ठी-पत्री लाकर मेरे हाथ मे दी और रसोइए ने आकर सलाम करके पूछा कि आज किस प्रकार का भोजन तैयार करना होगा ।

मैने कहा, "नही, अब इस घर मे और नही रहा जा सकता ।" उसी दिन अपना सामान उठाकर ऑफिस के मकान मे जा ठहरा । ऑफिस का वूढा क्लर्क करीमखाँ मुझे देखकर कुछ मुस्कराया । मैं उसकी हँसी से खीझकर कोई उत्तर दिये विना काम करने लग गया ।

ज्यो-ज्यो शाम होने लगी त्यो-ही-त्यो मै अन्यमनस्क होने लगा—लगने लगा, वस अभी तुरन्त कही जाना है—रुई के हिसाव की जाँच का काम अत्यत अना-वश्यक प्रतीत होने लगा, निजाम की निजामत भी मुझे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं हुई—जो कुछ वर्तमान था, जो कुछ मेरे चारो ओर चल रहा था, फिर रहा था, कार्यरत था, खा रहा था, सव-कुछ मेरे लिए अत्यन्त दीन, अर्थहीन और तुच्छ प्रतीत होने लगे ।

मैं कलम पटककर बडी बही बन्द करके उसी क्षण टमटम पर चढकर भागा। देखा, टमटम ठीक गोधूलि-वेला मे अपने-आप उस पाषाण-प्रासाद के द्वार के पास पहुँचकर रुक गई। शीघ्रता से सीढियाँ चढकर कमरे मे प्रवेश किया।

आज सब-कुछ निस्तब्ध था। अँधेरे कमरो ने मानो नाराज होकर मुंह फुला लिया था। पश्चाताप से मेरा हृदय उद्वेलित हो उठा; किन्तु किसे बताऊँ, किससे क्षमा चाहूँ, खोज नही पाया। मैं उदास चित्त से अँधेरे मे एक-एक कमरे मे घूमने लगा। इच्छा होने लगी कि हाथ मे कोई साज लेकर किसी को लक्ष्य करके गीत गाऊँ। कहूँ, 'हे वह्नि, जिस पतंगे ने तुमको छोड़कर भागने की चेष्टा की थी, वह फिर मरने के लिए आया है। इस बार उसे क्षमा करो, उसके दोनो पंख जला दो, भस्मसात् कर डालो।' सहसा ऊपर से मस्तक पर आँसू की बूँदें आ पडी। उस दिन अरावली पर्वत की चोटी पर घनघोर मेघ छाए हुए थे। अन्धकारपूर्ण अरण्य और शुस्ता का स्याह वर्ण जल किसी भीषण प्रतीक्षा मे निश्चल हो गए थे। सहसा जल-स्थल आकाश सिहर उठे, एव अकस्मात् विद्युत्दन्त-विकसित आंधी शृंखला-छिन्न उन्माद के समान पथहीन सुदूर वन के भीतर से आर्त चीत्कार करती हुई झपट पडी। प्रासाद के बडे-बड़े शून्य कमरो के सारे द्वार पछाड खाकर तीव्र वेदना से हू-हू करके रोने लगे।

आज सारे नौकर लोग ऑफिस के कमरे मे थे, यहाँ बत्ती जलाने वाला कोई नही था। उस मेघाच्छन्न अमावस्या की रात मे घर के भीतरी निकषकृष्ण अँधेरे मे मैं स्पष्ट अनुभव करने लगा—कोई रमणी पलंग के नीचे गलीचे के ऊपर मुंह के बल पडी कसकर बँधी मुट्ठियो से अपने बिखरे केश-जाल को खीच-खीचकर नोचे डाल रही है, उसके गौर वर्ण ललाट से रक्त फूटकर निकल रहा है, कभी वह शुष्क तीव्र अट्टहासयुक्त हा-हा करके हँस पडती है, कभी फफक-फफककर फूट-फूटकर रोती है, दोनो हाथो से चोली फाड़कर उघडा हुई छाती पीट रही है। खुली खिड़की से वायु गर्जन करती हुई आ रही है, एव मूसलाधार वर्षा ने आकर उसके सारे अगो को अभिषिक्त कर दिया है।

सारी रात न तूफान थमा, न रोना बन्द हुआ। मैं निष्फल परिताप से एक-एक कमरे मे घूमता रहा। कही कोई नही था, किसको सान्त्वना देता, यह प्रचण्ड अभिमान किसका था, यह अशान्त आक्षेप कहाँ से उठ रहा था ?

पागल चीख उठा, "हट जाओ, हट जाओ ! सब झूठ है, सब झूठ है।"

देखा, भोर हो गया था और मेहरअली इस घोर दुर्योग के दिन भी यथानियम प्रासाद की प्रदक्षिणा करके अपने अभ्यास के अनुसार चीख रहा था। अचानक मुझे लगा, शायद वह मेहरअली भी मेरे समान कभी इस महल मे निवास करता

रहा हो, अव पागल होकर वाहर आने पर भी इस पाषाणराक्षस के मोह से आकर्षित होकर प्रतिदिन प्रात.काल प्रदक्षिणा करने आता हो।

मैने तत्क्षण उस वर्षा मे ही दौड़ते हुए पागल के पास जाकर उससे पूछा, "मेहरअली, क्या झूठ है रे ?"

वह मेरी वात का कोई उत्तर दिये विना मुझे धकेलकर अजगर के सामने चक्कर काटते हुए अजगर के ग्रास मोहाविष्ट पक्षी के समान चीखता हुआ प्रासाद के चारो ओर घूमने लगा। प्राणपण से केवल अपने को सतर्क करने के लिए वारंवार कह उठता, "हट जाओ, हट जाओ ! सव झूठ है, सब झूठ है ।"

उस वर्षा और आँधी मे पागल की भाँति ऑफिस मे जाकर करीमखाँ को वुलाकर मैंने कहा, "इसका क्या अर्थ है, मुझे खोलकर वताओ !"

वृद्ध ने जो कहा उसका मर्मार्थ यह है, 'किसी समय उस प्रासाद मे अनेक अतृप्त वासनाएँ, अनेक उन्मत्त संभोगो की शिखाएँ आलोड़ित होती थी— उस सव चित्त-दाह से, उन सव निष्फल कामनाओ के अभिशाप से इस प्रासाद का प्रत्येक प्रस्तर-खड क्षुधार्त्त, तृषार्त्त हो उठा है, जीवित मनुष्य को पाने पर वह उसको लालायित पिशाचिनी के समान खा डालना चाहता है। जिन्होने तीन रात उस प्रासाद मे वास किया है उनमे से केवल मेहरअली पागल होकर वाहर निकला है, आज तक और कोई उसके ग्रास से नही वच सका है।'

मैंने पूछा, "क्या मेरे उद्धार का कोई मार्ग नही है ?"

वृद्ध ने कहा, "केवल एक उपाय है, जो अत्यन्त दुरूह है। वह तुम्हे वताता हूँ—किन्तु इसके पहले उस गुलवाग की एक ईरानी क्रीतदासी का पुराना इतिहास वताना आवश्यक है। वैसी आचर्यजनक और वैसी हृदय-विदारक घटना ससार मे और कभी नही घटी।"

तभी कुलियो ने आकर खवर दी, गाड़ी आ रही है। इतनी जल्दी ? जल्दी-जल्दी विस्तर-सामान वाँधते-वाँधते गाडी आ गई। उस गाडी के फर्स्टक्लास मे सोकर उठे एक अग्रेज सज्जन खिड़की के वाहर मुख निकालकर स्टेशन का नाम पढ़ने की कोशिश कर रहे थे, हमारे सहयात्री मित्र को देखते ही—'हैलो' कहते हुए चीख उठे और अपने डिव्वे मे वैठा लिया। हम सैकिण्ड क्लास मे चढे। वावू कौन थे, पता नही लगा, कहानी भी पूरी नही सुनी जा सकी।

मैंने कहा, "वह आदमी हम लोगो को मूर्ख समझ मज़ाक-मजाक मे वुद्धू वना गया? कहानी शुरू से आखिर तक कल्पित थी।"

इस तर्क के फलस्वरूप अपने थियोसोफिस्ट-सम्वन्धी के साथ मेरा सदा के लिए विच्छेद हो गया है।

अतिथि

: १ :

कांठालिया के जमीदार मतिलाल बाबू नौका से सपरिवार अपने घर जा रहे थे। रास्ते मे दोपहर के समय नदी के किनारे की एक मण्डी के पास नौका बांधकर भोजन बनाने का आयोजन कर ही रहे थे कि इसी बीच एक ब्राह्मण-बालक ने आकर पूछा, "बाबू, तुम लोग कहां जा रहे हो?" प्रश्नकर्ता की आयु पन्द्रह-सोलह से अधिक न होगी।

मतिबाबू ने उत्तर दिया, "कांठालिया।"

ब्राह्मण-बालक ने कहा, "मुझे रास्ते मे नन्दीगांव उतार देंगे क्या?"

बाबू ने स्वीकृति प्रकट करते हुए पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?"

ब्राह्मण-बालक ने कहा, "मेरा नाम तारापद है।"

गौरवपूर्ण बालक देखने में बड़ा सुन्दर था। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों और मुस्कराते हुए ओष्ठाधरो पर सुललित सौकुमार्य झलक रहा था। वस्त्र के नाम पर उसके पास एक मैली धोती थी। उघरी हुई देह मे किसी प्रकार का बाहुल्य न था, मानो किसी शिल्पी ने बड़े यत्न से निर्दोष, सुडौल रूप मे गढा हो। मानो वह पूर्व-जन्म मे तापस-बालक रहा हो और निर्मल तपस्या के प्रभाव से उसकी देह का बहुत-सा अतिरिक्त भाग क्षय होकर एक सम्मार्जित ब्राह्मण्य-श्री परिस्फुट हो उठी हो।

मतिलाल बाबू ने बडे स्नेह से उससे कहा, "बेटा, स्नान कर आओ, भोजनादि यही होगा।"

तारापद बोला, "ठहरिए!" और वह तत्क्षण निस्संकोच भोजन के आयोजन मे सहयोग देने लगा। मतिलाल बाबू का नौकर हिन्दुस्तानी (अबंगाली) था, मछली आदि काटने में वह इतना निपुण नही था; तारापद ने उसका काम स्वयं लेकर थोडे ही समय मे अच्छी तरह से सम्पन्न कर दिया और दो-एक तरकारी भी बड़ी कुशलता से तैयार कर दी। भोजन बनाने का कार्य समाप्त होने पर तारापद

ने नदी मे स्नान करके पोटली खोली और एक सफेद वस्त्र धारण किया; काठ की एक छोटी-सी कघी लेकर सिर के बड़े-बड़े वाल माथे पर से हटाकर गर्दन पर डाल लिये, और स्वच्छ जनेऊ का धागा छाती पर लटकाकर नौका मे मतिवावू के पास जा पहुँचा।

मतिवावू उसे नौका के भीतर ले गए। वहाँ मतिवावू की स्त्री और उनकी नववर्षीय कन्या बैठी थी। मतिवावू की स्त्री अन्नपूर्णा इस सुन्दर वालक को देखकर स्नेह से उच्छ्वसित हो उठी, मन-ही-मन कह उठी, 'अहा! किसका वच्चा है, कहाँ से आया है—इसकी माँ इसे छोडकर किस प्रकार जीती होगी?'

यथासमय मतिवावू और इस लड़के के लिए पास-पास दो आसन डाले गए। लड़का ऐसा भोजन-प्रेमी न था, अन्नपूर्णा ने उसका अल्प आहार देखकर मन मे सोचा कि लजा रहा है, उससे यह-वह खाने का वहुत अनुरोध करने लगी, किन्तु जव वह भोजन से निवृत्त हो गया तो उसने कोई भी अनुरोध न माना। देखा गया, लडका हर काम अपनी इच्छा के अनुसार करता, लेकिन ऐसे सहज भाव से करता कि उसमे किसी भी प्रकार की जिद या हठ का आभास न मिलता। उसके व्यवहार मे लज्जा के लक्षण लेश-मात्र भी दिखाई नही पडे।

सवके भोजनादि के वाद अन्नपूर्णा उसको पास विठाकर प्रश्नो द्वारा उसका इतिहास जानने मे प्रवृत्त हुई। कुछ भी विस्तृत विवरण संग्रह नही हो सका। वस इतनी-सी वात जानी जा सकी कि लड़का सात-आठ वरस की उम्र मे ही स्वेच्छा से घर छोडकर भाग आया है।

अन्नपूर्णा ने प्रश्न किया, "तुम्हारी माँ नही है?"

तारापद ने कहा, "है।"

अन्नपूर्णा ने पूछा, "वे तुम्हे प्यार नही करती?"

इसे अत्यन्त विचित्र प्रश्न समझकर हँसते हुए तारापद ने कहा, ' प्यार क्यो नही करेंगी?"

अन्नपूर्णा ने प्रश्न किया, "तो फिर तुम उन्हे छोड क्यो आए?"

तारापद वोला, "उनके और भी चार लडके और तीन लडकियाँ है।"

वालक के इस विचित्र उत्तर से व्यथित होकर अन्नपूर्णा ने कहा, "मैया री मैया, यह कैसी वात है! पाँच अँगुलियाँ है, तो क्या एक अँगुली त्यागी जा सकती है?"

तारापद की उम्र कम थी, उसका इतिहास भी उसी मात्रा में सक्षिप्त था, किन्तु लडका विलकुल असाधारण था। वह अपने माता-पिता का चौथा पुत्र था, शैशव मे ही पितृहीन हो गया था। वहु-सन्तान वाले घर मे भी तारापद सवको

अत्यन्त प्यारा था। माँ, भाई-बहन और मुहल्ले के सभी लोगो से वह अजस्र स्नेह-लाभ करता। यहाँ तक कि गुरुजी भी उसे नही मारते थे—मारते तो भी बालक के अपने-पराए सभी उससे वेदना का अनुभव करते। ऐसी अवस्था मे उसका घर छोडने का कोई कारण नही था। जो उपेक्षित रोगी लडका हमेशा चोरी करके पेडो से फल और गृहस्थो से उसका चौगुना प्रतिफल पाता घूमता-फिरता वह भी अपनी परिचित ग्राम-सीमा के भीतर अपनी कष्ट देने वाली माँ के ही पास पडा रहा, और समस्त ग्राम का दुलारा यह लड़का एक विदेशी यात्रा-दल मे शामिल होकर निर्ममता से ग्राम छोडकर भाग खड़ा हुआ।

सब लोग उसका पता लगाकर उसे गाँव लौटा लाए। उसकी माँ ने उसे छाती से लगाकर आँसुओ से आर्द्र कर दिया, उसकी बहनें रोने लगी, उसके बडे भाई ने पुरुष-अभिभावक का कठिन कर्तव्य पालन करने के उद्देश्य से उस पर मृदुभाव से शासन करने का यत्न करके अन्त में अनुतप्त चित्त से खूब प्रश्रय और पुरस्कार दिया। मुहल्ले की लडकियो ने उसको घर-घर बुलाकर खूब प्यार किया और नाना प्रलोभनो से उसे वश मे करने की चेष्टा की। किन्तु बन्धन, यही नहीं स्नेह का बन्धन भी उसे सहन नहीं हुआ, उसके जन्म-नक्षत्र ने उसे गृहहीन कर रखा था। वह जब भी देखता कि नदी मे कोई विदेशी नौका अपनी रस्सी घिसटाती जा रही है, गाँव के विशाल पीपल के वृक्ष के तले किसी दूर देश के किसी सन्यासी ने आश्रय लिया है, अथवा बनजारे नदी के किनारे ढालू मैदान मे छोटी छोटी चटाइयाँ बाँधकर खपच्चियाँ छीलकर टोकरियाँ बनाने मे लगे हैं, तब अज्ञात बाह्य पृथ्वी की स्नेहहीन स्वाधीनता के लिए उसका मन बेचैन हो उठता। लगातार दो-तीन बार भागने के बाद उसके कुटुम्बियो और गाँव के लोगो ने उसकी आशा छोड दी।

पहले उसने एक यात्रा-दल का साथ पकडा। जब अधिकारी उसको पुत्र के समान स्नेह करने लगे और जब वह दल के छोटे-बडे सभी का प्रिय पात्र हो गया, यही नही जिस घर मे यात्रा होती उस घर के मालिक, विशेषकर घर का महिला-वर्ग जब विशेष रूप से उसे बुलाकर उसका आदर-मान करने लगा, तब एक दिन किसी से बिना कुछ कहे वह भटककर कहाँ चला गया, इसका फिर कोई पता न चल सका।

तारापद हरिण-शिशु के समान बन्धनभीरु था, और हरिण के ही समान सगीत-प्रेमी भी। यात्रा के संगीत ने ही उसे पहले घर से विरक्त किया था। संगीत का स्वर उसकी समस्त धमनियो मे कम्पन पैदा कर देता और सगीत की ताल पर उसके सर्वांग मे आन्दोलन उपस्थित हो जाता। जब वह बिलकुल बच्चा था

तब भी वह सगीत-सभाओ में जिस प्रकार संयत गम्भीर प्रौढ भाव से आत्म-विस्मृत होकर बैठा-बैठा झूमने लगता, उसे देखकर प्रवीण लोगों के लिए हँसी संवरण करना कठिन हो जाता। केवल संगीत ही क्यो, वृक्षो के घने पत्तो के ऊपर जब श्रावण की वृष्टि-धारा पड़ती, आकाश मे मेघ गर्जते, पवन अरण्य मे मातृहीन दैत्यशिशु की भाँति क्रंदन करता रहता तब उसका चित्त मानो उच्छृ खल हो उठता। निस्तब्ध दोपहरी मे आकाश मे बडी दूर से आती चील की पुकार, वर्षाऋतु की सन्ध्या मे मेढको का कलरव, गहन रात मे शृगालो की चीत्कार-ध्वनि, सभी उसको अधीर कर देते। संगीत के इस मोह से आकृष्ट होकर वह शीघ्र ही एक पाचाली दल[1] मे भर्ती हो गया। मंडली का अध्यक्ष उसे बड़े यत्न से गाना सिखाने और पाचाली कंठस्थ कराने मे प्रवृत्त हुआ, और उसे अपने वक्ष-पिंजर के पक्षी की भाँति प्रिय समझकर स्नेह करने लगा। पक्षी ने थोडा-बहुत गाना सीखा और एक दिन तड़के उड़कर चला गया।

अन्तिम बार वह जिमनास्टिक करने वालो के दल मे शामिल हुआ। जेठ के अंतिम दिनो से लेकर आषाढ के समाप्त होने तक इस अंचल मे जगह-जगह क्रमानुसार समवेतरूप से अनुष्ठित मेले लगते। उनके उपलक्ष्य मे यात्रा वालो के दो-तीन दल पाचाली गायक, कवि, नर्तकियाँ एवं अनेक प्रकार की दुकाने छोटी-छोटी नदियों, उपनदियो के रास्ते नौकाओ द्वारा एक मेले के समाप्त होने पर दूसरे मेले मे घूमती रहती। पिछले वर्ष से कलकत्ता की एक छोटी जिमनास्टिक-मण्डली इस पर्यटनशील मेले के मनोरंजन मे योग दे रही थी। तारापद ने पहले तो नौकारूढ़ दुकानदारों के साथ मिलकर पान की गिलौरियाँ बेचने का भार लिया। बाद मे अपने स्वाभाविक कौतूहल के कारण इस जिमनास्टिक-दल के अद्भुत व्यायाम-नैपुण्य से आकृष्ट होकर उसमे प्रवेश किया। तारापद ने अपने-आप अभ्यास करके अच्छी तरह वंशी बजाना सीख लिया था—जिमनास्टिक के समय वह द्रुत ताल पर लखनऊ की ठुमरी के सुर मे वंशी बजाता—यही उसका एकमात्र काम था।

उसका आखिरी पलायन इसी दल से हुआ था। उसने सुना था कि नन्दीग्राम के जमीदार बाबू बड़ी धूमधाम से एक शौकिया यात्रा-दल बना रहे है—अत. वह अपनी छोटी-सी पोटली लेकर नन्दीग्राम की यात्रा की तैयारी कर रहा था, इसी समय उसकी भेंट मतिबाबू से हो गई।

एक के बाद एक नाना दलों मे शामिल होकर भी तारापद ने अपनी स्वाभाविक कल्पना-प्रवण प्रकृति के कारण किसी भी दल की विशेषता प्राप्त नही

---

१. लोक-गीत गायको का दल।

की थी। वह अन्तःकरण से बिलकुल निर्लिप्त और मुक्त था। ससार मे उसने सर्वदा अनेक कुत्सित बातें सुनी और अनेक अशोभन दृश्य देखे, किन्तु उन्हे उसके मन मे सञ्चित होने का रत्ती-भर अवकाश न मिला। उस लडके का ध्यान किसी ओर था ही नही। अन्यान्य बधनो की भाँति किसी प्रकार का अभ्यास-बन्धन भी उसके मन को बाध्य न कर सका। वह उस संसार मे पंकिल जल के ऊपर शुभ्रपक्ष राज-हस की भाँति तैरता-फिरता। कौतूहलवश वह जितनी भी बार डुबकी लगाता उसके पख न तो भीग पाते थे, न मलिन हो पाते थे। इसी कारण इस गृह-त्यागी लडके के मुख पर एक शुभ्र स्वाभाविक तारुण्य अम्लानभाव से झलकता रहता, उसकी यही मुखश्री देखकर प्रवीण दुनियादार मतिलाल बाबू ने बिना कुछ पूछे, बिना सन्देह किये बडे प्यार से उसका आह्वान किया था।

: २ :

भोजन समाप्त होने पर नौका चल पड़ी। अन्नपूर्णा बड़े स्नेह से ब्राह्मण-बालक से उसके घर की बातें, उसके स्वजन कुटुम्बियो का समाचार पूछने लगी, तारापद ने अत्यन्त संक्षेप मे उनका उत्तर देकर बाहर आकर परित्राण पाया। बाहर परि-पूर्णता की अन्तिम सीमा तक भरकर वर्षा की नदी ने अपने आत्म-विस्मृत उद्दाम चाचल्य से प्रकृति-माता को मानो उद्विग्न कर दिया था। मेघ-मुक्त धूप मे नदी किनारे की अर्धनिमग्न काशतृणश्रेणी एव उसके ऊपर सरस सघन ईख के खेत और उससे भी परवर्ती प्रदेश मे दूरदिगन्त चुम्बित नीलाञ्जन-वर्ण वनरेखा' सभी-कुछ मानो किसी काल्पनिक कथा की सोने की छडी[1] के स्पर्श से सद्य जागृत नवीन सौदर्य की भाँति नीरव नीलाकाश की मुग्धदृष्टि के सम्मुख परिस्फुटित हो उठा हो, सभी-कुछ मानो सजीव, स्पन्दित, प्रगल्भ, प्रकाश मे उद्भासित, नवीनता से मसृण और प्राचुर्य से परिपूर्ण हो।

तारापद ने नौका की छत पर पाल की छाया मे जाकर आश्रय लिया। ढालू हरा मैदान, पानी से भरे पाट के खेत, गहन श्याम लहराते हुए आमन[2] धान, घाट से गाँव की ओर जाने वाले सँकरे रास्ते, सघन वन-वेष्टित छायामय गाँव— एक के बाद एक उसकी आँखो के सामने से निकलने लगे। जल, स्थल, आकाश, चारों ओर की यह गतिशीलता, सजीवता, मुखरता, आकाश-पृथ्वी की यह

---

१. प्रसिद्ध लोक-कथा है कि एक राजकुमार ने सोने की छडी छुआकर सोई हुई राजकुमारी को जगा दिया था, चाँदी की छडी छुआने से वह सो जाती थी। सोने की छडी प्रेम, जागृत अवस्था की प्रतीक है।

२ हेमन्तकालीन धान।

व्यापकता और वैचित्र्य एवं निर्लिप्त सुदूरता, यह अत्यन्त विस्तृत, चिरस्थायी, निर्निमेष, नीरव, वाक्य-विहीन विश्व तरुण वालक के परमात्मीय थे, पर फिर भी वह इस चचल मानव को क्षण-भर के लिए भी स्नेह-वाहुओ मे वाँध रखने की कोशिश नही करता था। नदी के किनारे वछड़े पूँछ उठाये दौड रहे थे, गाँव का टट्टू-घोड़ा रस्सी से वँधे अपने अगले पैरो के वल कूदता हुआ घास चरता फिर रहा था, मछरंग पक्षी मछुआरों के जाल वाँधने के वाँस के डडे से वड़े वेग से पानी मे झप से कूदकर मछली पकड रहा था, लडके पानी मे खेल रहे थे, लडकियाँ उच्च स्वर से हँसती हुई वाते करती हुई छाती तक गहरे पानी मे अपना वस्त्राचल फैलाकर दोनो हाथो से उसे धो रही थी, आँचल कमर मे खोसे मछुआरिनें डलिया लेकर मछुआरो से मछली खरीद रही थी, इस सवको वह चिरनूतन अश्रात कौतूहल से वैठा देखता था, उसकी दृष्टि की पिपासा किसी भी तरह निवृत्त नही होती थी।

नौका की छत पर जाकर तारापद ने धीरे-धीरे खिवैया-माँझियो से वातचीत छेड़ दी। वीच-वीच मे आवश्यकतानुसार वह मल्लाहो के हाथ से लग्गी लेकर खुद ही ठेलने लग जाता, माँझियो को जव तमाखू पीने की जरूरत पडती तव वह स्वयं जाकर हाल सँभाल लेता, जव जिधर हाल मोडना आवश्यक होता वह दक्षतापूर्वक सम्पन्न कर देता।

संध्या होने से कुछ पूर्व अन्नपूर्णा ने तारापद को वुलाकर पूछा, "रात मे तुम क्या खाते हो ?"

तारापद वोला, "जो मिल जाता है वही खा लेता हूँ; रोज खाता भी नही।"

इस सुन्दर ब्राह्मण-वालक की आतिथ्य ग्रहण करने की उदासीनता अन्नपूर्णा को थोड़ी कष्टकर प्रतीत हुई। उनकी वड़ी इच्छा थी कि खिला-पिलाकर, पहना-ओढाकर इस गृह-च्युत यात्री वालक को संतुष्ट करे। किंतु किससे वह सन्तुष्ट होगा, यह वे नही जान सकी। नौकरो को वुलाकर गाँव से दूध-मिठाई आदि खरीद मँगाने मे अन्नपूर्णा ने धूमधाम मचा दी। तारापद ने पेट-भर भोजन तो किया, किंतु दूध नही पिया। मौन स्वभाव मतिलाल वावू तक ने उससे दूध पीने का अनुरोध किया; उसने सक्षेप मे कहा, "मुझे अच्छा नही लगता।"

नदी पर दो-तीन दिन वीत गए। तारापद ने भोजन वनाने, सौदा खरीदने से लेकर नौका चलाने तक सव कामों मे स्वेच्छा और तत्परता से योग दिया। जो भी दृश्य उसकी आँखो के सामने आता उसी ओर तारापद की कौतूहलपूर्ण दृष्टि दौड़ जाती; जो भी काम उसके हाथ लग जाता, उसीकी ओर वह अपने-आप

आकर्षित हो जाता। उसकी दृष्टि, उसके हाथ, उसका मन सर्वदा ही गतिशील बने रहते, इसी कारण वह इस नित्य चलायमान प्रकृति के समान सर्वदा निश्चिन्त, उदासीन रहता; किन्तु सर्वदा क्रियासक्त भी। यो तो हर मनुष्य की अपनी एक स्वतन्त्र अधिष्ठान भूमि होती है, किन्तु तारापद इस अनन्त नीलाम्बरवाही विश्व-प्रवाह की एक आनन्दोज्ज्वल तरग था—भूत-भविष्यत् के साथ उसका कोई सम्बन्ध न था, आगे बढते जाना ही उसका एकमात्र काम था।

इधर बहुत दिन तक नाना सम्प्रदायो के साथ योग देने के कारण अनेक प्रकार की मनोरजनी विद्याओ पर उसका अधिकार हो गया था। किसी भी प्रकार चिन्ता से आच्छन्न न रहने के कारण उसके निर्मल स्मृति-पट पर सारी बाते अद्भुत सहज ढग से अकित हो जाती। पाचाली कथकता[1], कीर्तन-गान, यात्राभिनय के लम्बे अवतरण उसे कठस्थ थे। मतिलाल बाबू अपनी नित्य-प्रति की प्रथा के अनुसार एक दिन सध्या समय अपनी पत्नी और कन्या को रामायण पढ़कर सुना रहे थे, लव-कुश की कथा की भूमिका चल रही थी, तभी तारापद अपना उत्साह सवरण न कर पाने के कारण नौका की छत से उतर आया और बोला, "किताब रहने दे। मैं लवकुश का गीत गाता हूँ, आप सुनते चलिए।"

यह कहकर उसने लवकुश की पाचाली शुरू कर दी। बाँसुरी के समान सुमिष्ट उन्मुक्त स्वर से वह बडी तेज गति से दासुराय के अनुप्रासो की वर्षा करने लगा; डाँडी, मछुआरे, सभी दरवाजे पर आकर झुके पड रहे थे। उस नदी-नीर के सध्याकाश मे हास्य, करुणा एवं सगीत का एक अपूर्व रस-स्रोत प्रवाहित होने लगा। दोनो निस्तब्ध किनारे कौतूहलपूर्ण हो उठे, पास से जो सारी नौकाएँ गुजर रही थी, उनमे बैठे लोग क्षण-भर के लिए उत्कंठित होकर उसी ओर कान लगाए रहे। जब गीत समाप्त हो गया तो सभी ने व्यथित चित्त से लम्बी साँस लेकर सोचा, इतनी जल्दी क्यो समाप्त हो गया।

सजलनयना अन्नपूर्णा की इच्छा हुई कि उस लडके को गोद मे बिठाकर छाती से लगाकर उसका माथा सूँघ ले। मतिलाल बाबू सोचने लगे, इस लडके को यदि किसी प्रकार अपने पास रख सकूँ तो पुत्र का अभाव पूरा हो जाय। केवल छोटी बालिका चारुशशी का अन्त करण ईर्ष्या और विद्वेष से परिपूर्ण हो उठा।

: ३ :

चारुशशी अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान और उनके स्नेह की

१ पुराणादि का पाठ और व्याख्या करना।

एकमात्र अधिकारिणी थी। उसकी धुन और हठ की कोई सीमा न थी। खाने-पहनने, बाल बनाने के सम्बन्ध मे उसका अपना स्वतन्त्र मत था, किन्तु उस मन मे तनिक भी स्थिरता नही थी। जिस दिन कही निमन्त्रण होता उस दिन उसकी माँ को भय रहता कि कही लडकी साज-सिंगार को लेकर कोई असम्भव जिद न कर बैठे। यदि दैवात् कभी केश-बंधन उसके मन के अनुकूल न हुआ, तो फिर उस दिन चाहे जितनी बार बाल खोलकर चाहे जितने प्रकार से बाँधे जाते वह किसी तरह सन्तुष्ट न होती। और अन्त मे रोना-धोना मच जाता। हर बात मे यही दशा थी। पर कभी-कभी जब चित्त प्रसन्न रहता तो उसे किसी भी प्रकार की कोई आपत्ति न होती। उस समय वह प्रचुर मात्रा मे स्नेह प्रकट करके अपनी माँ से लिपटकर चूमकर हँसती हुई बात करते-करते उसे एकदम परेशान कर डालती। यह छोटी बालिका एक दुर्भेद्य पहेली थी।

यह बालिका अपने दुर्बोध्य हृदय के पूरे वेग का प्रयोग करके मन-ही-मन विषम ईर्ष्या से तारापद का निरादर करने लगी। माता-पिता को भी पूरी तरह से उद्विग्न कर डाला। भोजन के समय रोदनोन्मुखी होकर भोजन के पात्र को ठेलकर फेक देती, खाना उसको रुचिकर नही लगता, नौकरानी को मारती, सभी बातो मे अकारण शिकायत करती रहती। जैसे-जैसे तारापद की विद्याएँ उसका एवं अन्य सबका मनोरजन करने लगी, वैसे-ही-वैसे मानो उसका क्रोध बढने लगा। तारापद मे कोई गुण है, इसे उसका मन स्वीकार करने से विमुख रहता और उसका प्रमाण जब प्रबल होने लगा तो उसके असन्तोष की मात्रा भी बढ गई। तारापद ने जिस दिन लव-कुश का गीत सुनाया उस दिन अन्नपूर्णा ने सोचा, सगीत से वन के पशु तक वश मे आ जाते है, आज शायद मेरी लड़की का मन पिघल गया है, उससे पूछा, "चारु, कैसा लगा ?" उसने कोई उत्तर दिये बिना बड़े जोर से सिर हिला दिया। भाषा मे इस मुद्रा का तरजुमा करने पर यह रूप होता—जरा भी अच्छा नही लगा, और न कभी अच्छा लगेगा।

चारु के मन मे ईर्ष्या का उदय हुआ है, यह समझकर उसकी माँ ने चारु के सामने तारापद के प्रति स्नेह प्रकट करना कम कर दिया। सन्ध्या के बाद जब चारु जल्दी-जल्दी खाकर सो जाती तब अन्नपूर्णा नौका-कक्ष के दरवाजे के पास आकर बैठती और मतिबाबू और तारापद बाहर बैठते और अन्नपूर्णा के अनुरोध से तारापद गाना शुरू करता, उसके गाने से जब नदी के किनारे की विश्राम-निरता ग्राम-श्री सध्या के विपुल अन्धकार मे मुग्ध निस्तब्ध हो जाती और अन्नपूर्णा का कोमल हृदय स्नेह और सौदर्य-रस से उछलने लग जाता तब सहसा चारु बिछौने से उठकर तेजी से आकर सरोष रोती हुई कहती, "माँ, तुमने यह

क्या शोर मचा रखा है ! मुझे नीद नही आती।" माता-पिता उसको अकेला सुलाकर तारापद को घेरकर सगीत का आनन्द ले रहे है, यह उसे एकदम असह्य हो उठता। इस दीप्तकृष्णनयना बालिका की स्वाभाविक उग्रता तारापद को बडी मनोरजक प्रतीत होती। उसने इसे कहानी सुनाकर, गाना गाकर, वंशी बजाकर वश मे करने की बहुत चेष्टा की, किन्तु किसी भी प्रकार सफल नही हुआ। केवल जब मध्याह्न मे तारापद नदी मे स्नान करने उतरता, परिपूर्ण जलराशि मे अपनी गौरवर्ण सरल कमनीय देह को तैरने की अनेक प्रकार की क्रीडाओं मे सचालित करता तरुण जल देवता के समान शोभा पाता, तब बालिका का कौतूहल आकर्षित हुए बिना न रहता। वह इसी समय की प्रतीक्षा करती रहती, किंतु आनरिक इच्छा का किसी को भी पता न चलने देती, और यह अशिक्षापटु अभिनेत्री ध्यानपूर्वक ऊनी गुलूबन्द बुनने का अभ्यास करती हुई बीच-बीच में मानो अत्यन्त उपेक्षाभरी दृष्टि से तारापद की संतरणलीला देखा करती।

: ४ :

नन्दीग्राम कब छूट गया, तारापद को पता ही न चला। विशाल नौका अत्यन्त मृदुमन्द गति से कभी पाल तानकर, कभी रस्सी खीचकर अनेक नदियो की शाखा-प्रशाखाओ मे होकर चलने लगी, नौकारोहियो के दिन भी इन सब नदी-उपनदियो के समान, शांति-सौन्दर्यपूर्ण वैचित्र्य के बीच सहज सौम्य गति से मृदुमिष्ट कलस्वर मे प्रवाहित होने लगे। किसी को किसी प्रकार की जल्दी नही थी; दोपहर को स्नानाहार मे बहुत समय व्यतीत होता, और इधर सन्ध्या होते-न-होते बडे दिखने वाले किसी गाँव के किनारे घाट के समीप, झिल्लीमन्द्रित खद्योतखचित वन के पास नौका बाँध दी जाती।

इस प्रकार दसेक दिन मे नौका काँठालिया पहुँची। जमीदार के आगमन पर घर से पालकी और टट्टू-घोडों का समागम हुआ, और हाथ मे बाँस की लाठी धारण किये सिपाही-चौकीदारों के दल ने बार-बार बन्दूक की खाली आवाज से गाँव के उत्कण्ठित काक-समाज को 'यत्परोनास्ति' मुखर कर दिया।

इस सारे समारोह मे समय लगा, इस बीच मे तारापद ने तेजी से नौका से उतरकर एक बार सारे गाँव का चक्कर लगा डाला। किसी को दादा, किसी को काका, किसी को दीदी, किसी को मौसी कहकर दो-तीन घटे मे सारे गाँव के साथ सौहार्द्य बन्धन स्थापित कर लिया। कही भी उसके लिए स्वभावत: कोई बन्धन नही था, इससे यह बालक गजब की शीघ्रता और आसानी से सबके साथ परिचय कर लेता था। तारापद ने देखते-देखते थोड़े दिनो मे ही गाँव के समस्त हृदयो पर

अधिकार कर लिया।

इतनी आसानी से हृदय हरण करने का कारण यह था कि तारापद हरेक के साथ उसका अपना बनकर स्वाभाविक रूप से योग दे सकता था। वह किसी भी प्रकार के विशेष संस्कारो के द्वारा बँधा हुआ नही था, अतएव सभी अवस्थाओ मे और सभी कामो मे उसमें एक प्रकार की सहज प्रवीणता थी। बालकों के लिए वह बिलकुल स्वाभाविक बालक था और उनसे श्रेष्ठ और स्वतन्त्र, वृद्धो के लिए वह बालक न रहता किन्तु पुरखा भी नही, चरवाहो के साथ वह चरवाहा था फिर भी ब्राह्मण। हरेक के हर काम मे वह चिरकाल के सहयोगी के समान अभ्यस्त भाव से हस्तक्षेप करता। हलवाई की दुकान पर बातें करते-करते हलवाई कह उठता, "भैयाजी, जरा बैठो तो भाई, मैं अभी आता हूँ"—तारापद अम्लानवदन से दूकान पर बैठकर साल के पत्ते से सन्देश पर बैठी मक्खियाँ उडाने लग जाता। मिठाइयाँ बनाने मे भी वह पक्का था, करघे का मर्म भी उसे थोडा-बहुत मालूम था, कुम्हार का चाक चलाना भी उसके लिए बिलकुल नया नही था।

तारापद ने सारे गाँव को वश मे कर लिया, केवल ग्रामवासिनी एक बालिका की ईर्ष्या वह अभी तक नही जीत पाया था। यह बालिका उग्रभाव से उसके बहुत दूर निर्वासन की कामना करती थी, यही जानकर शायद तारापद इस गाँव मे इतने दिन आबद्ध बना रहा।

किंतु बालिकावस्था मे भी नारी के अन्तर रहस्य का भेद जानना बहुत कठिन है, चारुशशी ने इसका प्रमाण दिया।

ब्राह्मण पुरोहिताइन की कन्या सोनामणि पाँच वर्ष की अवस्था मे विधवा हो गई थी, वह चारु की समवयस्का सहेली थी। अस्वस्थ होने के कारण वह घर लौटी सहेली से कुछ दिनो तक भेट न कर सकी। स्वस्थ होकर जिस दिन भेट करने आई उस दिन प्राय. अकारण ही दोनो सहेलियो मे कुछ मनोमालिन्य की नौबत आ गई।

चारु ने अत्यन्त विस्तार से बात आरम्भ की थी। उसने सोचा था कि तारापद नामक अपने नवार्जित परम रत्न को जुटाने की बात का विस्तारपूर्वक वर्णन करके वह अपनी सहेली के कौतूहल एवं विस्मय को सप्तम पर चढा देगी। किन्तु, जब उसने सुना कि तारापद सोनामणि के लिए तनिक भी अपरिचित नही था, पुरोहिताइन को वह मौसी कहता है और सोनामणि उसको भाई कहकर पुकारती है, जब उसने सुना कि तारापद ने केवल बाँसुरी पर कीर्तन का सुर बजाकर माता और पुत्री का मनोरंजन ही नही किया है, सोनामणि के अनुरोध से उसके लिए अपने हाथो से बाँस की एक बाँसुरी भी बना दी है, न जाने

कितने दिनो से वह उसे ऊँची डाल से फल और कण्टक-शाखा से फूल तोडकर देता रहा है तव चारु के अन्त करण को मानो तप्तशूल वेधने लगा। चारु समझती थी कि तारापद विशेष रूप से उन्हीका तारापद था– अत्यन्त गुप्त रूप से सरक्षणीय; अन्य साधारण जन केवल उसका थोडा-वहुत आभास-मात्र पायँगे फिर भी किसी भी तरह उसका सामीप्य न पा सकेगे, दूर से ही उसके रूप-गुण पर मुग्ध होगे और चारुशशी को धन्यवाद देते रहेगे। यही अद्‌भुत दुर्लभ, दैव-लव्ध व्राह्मण-वालक सोनामणि के लिए सहजगम्य क्यों हुआ ? हम यदि उसे इतना यत्न करके न लाते, इतने यत्न से न रखते तो सोनामणि आदि उसका दर्शन कहाँ से पाती ? सोनामणि का 'भैया' ! शव्द सुनते ही उसके सारे शरीर मे आग लग गई।

चारु जिस तारापद को मन-ही-मन विद्वेष-वाणो से जर्जर करने की चेष्टा करती रही है, उसीके एकाधिकार को लेकर इतना प्रवल उद्वेग क्यो ?—किसकी सामर्थ्य है जो यह समझे !

उसी दिन किसी अन्य तुच्छ वात के सहारे सोनामणि के साथ चारु की गहरी कुट्टी हो गई। और वह तारापद के कमरे मे जाकर उसकी प्रिय वशी लेकर उस पर कूद-कूदकर उसे कुचलती हुई निर्दयतापूर्वक तोडने लगी।

चारु जव प्रचण्ड रोष मे इस वशी-ध्वस-कार्य मे व्यस्त थी तभी तारापद ने कमरे मे प्रवेश किया। वालिका की यह प्रलय-मूर्ति देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वोला, "चारु, मेरी वशी क्यो तोड रही हो ?" चारु रक्त नेत्रों और लाल मुख से "ठीक कर रही हूँ, अच्छा कर रही हूँ" कहकर टूटी हुई वंशी को और दो-चार अनावश्यक लाते मारकर उच्छ्वसित कठ से रोती हुई कमरे से वाहर चली गई। तारापद ने वशी उठाकर उलट-पलटकर देखी, उसमे अव कोई दम नही था। अकारण ही अपनी पुरानी वशी की यह आकस्मिक दुर्गति देखकर वह अपनी हँसी न रोक सका। चारुशशी दिनोदिन उसके परम कौतूहल का विपय वनती जा रही थी।

उसके कौतूहल का एक और क्षेत्र था, मतिलाल वावू की लाइव्रेरी मे अंग्रेज़ी की तस्वीरो वाली कितावे। वाहरी जगत् से उसका यथेष्ट परिचय हो गया था, किंतु तस्वीरो के इस जगत् मे वह किसी प्रकार भी अच्छी तरह प्रवेश नही कर पाता था। कल्पना द्वारा वह अपने मन मे वहुत-कुछ जमा लेता किंतु उससे उसका मन किसी प्रकार तृप्त न होता।

तस्वीरो की पुस्तको के प्रति तारापद का यह आग्रह देखकर एक दिन मतिलाल वावू वोले, "अंग्रेजी सीखोगे? तव तुम इन सारी तस्वीरों का अर्थ समझ

लोगे ।" तारापद ने तुरन्त कहा, 'सीखूँगा।"

मतिवावू ने खूव खुश होकर गाँव के एंट्रेस-स्कूल के हैडमास्टर रामरतन वावू को प्रतिदिन सध्या-समय इस लड़के को अग्रेजी पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया।

: ५ :

तारापद अपनी प्रखर स्मरण-शक्ति एवं अखण्ड मनोयोग के साथ अंग्रेजी शिक्षा मे प्रवृत्त हुआ। मानो वह किसी नवीन दुर्गम राज्य मे भ्रमण करने निकला हो, उसने पुराने जगत् के साथ कोई सपर्क न रखा; मुहल्ले के लोग अव उसे न देख पाते; जव वह संध्या के पहले निर्जन नदी-तट पर तेज़ी से टहलते-टहलते पाठ कठस्थ करता, तव उसका उपासक वालक-सप्रदाय दूर से खिन्नचित्त होकर सम्भ्रमपूर्वक उसका निरीक्षण करता, उसके पाठ मे वाधा डालने का साहस न कर पाता।

चारु भी आजकल उसे वहुत नही देख पाती थी। पहले तारापद अन्त पुर मे जाकर अन्नपूर्णा की स्नेह दृष्टि के सामने वैठकर भोजन करता था —किन्तु इसके कारण कभी-कभी देर हो जाती थी। इसीलिए उसने मतिवावू से अनुरोध करके अपने भोजन की व्यवस्था वाहर ही करा ली। अन्नपूर्णा ने व्यथित होकर इस पर आपत्ति प्रकट की, किन्तु अध्ययन के प्रति वालक का उत्साह देखकर अत्यत सतुष्ट होकर उन्होने इस नई व्यवस्था का अनुमोदन किया।

तभी सहसा चारु भी जिद कर वैठी, मैं भी अंग्रेज़ी सीखूँगी। उसके माता-पिता ने अपनी कन्या के इस प्रस्ताव को पहले तो परिहास का विपय समझकर स्नेहमिश्रित हँसी उडाई—किन्तु कन्या ने इस प्रस्ताव के परिहास्य अंश को प्रचुर अश्रु-जल-धारा से तुरन्त पूर्ण रूप से धो डाला। अंत मे इन स्नेह-दुर्वल निस्पाय अभिभावको ने वालिका के प्रस्ताव को गंभीरता से स्वीकार कर लिया। तारापद के साथ-साथ चारु भी मास्टर से पढ़ने लग गई।

किन्तु पढ़ना-लिखना इस अस्थिरचित्त वालिका के स्वभाव के विपरीत था। वह स्वयं तो कुछ न सीख पाई, वस तारापद की पढाई मे विघ्न डालने लगी। वह पिछड जाती, पाठ कठस्थ न करती। किन्तु फिर भी वह किसी भी प्रकार तारापद से पीछे रहना न चाहती। तारापद के उससे आगे निकलकर नया पाठ लेने पर वह वहुत रुष्ट होती, यहाँ तक कि रोने-धोने से भी वाज न आती थी। तारापद के पुरानी पुस्तक समाप्त कर नई पुस्तक खरीदने पर उसके लिए भी नई पुस्तक खरीदनी पड़ती। तारापद छुट्टी के समय स्वयं कमरे मे वैठकर लिखता और

पाठ कठस्थ करता, यह उस ईर्ष्या-परायणा वालिका से सहन न होता। वह छिपकर उसके लिखने की कापी मे स्याही उँडेल देती, कलम चुराकर रख देती, यहाँ तक कि किताव मे जिसका अभ्यास करना होता उस अश को फाड़ आती। तारापद वालिका की यह सारी धृष्टता आमोदपूर्वक सहता; असह्य होने पर मारता. किन्तु किसी प्रकार भी उसका नियन्त्रण नही कर सका।

दैवात् एक उपाय निकल आया। एक दिन वहुत खीझकर निरुपाय तारापद स्याही से रँगी अपनी लिखने की कापी फाड-फेंककर गंभीर खिन्न मुद्रा मे वैठा था; दरवाजे के पास आकर चारु ने सोचा कि आज मार पड़ेगी। किन्तु उसकी प्रत्याशा पूर्ण नही हुई। तारापद विना कुछ कहे चुपचाप वैठा रहा। वालिका कमरे के भीतर-वाहर चक्कर काटने लगी। वारम्वार उसके इतने समीप से निकलती कि तारापद चाहता तो अनायास ही उसकी पीठ पर एक थप्पड़ जमा सकता था। किन्तु वह वैसा न करके गंभीर ही वना रहा। वालिका वडी मुश्किल मे पड़ गई। किस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करनी होती है उस विद्या का उसने कभी अभ्यास न किया था, अतएव उसका अनुतप्त क्षुद्र हृदय अपने सहपाठी से क्षमा-याचना करने के लिए अत्यन्त कातर हो उठा। अत मे कोई उपाय न देखकर फटी हुई लेख-पुस्तिका का टुकडा लेकर तारापद के पास वैठकर खूव वड़े-वड़े अक्षरों मे लिखा, "मैं फिर कभी किताव पर स्याही नही फैलाऊँगी।" लिखना समाप्त करके वह उस लेख की ओर तारापद का ध्यान आकर्पित करने के लिए अनेक प्रकार की चचलता प्रर्दाशत करने लगी। यह देखकर तारापद हँसी न रोक सका--वह हँस पड़ा। इस पर वालिका लज्जा और क्रोध से अधीर होकर कमरे से भाग गई। जिस कागज के टुकड़े पर उसने अपने हाथ से दीनता प्रकट की थी उसको अनन्त काल के लिए और अनन्त जगत् से विलकुल लोप कर पाती तो उसके हृदय का गहरा क्षोभ मिट सकता।

उधर सकुचित चित्त सोनामणि एक-दो-दिन अध्ययनशाला के वाहर घूम-फिरकर झाँककर चली गई। सहेली चारुशशी के साथ सव वातो मे उसका विशेप वधुत्व था, किन्तु तारापद के सम्वन्ध मे चारु को वह अत्यन्त भय और सन्देह से देखती। चारु जिस समय अन्त.पुर मे होती, उसी समय का पता लगाकर सोनामणि संकोच करती हुई तारापद के द्वार के पास आ खड़ी होती। तारापद किताव से मुँह उठाकर सस्नेह कहता, "क्यो सोना! क्या समाचार है? मौसी कैसी है?"

सोनामणि कहती, "वहुत दिन से आए नही, माँ ने तुमको एक वार चलने के लिए कहा है। कमर मे पीड़ा होने के कारण वे तुम्हे देखने नही आ सकती।"

इसी वीच शायद सहसा चारु आ उपस्थित होती। सोनामणि घवरा जाती,

वह मानो छिपकर अपनी सहेली की सम्पत्ति चुराने आई हो। चारु आवाज को सप्तम पर चढाकर, भौह चढाकर, मुँह वनाकर कहती, "ऐ सोना ! तू पढ़ने के समय हल्ला मचाने आती है, मैं अभी जाकर पिताजी से कह दूँगी।" मानो वह स्वयं तारापद की एक प्रवीण अभिभाविका हो; उसके पढने-लिखने मे लेश-मात्र भी वाधा न पड़े मानो रात-दिन वस इसी पर उसकी दृष्टि रहती हो। किन्तु वह स्वयं किस अभिप्राय से इस असमय मे तारापद से पढ़ने के कमरे मे आकर उपस्थित हुई थी, यह अन्तर्यामी से छिपा नही था और तारापद भी उसे अच्छी तरह जानता था। किन्तु वेचारी सोनामणि डरकर उसी क्षण हज़ारो झूठी कैफियते देती; अंत में जव चारु घृणापूर्वक उसको मिथ्यावादिनी कहकर सम्वोधित करती तो वह लज्जित-शङ्कित-पराजित होकर व्यथित चित्त से लौट जाती। दयार्द्र तारापद उसको बुलाकर कहता, "सोना, आज सध्या समय मैं तेरे घर आऊँगा, अच्छा !" चारु सर्पिणी के समान फुफकारती हुई उठकर कहती, "हाँ, आओगे ? तुम्हे पाठ तैयार नही करना है ? मैं मास्टर साहव से कह न दूँगी ?"

चारु की इस धमकी से न डरकर तारापद एक-दो दिन संध्या के वाद पुरोहितजी के घर गया था। तीसरी या चौथी वार चारु ने कोरी धमकी न देकर धीरे-धीरे एक वार वाहर से तारापद के कमरे के दरवाज़े मे साँकल चढाकर माँ के मसाले के वक्स का ताला लाकर लगा दिया। सारी संध्या तारापद को इसी तरह वंदी अवस्था मे रखकर भोजन के समय द्वार खोला। गुस्से के कारण तारापद कुछ वोला नही और विना खाए चले जाने की तैयारी करने लगा। उस समय अनुतप्त व्याकुल वालिका हाथ जोड़कर विनयपूर्वक वारम्वार कहने लगी, "तुम्हारे पैरो पडती हूँ, फिर मैं ऐसा नही करूँगी। तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ, तुम खाकर जाना !" उससे भी जव तारापद वश मे न आया तो वह अधीर होकर रोने लगी; संकट मे पडकर तारापद लौटकर भोजन करने वैठ गया।

चारु ने कितनी वार अकेले मे प्रतिज्ञा की कि वह तारापद के साथ सद्-व्यवहार करेगी, फिर कभी उसे एक क्षण के लिए भी परेशान न करेगी, किन्तु सोनामणि आदि अन्य पाँच जनो के वीच आ पड़ते ही न जाने कव कैसे उसका मिज़ाज विगड जाता और वह किसी भी प्रकार आत्म-नियन्त्रण न कर पाती। कुछ दिन जव ऊपर-ऊपर से वह भलमनसाहत वरतती तव किसी आगामी उत्कट-विप्लव के लिए तारापद सतर्कतापूर्वक प्रस्तुत हो जाता। आक्रमण हठात् किस कारण किस दिशा से होगा, कहा नही जा सकता था। उसके वाद प्रचण्ड तूफान, तूफान के वाद प्रचुर अश्रुवारि वर्षा, उसके वाद प्रसन्न स्निग्ध शान्ति।

: ६ :

इस तरह लगभग दो वर्ष बीत गए। इतने लम्बे समय तक तारापद कभी किसी के पास बँधकर नही रहा। शायद पढने-लिखने मे उसका मन एक अपूर्व आकर्षण मे बँध गया था, लगता है, वयोवृद्धि के साथ उसकी प्रकृति मे भी परिवर्तन आरम्भ हो गया था और स्थिर बैठे रहकर संसार के सुख-स्वच्छंदता का भोग करने की ओर उसका मन लग रहा था; कदाचित् उसकी सहपाठिनी बालिका का स्वाभाविक दौरात्म्य, चचल सौदर्य अलक्षित भाव से उसके हृदय पर बन्धन फैला रहा था।

इधर चारु की अवस्था ग्यारह पार कर गई। मतिवाबू ने खोजकर अपनी पुत्री के विवाह के लिए दो-तीन अच्छे-अच्छे रिश्ते जुटाए। कन्या की अवस्था विवाह के योग्य हुई जानकर मतिवाबू ने उसका अंग्रेजी पढना और बाहर निकलना बद कर दिया। इस आकस्मिक अवरोध पर घर के भीतर चारु ने भारी आदोलन उपस्थित कर दिया।

तब अन्नपूर्णा ने एक दिन मतिवाबू को बुलाकर कहा, "पात्र के लिए तुम इतनी खोज क्यो करते फिर रहे हो! तारापद लडका तो अच्छा है। और तुम्हारी लडकी भी उसको पसद है।"

सुनकर मतिवाबू ने बड़ा विस्मय प्रकट किया। कहा, "भला यह भी कभी हो सकता है? तारापद का कुल-शील कुछ भी ज्ञात नही है। मेरी इकलौती लड़की है, मैं उसे अच्छे घर मे देना चाहता हूँ।"

एक दिन रायडागा के बाबुओ के घर से लोग लडकी देखने आए। वस्त्राभूषण पहनाकर चारु को बाहर लाने की चेष्टा की गई। वह सोने के कमरे का द्वार बद करके बैठ गई—किसी प्रकार भी बाहर न निकली। मतिवाबू ने कमरे के बाहर से बहुत अनुनय की, बहुत फटकारा, किसी प्रकार भी कोई परिणाम न निकला। अन्त मे बाहर आकर रायडांगा के दूतो से बनकर कहना पडा कि एकाएक कन्या बहुत बीमार हो गई है, आज दिखाई नही हो सकेगी। उन्होंने सोचा, लड़की मे शायद कोई दोष है इसीसे इस चतुराई का सहारा लिया गया है।

तब मतिवाबू विचार करने लगे, तारापद लड़का देखने-सुनने मे सब तरह से अच्छा है; उसको मैं घर ही मे रख सकूँगा, ऐसा होने से अपनी एकमात्र लडकी को पराए घर नही भेजना पडेगा। यह भी सोचा कि उनकी अशान्त अबाध्य लडकी का दुरन्तपना उनकी स्नेहपूर्ण आँखो को कितना ही क्षम्य प्रतीत हो ससुराल वाले सहन नही करेगे।

फिर पति-पत्नी ने सोच-विचारकर तारापद के घर उसके सारे कुल का हाल-चाल जानने के लिए आदमी भेजा। समाचार आया कि वश तो अच्छा है, किन्तु दरिद्र है। तव मतिवावू ने लड़के की माँ एव भाई के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। उन्होंने आनन्द से उच्छ्वसित होकर सम्मति देने मे मुहूर्त्त-भर की भी देर न की।

काँठालिया के मतिवावू और अन्नपूर्णा विवाह के दिन-लग्न की आलोचना करने लगे, किन्तु स्वाभाविक गोपनताप्रिय सावधान मतिवावू ने वात को गोपनीय रखा।

चारु को वंद न रखा जा सका। वह वीच-वीच में वर्गी[1] के हंगामे के समान तारापद के पढ़ने के कमरे मे जा पहुँचती। कभी रोष, कभी प्रेम, कभी विराग के द्वारा उसके अध्ययन-क्रम की निभृत शान्ति को अकस्मात् तरंगित कर देती। उससे आजकल इस निर्लिप्त मुक्तस्वभाव ब्राह्मण वालक के मन मे वीच-वीच मे कुछ समय के लिए विद्युत्स्पंदन के समान एक अपूर्व चाञ्चल्य का संचार हो जाता। जिस व्यक्ति का हलका चित्त सर्वदा अक्षुण्ण अव्याहत भाव से काल-स्रोत की तरंग-शिखरी पर उतराकर सामने वह जाता वह आजकल प्राय: अन्यमनस्क होकर विचित्र दिवा-स्वप्न के जाल मे उलझ जाता। वह प्राय: पढना-लिखना छोड़कर मतिवावू की लाइब्रेरी में प्रवेश करके तस्वीरो की पुस्तको के पन्ने पलटता रहता; उन तस्वीरो के मिश्रण से जिस कल्पना-लोक की रचना होती वह पहले की अपेक्षा वहुत स्वतन्त्र और अधिक रंगीन था। चारु का विचित्र आचरण देखकर वह अव पहले के समान स्वाभाविक परिहास न कर पाता, ऊधम करने पर उसको मारने की वात मन मे उदय भी न होती। अपने मे यह गूढ परिवर्तन, यह आवद्ध-आसक्त भाव उसे अपने निकट एक नूतन स्वप्न के समान लगने लगा।

श्रावण मे विवाह का शुभ दिन निश्चित करके मतिवावू ने तारापद की माँ और भाइयो को वुलावा भेजा, तारापद को यह यही वताया। कलकत्ता के फौजी वैण्ड को वयाना देने के लिए मुख्तार को आदेश दिया और सामान की सूची भेज दी।

आकाश मे वर्पा के नए वादल आ गए। गाँव की नदी इतने दिन तक सूखी पडी थी; वीच-वीच मे केवल किसी-किसी गड्ढे मे ही पानी भरा रहता था, छोटी-छोटी नौकाएँ उस पङ्किल जल मे डूवी पडी थी और नदी की सूखी धार मे वैलगाड़ियों के आवागमन से गहरी लीकें खुद गई थी—ऐसे समय एक दिन पिता के घर से लौटी पार्वती के समान न जाने कहाँ से द्रुतगामिनी जल-धारा कलहास्य करती हुई गाँव के शून्य वक्ष पर आ उपस्थित हुई—नगे वालक-वालिकाएँ किनारे

---
१. प्राचीन मराठा अश्वारोही लुटेरो का सैन्य दल।

आकर ऊँचे स्वर के साथ नृत्य करने लगे, मानो वे अतृप्त आनन्द से वारम्वार जल में कूद-कूदकर नदी को आलिंगन कर पकड़ने लगे हो, कुटी मे निवास करने वाली अपनी परिचित प्रिय संगिनी को देखने के लिए वाहर निकल आईं—शुष्क निर्जीव ग्राम मे न जाने कहाँ से आकर एक प्रवल विपुल प्राण-हिल्लोल ने प्रवेश किया। देश-विदेश से छोटी-वड़ी लदी हुई नौकाएँ आने लगी—वाजार का घाट संध्या समय विदेशी मल्लाहो के संगीत से ध्वनित हो उठा। दोनों किनारे के गाँव पूरे वर्ष अपने निभृत कोने में अपनी साधारण गृहस्थी लिये एकाकी दिन विताते है, वर्षा के समय वाहरी विशाल पृथ्वी विचित्र पण्योपहार लेकर गैरिक वर्ण जलस्थ मे वैठकर इन ग्राम-कन्याओ की खोज-खवर लेने आती है; इस समय जगत् के साथ आत्मीयता के गर्व से कुछ दिन के लिए उनकी लघुता नष्ट हो जाती है, सव सचल, सजग और सजीव हो उठते है एव मौन निस्तव्ध प्रदेश मे सुदूर राज्य की कलालापध्वनि आकर चारो दिशाओ को आंदोलित कर देती है।

इसी समय कुडूलकाटा मे नागवावुओं के इलाके मे विख्यात रथ-यात्रा का मेला लगेगा। ज्योत्स्ना-संध्या मे तारापद ने घाट पर जाकर देखा, कोई नौका-चरखी लिये, कोई यात्रा करने वालो की मण्डली लिये, कोई विक्री का सामान लिये प्रवल नवीन स्रोत की धारा मे तेज़ी से मेले की ओर चली जा रही है; कलकत्ता की वाद्य-मण्डली ज़ोर से द्रुतताल पर वाजे वजा रही है, यात्रा का दल वेले के साथ गीत गा रहा है और सम पर हा-हा-हा शव्द की ध्वनि हो उठती है; पश्चिमी प्रदेश की नौका के मल्लाह केवल मृदंग और और करताल लिये उन्मत्त-उत्साह से विना संगीत के खचमच शव्द से आकाश को विदीर्ण कर रहे है—उद्दीपनो की सीमा नही थी। देखते-देखते पूर्व क्षितिज से सघन मेघराशि ने प्रकांड काला पाल तानकर आकाश के वीच मे खडा कर दिया, चाँद ढक गया—पूर्व की वायु वेग से वहने लगी, मेघ के पीछे मेघ दौड चले, नदी मे जल कलकल हास्य से वढकर उमडने लगा—नदी-तीरवर्ती आन्दोलित वनश्रेणी मे अधकार पुञ्जीभूत हो उठा, मेढको ने टर्राना शुरू कर दिया, झिल्ली की ध्वनि जैसे करौंत लेकर अंधकार को चीरने लगी हो। सामने आज मानो समस्त जगत् की रथ-यात्रा हो, चक्र घूम रहा है, ध्वजा फहरा रही है, पृथ्वी काँप रही है, मेघ उड रहे हैं, वायु दौड रहा है, नदी वह रही है, नौका चल रही है, गीत उठ रहा है, देखते-देखते गुरु गम्भीर ध्वनि मे मेघ गरजने लगा, विद्युत् आकाश को चीर-चीरकर चकाचौंध उत्पन्न करने लगी, सुदूर अंधकार में से एक मूसलाधार वर्षा की गंध आने लगी। केवल नदी के एक किनारे पर एक ओर काँठालिया ग्राम अपनी कुटी के द्वार वन्द करके दिया वुझाकर चुपचाप सोने लगा।

दूसरे दिन तारापद की माता और भाई आकर कांठालिया मे उतरे; उसी दिन कलकत्ता से विविध सामग्री से भरी तीन बड़ी नौकाएँ कांठालिया के ज़मीदार की कचहरी के घाट पर आकर लगी एवं उसी दिन वहुत सवेरे सोनामणि कागज़ में थोड़ा अमावट एव पत्ते के दोने मे कुछ अचार लेकर डरती-डरती तारापद के पढ़ने के कमरे के द्वार पर चुपचाप आ खड़ी हुई —किन्तु उस दिन तारापद नही दिखाई दिया। स्नेह-प्रेम-वन्धुत्व के षड्यन्त्र-वन्धन उसको चारो ओर से पूरी तरह से घेरे, इसके पहले ही वह ब्राह्मण-वालक समस्त ग्राम का हृदय चुराकर एकाएक वर्षा की मेघान्धकारपूर्ण रात्रि मे आसक्ति-विहीन उदासीन जननी विश्व-पृथिवी के पास चला गया।

दुराशा

: १ :

दार्जिलिंग जाकर देखा, मेघ और वर्षा से दसों दिशाएँ ढकी हुई है। घर से बाहर निकलने की इच्छा नही होती, घर मे रहने पर और भी अनिच्छा बढती।

होटल मे सवेरे का नाश्ता समाप्त करके पैरो मे मोटे बूट एव आपाद-मस्तक मैकिन्टोश पहनकर घूमने बाहर निकाला। लगातार टिप्-टिप् करके वर्षा हो रही थी एव सर्वत्र सघन मेघो की कुज्झटिका मे लगता था जैसे विधाता ने हिमालय पर्वत सहित समस्त विश्व-चित्र को रबड़ से घिरा-घिसकर मिटा डालने की तैयारी की हो।

जनशून्य कैलकटा रोड पर एकाकी टहलते हुए सोच रहा था—अवलम्बन-हीन मेघराज्य मे अब अच्छा नही लगता, शब्दस्पर्शरूपमयी विचित्रा धरतीमाता को फिर पाँचो इन्द्रियो द्वारा पाँचों रूपो मे ग्रहण करने के लिए प्राण आकुल हो उठे।

तभी पास ही रमणी-कण्ठ की करुण रोदन-गुञ्जन-ध्वनि सुनाई पडी। रोग-शोकसकुल ससार मे रोने की आवाज कोई विचित्र वस्तु नही है, अन्यत्र अन्य समय होता तो मुडकर भी देखता या नही सन्देह है, किन्तु उस असीम मेघराज्य मे उस रुदन ने सम्पूर्ण अदृश्य जगत् के एकमात्र रुदन की भाँति मेरे कानो मे आकर प्रवेश किया, वह तुच्छ प्रतीत नही हुआ।

शब्द के सहारे पास जाकर देखा गैरिक-वस्त्र पहने एक नारी, जिसके सिर पर स्वर्णकपिश जटाभार चूडा के आकर मे बँधा हुआ था, मार्ग के किनारे शिला-खण्ड पर बैठी मृदुस्वर मे क्रन्दन कर रही थी। वह सद्यशोक का विलाप नही था, बहुत दिनो की सञ्चित नि शब्द श्रान्ति और अवसाद आज मेघान्धकार निर्जनता के भार से फूटकर उच्छ्वसित हो पडे थे।

मन-ही-मन सोचा, यह अच्छा रहा, आरम्भ मानो घर मे गढी हुई कहानी

की ही भाँति हुआ हो, पर्वत-शिखर पर संन्यासिनी बैठी रो रही हो—यह कभी चर्मचक्षुओ से देखूँगा इसकी कभी आशा नही की थी।

लडकी किस जात की थी, तय नही कर पाया। आर्द्र हिन्दी भाषा मे पूछा, "तुम कौन हो ! तुम्हें क्या हुआ है ?"

पहले उत्तर नही दिया, बादलो के बीच सजल दीप्तनेत्रों से मुझे एक बार देख लिया।

मैंने फिर कहा, "मुझसे डरना मत। मैं भला आदमी हूँ।"

सुनकर वह हँसती हुई ठेठ हिन्दुस्तानी मे बोली, "बहुत दिन से डर-भय सब घोलकर पिये बैठी हूँ, कोई लज्जा-शर्म नही है। बाबू जी, एक जमाना था कि मैं जिस जनानखाने मे थी वहाँ मेरे सहोदर भाई को भी प्रवेश करने के लिए अनुमति लेनी पडती थी, आज दुनिया मे किसी से मेरा कोई पर्दा नही।"

पहले तो थोडा क्रोध आया, मेरा चाल-चलन पूरा साहबी था, किन्तु यह हतभागिनी बिना किसी द्विविधा के मुझे बाबूजी कहकर क्यो सबोधित करती है ? सोचा, अपना उपन्यास यही समाप्त कर के सिगरेट का धुआँ उडाता हुआ नाक उठाए साहबियत की रेलगाडी की भाँति सशब्द सवेग सदर्प चल पडूँ। पर अन्त मे कौतूहल की विजय हुई। मैंने कुछ बड़प्पन का भाव दिखाते हुए टेढ़ी गर्दन करके पूछा, "तुम्हारी कुछ सहायता कर सकता हूँ ? तुम्हारी कोई प्रार्थना है ?

उसने स्थिर भाव से मेरे मुख की ओर निहारा और क्षण-भर बाद सक्षेप मे उत्तर दिया, "मै बन्द्राओन के नवाब गुलामकादिर खाँ की बेटी हूँ।"

बद्राओन किस देश मे है और नवाब गुलामकादिर खाँ कौन है और उनकी पुत्री किस दु.ख से संन्यासिनी के वेश मे दार्जिलिग की कैलकाटा रोड के किनारे बैठी रो रही थी—मैं इसका कोई सिर-पैर न जानता था, न विश्वास ही करता था, किन्तु सोचा कि रस-भग नही करूँगा, कहानी खूब जम रही है।

तत्क्षण अपना चेहरा अत्यन्त गभीर बनाकर लम्बा सलाम करते हुए बोला, 'बीबी साहबा, माफ़ फरमावे, मैं तुम्हे पहचान न सका।"

न पहचान सकने के अनेक युक्तिसगत कारण थे, उनमे सर्वप्रधान कारण था, उनको पहले कभी देखा ही न था, तिस पर से कुहरा ऐसा था कि हाथ-को-हाथ नही सूझता था।

बीबी साहिबा ने भी मेरे अपराध पर ध्यान न दिया और सन्तुष्ट स्वर मे दाहिने हाथ के इशारे से एक अलग शिला-खण्ड का निर्देश करते हुए मुझे अनुमति दी, "बैठिए।"

देखा, रमणी मे आदेश देने की क्षमता है। मैंने उमसे उस भीगे शैवाल से ढके कठोर असमतल शिला-खण्ड के नीचे आसन ग्रहण करने की सम्मति पाकर एक अप्रत्याशित सम्मान प्राप्त किया। वद्राओन के गुलामकादिर खाँ की पुत्री नूरन्निसा या मेहरुन्निसा या नूर-उल्-मुल्क ने मुझे दार्जिलिंग के कैलकाटा रोड के किनारे अपने पास अति उच्च पङ्किल आसन पर बैठने का अधिकार दिया। होटल से मैकिण्टोश पहनकर बाहर निकलते समय ऐसी सुमहत् संभावना की मुझे स्वप्न मे भी आशा न थी।

हिमालय के वक्ष पर शिला-तले एकात मे पथिक नर-नारी की रहस्यालाप-कहानी सुनने मे सहसा सद्य प्रणीत कदुष्ण काव्य-कथा की भाँति लगती है, पाठकों के हृदय में दूरागत निर्जन गिरिकन्दरा की निर्झरप्रपातध्वनि एवं कालिदास-रचित मेघदूत, कुमारसंभव के विचित्र संगीत की मर्मर ध्वनि जाग्रत हो जाती है, तथापि यह बात सबको स्वीकार करनी पड़ेगी कि बूट और मैकिण्टोश पहने कैलकाटा रोड के किनारे कर्दमासन पर एक दीनवेशधारिणी हिन्दुस्तानी (अबंगाली) रमणी के साथ एक जगह बैठकर पूरे आत्म-गौरव का अक्षुण्ण भाव से अनुभव कर सकें, ऐसे आधुनिक बंगाली बहुत ही कम होंगे। किन्तु उस दिन दसो दिशाएँ सघन कुहरे से ढकी हुई थी, अत. दुनिया की आँखों से शरमाने की कोई बात नही थी। अनन्त मेघराज्य में केवल वद्राओन के नवाब गुलामकादिर खाँ की पुत्री और मैं—एक नवविकसित बंगाली साहब—दोनो जने पत्थरो के ऊपर प्रलय के अन्त मे बचे दो विश्व-खण्डों के समान थे; इस विसदृश सम्मेलन का गूढ परिहास केवल हमारे भाग्य को ज्ञात था और किसी को नही।

मैंने कहा, "बीबी साहिबा, तुम्हारा यह हाल किसने किया ?"

बद्राओनकुमारी ने अपना सिर ठोक लिया। बोली, "यह सब कौन कराता है, सो मैं क्या जानूं ! इतने बड़े प्रस्तरमय कठिन हिमालय को साधारण भाप के मेघों मे किसने छिपा दिया है !"

मैने किसी प्रकार का दार्शनिक तर्क उठाए बिना ही सब स्वीकार कर लिया। बोला, "सो तो है, अदृष्ट के रहस्य को कौन जाने ! हम तो कीटमात्र है।"

मैं तर्क करता, बीबी साहिबा को इतनी आसानी से छुट्टी न दे देता, किन्तु मेरी भाषा मे सामर्थ्य न थी। दरबान और खानसामाओ के सम्पर्क से हिन्दी का जो अभ्यास हुआ था उससे कैलकाटा रोड के किनारे बैठकर बद्राओन अथवा अन्य किसी स्थान की किसी नवाबपुत्री के अदृष्टवाद अथवा स्वाधीन इच्छावाद के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से आलोचना करना मेरे लिए असम्भव ही होता।

वीवी साहिवा ने कहा, "मेरे जीवन की अद्भुत कहानी आज ही समाप्त हुई है, यदि फरमाइश करें तो सुनाऊँ।"

मैंने अधीर होकर कहा, "आश्चर्य है! फरमाइश कैसी! यदि अनुग्रह करें तो सुनकर श्रवण सार्थक होंगे।"

कोई यह न सोचे, मैंने ठीक ये ही वातें इसी प्रकार हिन्दुस्तानी भाषा मे कही थी, कहने की इच्छा तो थी, किन्तु सामर्थ्य नही थी। वीवी साहिवा जव वात कर रही थी तव मुझे लग रहा था मानो शिशिर-स्नात स्वर्णशीर्ष स्निग्धश्यामल शस्य-क्षेत्र के ऊपर प्रभात की मन्दमधुर वायु लहरा रही हो, उनके शब्द-शब्द मे कैसी सहज नम्रता, कैसा सौन्दर्य, वाक्यों का कैसा अविच्छिन्न प्रवाह था! और मैं अत्यन्त संक्षेप मे टूटे-फूटे ढंग से वर्वर की भाँति सीधा-सादा उत्तर दे रहा था। भाषा की वैसी सुसम्पूर्ण अविच्छिन्न सहज शिष्टता मैंने कभी जानी ही न थी। वीवी साहिवा से वात करते समय ही मैंने पहली वार पग-पग पर अपने आचरण की दीनता अनुभव की।

वे वोली, "मेरे पितृ-कुल मे दिल्ली के सम्राट्-वंश का रक्त प्रवाहित था, उसी कुल-गौरव की रक्षा के विचार से मेरे लिए उपयुक्त पात्र मिलना दुःसाध्य हो गया था। लखनऊ के नवाव के साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव आया था, पिता इधर-उधर कर रहे थे, तभी दाँत से कारतूस काटने की वात पर सिपाहियो के साथ सरकार वहादुर की लड़ाई छिड़ गई, तोपो के धुएँ से हिन्दुस्तान मे अँधेरा छा गया।"

स्त्री के कण्ठ से, विशेषकर सम्भ्रात महिला के मुख से हिन्दुस्तानी कभी नही सुनी थी, सुनकर स्पष्ट समझ गया कि यह भाषा अमीरो की भाषा है—यह जिन दिनों की भाषा थी वे दिन आज नही रहे, आज रेलवे-टैलिग्राफ कामों की भीड़ और आभिजात्य के लोप के कारण सभी मानो तुच्छ, विकलाग और श्रीहीन हो गया है। नवावजादी की वोली सुनते ही उस अंग्रेज-रचित आधुनिक शैलनगरी दार्जिलिंग के सघन कुज्झटिका-जाल मे मेरे मन के नेत्रो के सामने मुगल-सम्राटो की मानसपुरी मानो जादू के वल से साकार हो उठी—सफेद पत्थरो के वने वड़े-वड़े अभ्रभेदी प्रासादों की श्रेणी, मार्ग मे लम्वी पूँछ वाले घोड़ों की पीठ पर सजी मसनदे, हाथियो की पीठ पर सोने की झालर से सजे हौदे, पुरवासियो के सिरो पर नाना वर्णो के उष्णीष, ऊन के, रेशम के, मलमल के ढीले-ढाले कुरते-पायजामे, कमरवंदो मे वॉकी तलवारे, ज़रीदार जूतो की मुडी हुई नोके, पर्याप्त अवकाश, लम्वी पोशाक और अत्यधिक शिष्टाचार।

नवावजादी ने कहा, "हमारा किला यमुना के किनारे था। हमारी फौज का सेनापति एक हिन्दू ब्राह्मण था। उसका नाम था केशरलाल।"

रमणी ने इस केशरलाल शब्द पर अपने नारी-कण्ठ का समस्त संगीत मानो एक ही क्षण मे पूरा-का-पूरा उँडेल दिया हो। मैं धरती पर छड़ी टेककर हिल-डुलकर उकड़ूँ होकर बैठ गया।

केशरलाल कट्टर हिन्दू था। मैं प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अन्त पुर के गवाक्ष से देखती, केशरलाल यमुना-जल मे आवक्ष निमग्न होकर प्रदक्षिणा करते हुए हाथ जोड़कर ऊर्ध्वमुख हो नवोदित सूर्य को अंजलि प्रदान करता। फिर गीले कपड़े पहने घाट पर बैठकर एकाग्रचित से जप समाप्त कर स्पष्ट कण्ठ से भैरव-राग मे भजन गाता हुआ घर लौटता।

मैं मुसलमान बालिका थी, किन्तु कभी स्वधर्म की चर्चा नही सुनी थी और स्वधर्मानुसार उपासना-विधि भी नही जानती थी; उन दिनो विलास, मद्य-पान और स्वेच्छाचार के कारण हमारे पुरुषो का धर्म-बन्धन शिथिल हो गया था एव अन्त पुर के प्रमोद-भवनो मे भी धर्म सजीव नही था।

कदाचित् विधाता ने मुझे स्वाभाविक रूप से धर्म-पिपासा प्रदान की थी। अथवा कोई और गूढ कारण था या नही, मैं नही कह सकती, किन्तु प्रतिदिन प्रशान्त प्रभात मे नवोन्मेषित अरुणालोक मे निस्तरग नील यमुना के निर्जन श्वेत सोपान-तट पर केशरलाल की पूजार्चना के दृश्य से मेरा सद्यसुप्तोत्थित अन्त.करण एक अव्यक्त भक्ति-माधुर्य से परिप्लावित हो जाता।

नियत-संयत शुद्धाचार वाले ब्राह्मण केशरलाल का गौरवर्ण, जीवत, सुन्दर देह धूम-रहित ज्योति-शिखा के समान प्रतीत होती, ब्राह्मण का पुण्य-माहात्म्य इस मुसलमान बालिका के मुँह हृदय को अपूर्व श्रद्धाभाव से विनम्र कर देता।

मेरी एक हिन्दू बाँदी थी, वह प्रतिदिन प्रणाम करके केशरलाल की पद-धूलि ले आती, देखकर मुझे आनद भी होता, ईर्ष्या भी होती। क्रिया-कर्म और पर्वो के अवसर पर यह वन्दिनी बीच-बीच मे ब्राह्मण-भोजन कराकर दक्षिणा दिया करती। मैं अपनी ओर से उसे आर्थिक सहायता देकर कहती, "तू केशरलाल को नही न्यौतेगी?" वह जीभ काटकर कहती, "केशरलालजी किसी का अन्न या दान ग्रहण नही करते।"

इस प्रकार प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप मे केशरलाल को भक्ति-भाव न दिखा सकने के कारण मेरा चित्त जैसे क्षुब्ध क्षुधातुर बना रहता।

हमारे पूर्वपुरुषो मे किसी ने बलपूर्वक एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह किया था, मै अन्त पुर के कोने मे बैठकर अपनी धमनियों मे उसीके पुण्यरक्त के प्रवाह का अनुभव करती और उसी रक्त-सूत्र द्वारा केशरलाल के साथ एक ऐक्य सम्बन्ध

की कल्पना करके थोडी-बहुत तृप्ति अनुभव करती।

अपनी हिन्दू दासी से मैं हिन्दू-धर्म के समस्त आचार-व्यवहार, देवी-देवताओ की सारी आश्चर्यजनक कथाएँ, रामायण-महाभारत का सारा अपूर्व इतिहास विस्तार से सुनती; सुनकर उस अन्तःपुर के एक भाग मे बैठे-बैठे हिन्दू-जगत् का एक अतुलनीय दृश्य मेरे मन मे उद्घाटित हो जाता। मूर्ति-प्रतिमाएँ, शंख-घटा-ध्वनि, स्वर्ण-शिखर-मडित देवालय, धूप का धुआँ, अगर-चन्दन-मिश्रित पुष्पराशि की सुगन्ध, योगी-संन्यासियो की आलौकिक क्षमता, ब्राह्मणो का अलौकिक माहात्म्य, मनुष्य के छद्म-वेश मे देवताओ की विचित्र लीला, सब मिलकर मेरे लिए एक अत्यन्त प्राचीन, अति विस्तृत, अति सुदूर अप्राकृत मायालोक का सृजन कर देते, मेरा चित्त मानो कोटर-वचित क्षुद्र पक्षी की भाँति सन्ध्या के समय किसी विशाल प्राचीन प्रासाद के कक्ष-कक्ष मे उडता-डोलता। हिन्दू-जगत् मेरे बालिका-हृदय के लिए एक परमरमणीय परीदेश का राज्य था।

तभी कम्पनी बहादुर के साथ सिपाहियो की लडाई छिड गई। हमारे बद्राओन के छोटे-से किले मे भी विप्लव की तरंग जाग उठी।

केशरलाल बोला, "अब गो-भक्षक गोरे लोगों को आर्यावर्त से दूर भगाकर एक बार फिर हिन्दुस्तान मे राजपद के लिए हिन्दू-मुसलमानो मे जुए की बाजी जमानी पड़ेगी।"

मेरे पिता गुलामकादिर खाँ बड़े सयाने थे। उन्होने अंग्रेज जाति को किसी एक विशेष सम्बन्ध-सूचक सम्बोधन से अभिहित करके कहा, "वे असम्भव को सम्भव कर सकते है, हिन्दुस्तान के लोग उनसे पार नही पा सकेगे! मैं अनिश्चित प्रत्याशा मे अपना यह छोटा-सा किला खोना नही चाहता, मैं कम्पनी बहादुर से नही लड़ूँगा।"

जिस समय हिन्दुस्तान के समस्त हिन्दू-मुसलमानो का खून खौल उठा था, उस समय मेरे पिता की वणिक् की-सी इस सतर्कता के प्रति हम सभी के मन मे धिक्कार का भाव आ गया। मेरी बेगम-माताएँ तक हिल गई।

तभी फौज लिये सशस्त्र केशरलाल आकर मेरे पिता से बोले, "नवाब साहब, यदि आप हमारे पक्ष मे योग नही देंगे तो जब तक लड़ाई चलेगी तब तक आपको बन्दी बनाकर आपके किले का आधिपत्य-भार मैं ग्रहण करूँगा।" पिता बोले, 'इस सब हंगामे की कोई जरूरत नही, मै तुम्हारे पक्ष मे रहूँगा।" केशरलाल बोले, "खजाने मे से कुछ धन निकालना है।"

पिता ने विशेष कुछ नही दिया; कहा, "जब जितना चाहिए मै दे दूँगा।"

चोटी से लेकर पैरो की अँगुलियो तक मेरे अंग-प्रत्यंग मे जितने आभूषण थे

मैंने सब कपडे मे बाँधकर अपनी हिन्दू-दासी द्वारा छिपाकर केशरलाल के पास भेज दिए। उन्होने स्वीकार कर लिया। आनन्द से आभूषण-विहीन मेरा अंग-प्रत्यंग पुलकित-रोमाञ्चित हो उठा।

केशरलाल जगखाई वन्दूकों की नलियों और पुरानी तलवारो को माँज-घिसकर साफ करने लगे, तभी अचानक एक दिन तीसरे पहर ज़िले के कमिश्नर साहव ने लालकुर्ती गोरों के साथ आकाश मे धूल उडाते हमारे किले मे आकर प्रवेश किया।

मेरे पिता गुलामाकदिर खाँ ने चुपचाप उनको विद्रोह का समाचार दे दिया था।

वद्राओन की फौज के ऊपर केशरलाल का ऐसा अलौकिक आधिपत्य था कि उसकी आज्ञा से वे टूटी वन्दूके और भोथरी तलवारे लेकर मरने के लिए प्रस्तुत हो गए।

विश्वासघाती पिता का घर मुझे नरक के समान प्रतीत हुआ। क्षोभ, लज्जा, दु:ख, घृणा से छाती फटने लगी, तो भी आँखो से एक बूंद जल नही निकला। मैं अपने भीरु भाई की पोशाक पहनकर छद्मवेश मे अन्त:पुर से वाहर निकल गई, किसी को देखने की फ़ुरसत नही थी।

उस समय धूल और वारूद-का धुआँ, सैनिको का आर्त्तनाद एव वन्दूको का शव्द थम चुका था और मृत्यु की भीपण शान्ति ने जल-स्थल और आकाश को आच्छन्न कर लिया था। यमुना के जल को लाल रक्त से रँगकर सूर्य अस्त हो गया था, संध्याकाश मे शुक्लपक्ष का पूर्णप्राय: चन्द्रमा दिख रहा था।

मृत्यु के विकट दृश्य से रण-क्षेत्र पटा पडा था। और कोई समय होता तो करुणा से मेरा वक्ष:स्थल व्यथित हो उठता, किन्तु उस दिन स्वप्नाभिभूत की भाँति मै केशरलाल को खोजती चक्कर काटती फिर रही थी, वस उस लक्ष्य के अतिरिक्त और सव मुझे अवास्तव प्रतीत हो रहा था।

ढूंढते-ढूंढते आधी रात को उज्जवल चन्द्रालोक मे देखा, रण-क्षेत्र से थोडी दूर पर यमुना के किनारे आम्र-वन की छाया मे केशरलाल और उनके भक्त भृत्य देवकीनन्दन की मृत देह पडी है। मैं समझ गई कि भयानक आहत अवस्था मे या तो स्वामी ने सेवक को या सेवक ने स्वामी को रण-क्षेत्र से इस निरापद स्थान मे ले आकर शान्तिपूर्वक मृत्यु के हाथों आत्म-समर्पण किया होगा।

पहले तो मैंने अपनी वहुत दिनो की भूखी भक्ति-भावना को चरितार्थ किया। केशरलाल के पैरो पर लेटकर अपना आजानुदीर्घ केश-जाल खोलकर वारवार उनके पैरो की धूल पोंछी, अपने उत्तप्त ललाट से उसके हिमशीतल

चरणकमल लगाए, उनके चरणों का चुम्बन करते ही मेरी वहुत दिनो की रुकी हुई अश्रु-राशि फूट पडी।

तभी केशरलाल की देह हिली, और अचानक उनके मुख से वेदना का अस्फुट आर्त्त-स्वर सुनकर मैं उनके चरणतल छोड़कर चौक उठी। मैंने सुना, आँखे वंद किये हुए शुष्क कंठ से एक वार उन्होने कहा, "पानी।"

मै तत्क्षण दौड़ी-दौड़ी गई और अपने तन के कपड़े को यमुना के जल मे भिगो लाई। कपड़े को निचोड़कर केशरलाल के खुले ओष्ठाधरो मे पानी डालने लगी, और वाई आँख को फोडता हुआ उनके माथे में जहाँ भयकर आघात लगा था उस पर अपने कपड़े का गीला छोर फाडकर वाँध दिया।

इसी तरह कई वार यमुना का जल लाकर उनके मुख, नेत्रो को सीचने के वाद धीरे-धीरे उनमे चेतना का सचार हुआ। मैंने पूछा, "और पानी डालूँ ?" केशर-लाल ने कहा, "तुम कौन हो ?" मैं अव और न रह सकी, वोली, "आपकी अदीना भक्त सेविका। मै नवाव गुलामकादिर खाँ की वेटी हूँ।" मैंने सोचा था, आसन्न मृत्यु के समय केशरलाल अपने भक्त का आखिरी परिचय साथ लेते जाएँ, इस सुख से मुझे कोई वंचित नही कर सकता।

मेरा परिचय पाते ही केशरलाल सिंह के समान गरजकर वोले, "वेईमान की वेटी, विधर्मी! मृत्यु की घडी मे यवन के हाथ का जल देकर तूने मेरा धर्म नष्ट कर डाला!" इतना कहकर उन्होने वड़े जोर से मेरे गाल पर दाहिने हाथ से तमाचा मारा; मैं मूर्छित-सी हो गई, मेरे नेत्रों के सामने अंधकार छा गया।

उस समय मै पोडशी थी, उस दिन पहली वार अन्तःपुर से वाहर निकली थी, अभी वाहर के आकाश की लुब्ध, तप्त सूर्य-किरणो ने मेरे सुकुमार कपोलो की रक्तवर्ण लावण्यविभा का अपहरण नहीं किया था, उस वहिर्जगत् मे पैर रखते ही जगत् से, अपने जगत् के देवता से यह प्रथम सबोधन प्राप्त हुआ।

मैं सिगरेट वुझाए मोह-मुग्ध चित्र-लिखित के समान वैठा हुआ था। कहानी सुन रहा था, या शब्द सुन रहा था, या सगीत सुन रहा था, पता नही, मेरे मुँह से कोई वात न निकली। अव मैं और न रह सका, सहसा वोल उठा, "जानवर!"

नवावजादी ने कहा, "जानवर कौन ? जानवर क्या मृत्यु की यन्त्रणा के समय ओठों तक आए जल-विन्दु का परित्याग करता है ?"

मैंने अप्रतिभ होकर कहा, "सही है। वह देवता था।"

नवावजादी ने कहा, "कैसा देवता! क्या देवता एकाग्रचित्त भक्त की सेवा का प्रत्याख्यान कर सकता है ?"

मैं बोला, "यह भी सही है।" कहकर चुप हो गया।

नवावजादी कहने लगी, "पहले तो मुझे वडा बुरा लगा। लगा कि सारा विश्व अचानक चूर-चूर होकर मेरे सिर पर टूट पडा हो। क्षण-भर वाद सँभलकर उस कठोर, कठिन, निष्ठुर, निर्विकार, पवित्र ब्राह्मण के चरणों मे दूर से प्रणाम किया, मन-ही-मन कहा, 'हे ब्राह्मण! तुम दीनो की सेवा, दूसरो का अन्न, धनी का दान, युवती का यौवन, रमणी का प्रेम कुछ भी ग्रहण नही करते! तुम स्वतन्त्र, एकाकी, निर्लिप्त, सुदूर हो, तुम्हारे प्रति आत्म-समर्पण करने का भी मुझे अधिकार नही है!'

"नवाव-दुहिता को धरती पर मस्तक टेककर प्रणाम करते देखकर केशरलाल ने क्या सोचा, नही कह सकती, किन्तु उसके चेहरे से विस्मय अथवा किसी अन्य भाव-परिवर्तन का परिचय नही मिला। शान्त भाव से एक वार मेरे मुँह की ओर देखा, उसके वाद धीरे-धीरे उठा। मैंने चौककर सहारा देने के लिए अपना हाथ वढाया, उसने विना वोले उसका प्रत्याख्यान किया, और वड़े कष्ट से यमुना के घाट पर जा पहुँचा। वहाँ पार आने-जाने वाली एक नौका वँधी हुई थी। पार उतरने के लिए भी कोई नही था, पार उतारने वाला भी कोई नही था। उस नौका पर चढकर केशरलाल ने वधन खोल दिया, देखते-देखते नौका वीच धार मे जाकर धीरे-धीरे अदृश्य हो गई—मेरी इच्छा हुई कि समस्त हृदयभार, समस्त यौवन-भार, समस्त अनादृत भक्ति-भार लेकर उस अदृश्य नौका की ओर हाथ जोडकर उस निस्तब्ध आधी रात मे, उस चन्द्रालोक-पुलकित निस्तरग यमुना मे अकाल-वृन्तच्युत पुष्प-मजरी के समान इस व्यर्थ जीवन को विसर्जित कर दूँ।

"किन्तु कर नही सकी। आकाश मे चन्द्र, यमुना-पार की घनकृष्ण वनरेखा, कालिन्दी की गाढी नीली निष्कम्प जलराशि, दूर आम्रवन के ऊपर चमकता हमारे ज्योत्स्नाचिक्कन किले का शिखर भाग, सवने नि शव्द-गम्भीर एकतान से मृत्यु का गीत गाया, उस अर्ध-रात्रि मे ग्रहचन्द्रताराखचित निस्तव्ध तीनों भुवनो ने मुझसे एक स्वर मे मरने के लिए कहा। केवल वीचिभंगविहीन प्रशान्त यमुना के वक्ष पर उतराती हुई एक अदृश्य जीर्ण नौका मुझे उस ज्योत्स्ना रजनी के सौम्य-सुन्दर शान्त-शीतल अनन्त भुवनमोहन मृत्यु के फैले आलिगन-वन्धन से छुडाकर जीवन के पथ पर खीच ले चली। मै मोहस्वप्नाभिभूत के समान यमुना के किनारे-किनारे कभी काँस-वन मे, कभी मरु-वालुका पर, कभी असमतल विदीर्ण तट पर, कभी सघन गुल्म के दुर्गम वन-खण्ड मे भटकती हुई चलने लगी।"

यहाँ वक्ता चुप हो गया। मैंने भी कोई वात नही कही।

कुछ देर वाद नवाव-दुहिता ने कहा, "इसके वाद की घटनावली वहुत जटिल

है। मैं नही जानती कैसे उसका विश्लेषण करके स्पष्ट रूप से कहूँ। एक गहन अरण्य मे होकर यात्रा की, ठीक किस रास्ते होकर कब गई इसे क्या फिर ढूँढ निकाल सकती हूँ ? कहाँ आरम्भ करूँ, कहाँ समाप्त करूँ, क्या छोडूँ, क्या रखूँ, सम्पूर्ण कहानी को किस प्रकार ऐसा स्पष्ट प्रत्यक्षवत् बनाऊँ जिसमे कुछ भी असम्भव और अस्वाभाविक न प्रतीत हो।

"किन्तु जीवन के इन थोड़े से दिनो मे यह समझ गई हूँ कि असाध्य-असम्भव कुछ भी नही है। नवाब के अन्त.पुर की बालिका के लिए बाहर का ससार नितान्त दुर्गम कहा जा सकता है, किन्तु यह कल्पना-मात्र है, एक बार बाहर निकल पडने पर चलने के लिए रास्ता मिल ही जाता है। वह रास्ता नवाबी रास्ता भले ही न हो, किन्तु रास्ता है, उस पथ पर मनुष्य चिरकाल से चलता आ रहा है—वह असमतल, विचित्र, सीमाहीन है, वह शाखा-प्रशाखाओं मे विभक्त है, सुख-दु ख, बाधा, विघ्नो के कारण वह जटिल है, किन्तु वह पथ जरूर है।

"इस सामान्य जन-जीवन के पथ पर एकाकिनी नवाब-दुहिता का लम्बा भ्रमण-वृत्तान्त सुख-श्राव्य नही होगा, हो तो भी वह पूरा वृत्तान्त सुनाने का मुझमे उत्साह नही है। एक शब्द मे, दु ख-कष्ट, विपद्, अवमानना बहुत भुगतनी पडी तो भी जीवन असह्य नही हुआ। आतिशबाजी के समान जितनी जली उतनी ही उद्दाम गति प्राप्त की ; जितने समय वेग से चली उतने समय जल रही थी ऐसा बोध नही हुआ, आज सहसा उस परम दु:ख, उस चरम सुख की ज्योतिशिखा बुझने पर इस पथ की धूल के ऊपर जड पदार्थ की भाँति गिर पडी हूँ—आज मेरी यात्रा समाप्त हो गई है, यही मेरी कहानी भी समाप्त होती है।'

यह कहकर नवाबपुत्री रुक गई। मैंने मन-ही-मन गर्दन हिलाई, यहाँ तो किसी भी तरह समाप्त नही हो सकती। कुछ देर चुप रहकर टूटी-फूटी हिन्दी मे बोला, "बे-अदबी माफ कीजिएगा, अन्त की बात को थोडा और खुलासा कहे तो सेवक के मन की व्याकुलता बहुत-कुछ कम हो जायगी।"

नवाबजादी हँसी। मैं समझा मेरी टूटी-फूटी हिन्दी का असर हुआ है। यदि मैं ठेठ हिन्दी मे बात कर पाता तो मेरे प्रति उनका सकोच न मिटता, किंतु मैं उनकी मातृभाषा बहुत ही कम जानता था। वही हम दोनो के बीच बडा व्यवधान था, वही एक पर्दा था।

उन्होने फिर आरम्भ किया, "केशरलाल का समाचार मै प्राय पाती, किंतु किसी भी प्रकार उनसे मिलना नही हो सका। ताँतिया टोपे के दल मे मिलकर उस विप्लवाच्छन्न आकाश मे वे कभी पूर्व मे, कभी पश्चिम मे, कभी ईशान मे, कभी नैऋति मे वज्रपात के समान क्षण मे टूटते, क्षण मे अदृश्य हो जाते थे।

"उन दिनो मै योगिनी वनकर काशी के शिवानन्द स्वामी को पिता के समान मानकर उनके पास सस्कृत-शास्त्र का अध्ययन कर रही थी। भारतवर्ष का सारा समाचार उनके चरणो मे आता रहता, मैं भक्तिपूर्वक शास्त्राभ्यास करती और हार्दिक व्याकुलता के साथ युद्ध के समाचारो का सग्रह करती।

"धीरे-धीरे ब्रिटिशराज ने हिन्दुस्तान की विद्रोह-वह्नि को पैरों से कुचलकर वुझा दिया। तभी अचानक केशरलाल का समाचार मिलना वन्द हो गया। प्रचण्ड प्रलयालोक की रक्त-रश्मियो मे भारनवर्ष के सुदूर प्रान्तो की जो समस्त वीर-मूर्तियाँ क्षण-क्षण मे दिखाई दे रही थी, वे सहसा अन्धकार मे विलीन हो गई।

"मैं अब और नही रह सकी। गुरु का आश्रय छोडकर भैरवी-वेश धारण करके फिर बाहर निकल पडी। नाना मार्गो, तीर्थो, मठ-मन्दिरोकी यात्रा की, केशरलाल का कही कोई पता न मिला। दो-एक व्यक्तियो ने, जो उनका नाम जानते थे, कहा, "वह कदाचित् युद्ध या राजदण्ड द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो चुके है।" पर मेरी अन्तरात्मा ने कहा, 'कभी नही, केशरलाल की मृत्यु नही हो सकती। वह ब्राह्मण वह दु.सह अग्नि-ज्योति कदापि नही बुझ सकती, मेरी आत्माहुति ग्रहण करने के लिए वह अभी तक किसी दुर्गम निर्जन यज्ञ-वेदी पर ऊर्ध्वशिखा के रूप मे जल रही होगी।'

"हिन्दू-शास्त्रो मे लिखा है कि ज्ञान के द्वारा, तपस्या के द्वारा शूद्र ब्राह्मण हो गए है, मुसलमान ब्राह्मण हो सकता है या नही इस बात का कोई उल्लेख नही मिलता। इसका एकमात्र कारण है, उस समय मुसलमान थे ही नही। मैं जानती थी कि केशरलाल के साथ मेरे मिलन मे वहुत विलम्ब है, क्योकि पहले मुझे ब्राह्मण होना पड़ेगा। एक-एक करके तीस वर्ष बीत गए। मै हृदय से, बाहर से, आचार से, व्यवहार से, तन-मन-वचन से ब्राह्मण हो गई थी, मेरी उस ब्राह्मण पितामही का रक्त निष्कलुप तेज से मेरे सर्वाङ्ग मे प्रवाहित होने लग गया था, मैंने मन-ही-मन अपने उस यौवनारम्भ के प्रथम ब्राह्मण, अपनी यौवनसमाप्ति के अन्तिम ब्राह्मण, त्रिभुवन के अपने एकमात्र ब्राह्मण के चरणो मे निस्सकोच भाव से अपने को सपूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करके एक अपूर्व दीप्ति प्राप्त कर ली थी।

"युद्ध-विप्लव के प्रसग मे केशरलाल के वीरत्व की अनेक बातें मैने सुनी, किन्तु वे मेरे हृदय पर अकित नही हुई। वस एक वही चित्र जो मैने देखा था, जिसमे नि शव्द ज्योत्स्नापूर्ण अर्धरात्रि मे निस्तव्ध यमुना की बीच धार मे एक छोटी नौका पर आरूढ हो एकाकी केशरलाल वहा जा रहा था, वस, वह मेरे मन मे अंकित रह गया। मैं वस अहरह देखा करती, ब्राह्मण निर्जन स्रोत मे पडकर रात-दिन किसी अनिर्दिष्ट रहस्य की ओर दौड़ रहा है, उसका कोई सगी नही, कोई सेवक नही, उसे

किसी की आवश्यकता नही, वह निर्मल आत्म-निमग्न पुरुष अपने-आपमें सम्पूर्ण है. आकाश के ग्रह-चन्द-तारे उसका चुपचाप निरीक्षण करते है।

"इसी बीच समाचार मिला कि केशरलाल ने राजदण्ड से भागकर नेपाल मे आश्रय लिया है। मैं नेपाल गई। वहाँ वहुत समय तक रहने के वाद समाचार मिला कि वहुत समय हुआ केशरलाल नेपाल छोड़कर न जाने कहाँ चला गया।

उसके वाद से मैं पहाडो-पहाड भ्रमण कर रही हूँ। यह हिन्दुओं का देश नही है—यहाँ भोटिया, लेप्चा, म्लेच्छ है। इनके आहार-व्यवहार, आचार-विचार और इनके देवता, इनकी पूजार्चना-विधि सभी अलग है। वहुत दिनो की साधना के फलस्वरूप मैंने जो विशुद्ध शुचिता अर्जित की थी, मुझे भय हुआ कि कही उसमे कलंक न लग जाय। मैं वड़े यत्न से हर प्रकार के मलिन संस्पर्श से अपनी रक्षा करती चलने लगी। मैं जानती थी कि मेरी नौका किनारे आ लगी थी, अपनेजीवन के चरमतीर्थ के पास।

"उसके वाद और क्या कहूँ! वाकी वात तो वहुत थोड़ी है। दिया जव वुझता है तव एक लपक मे ही वुझ जाता है, उस वात की और वढ़ाकर क्या व्याख्या करूँ?

"अडतीस वर्ष के वाद दार्जिलिग मे आकर आज प्रातःकाल केशरलाल को देखा?"

यहाँ वक्ता को चुप होते देख मैंने उत्सुकतापूर्वक प्रश्न किया, "क्या देखा?"

नवावजादी ने कहा, "देखा वृद्ध केशरलाल भोटिया मुहल्ले में भोटिया स्त्री एव उसे उत्पन्न पौत्र-पौत्री लेकर मैले कपडे पहने, मैले आँगन मे भुट्टो से अनाज निकाल रहा है।"

कहानी समाप्त हो गई, मैंने सोचा सान्त्वना के कुछ शब्द कहना आवश्यक था। कहा, "अडतीस वर्ष तक लगातार जिसको प्राणों के भय से रात-दिन विजातियो के सपर्क मे रहना पड़ा हो वह अपने आचार की रक्षा कैसे कर सकता है?"

नवावज़ादी ने कहा, "मैं क्या यह नही समझती? किन्तु इतने दिन मैं न जाने कैसा-सा मोह लिये डोल रही थी! जिस व्राह्मणत्व ने मेरे किशोर हृदय को हर लिया था, मैं क्या जानती थी कि वह केवल अभ्यास या संस्कार था। मैं समझती थी वह धर्म, अनादि अनन्त था। यदि ऐसा न होता तो सोलह वर्ष की अवस्था मे पहली वार पितृ-गृह से निकलकर उस ज्योत्स्नापूर्ण अर्धरात्रि मे अपने विकसित, पुष्पित भक्तिवेगकम्पित देह-मन-प्राणों के समर्पण के वदले मे व्राह्मण के दाहिने हाथ से जो दु सह अपमान प्राप्त हुआ उसे गुरु के हाथो मिली दीक्षा के समान चुपचाप माथा झुकाकर द्विगुणित भक्ति-भाव से शिरोधार्य क्योकरती? हाय व्राह्मण!

तुमने तो अपने अभ्यास के बदले मे एक और अभ्यास ग्रहण कर लिया है, मैं अपने उस यौवन, उस जीवन के बदले मे दूसरा जीवन, यौवन अब कहाँ पाऊँगी ?"

यह कहकर रमणी उठ खडी हुई, बोली, "नमस्कार, बाबूजी !"

क्षण-भर बाद मानो सशोधन करके कहा, 'सलाम, बाबू साहब !" इस मुसल्मान अभिवादन के द्वारा उसने मानो जर्जर धराशायी भग्न ब्राह्मण से अन्तिम विदाई ली। मेरे कुछ कहने के पहले ही वह उस हिमाद्रि-शिखर की धूसर कुज्झटिका-राशि मे मेघ की भाँति विलीन हो गई।

मैं क्षण-भर के लिए आंखे मूँदकर समस्त घटनावली को अपने मानसपट पर चित्रित देखने लगा। यमुना-तीर के गवाक्ष के पास मसनद लगे आसन पर सुखासीना षोडशी नवाव-वालिका को देखा, तीर्थ-मन्दिरों मे सध्या-आरती के समय तपस्विनी की भक्ति-गद्गद् एकाग्र मूर्ति देखी, उसके बाद इस दार्जिलिंग की कैलकाटा रोड के किनारे कुहेलिकाच्छन्न भग्न-हृदया भारकातर नैराश्यमूर्ति भी देखी, एक सुकुमार रमणी-देह मे ब्राह्मण-मुसलमान रक्तों की तरगो के विपरीत सघर्ष से उत्पन्न विचित्र व्याकुल सगीत की ध्वनि सुन्दर सम्पूर्ण उर्दू भाषा मे विगलित होकर मेरे मस्तिष्क मे स्पन्दित होने लगी।

आँखें खोलकर देखा, बादल अचानक फट गए थे और स्निग्ध धूप मे निर्मल आकाश झलमला रहा था। ठेलागाड़ी मे अग्रेज रमणियो और घोडे की पीठ पर अग्रेज पुरुषगण वायु सेवन के लिए निकल पड़े थे, बीच-बीच मे दो-एक बंगालियो के गुलुबन्द से लिपटे मुखमण्डल से मेरी ओर विनोदपूर्ण कटाक्ष भी आ रहे थे। मैं तेजी से उठ खडा हुआ, इस सूर्यालोकित खुले जगत् के दृश्य मे वह मेघाच्छन्न कहानी अब सत्य नही लग रही थी। मेरा विश्वास है कि मैंने पर्वत के कुहरे मे अपनी सिगरेट का धुआँ, बडी मात्रा मे मिश्रित करके कल्पनाखण्ड की रचना की थी—वह मुसलमान ब्राह्मणी, वह विप्रवीर, वह यमुना किनारे का किला शायद कुछ भी सत्य नही था।

दृष्टिदान

: १ :

सुना है, आजकल वहुत-सी वगाली लड़कियो को स्वयं प्रयत्न करके पति ढूँढना पड़ता है। मैंने भी यही किया है, किन्तु देवता की सहायता से। मैंने वचपन से ही वहुत-से व्रत और काफी शिव-पूजा की थी।

आठ वर्ष की आयु पूरी होने के पहले ही मेरा विवाह हो गया था। किन्तु पूर्व-जन्म के पापो के कारण मैं पति को पाकर भी पूरी तरह से न पा सकी। माँ दुर्गा ने मेरी आँखे ले ली। जीवन के अन्तिम क्षण तक पति को देखने का सुख प्रदान नही किया।

वाल्यावस्था से ही मेरी अग्नि-परीक्षा आरम्भ हो गई थी। चौदह वर्ष पूरे होने के पूर्व ही मैंने एक मृत शिशु को जन्म दिया, स्वय भी मृत्यु के समीप पहुँच गई थी, किन्तु जिसके भाग्य मे दु ख वदा होता है वह मर कैसे सकता है! जो दीप जलने के लिए होता है उसमे तेल की कमी नही पड़ती, वह रातभर जलकर ही बुझता है।

वच तो गई, किन्तु शरीर की दुर्वलता, मन के दु ख अथवा जिस कारण से भी हो, मुझे नेत्र-रोग हो गया।

मेरे पति उस समय डॉक्टरी पढ रहे थे। नई विद्या सीखने के उत्साह मे चिकित्सा करने का सुयोग पाते ही वे खुश हो उठते। उन्होने स्वयं मेरी चिकित्सा आरम्भ की। रती हूँ ?")

उस त की लड़ ०-एल० देने के विचार से कॉलेज मे पढ़ रहे थे। उन्होने एक दिन आ आ र पति से कहा, "कर क्या रहे हो! कुमु की आँखे नष्ट करने चले हो। किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाओ!"

मेरे पति ने कहा, "अच्छा डॉक्टर आकर और क्या नई चिकित्सा करेगा? औषधियाँ तो सव जानी हुई है।"

से पार पाओगे ? उसमे भी हमारी ही जीत है।"

इसी वीच भैया के आ जाने पर मैंने उनको अकेले मे वुलाकर कहा, "भैया, आपके उस डॉक्टर की व्यवस्था के अनुसार चलने से मेरी आँखे इस वीच मे खूब अच्छी हो रही थी, एक दिन भ्रम से खाने की दवा का आँखो पर लेप कर लिया तव से आँखे जैसे फूटी जा रही है। मेरे पति कह रहे है, आँखो का ऑपरेशन कराना होगा।"

भैया ने कहा, "मैं सोच रहा था, तुम्हारे पति की ही चिकित्सा चल रही है, इसीसे और भी नाराज होकर मै इतने दिन नही आया।"

मैंने कहा, "नही, मैं विना किसी से कहे उसी डॉक्टर की विधि के अनुसार चल रही थी, पति को वताया ही नही कि कही वे नाराज न हों।"

स्त्री का जन्म लेने पर कितना झूठ वोलना पडता है ! भैया के मन को भी नही दुखाना चाहती, पति के यश को भी कम करते नही वनता। माँ होकर गोद के शिशु को वहलाना पडता है, स्त्री होकर शिशु के पिता को वहलाना पडता है—औरतो के लिए इतनी छलना आवश्यक है।

छलना का फल यह हुआ कि अन्धी होने के पहले अपने भैया और पति का मिलन देख सकी। भैया ने सोचा, 'गोपनीय चिकित्सा करने से ही यह दुर्घटना घटी,' पति ने सोचा, शुरू मे ही मेरे भैया का परामर्श मान लेता तो अच्छा होता। यह सोचकर दो अनुतप्त हृदय भीतर-ही-भीतर क्षमाप्रार्थी होकर एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ गए। पति भैया का परामर्श लेने लगे, भैया भी विनीत भाव से सव वातो मे मेरे पति के मत का ही समर्थन करने लगे।

अन्त मे दोनो के परामर्श के अनुसार एक अंग्रेज डॉक्टर ने मेरी वाई आँख पर अस्त्राघात किया। दुर्वल नेत्र यह आघात नही सह सका, उसकी क्षीण दीप्ति हठात् वुझ गई। उसके वाद वची हुई आँख भी धीरे-धीरे अन्धकार से आवृत हो गई। वाल्यावस्था मे शुभदृष्टि[1] के दिन जो चन्दनचर्चित तरुणमूर्ति मेरे सामने पहले प्रकाशित हुई थी उसके ऊपर सदा के लिए जैसे पर्दा पड गया।

एक दिन मेरी चारपाई के पास आकर पति वोले, "तुम्हारे सामने अव झूठी वडाई और नही करूँगा, तुम्हारी दोनो आँखे मैंने ही नष्ट की है।"

मुझे लगा, उनकी आवाज अश्रु-जल से भर आई है। अपने हाथो मे उनका दाहिना हाथ लेकर मैंने कहा, "अच्छा किया, अपनी वस्तु तुमने ले ली। सोचकर तो देखो, यदि किसी डॉक्टर की चिकित्सा से मेरी आँख नष्ट हुई होती तो उससे

१ वगाल मे विवाह के समय वर-कन्या मे परस्पर दृष्टि-विनिमय करने का एक अनुष्ठान-विशेष।

मुझे क्या सान्त्वना मिलती ! भवितव्यता यदि मिटती नही तो फिर मेरी आँख को कोई वचा ही नही सकता था, वह आँख तुम्हारे हाथों गई है यही मेरे अंधे होने का एक-मात्र सुख है। जव पूजा के फूल कम पड गए थे तव रामचन्द्र अपने दोनो नेत्र निकालकर देवता पर चढ़ाने गए थे। अपने देवता को मैंने अपनी दृष्टि दे दी। अपनी पूर्णिमा की ज्योत्स्ना, अपने प्रभात का प्रकाश अपने आकाश की नीलिमा, अपनी पृथ्वी की हरीतिमा, सव तुमको दे दी; तुम्हारी आँखो को जव जो अच्छा लगे मुझे मुँह से वताना, उसे मैं तुम्हारे नेत्रो से देखने का प्रसाद मानकर ग्रहण करूँगी।"

मैं उतनी वाते कह नही सकी, ऐसी वाते मुँह से कही भी नही जा सकती; ये सव वाते तो मैं वहुत दिनो से सोच रही थी। वीच-वीच मे जव अवसाद का अनुभव करती, निष्ठा का तेज म्लान हो आता, अपने को वंचित दुःखित दुर्भाग्य-दग्ध अनुभव करती, तव मैं अपने मन से यह कहलवा लेती; इस शान्ति, इस भक्ति का अवलवन करके अपने दुःख से भी अपने को ऊँचा उठाने की चेष्टा करती। उस दिन कुछ कहकर कुछ मौन रहकर कदाचित् अपने मन का भाव किसी तरह उन्हे समझा सकी थी। वे वोले, "कुमु, मूढता से तुम्हारा जो नष्ट किया है उसे अव लौटा तो नही सकूँगा, किन्तु जहाँ तक मुझसे हो सकेगा तुम्हारे नेत्रो का अभाव पूरा करने के लिए तुम्हारे साथ-साथ रहूँगा।"

मैंने कहा, "यह वेकार की वात है। तुम अपनी गृहस्थी को एक अन्धे का अस्पताल वनाकर रखोगे, यह मैं किसी प्रकार भी नही होने दूँगी। तुमको दूसरा विवाह करना ही होगा।"

किसलिए दूसरा विवाह करना नितान्त आवश्यक है, यह विस्तारपूर्वक वताने के पहले ही मेरा गला जैसे कुछ भर आया। कुछ खाँसकर, कुछ संभलकर वोलने ही वाली थी कि इसी वीच मेरे पति उच्छ्वसित आवेग से वोल उठे, "मैं मूढ़ हूँ, अहकारी हूँ, किन्तु ऐसा होते हुए भी मैं पाखण्डी नही हूँ। अपने हाथों से तुम्हे अधा कर दिया है, अन्त मे उसी कमी के कारण तुम्हे छोडकर यदि अन्य स्त्री ग्रहण करूँ तो अपने इष्टदेव गोपीनाथ की शपथ खाकर कहता हूँ, मैं ब्रह्म-हत्या, पितृ-हत्या के समान पाप का भागी होऊँ।"

इतनी वडी शपथ नही लेने देती, वाधा डालती, किन्तु उस समय हृदय फोडकर कण्ठ दवाकर दोनो नेत्रो से आँसू उमड़ पडने की कोशिश मे थे, उन्हे रोककर वात नही कह सकती थी। उन्होने जो कहा उसे सुनकर अपार आनन्द के उद्वेग से तकिए मे मुँह गाडकर रो पडी। मैं अंधी हूँ, तो भी वे मुझे नही छोडेगे। दुखी के दुःख के समान मुझे हृदय से गाकर रखेगे। इतना सौभाग्य मैं नही चाहती थी,

किन्तु मन तो स्वार्थी होता है।

आखिर मे आँसुओं की पहली बौछार चुक जाने के बाद उनके मुख को अपने हृदय के पास खीचकर कहा, "ऐसी भीषण शपथ क्यों ली ? मैंने क्या तुमसे अपने सुख के लिए विवाह करने के लिए कहा था ? सौत से मैं अपना स्वार्थ साधती। आँखो के अभाव मे तुम्हारा जो काम मैं स्वयं नही कर पाती वह उससे करवाती।"

पति बोले, "काम तो दासी से भी चल सकता है। काम की सुविधा के लिए दासी से विवाह करके उसे क्या मै अपनी इस देवी के साथ एक आसन पर बैठा सकता हूँ ?" यह कहकर मेरा मुँह उठाकर उन्होने मेरे माथे का एक निर्मल चुम्बन लिया, उस चुम्बन द्वारा मानो मेरा तृतीय नेत्र खुल गया हो। उसी क्षण देवीत्व पद पर मेरा अभिषेक हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा, 'यही अच्छा है। जब मैं अंधी हो गई हूँ तो मैं इस बहिर्संसार की गृहिणी नही हो सकती, अब मैं संसार से से ऊपर उठकर देवी होकर पति का मगल करूँगी।' अब मिथ्या नही, छलना नही, गृहिणी रमणी की जो कुछ क्षुद्रता और कपटता होती है सब दूर कर दी।

उस दिन दिन-भर अपने साथ एक विरोध चलता रहा। गुरुतर शपथ से बाध्य होकर पति किसी भी प्रकार दूसरा विवाह नही कर सकेंगे, यह आनन्द जैसे मन को एकदम जकडे रहा, किसी प्रकार भी उसे छुडा नही सकी। आज मेरे भीतर जिन नई देवी का आविर्भाव हुआ था, उन्होने कहा, 'शायद ऐसा दिन आ सकता है जब इस शपथ का पालन करने की अपेक्षा विवाह करने से तुम्हारे पति का मगल होगा,' किन्तु मेरे भीतर जो पुरातन नारी थी, उसने कहा, 'वह भले हो, किन्तु उन्होने इसमे तुम्हारे प्रसन्न होने का कोई कारण नही है।' मानवी ने कहा, 'सब समझती हूँ, किन्तु जब उन्होने शपथ ली है तब,' इत्यादि। बार-बार वही एक बात। देवी ने तब निरुत्तर होकर केवल भौहे तानी और एक भयंकर आशका के अन्धकार से मेरा सम्पूर्ण अन्त:करण आच्छन्न हो गया।

मेरे अनुतप्त पति नौकर-चाकर-दासियो को मना करके स्वयं मेरा सब काम करने को तैयार हुए। पति के ऊपर तुच्छ बातो के लिए भी इस प्रकार पूर्ण रूप से निर्भर रहना पहले तो अच्छा ही लगता। क्योकि इस प्रकार सब समय उनको उसके पास पाती। आँखो से उनको नही देख पाती थी इसलिए उनके सदा पास बने रहने की आकाक्षा अत्यन्त उग्र हो उठी। पति के सुख का जो अंश मेरे नेत्रो के हिस्से मे पडा था उसको अब अन्य इन्द्रियो ने बाँटकर अपना-अपना हिस्सा बढा लेने की चेष्टा की। अब अपने पति के अधिक समय काम पर बाहर रहने से लगता, जैसे मै शून्य मे होऊँ, जैसे मै कही भी कुछ पकड़ न पा रही होऊँ,

जैसा मेरा सब-कुछ खो गया हो। पहले पति जब कॉलेज जाते तब विलम्ब होने से जगले को थोडा-सा खुला रखकर रास्ता देखती रहती। जिस जगत् मे वे घूमते उस जगत् को नेत्रो द्वारा मैंने अपने साथ बाँध रखा था। आज दृष्टि-हीन मेरा सारा शरीर उनको ढूँढने की चेष्टा करता है। उनकी और मेरी दुनिया के बीच जो प्रधान सेतु था वह आज टूट गया था। अब उनके और मेरे बीच मे एक दुस्तर अंधता थी, अब मुझे निरुपाय होकर व्यग्र भाव से बैठे रहना पडता था, कब वे अपने तट से मेरे तट पर स्वय आकर उपस्थित होगे। इसी कारण अब जब क्षण-भर के लिए भी वे मुझे छोडकर चले जाते तब मेरी सारी अन्धी देह लपककर उन्हे पकडने दौडती है, हाहाकार करके उन्हे पुकारती है।

किन्तु इतनी आकाक्षा, इतना निर्भर रहना तो अच्छा नही। पहले तो पति के ऊपर स्त्री का भार ही पर्याप्त है, उसके ऊपर अंधेपन का भारी भार और नही लाद सकती। अपने इस विश्व-व्यापी अधकार को मैं स्वयं ही वहन करूँगी। एकाग्र मन से मैंने प्रतिज्ञा की—'अपनी इस अनन्त अंधता के द्वारा मै पति को अपने सग बाँधे नही रखूँगी।'

थोडे ही समय मे केवल शब्द-गध-स्पर्श के द्वारा मैंने अपना सारा नित्य कार्य करना सीख लिया। यहाँ तक कि मैं अपना बहुत-सा घर का काम-काज पहले की अपेक्षा अधिक निपुणतापूर्वक निर्वाह करने लगी। अब लगने लगा कि आँखे हमारे काम मे जितनी सहायता करती है उसकी अपेक्षा कही अधिक विक्षिप्त कर देती है। जितना देखने से काम अच्छा होता है आँखे उससे कही ज्यादा देखती है। और आँखे जब पहरेदारी करती है तो कान आलसी बन जाते है, उनको जितना सुनना चाहिए वे उससे कम सुनते है। अब चचल नेत्रो की अनुपस्थिति मे मेरी अन्य समस्त इन्द्रियाँ अपना कर्तव्य शान्त और सम्पूर्ण भाव से करने लगी।

अब मै अपने पति को अपना कोई काम न करने देती, और उनका सारा काम फिर पहले की भाँति मै ही करने लगी।

पति ने मुझसे कहा, "मेरे प्रायश्चित से मुझे वचित कर रही हो।"

मैने कहा, "तुम्हारा प्रायश्चित, मै नही जानती, किन्तु अपने पाप का भार मै क्यो बढ़ाऊँगी।"

जो भी कहे, मैने जब उन्हे छुट्टी दी तो उन्होने मुक्ति की साँस ली। अन्धी स्त्री की सेवा का आजीवन व्रत लेना पुरुषो का काम नही है।

डॉक्टरी पास करके मेरे पति मुझे लेकर मुफस्सिल क्षेत्र मे चले गए। गाँव मे आकर ऐसा लगा, जैसे माता की गोद मे आ गई होऊँ। आठ वर्ष की अवस्था मे मै

गाँव छोडकर शहर आई थी। इन दस वर्षो मे जन्मभूमि मेरे मन मे छाया के समान धुँधली हो चली थी। जब तक आँखे थी कलकत्ता शहर, मेरे चारो ओर अन्य सारी स्मृतियों को ओट मे किये खडा था। आँखों के जाते ही समझ मे आया कि कलकत्ता केवल आँखे लुभाने वाला शहर है, उससे मन नही भरता। दृष्टि खोते ही मेरी अपनी बाल्यावस्था का वह गाँव दिवसावसान के नक्षत्र-लोक की भाँति मेरे मन मे उज्ज्वल हो उठा।

अगहन के अतिम दिनो मे हम हाशिमपुर गए। नया स्थान था, चारो ओर का दृश्य कैसा था, यह तो मैं न जान सकी, किन्तु बाल्य-काल की उस सुगंध और सुख की अनुभूति ने मुझे चारो ओर से घेर लिया। ओस से भीगे नए जुते खेतों से प्रभातकाल की वायु, सुनहरे अरहर और सरसो के खेतो की आकाश-व्यापी कोमल सुमिष्ट सुगध, चरवाहो के गीत, यही नही कच्ची डगर मे होकर चलने वाली बैल-गाडी की आवाज तक ने मुझे पुलकित कर दिया। अपने उस जीवनारम्भ की अतीत स्मृति ने अपनी अनिर्वचनीय ध्वनि और सुगंध से मुझे प्रत्यक्ष वर्तमान की भाँति घेर लिया, अन्धे नेत्र उसका कोई प्रतिवाद नही कर सके। मैं अपने उसी बाल्य-काल मे पहुँच गई, बस माँ नही मिली। मन-ही-मन देखने लगी कि नानी अपने विरल केश-गुच्छो को बिखेरकर धूप की ओर पीठ किये आँगन मे बड़ियाँ तोड रही थी, किन्तु उनके कोमल कम्पित पुराने क्षीण स्वर मे अपने गाँव के साधु भजनदास के देह-तत्त्वपूर्ण गीतो का गुजन-स्वर नही सुनाई पडा, नवान्न का वह उत्सव शीत-काल की ओस से भीगे हुए आकाश के नीचे जागकर सजीव हो उठा; किन्तु ढेकी-घर मे नया धान कूटने वाले लोगो के बीच अपनी छोटी-छोटी ग्रामीण-संगिनियो का मिलन कहाँ गया! सध्या समय कही समीप से ही गायो के रंभाने की ध्वनि सुनाई देती, तब याद आता है कि माँ हाथ मे सध्या-दीप लेकर गोशाला मे दिया दिखाने जा रही हे, उसी के साथ भीगी घास के चारे और पुआल जलाने के धुएँ की गध मानो हृदय मे प्रवेश करती और मैं सुन पाती मानो तालाब के किनारे विद्यालकारजी के मदिर से कांसे के घटे की ध्वनि आ रही हो। न जाने किसने मेरे बचपन के आठ वर्षो मे से उनका सम्पूर्ण स्थूल भाग छानकर केवल उनका रस, गन्ध-मात्र मेरे चारो ओर जमा कर दिया था।

इसके साथ ही मुझे अपने उस बाल्य-काल के व्रत और भोरबेला मे फूल चुनने और शिव-पूजा करने की बात याद आई। यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कलकत्ता की बातचीत, आलोचना, चलने-फिरने के शोर-गुल के कारण बुद्धि मे कुछ विकार आ ही जाता है। धर्म-कर्म भक्ति-श्रद्धा मे निर्मल सरलता नही रहती। उस दिन की बात मुझे याद आ रही है जब अन्धी होने के बाद कलकत्ता

मे मेरे गाँव की एक सखी ने आकर मुझसे कहा था, "कुमु, तुझे क्रोध नही आता? मैं होती तो ऐसे पति का मुँह न देखती।" मैंने कहा, 'बहन, मुँह देखना तो वन्द ही है, उसके लिए तो इन वेचारी अभागी आँखो पर क्रोध आता है, किन्तु पति पर क्यो क्रोध करूँ ?" उचित समय पर डॉक्टर को न बुलाने के कारण लावण्य मेरे पति पर वहुत क्रोधित हुई थी और मुझे भी क्रोधित करने की चेष्टा की थी। मैंने उसे समझाया, 'गृहस्थी मे रहते इच्छा से, अनिच्छा से, ज्ञान-अज्ञान से, भूल-भ्रान्ति से, अनेक प्रकार के दुःख-सुख घटित होते रहते हे; किन्तु मन मे यदि भक्ति स्थिर रह सके तो दु.ख मे भी एक शान्ति मिलती है, नही तो केवल क्रोध-रोप, ईर्ष्या-द्वेप, वक-झक मे ही जीवन कटता है। अन्धी हो गई हूँ, यही काफी दुःख है, तिस पर अव पति से विद्वेप करके दु.ख का वोझ क्यो वढाऊँ।' मेरी-जैसी वालिका के मुँह से पुराने जमाने की-सी वाते सुनकर लावण्य गुस्सा होकर अवज्ञापूर्वक सिर हिलाकर चली गई। किन्तु जो भी हो, वात मे विप रहता है, वाते एकदम व्यर्थ नही होती। लावण्य के मुँह की रोप की वाते मेरे मन मे दो-एक स्फुलिंग छोड़ गई थी, मैंने उनको पैरो से कुचलकर वुझा दिया था; किन्तु फिर भी दो-एक चिनगारी रह गई थी। इसी से कह रही थी, कलकत्ता मे अनेक विवाद, अनेक वाते है; वहाँ देखते-देखते वुद्धि जल्दी ही पककर कठोर हो जाती है।

गाँव मे आकर अपनी उसी शिव-पूजा के शीतल शेफालिका-फूल की सुगंध से हृदय की सारी आशा और विश्वास मेरी उस शैशवावस्था की भाँति ही नवीन और उज्ज्वल हो उठे। भक्ति से मेरा हृदय और मेरी गृहस्थी परिपूर्ण हो गई। मैं सिर झुकाकर भूमि पर लेट गई। वोली, "हे देव ! मेरी आँखे गई, अच्छा हुआ, तुम तो मेरे हो।"

हाय ! मैंने गलत कहा था। तुम मेरे हो, यह कहना भी गुस्ताखी है। मैं तुम्हारी हूँ, केवल इतना ही कहने का अधिकार है। ओह ! एक दिन गला भीचकर मेरा देवता मुझसे यही वात कहला लेगा। भले ही कुछ भी न रहे, किन्तु मुझे रहना ही होगा। किसी के ऊपर कोई जोर नही है; केवल अपने ही ऊपर है।

कुछ दिन खूव सुख मे कटे। डॉक्टरी से मेरे पति की भी आय वढने लगी। हाथ मे कुछ रुपया भी आ गया।

किन्तु रुपया अच्छी चीज नही है। उससे मन दव जाता है। जव मन शासन करता है तव वह अपना सुख स्वय तैयार कर सकता है, किन्तु धन जव सुख-सचय का भार लेता है तव मन का कोई प्रयोजन नही रह जाता। तव पहले जहाँ मन का

सुख था उस जगह को माल-असबाब का घटाटोप घेर लेता है। फिर सुख के बदले केवल सामग्री हाथ लगती है।

किसी विशेष बात या विशेष घटना का उल्लेख तो नही कर सकती, किन्तु अन्धे मे अनुभव करने की शक्ति अधिक होती है इसलिए न जाने किस कारण से समृद्धिपूर्ण स्थिति के साथ-साथ अपने पति के परिवर्तन को भी मैं अच्छी तरह समझ रही थी। यौवनारम्भ मे मेरे पति मे न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म के सम्बन्ध मे जो एक विवेक था वह मानो प्रतिदिन जड होता जा रहा था। मुझे स्मरण है, एक दिन वे कहते थे, "केवल जीविका के लिए डॉक्टरी सीख रहा होऊँ, ऐसा नही है, इसके द्वारा अनेक गरीबों का उपकार कर सकूँगा।" जो डॉक्टर दरिद्र मुमूर्षु के दरवाजे पर जाकर पहले शुल्क लिये विना नाडी नही देखना चाहते, उनकी बात करते समय घृणा से उनकी आवाज रुँध जाती थी। मैं समझ रही थी, कि अब वे दिन नही रहे। एक-मात्र पुत्र की प्राण-रक्षा के लिए एक दरिद्र औरत ने उनके पैर पकड़े, उन्होने उसकी उपेक्षा की; अन्त मे मैंने सिर की सौगन्ध दिलाकर उनको चिकित्सा करने के लिए भेजा, किन्तु उन्होने मनोयोग से काम नही किया। जब हमारे पास रुपया कम था तब अन्याय द्वारा कमाने को मेरे पति किन आँखो से देखते थे, यह मैं जानती हूँ। किन्तु अब बैंक मे ढेरो रुपया जमा हो गया, इधर एक धनी व्यक्ति का कारिन्दा आकर उनसे अकेले मे दो दिन से बहुत-सी बातें कह गया। क्या बात की, मैं कुछ भी नही जानती, किन्तु उसके बाद जब वे मेरे पास आए, अत्यन्त प्रफुल्लित होकर नाना विषयो पर नाना बातें कही, तब अपने अन्त करण की स्पर्श-शक्ति के द्वारा मैं समझ गई कि वे आज कलंकित होकर आए हैं।

अन्धी होने के पहले मैंने अन्तिम बार जिनको देखा था मेरे वे पति कहाँ थे? जिन्होने मेरे दृष्टिहीन नेत्रों को चूमकर मुझे एक दिन देवी के पद पर अभिषिक्त किया था, मैं उनके किस काम आ सकी? कभी किसी शत्रु की आँधी से जिनका अकस्मात् पतन होता है वे किसी दूसरे हृदयावेग से फिर ऊपर उठ सकते हैं, किन्तु इस प्रकार प्रतिदिन प्रतिपल हड्डियो के भीतर तक कठिन होते जाना, बाहर से बढते हुए हृदय को तिल-तिल करके दबा डालना, इसका प्रतिकार सोचने बैठती तो कोई रास्ता न मिलता।

पति को साक्षात् देखने मे जो विच्छेद हो गया था वह तो कुछ न था, किन्तु जब ख्याल आता कि मैं जहाँ हूँ वहाँ वे नही है तो मेरी छाती फटने लगती। मैं अन्धी थी, ससार के आलोक से शून्य अपने अन्तर-प्रदेश मे मैं अपनी यौवनावस्था का नवीन प्रेम, अक्षुण्ण भक्ति, अखण्ड विश्वास लिये बैठी थी—जीवन के

आरम्भ मे मैंने अपने देव-मदिर मे अपने शिशु हाथों की अंजलि से जिन शेफालिका-पुष्पो का अर्घ्यदान किया था उनके ओस-विन्दु अभी तक सूखे नही थे। और, मेरे पति इस छाया-शीतल चिरनवीन देश को छोडकर रुपया कमाने के पीछे ससार की मरुभूमि मे न जाने कहाँ अदृश्य होते चले जा रहे थे! मैं जिसमे विश्वास करती हूँ, जिसको धर्म कहती हूँ, जिसको सव सुख-संपत्ति से अधिक समझती हूँ, उस पर वे हँसकर वड़ी दूर से कटाक्ष करते है। किन्तु एक दिन था जव यह विच्छेद नही था। यौवन के आरम्भ मे हमने एक ही पथ पर यात्रा शुरू की थी, उसके वाद कव पथ भिन्न होने लग गए यह न तो वे जान सके, न मै जान सकी, अन्त मे आज मैं उन्हे पुकारने पर उत्तर भी नही पाती।

कभी-कभी सोचती हूँ, शायद अंधी होने के कारण साधारण वात को मै वढा-चढा करके देखती हूँ। आँखे रहती तो शायद मुझे ससार विलकुल संसार-जैसा ही लगता।

मेरे पति ने भी मुझे एक दिन यही समझाकर कहा। उस दिन प्रात:काल एक वृद्ध मुसलमान अपनी पौत्री के हैजे की चिकित्सा के लिए उनको वुलाने आया था। मैंने सुना—उसने कहा, "वेटा, मैं गरीव हूँ, किन्तु अल्लाह तुम्हारा भला करेंगे।" मेरे पति ने कहा, "अल्लाह जो करेंगे केवल उसीसे तो मेरा काम नही चलेगा, तुम क्या करोगे पहले वह सुनूँ!" सुनते ही सोचा, 'ईश्वर ने मुझे अन्धा किया, किन्तु वधिर क्यो नही किया।' वृद्ध गहरे दीर्घ नि.श्वास के साथ 'हे अल्लाह' कहकर चला गया। तत्क्षण मैंने नौकरानी द्वारा उसे अन्त.पुर की खिडकी के दरवाजे पर वुलवाया; और कहा, "वावा तुम्हारी नातिन के लिए डॉक्टर का कुछ खर्च दे रही हूँ, तुम मेरे पति के लिए मगल-कामना करके मुहल्ले से हरीश डॉक्टर को लिवा ले जाओ!"

किन्तु दिन-भर मुझे भोजन अच्छा नही लगा। अपराह्न मे नीद से जगकर पति ने कहा, "तुम दुखी क्यो दिख रही हो?" पहले का अभ्यस्त उत्तर मुँह मे आ रहा था—'नही, कुछ नही हुआ;' किन्तु कपट करने का समय वीत गया, मैने स्पष्ट रूप से कहा, "कितने दिन से तुमसे कहने को सोच रही थी, किन्तु कहने को तैयार होने पर समझ नही पाती, कि क्या कहना है। मैं नही जानती अपने हृदय की वात समझाकर कह सकूँगी या नही, किन्तु तुम मन-ही-मन अवश्य समझ सकते हो कि हम दोनो ने जिस प्रकार एक होकर जीवन आरम्भ किया था आज वह पृथक् हो गया है।" पति हँसकर वोले, "परिवर्तन ही तो ससार का धर्म है।" मैंने कहा, "रुपया-पैसा रूप-यौवन सभी मे परिवर्तन होता है, किन्तु क्या नित्य वस्तु कुछ भी नही है?" तव उन्होने कुछ गम्भीर होकर कहा, "देखो, अन्य स्त्रियां

वास्तविक अभाव को लेकर दुखी होती है—किसी का पति कमाता नही है, किसी का पति प्रेम नही करता है, तुम काल्पनिक दु.ख की सृष्टि कर रही हो।" मैं तभी समझ गई, 'अन्धेपन ने मेरे नेत्रों मे एक अंजन लगाकर मुझे इस परिवर्तनशील ससार के वाहर कर दिया है; मैं दूसरी के समान नही हूँ, मुझे मेरे पति नही समझेगे।'

इसी वीच मेरी एक फुफेरी सास गाँव से अपने भतीजे का समाचार जानने आई। हम दोनो के उनको प्रणाम करके उठते ही उन्होने पहले वाक्य मे ही कहा, "सुनो, वहूरानी, तुम तो दुर्भाग्य से आँखे खो वैठी हो, अव अपना अविनाश अन्धी स्त्री के सहारे घर-गृहस्थी कैसे चलायगा? इसका दूसरा विवाह करा दो!" पति यदि मजाक करके कहते, 'ठीक तो है वुआ, तुम देख-सुनकर एक सम्वन्ध ठीक कर दो न'—तव सव साफ हो जाता। किन्तु उन्होने वुझे स्वर मे कहा, "वाह, वुआ, यह क्या कह रही हो!" वुआ ने उत्तर दिया, "क्यो क्या कुछ अनुचित कह रही हूँ? अच्छा, वहूरानी, तुम्ही वताओ तो वेटा!" मैंने हँसकर कहा, "वाह, वुआ, तुम भी किससे परामर्श माँग रही हो? भला जिसकी गाँठ काटनी होती है क्या उससे कोई सम्मति लेता है?" वुआ ने उत्तर दिया, "हाँ, वात तो ठीक है, तो फिर तेरे साथ मैं अकेले मे परामर्श करूँगी। क्या राय है, अविनाश? यह भी वता दूँ, वहूरानी, कुलीन घर की लड़की की जितनी अधिक सौते होती है, उसके पति का गौरव उतना ही वढता है। मेरा लडका डॉक्टरी न करके यदि विवाह करता, तो इसको रोजगार की क्या चिन्ता थी? रोगी तो डॉक्टर के हाथो पडते ही मर जाता है, मर जाने पर तो फिर और विजिट-फी नही देता, किन्तु विधाता के शाप से कुलीन की स्त्री कभी नही मरती और वह जव तक जीती है तव तक पति को लाभ-ही-लाभ है।"

दो दिन वाद मेरे पति ने मेरे ही सामने वुआ से पूछा, "वुआ, आत्मीय के समान वहू की सहायता कर सके ऐसी किसी भले घर की लड़की ढूँढ दे सकती हो? ये तो आँखो से देख नही पाती, अगर एक कोई ऐसी होती जो सदा इनके साथ रह सकती तो मैं निश्चित हो जाता।" जव मैं अंधी ही हुई थी, अगर तव यह वात कहते तो खप जाती, किन्तु अव आँखो के अभाव मे मुझे या घर-गृहस्थी मे क्या विशेष असुविधा होती है, नही जानती, किन्तु प्रतिवाद न करके मैं चुप रह गई। वुआ ने कहा, "कमी क्या है? मेरे जेठ की ही एक लड़की है, जैसी सुन्दर है वैसी ही लक्ष्मी है। लड़की की उम्र भी हो गई है, वस उपयुक्त वर की आशा में प्रतीक्षा कर रहे है, तुम्हारे-जैसा कुलीन मिले तो अभी विवाह कर दे।" पति ने चकित होकर कहा, "विवाह की वात कौन कह रहा है?" वुआ वोली,

"मैया री, विवाह किये विना भले घर की लडकी क्या तुम्हारे घर यों ही पडी रहेगी ?" वात संगत अवश्य थी और पति उसका कोई उपयुक्त उत्तर नही दे सके।

अपनी वन्द आँखो के अनन्त अन्धकार मे मैं अकेली खडी होकर ऊपर को मुँह करके पुकारने लगी, 'भगवान्, मेरे पति की रक्षा करो।'

उसके कुछ दिन वाद एक दिन सवेरे मेरे नियमित पूजा करके वाहर निकलते ही वुआ ने कहा, "वहू रानी, अपने जेठ की जिस लडकी वात मैंने कही थी वह मेरी हेमागिनी आज घर से आ गई है। हिमू, ये तुम्हारी दीदी है, इनको प्रणाम करो।"

इसी समय सहसा मेरे पति आकर मानो अपरिचित स्त्री को देखकर लौट पडने को उद्यत हुए। वुआ ने कहा "कहाँ चले, अविनाश ?" पति ने प्रश्न किया, "ये कौन है ?" वुआ ने कहा, "यह मेरे जेठ की वह लडकी हेमागिनी है।" इसको कव वुलाया ? कौन लाया ? क्या समाचार है ? आदि को लेकर मेरे पति वारवार काफी अनावश्यक विस्मय प्रकट करने लगे।

मैंने मन-ही-मन कहा, 'जो हो रहा है वह सव समझ रही हूँ, किन्तु इसके ऊपर फिर छलना आरम्भ हो गई। चोरी-चोरी, आँख-मिचौनी, मिथ्या वाते ! अधर्म करना हो तो करो, वस अपनी अशान्त प्रवृत्ति के लिए, किन्तु मेरे लिए क्यो नीचता की जाय ? मुझे वहकाने के लिए मिथ्याचरण क्यो हो ?"

हेमागिनी का हाथ पकडकर मैं उसको अपने शयन-कक्ष में ले गई। उसकी देह-मुँह पर हाथ फेरकर लगा, मुख सुन्दर होगा, अवस्था भी चौदह-पन्द्रह से कम न होगी।

वालिका अकस्मात् मधुर उच्च स्वर से हँस पडी। कहा, "यह क्या कर रही हो ? मेरा भूत उतार रही हो क्या ?"

उस उन्मुक्त सरल हास्य-ध्वनि से मेरे हृदय के काले वादल जैसे क्षण-भर मे हट गए। मैंने अपना दाहिना हाथ उसके गले मे डालकर कहा, "मैं तुमको देख रही हूँ, वहन," यह कहते हुए उसके कोमल मुँह पर फिर एक वार हाथ फेरा।

"देख रही हो ?"—कहते हुए वह फिर हँसने लगी। वोली, "मैं क्या तुम्हारे वगीचे की सेम या वैंगन हूँ जो हाथ फेरकर देख रही हो कि कितनी वडी हो गई हूँ ?"

उस समय मुझे सहसा लगा, मैं अन्धी हूँ यह हेमागिनी नही जानती। मैंने कहा, "वहन, मैं अन्धी जो हूँ।" सुनकर वह कुछ देर तक आश्चर्य मे पडी गम्भीर वनी रही। मैं अच्छी तरह समझ रही थी कि अपने उत्सुक तरुण विशाल नेत्रों से

उसने मेरे दृष्टिहीन चक्षु और मुँह के भाव को ध्यान से देखा; उसके बाद कहा, "ओह ! इसीसे काकी को यहाँ बुलवाया है ?"

मैंने कहा, "नही, मैंने नही बुलवाया। तुम्हारी काकी अपने-आप आई है।"

बालिका फिर हँस पडी, बोली, "मेहरबानी करके ? तब तो दयामयी शीघ्र हिलने वाली नही ! किन्तु, पिता ने मुझे यहाँ क्यों भेजा ?"

इसी बीच बुआ ने कमरे मे प्रवेश किया। इतनी देर तक मेरे पति के साथ उनकी बातचीत चल रही थी। कमरे मे आते ही हेमांगिनी ने कहा, "काकी बताओ, हम घर कब लौटेंगे ?"

बुआ ने कहा, "मैया री ! आते ही जाऊँ-जाऊँ करने लगी। ऐसी चञ्चल लडकी कभी नही देखी।"

हेमांगिनी ने कहा, "काकी यहाँ से शीघ्र हिलने का तो कोई लक्षण दिखाई दिखाई नही देता। खैर, तुम्हारा तो अपना यह अपना घर ठहरा, तुम जितने दिन चाहो रहो, किन्तु मैं चली जाऊँगी, यह तुमसे कहे देती हूँ।" यह कहकर मेरा हाथ पकड़कर बोली, "क्या कहती हो बहन, तुम तो मेरी बिलकुल सगी नही हो। उसके इस सरल प्रश्न का कोई उत्तर न देकर उसे अपनी छाती से लगा लिया। देखा, बुआ कितनी भी प्रबल हों इस कन्या को सम्हालना उनके वश की बात नही थी। बुआ ने प्रकट रूप से क्रोध न दिखाकर हेमांगिनी को तनिक दुलार करने की चेष्टा की, पर उसने मानो उसे शरीर से झाडकर फेक दिया। बुआ ने समस्त प्रसंग को लाडली लडकी के परिहास के समान उडा दिया और हँसकर चले जाने को उद्यत हुई। फिर न जाने क्या सोचकर लौटकर हेमांगिनी से कहा, "हिमू, चल, तेरे स्नान का समय हो गया।" उसने मेरे पास आकर कहा, "हम दोनो घाट पर चले, क्या कहती हो, बहन !" अनिच्छा होते हुए भी बुआ ने छूट दे दी; वे जानती थी, खीच-तान करने पर हेमांगिनी की ही जीत होगी और उनके बीच का विरोध अशोभन ढंग से मेरे सामने प्रकट होगा।

पिछवाडे के घाट पर जाते हुए हेमांगिनी ने मुझसे पूछा, "तुम्हारे बाल-बच्चे क्यो नही है ?" मैंने कुछ हँसकर कहा, "क्यो क्या जानूँ ? ईश्वर ने दिये ही नही।" हेमांगिनी ने कहा, "अवश्य, तुम्हारे भीतर कुछ पाप था।" मैंने कहा, "सो भी अन्तर्यामी जाने।" प्रमाणस्वरूप बालिका ने कहा, "देखो न, काकी मे इतनी कुटिलता है कि उनके गर्भ से सन्तान का जन्म नही हो सकता।" मै पाप-पुण्य, सुख-दु ख, दण्ड-पुरस्कार का रहस्य स्वयं भी नही समझती, बालिका को भी नही समझाया; केवल एक दीर्घ साँस लेकर मन-ही-मन उससे कहा, 'तुम्ही जानो !' हेमांगिनी ने तत्क्षण मुझसे लिपटकर हँसते हुए कहा, "मैया री ! मेरी बात पर भी

तुम ठण्डी साँस भरती हो ! भला मेरी बात मानता ही कौन है ?"

देखा, पति की डॉक्टरी मे बाधा पडने लगी। दूर का बुलावा आने पर तो जाते ही न थे, कही पास जाने पर भी चट-पट पूरा करके चले आते। पहले जब काम के समय घर पर रहते थे तो बस दोपहर के भोजन और सोने के समय भीतर आते। अब बुआ भी जब-तब बुलवा लेती, वे भी अनावश्यक रूप से बुआ की खबर लेने आते। बुआ जब मौका देखती, कहती, "हिमू, मेरा पानदान तो लाओ," मैं समझ जाती कि बुआ के कमरे मे मेरे पति आए है। पहले-पहल दो-तीन दिन तो हेमागिनी पानदान, तेल की कटोरी, सिदूर का डब्बा आदि आदेशानुसार ले गई। किन्तु, उसके बाद पुकारे जाने पर वह किसी भी तरह न हिलती। मँगाई गई चीजे नौकरानी के हाथो भिजवा देती। बुआ बुलाती, "हेमांगिनी, हिमू, हिमि,..." बालिका जैसे मेरे प्रति एक करुणा के आवेग के कारण मुझसे लिपटी रहती, एक आशका एव विषाद उसको ढँके रहते। इसके बाद से वह भूलकर भी मुझसे मेरे पति की बात न छेडती।

इसी बीच मेरे भैया मुझे देखने आए। मैं जानती थी कि भैया की दृष्टि तीक्ष्ण है। मामला कैसा चल रहा है, यह उनसे छिपाना असम्भव ही होगा। मेरे भैया बडे कठोर विचारक थे। वे लेश-मात्र अन्याय को भी क्षमा करना नही जानते थे। मेरे पति उन्ही की आँखो के सामने अपराधी बनकर खडे हों, इसीका मुझे सबसे अधिक भय था। मैंने अस्वाभाविक प्रसन्नता दिखाकर सारी स्थिति छिपा ली। मैंने अधिक बाते कहकर, अत्यन्त व्यस्तता दिखाकर, बड़ी धूम-धाम से मानो चारो ओर धूल उडाने की चेष्टा की। किन्तु, वह मेरे लिए इतना अस्वाभाविक था कि वही और भी अधिक पकड़े जाने का कारण सिद्ध हुआ। किन्तु, भैया बहुत दिन तक नही रह सके, मेरे पति ऐसी अस्थिरता दिखाने लगे कि उसने प्रत्यक्ष रूखेपन का रूप धारण कर लिया। भैया चले गए। विदा लेने के पहले पूर्ण स्नेह के साथ मेरे सिर के ऊपर बहुत देर तक काँपता हुआ हाथ रखे रहे, मन-ही-मन एकाग्रचित्त से क्या आशीर्वाद दिया, उसे मैं समझ गई, उनके आँसू मेरे आँसुओ से भीगे कपोलो पर आ पड़े।

मुझे स्मरण है, उस दिन चैत के महीने मे संध्या समय हाट के दिन लोग घर लौट रहे थे। दूर से वर्षा लिये एक आँधी आ रही थी, उसी की भीगी मिट्टी की सुगध और वायु की आर्द्रता आकाश मे व्याप्त हो गई थी, बिछुडे हुए साथी अंधकारपूर्ण मैदान मे व्याकुल होकर ऊँची आवाज़ मे एक-दूसरे को पुकार रहे थे। जब तक मैं अकेली रहती तब तक मुझ अधी के शयन-गृह मे दीपक नही जलाया जाता था कि कही लौ से कपड़ों में आग न लग जाय या कोई दुर्घटना न हो जाय।

मैं उसी निर्जन अँधेरे कमरे मे जमीन पर बैठी हाथ जोड़े अपने अनन्त अन्धकार-पूर्ण जगत् के जगदीश्वर को टेर रही थी; कह रही थी, 'प्रभो, जब मैं तुम्हारी दया का अनुभव नही कर पाती, तुम्हारा अभिप्राय जब मैं नही समझ पाती, तब इस अनाथ भग्न हृदय की नौका के हाल को मैं प्राणपन से हाथों से पकडकर छाती से चिपटाए रखती हूँ, हृदय से खून निकलने लग जाता है पर फिर भी तूफान सभाल नही पाती, अब मेरी और कितनी परीक्षा लोगे, मेरी शक्ति है ही कितनी !' यह कहते-कहते आँसू उमड पड़े, खाट पर सिर रखकर रोने लगी। दिन-भर घर का काम करना पडता है। हेमागिनी छाया के समान साथ-साथ रहती, हृदय मे जो आँसू उमडते उन्हे बहाने का अवसर नही मिलता; बहुत दिन बाद आज आँखो से पानी निकला था, तभी देखा खाट कुछ हिली, किसीके चलने की आहट हुई और क्षण-भर मे हेमागिनी आकर मेरे गले से लिपटकर अपने अंचल से चुपचाप मेरी आँखे पोछने लगी। वह न जाने क्या सोचकर कब संध्या होते ही खाट पर आकर सो गई थी, न तो उसने कोई प्रश्न किया, न मैंने ही उससे बात की। वह धीरे-धीरे अपना शीतल हाथ मेरे माथे पर फेरने लगी। इसी बीच मे कब मेघगर्जन और मूसलाधार वर्षा के साथ-साथ आँधी आ गई, मैं जान भी न पाई, बहुत दिनो के बाद एक सुस्निग्ध शान्ति ने आकर मेरा ज्वर-दाह-दग्ध हृदय ठडा कर दिया।

दूसरे दिन हेमागिनी ने कहा, "काकी, यदि तुम घर नही चलती तो मै अपने कैवर्त दादा के साथ चली जाऊँगी, यह कहे देती हूँ।" बुआ ने कहा, "इसकी क्या जरूरत है ? कल मैं भी चलूँगी; एक ही साथ चलेगे। यह देख, हिमू, मेरे अविनाश ने तेरे लिए कैसी मोती-जडी अँगूठी खरीदी है।" यह कहकर गर्वपूर्वक बुआ ने हेमागिनी के हाथ मे अँगूठी दे दी। हेमागिनी बोली, "यह देखो काकी, मैं कैसा अच्छा निशाना लगा सकती हूँ।" और यह कहते हुए उसने जगले मे से निशाना लगाकर अँगूठी पिछवाडे की पोखरी मे फेक दी। बुआ क्रोध, दु:ख, विस्मय से रोमाचित हो उठी। मेरा हाथ पकड़कर बार-बार मुझसे कहा, "बहूरानी, खबरदार यह लडकपन अविनाश को मत बताना, मेरे लडके को इससे मन मे दु.ख होगा। तुम्हे मेरे सिर की सौगन्ध है, बहू !" मैने कहा, "बुआजी, ज्यादा कहने की जरूरत नही, मै कोई भी बात नही कहूँगी।"

दूसरे दिन चलने के पहले हेमागिनी ने मुझसे लिपटकर कहा, "दीदी, मुझे याद रखना !" मैंने दोनो हाथ बार-बार उसके मुँह पर फेरते हुए कहा, "अन्धा कुछ भी नही भूलता, बहिन, मेरे लिए तो दुनिया है ही नही, मैं तो बस मन के सहारे ही रहती हूँ।" यह कहकर मैंने उसका सिर थामकर एक बार सूँघकर

चुम्बन किया। टप-टप करके उसकी केश-राशि मे मेरे अश्रु-टपक पड़े।

हेमाङ्गिनी के विदा होने पर मेरा ससार नीरस हो गया—उसने मेरे प्राणो मे जो सुगन्ध, सौन्दर्य, संगीत, जो उज्ज्वल प्रकाश, जो कोमल तरुणता ला दी थी, उसके चले जाने पर एक बार अपने सारे संसार को अपने चारो ओर दोनो हाथ फैलाकर देखा, मेरा कहाँ क्या है! मेरे पति ने आकर विशेष प्रसन्ना दिखाते हुए कहा, "ये लोग चली गई; अब छुट्टी मिली, कुछ काम-काज करने का अवसर मिलेगा।" मुझे धिक्कार है। मेरे लिए इतनी चतुराई क्यो! मैं क्या सत्य से डरती हूँ! मैं क्या आघात से कभी भयभीत हुई हूँ! मेरे पति क्या नही जानते कि जब मैंने दोनो नेत्र दिये थे तब मैंने शान्त मन से अपने लिए चिरान्धकार स्वीकर किया था!

इतने दिन मेरे और मेरे पति के बीच केवल अन्वेषन का व्यवधान था, आज से एक व्यवधान और पैदा हो गया। मेरे पति भूलकर भी कभी मेरे सामने हेमाङ्गिनी का नाम न लेते, जैसे उनसे सम्बन्धित संसार से हेमाङ्गिनी बिलकुल लुप्त हो गई हो, जैसे वहाँ उसने कभी कोई लेशमात्र भी न छोडा हो। किन्तु पत्र द्वारा वे हमेशा उसकी खबर पाते थे, यह मैं अनायास ही अनुभव करती थी। जिस प्रकार तालाब मे बाढ का जल जिस दिन थोडा-सा भी आता है उसी दिन कमल के डठल मे तनाव आ जाता है, उसी तरह उनके भीतर जिस दिन ज़रा भी प्रफुल्लता का संचार होता उस दिन मैं अपने हृदय के मूल से स्वय अनुभव कर लेती थी। कब वे समाचार पाते, और कब न पाते यह मेरे लिए कुछ भी अगोचर न था। किन्तु, मैं भी उनसे उसका हाल नही पूछ सकती थी। मेरे अन्धकारपूर्ण हृदय मे वह जो उन्मत्त, उद्दाम, उज्ज्वल, सुन्दर तारा क्षण-भर के लिए उदय हुआ था उसकी कोई खबर पाने और उसकी बातचीत करने के लिए मेरे प्राण तृषित रहते थे, किन्तु पति के सामने मुझे एक क्षण को भी उसका नाम लेने का अधिकार न था। हम दोनों के बीच वाणी और वेदना से पूर्ण यह एक नीरवता अटल भाव से विराजीत रहती।

वैशाख मास के बीचो-बीच एक दिन नौकरानी ने आकर मुझसे प्रश्न किया, 'माँजी घाट पर बड़े समारोह से नौकाएँ तैयार हो रही है, बाबूजी कहाँ जा रहे है?" मै जानती थी कि कुछ उद्योग हो रहा है, मेरे भाग्याकाश मे पहले कुछ दिन तक तो आँधी के पूर्व की-सी निस्तब्धता और उसके पश्चात् प्रलय के बिखरे मेघ आकर इकट्ठे हो रहे थे, संहारकारी शकर नीरव अँगुली के इगित से अपनी समस्त प्रलय-शक्ति मेरे सिर पर एकत्रित कर रहे थे, यह मैं समझ रही थी। नौकरानी से कहा, "कहाँ, मुझे तो अभी तक कोई समाचार नही मिला।" नौकरानी और

कोई प्रश्न पूछने का साहस न करके गहरी साँस लेकर चली गई।

बहुत रात गए मेरे पति ने आकर कहा, "दूर एक जगह से मेरा बुलावा आया है, कल भोर मे ही मुझे रवाना होना है। शायद लौटने मे दो-तीन दिन की देर हो सकती है।"

चारपाई से उठकर खड़ी होकर मैने कहा, "क्यो मुझसे झूठ बोल रहे हो?"

मेरे पति ने कम्पित अस्पष्ट स्वर मे कहा, "क्या झूठ बोला?"

मैने कहा, "तुम विवाह करने जा रहे हो।"

वे चुप रह गए। मै भी स्थिर खडी रही। बहुत देर तक कमरे मे सन्नाटा छाया रहा। अन्त मे मैने कहा, "कुछ तो उत्तर दो! कहो, हाँ, मैं विवाह करने जा रहा हूँ।"

प्रतिध्वनि के समान उन्होने उत्तर दिया, "हाँ, मैं विवाह करने जा रहा हूँ।"

मैने कहा, "नही, तुम नही जा सकते। इस महाविपद्, महापाप से मैं तुमको बचाऊँगी। यदि मैं यह नही कर सकती तब तुम्हारी कैसी पत्नी, किसलिए मैने शिव की पूजा की थी।"

फिर बहुत देर तक कमरा नि शब्द बना रहा। मैंने जमीन पर लेटकर पति के पैर पकडकर कहा, "मैने तुम्हारा क्या अपराध किया है, मुझसे कौनसी भूल हुई है, दूसरी स्त्री की तुम्हे क्या जरूरत है, तुम्हे मेरे सिर की सौगन्ध है, सच-सच बताओ।"

तब मेरे पति ने धीरे-धीरे कहा, "सच ही कहता हूँ, मै तुमसे डरता हूँ। तुम्हारे अन्धेपन ने तुमको एक अनन्त आवरण मे आवृत्त कर रखा है, वहाँ प्रवेश करने की मुझमे शक्ति नही है। तुम मेरी देवता हो, तुम मेरे लिए देवता के समान भयानक हो, तुमको लेकर प्रतिदिन के गृह-कार्य नही कर सकता। जिसके साथ बक-झक कर सकूँ, क्रोध कर सकूँ, मान कर सकूँ, जिसे गहने बनवा दूँ, ऐसी एक सामान्य रमणी चाहता हूँ।"

"मेरे हृदय को चीरकर देखो! मै सामान्य रमणी हूँ, मैं मन मे उस नव-विवाहिता बालिका के अतिरिक्त और कुछ नही, मैं विश्वास करना चाहती हूँ, निर्भर रहना चाहती हूँ, पूजा करना चाहती हूँ। तुम स्वय अपमानित हो, मुझे दु सह दु ख देखकर अपने से बड़ा मत समझो—मुझे सब बातो मे अपने पैरो मे स्थान दो।"

मैंने क्या-क्या बाते कही थी सो क्या मुझे याद है। क्षुब्ध समुद्र क्या अपना

गर्जन स्वय सुन पाता है ? केवल याद है, कहा था, "यदि मैं सती होऊँ तो भगवान् साक्षी है, तुम किसी भी प्रकार अपनी धर्म-शपथ का उल्लंघन नही कर पाओगे। उस महापाप के पहले या तो मैं विधवा हो जाऊँगी, या फिर हेमाङ्गिनी जीवित रहेगी।" यह कहती हुई मैं मूर्छित होकर गिर पड़ी।

जब मेरी मूर्छा भङ्ग हुई तब तक रात के अन्तिम प्रहर मे बोलने वाले पक्षियो ने बोलना शुरू नही किया था और मेरे पति चले गए थे।

मैं पूजा के कमरे का दरवाजा बन्द करके पूजा करने बैठ गई। दिन-भर मैं घर से बाहर न निकली। सन्ध्या-समय कालवैशाखी[1] आँधी से दालान काँपने लगा। मैंने यह नही कहा कि हे प्रभु, मेरे पति इस समय नदी मे है उनकी रक्षा करो ! मैं एकाग्रमन से केवल यह कहने लगी, 'प्रभु, मेरे भाग्य मे जो लिखा है, वह हो, किन्तु मेरे पति को महापाप से बचाओ ?' सारी रात बीत गई। उसके दूसरे दिन भी आसन नही छोड़ा। इस अनिद्रित निराहार अवस्था मे नही जानती किसने मुझे बल दिया था कि मैं पाषाण-मूर्ति के सामने पाषाण-मूर्ति के समान ही बैठी रही।

सध्या-समय बाहर से दरवाजे पर धक्के पड़ने लगे। दरवाजा तोड़कर जब घर मे किसी ने प्रवेश किया तब मैं मूर्छित हुई पड़ी थी।

मूर्छा भङ्ग होने पर सुना, "दीदी !" देखा, हेमाङ्गिनी की गोद मे लेटी हुई हूँ। सिर हिलाते ही उसकी नई चेली[2] की सरसराहट हुई। हे प्रभु, मेरी प्रार्थना नही सुनी। मेरे पति का पतन हो गया।

हेमाङ्गिनी ने सिर झुकाकर धीरे-धीरे कहा, "दीदी, तुम्हारा आशीर्वाद लेने आई हूँ।"

पहले एक क्षण काठ के समान होकर दूसरे ही क्षण उठ बैठी, बोली, "आशीर्वाद क्यो नही दूंगी, बहन ! तुम्हारा क्या अपराध है ?"

हेमाङ्गिनी अपने सुमधुर उच्च स्वर मे हँस पडी। कहा, "अपराध ! तुम्हारे विवाह करने पर तो अपराध नही हुआ और मेरे करने पर ही अपराध !"

हेमाङ्गिनी का आलिंगन करके मैं भी हँसी। मन-ही-मन कहा, 'संसार मे क्या मेरी ही प्रार्थना ही सबसे बढ़कर थी ? उनकी इच्छा क्या अन्तिम नही थी ? जो आघात पडा है वह मेरे सिर के ऊपर पड़े, किन्तु हृदय पर जहाँ मेरा धर्म है, मेरा विश्वास है, वहाँ नही पडने दूंगी। मैं जैसी थी, वैसी ही रहूँगी।" हेमाङ्गिनी

---

१ चैत-वैशाख के महीने मे अपराह्नकालीन प्रचण्ड आँधी-पानी।

२ विवाह के अवसर पर नववधू को पहनाया जाने वाला लाल रेशमी वस्त्र-विशेष।

ने मेरे पैरों मे पडकर मेरे पैरों की धूल ली। मैंने कहा, "तुम चिर-सौभाग्यवती, चिरसुखी हो!"

हेमाङ्गिनी ने कहा, "केवल आशीर्वाद नही, तुम सती के हाथो मुझे और अपने वहनोई को वरण कर लेना होगा। तुम उनरो शर्माओ, यह नही होगा। यदि अनुमति दो तो उन्हे अन्दर ले आऊँ।"

मैने कहा, "ले आओ!"

कुछ देर वाद मेरे कमरे मे नई पग-ध्वनि ने प्रवेश किया। सस्नेह पूछा गया प्रश्न सुना, "अच्छी है, कुमु?"

चौंककर विछौना छोडकर उठते हुए मैंने कहा, "भैया!"

हेमाङ्गिनी ने कहा, "भैया कैसे? कान मल दो, वह तुम्हारा छोटा वहनोई है।"

तव मैं सव-कुछ समझ गई। मैं जानती थी कि भैया की प्रतिज्ञा थी कि विवाह नही करेगे; माँ नही थी, उनसे अनुरोध करके विवाह कराने वाला कोई नही था। अव मैने ही उनका विवाह कराया। आँखो से जल उमडकर वहने लगा, किसी प्रकार भी नही रोक सकी। भैया धीरे-धीरे मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे; हेमाङ्गिनी मुझसे लिपटकर केवल हँसने लगी।

रात मे नीद नही आई; मैं उत्कठित चित्त से पति के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। लज्जा और नैराश्य का वे किस प्रकार निर्वाह करेगे, यह मैं सोच नही पा रही थी।

काफी रात वीतने पर वहुत धीरे-धीरे दरवाजा खुला। मै चौककर विछौने पर वैठ गई। मेरे पति के पैरो की आहट थी। हृदय जोर से धडकने लगा।

विछौने पर आकर मेरा हाथ पकडकर उन्होने कहा, "तुम्हारे भैया ने मुझे वचा लिया। क्षणिक मोह मे पडकर मै मरने जा रहा था। उस दिन जव मैं नौका पर चढा, मेरे हृदय पर जैसे कोई भारी पत्थर रखा हुआ था, इसे अन्तर्यामी ही जानते है; जव नदी मे आँधी मे पड गया था तव प्राणों का भय भी था; उस समय सोच रहा था, यदि डूव जाऊँ तभी मेरा उद्धार हो सकता है। मथुरागंज पहुँचकर सुना कि उसके पहले दिन ही तुम्हारे भैया के साथ हेमाङ्गिनी का विवाह हो चुका। कैसी लज्जा और किस आनन्द से नौका मे लौटा, यह नही कह सकता। इन कई दिनो मे मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ, तुम्हे छोडकर मेरे लिए कोई सुख नही है। तुम्ही मेरी देवी हो!"

मैने हँसकर कहा, "नही, देवी वनने की मुझे आवश्यकता नही है, मैं तुम्हारे घर की गृहिणी हूँ, मै साधारण नारी-मात्र हूँ।"

पति ने कहा, "मेरा भी एक अनुरोध तुमको मानना पड़ेगा। मुझे देवता कहकर कभी लज्जित मत करना!"

दूसरे दिन हुलू-ध्वनि[1] और शंख-ध्वनि से मुहल्ला गूँज उठा। हेमाङ्गिनी मेरे पति से भोजन करते, उठते-बैठते, प्रात., रात्रि को, नाना प्रकार का हँसी-मजाक करने लगी, छेडने की कोई सीमा नही थी, किन्तु वे कहाँ गए थे, क्या घटित हुआ था, किसी ने उसका लेश-मात्र भी उल्लेख नही किया।

१ विवाह के अवसर पर स्त्रियो द्वारा की जाने वाली एक प्रकार की मगल-ध्वनि।

नष्टनीड़

: १ :

भूपति को काम करने की कोई आवश्यकता नही थी। उसके पास पर्याप्त रुपया था और बाजार भी गर्म था। किन्तु ग्रहो के प्रभाव से उन्होने कामकाजी आदमी के रूप मे जन्म ग्रहण किया था। इसीलिए उनको एक अंग्रेजी समाचार-पत्र निकालना पडा। इसके बाद समय की दीर्घता के लिए उन्हें फिर कभी विलाप नही करना पडा।

बचपन से ही उनको अग्रेजी मे लिखने तथा वक्तृता देने का शौक था। किसी प्रकार का प्रयोजन न रहने पर भी अंग्रेजी अखबार मे वे सम्पादक के नाम पत्र लिखते, और वक्तव्य न रहने पर भी सभाओ मे दो-एक बात बोले बिना न रहते।

उनके समान धनी व्यक्ति को दल मे पाने के लिए राजनीतिक दलपतियों के निरन्तर वाह-वाह करते रहने के कारण अपनी अंग्रेजी लेखन-शक्ति के सम्बन्ध मे उनकी धारणा यथेष्ट परिपुष्ट हो गई थी।

अत मे उसके साले वकील उमापति ने वकालत के व्यवसाय से हतोत्साहित होकर बहनोई से कहा, "भूपति, तुम एक अंग्रेजी अखबार निकालो! तुम्हारा जिस प्रकार असाधारण · " इत्यादि।

भूपति उत्साहित हो उठे। दूसरे के अखबार मे पत्र प्रकाशित करवाने मे कोई गौरव नही है, अपने अखबार मे स्वाधीन लेखनी को पूरे वेग से दौड़ा सकेंगे। साले को सहकारी बनाकर अत्यन्त छोटी अवस्था मे ही भूपति ने संपादक की गद्दी पर आसन जमाया।

छोटी अवस्था मे सम्पादकी तथा राजनीति का नशा बहुत जोरो से चढता है। भूपति को नचाने वाले लोग भी अनेक थे।

इस प्रकार वह जिन दिनो अखबार को लेकर व्यस्त थे उन्ही दिनो उनकी

वालिका वधू चारुलता ने धीरे-धीरे यौवनावस्था मे पदार्पण किया। समाचार-पत्र के सम्पादक को इस वडी खवर का ठीक से पता न चला। भारत-सरकार की सीमान्त-नीति क्रमश स्फीत होकर मर्यादा का उल्लंघन करने जा रही है. यही उसका प्रधान लक्ष्य था।

धनी परिवार मे चारुलता को कोई काम न था। फलपरिणामरहित फूल के समान परिपूर्ण आवश्यकता के वीच प्रस्फुटित हो उठना ही उनके चेष्टाशून्य लम्वे रात-दिनो का एक मात्र काम था। उसे कोई अभाव न था।

ऐसी स्थिति का सुयोग पाने पर वधू पति के साथ अत्यन्त अति करती है, दाम्पत्य-लीला की सीमान्त-नीति संसार की समस्त सीमाओ का उल्लंघन करके समय से असमय मे और विहित से अविहित मे जा पहुँचती है। चारुलता को वह सुयोग प्राप्त नही था। समाचार-पत्र का आवरण भेदकर पति पर अधिकार करना उसके लिए दुरूह हो गया।

युवती स्त्री के प्रति ध्यान आकर्पित करते हुए किसी आत्मीया के उन्हे डाटने पर भूपति ने एक वार सचेत होकर कहा, "हाँ, सच तो है। चारु के पास किसी सगिनी का रहना आवश्यक हे, उस वेचारी के पास कोई काम नही है।"

साले उमापति से कहा, "अपनी पत्नी को हमारे यहाँ लाकर रख दो न, कोई समवयस्का स्त्री पास नही है, चारु को अवश्य ही वडा सूना-सूना लगता होगा।"

स्त्री-संग का अभाव ही चारु के लिए अत्यन्त चिन्त्य है, सम्पादक ने ऐसा समझा और साले की पत्नी मन्दाकिनी को घर मे लाकर वह निश्चिन्त हो गए।

प्रेमोन्मेप के प्रथम अरुणालोक मे जिस समय पति और पत्नी एक-दूसरे को अपूर्व महिमायुक्त चिरनवीन प्रतीत होते है, दाम्पत्य का वह स्वर्णप्रभामडित प्रत्यूप-काल अचेतन अवस्था मे कव व्यतीत हो गया, किसी को पता न चला। नवीनता का स्वाद प्राप्त किये विना ही दोनों एक-दूसरे के लिए पुरातन परिचित अभ्यस्त हो गए।

लिखने-पढने मे चारुलता की स्वाभाविक रुचि थी इसलिए दिन उसे ज्यादा भारी नही लगते थे। उसने अपने परिश्रम और नाना कौशलों से पड़ने का वन्दो-वस्त कर लिया था। भूपति का फुफेरा भाई अमल थर्ड ईयर मे पढता था, चारुलता उससे पढ लेती थी। यह काम करा लेने के लिए उसे अमल की वहुत-सी अनुचित माँगें पूरी करनी पडती थी। प्राय उसको होटल मे खाने की खुराकी और अँग्रेजी-साहित्य के ग्रंथ खरीदने का खर्च जुटाना पडता। वीच-वीच मे अमल मित्रो को आमन्त्रित करके खिलाता था। उस यज्ञ को पूरा करने का भार गुरुदक्षिणास्वरूप चारुलता स्वय वहन करती। भूपति चारुलता पर कोई अधिकार प्रदर्शन न करते

थे, किन्तु जरा-सा पढ़ा देने-भर से फुफेरे भाई अमल के अधिकारों का अन्त न था। इसे लेकर चारुलता प्राय बीच-बीच मे कृत्रिम रोप और विद्रोह प्रदर्शित करती रहती, किन्तु किसी-न-किसी व्यक्ति के किसी काम आना और स्नेह-जनित उपद्रव झेलना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक हो गया था।

अमल ने कहा, "भाभी, हमारे कॉलिज मे राजघराने के जमाई खास रनिवास के हाथो मे वने कार्पेट के जूते पहनकर आते है, मुझसे तो सहन नही होता—एक जोडी कार्पेट के जूते चाहिए, नही तो किसी भी प्रकार पद-मर्यादा की रक्षा नही कर पा रहा हूँ।"

चारु—"हाँ हाँ, सो तो है ही। मैं वैठी-वैठी तुम्हारे जूतों की सिलाई करके मरूँ। दाम देती हूँ, जाकर वाजार से खरीद लाओ।"

अमल ने कहा, "यह नही होगा।"

चारु जूता सीना नही जानती और अमल के सामने वह यह वात स्वीकार करना भी नही चाहती। किन्तु उससे और कोई कुछ नही चाहता, अमल चाहता है—ससार मे इस एक मात्र प्रार्थी की प्रार्थना-रक्षा किये विना वह रह नही सकती। अमल जिस समय कॉलेज जाता उसी समय वह छिपकर वडे यत्न से कार्पेट की सिलाई सीखने लगी। और अमल जव स्वयं अपने जूते के दरवार को विलकुल भूल वैठा था तभी एक दिन सध्या-समय चारु ने उसे निमन्त्रण दिया।

ग्रीष्म-काल था। छत पर आसन विछाकर अमल के भोजन का स्थान वनाया गया था। उडकर वालू गिरने के भय से पीतल के ढकने से थाल ढका था। कॉलेज की वेश-भूपा वदलकर मुँह-हाथ धोकर तैयार होकर अमल आ उपस्थित हुआ।

आसन पर वैठकर अमल ने ढकना उठाया। देखा, थाल मे नई वँधी ऊन के जूतो की एक जोडी सजी रखी है। चारुलता उच्च स्वर से हँस उठी।

जूते पाकर अमल की आशा और भी वढ गई। इस वार गुलूवन्द चाहिए। रेशम के रूमाल मे फूल काढकर किनारी की सिलाई कर देनी होगी; वाहर के कमरे मे उसके वैठने की वड़ी कुर्सी को तेल के दाग से वचाने के लिए कशीदे का एक गिलाफ चाहिए।

प्रत्येक वार चारुलता आपत्ति करती हुई झगडा करती और हर वार बड़े यत्न, स्नेह से शौकीन अमल का शौक पूरा कर देती। अमल वीच-वीच मे पूछता, "भाभी, कहाँ तक हुआ?"

चारुलता झूठ-मूठ कहती, "कुछ भी नही हुआ," कभी कहती, "उसकी तो

मुझे याद ही नही थी।"

किन्तु अमल छोडने वाला व्यक्ति नही था। प्रतिदिन स्मरण करा देता और हठ करता। हठी अमल के इन सब उपद्रवो का उद्रेक कराने के लिए ही उदासीनता का प्रदर्शन करके वह विरोध की सृष्टि करती और सहसा एक दिन उसकी माँग पूरी करके तमाशा देखती।

धनी के घर मे चारु को और किसी के लिए कुछ भी नही करना पड़ता था, केवल अमल उसे विना काम कराए नही छोडता था। शौक से किए गए इस सब छोटे-मोटे परिश्रमो से ही उसकी हृदय-वृत्ति की तुष्टि और चरितार्थता थी।

भूपति के अन्त:पुर मे जमीन का जो एक टुकड़ा पडा था उसको वगीचा कहने मे वहुत-कुछ अत्युक्ति होगी। उस वगीचे की प्रधान वनस्पति थी—एक विलायती आँवले का पेड।

इस भूखण्ड की उन्नति करने के लिए चारु और अमल की एक कमेटी वैठी। दोनो मिलकर कई दिनो तक चित्र खीचकर, प्लैन वनाकर, वडे उत्साह से उस जमीन के ऊपर एक वगीचे की कल्पना को साकार करने मे लगे रहे।

अमल ने कहा, "भाभी, अपने इस वगीचे मे प्राचीन काल की राज-कन्या के समान तुमको अपने हाथो पेडो मे जल देना होगा।"

चारु ने कहा, "और इस पश्चिम के कोने मे एक झोपडी तैयार करनी होगी, हरिण का वच्चा रहेगा।"

अमल ने कहा, "और एक छोटी-सी झील वनानी होगी, उसमे हस चुगेगा।"

इस प्रस्ताव से उत्साहित होकर चारु वोली, "और उसमे नील कमल लगाऊँगी, वहुत दिनों से नीलकमल देखने की मेरी इच्छा है।"

अमल वोला, "उस झील पर एक पुल वनाया जायेगा, और घाट पर छोटी-सी एक सुन्दर डोंगी रहेगी।"

चारु ने कहा, "घाट तो अवश्य ही सफेद सगमर्मर का वनेगा।"

अमल ने पेन्सिल-कागज लेकर, रूल, कम्पास जुटाकर वड़े आडम्वर से वगीचे का एक नक्शा खीचा।

दोनो के मिलकर प्रतिदिन कल्पना मे सशोधन, परिवर्तन करते-करते वीस-पच्चीस नए नक्शे तैयार हो गए।

नक्शा तैयार हो जाने पर कितना खर्च वैठेगा इसका एक एस्टिमेट तैयार होने लगा। पहले सोचा था—चारु अपने निर्धारित हाथ-खर्च मे से धीरे-धीरे उद्यान तैयार करवा लेगी। घर मे कहाँ क्या हो रहा है भूपति तो उस ओर आँख उठाकर भी नही देखता; वह सोचेगा, अलादीन के चिराग की सहायता से जापान देश से

एक सम्पूर्ण बाग उखाड़कर लाया गया है।

किन्तु एस्टिमेट काफ़ी कम करने पर भी वह चारु की सामर्थ्य से बाहर था। अमल फिर रूपरेखा में परिवर्तन करने बैठा। बोला, "तो भाभी, उस झील को छोड दिया जाय।"

चारु बोली, "नहीं, नहीं, झील तो किसी तरह नहीं छोड़ी जा सकती, उनमें मेरे नीलपद्म रहेंगे।"

अमल ने कहा, "अपने हरिण के घर पर खपरैल की छत मत डालो। उस पर यों ही मामूली-सा पुआल छवा देने से काम चलेगा।"

चारु ने अत्यन्त अप्रसन्न होकर कहा, "तो हमें उस घर की जरूरत नहीं, रहने दो।"

मारीशस से लवंग, कर्णाट से चन्दन, और सिंहल से दालचीनी के पौधे मँगवाने का प्रस्ताव था, अमल के उनके बदले में मानिकतला से मामूली देशी और विलायती वृक्षों के नाम प्रस्तावित करते ही चारु मुँह फुलाकर बैठ गई और बोली, "तो फिर रहने दो, मुझे बगीचा नहीं चाहिए!"

एस्टिमेट कम करने का यह ढंग नहीं है। एस्टिमेट के साथ-साथ कल्पना को नष्ट करना चारु के लिए असाध्य था और अमल मुँह से चाहे कुछ कहे, मन-ही-मन उसे भी यह रुचिकर नहीं लगा था।

अमल ने कहा, "तो भाभी, तुम भैया से बगीचे की बात छेड़ो, वे अवश्य ही रुपया देंगे।"

चारु ने कहा, "नहीं, उनसे कहने में मजा क्या रहा। हमीं दोनों बगीचा तैयार कर लेंगे। वे तो साहब के घर में फर्माइश करके इडेन गार्डेन बनवा सकते हैं,—तब हमारे प्लैन का क्या होगा।"

आँमडे के वृक्ष की छाया में बैठकर चारु और अमल असाध्य संकल्प के कल्पना-सुख की रचना कर रहे थे। चारु की भावज मन्दा ने दोतल्ले से पुकारकर कहा, "इतनी देर हो गई तुम लोग बगीचे में क्या कर रहे हो?"

चारु ने कहा, "पके आँमड़े ढूँढ रहे हैं।"

ललचाकर मन्दा ने कहा, "मिलें तो मेरे लिए भी लाना!"

चारु हँसी, अमल भी हँसा। उनके समस्त संकल्पों का प्रधान सुख और गौरव यही था कि वे उन दोनों तक ही सीमित थे। मन्दा में और चाहे जो गुण हों, कल्पना नहीं थी, वह इन समस्त प्रस्तावों का रस कैसे ग्रहण कर सकती थी? इन दो सदस्यों की हर कमेटी से वह बिलकुल बहिष्कृत थी।

न तो उस असाध्य बगीचे का एस्टिमेट कम हुआ और न कल्पना ने ही

किसी प्रकार हार माननी चाही। अतएव आँमड़े के वृक्ष के नीचे की कमेटी कुछ दिन इसी प्रकार चलती रही। बगीचे मे जिस स्थान पर झील बनेगी, जहाँ पर हरिण का घर तैयार होगा, जहाँ पत्थर की वेदी बनेगी, अमल ने उन स्थानो पर चिह्न लगा दिये।

उनके इस कल्पित बगीचे मे आँमडे के वृक्ष के नीचे चारो ओर किस प्रकार का चबूतरा होगा अमल एक छोटी कुदाल लेकर उसका निशान बना रहा था—तभी वृक्ष की छाया मे बैठी चारु ने कहा, "अमल, यदि तुम लिख सकते तो अच्छा होता!'

अमल ने प्रश्न किया, "क्यो अच्छा होता?"

चारु—"अपने इस बगीचे का वर्णन करके तुमसे एक कहानी लिखवाती। यह झील, यह हरिण का घर, आँमड़े की छाया, उसमे ये सभी रहते—हम दोनो को छोडकर और कोई न समझ पाता, बड़ा मजा आता। अमल, तुम एक बार लिखने का प्रयत्न कर देखो न, तुम अवश्य लिख सकोगे।"

अमल ने कहा, "अच्छा यदि लिख सका तो मुझे क्या दोगी।"

चारु ने कहा, "तुम क्या चाहते हो?"

अमल बोला, "अपनी मसहरी की छत पर मै स्वय लता चित्रित कर दूँगा, तुम्हे वह पूरा-का-पूरा रेशम से काढ़ देना होगा।"

चारु ने कहा, "तुम सभी बातो मे अति करते हो। भला मसहरी की छत पर कढाई।"

मसहरी-जैसी वस्तु को श्री-हीन कारागार के समान बना रखने के विरुद्ध अमल ने बहुत-सी बाते कही। उसने कहा, "ससार के पन्द्रह आना लोगो मे सौंदर्य-बोध नही है और कुरूपता उन्हे तनिक भी नही अखरती यह उसी का प्रमाण है।"

चारु ने यह बात मन-ही-मन तुरन्त स्वीकार कर ली और अपनी दो जनो की जो गुप्त कमेटी है वह उन पन्द्रह आना लोगो मे नही है ऐसा सोचकर वह प्रसन्न हुई।

उसने कहा, "अच्छा ठीक है, मै मसहरी की छत तैयार कर दूँगी, तुम लिखो!"

अमल ने गूढ भाव से कहा, "तुम सोचती हो कि मैं लिख नही सकता।"

चारु ने अत्यन्त उत्तेजित होकर कहा, "तब तो तुमने जरूर कुछ लिखा है, मुझे दिखलाओ!"

अमल—"आज रहने दो, भाभी!"

चारु—"नही, आज ही दिखाना होगा—तुम्हे मेरे सिर की सौगन्ध, अपना

लेख ले आओ !"

चारु को अपना लेख सुनाने की अत्यंत उत्सुकता ही अमल को इतने दिन वाधा दे रही थी। कही चारु समझ न पाए। कही उसको अच्छा न लगे, इस संकोच को वह दूर नही कर पा रहा था।

आज कापी लाकर थोडा लाल होकर थोडा खाँसकर उसने पढ़ना आरम्भ किया। चारु पेड़ के तने से पीठ टेककर घास के ऊपर पैर फैलाकर सुनने लगी।

लेख का विषय था, 'मेरी कॉपी'। अमल ने लिखा था, "हे मेरी कोरी कॉपी, मेरी कल्पना ने अभी तक तुम्हारा स्पर्श नही किया है। सूतिका-गृह मे भाग्य-पुरुष के प्रवेश करने के पूर्व शिशु के ललाटपट्ट के समान तुम निर्मल हो, रहस्यमय हो। जिस दिन तुम्हारे अंतिम पृष्ठ की अंतिम पक्ति में उपसंहार लिख सकूँगा वह दिन आज कहाँ है। तुम्हारे ये कोरे शिशुपत्रादि आज उस चिरन्तन मसि-चिह्नित समाप्ति की बात की स्वप्न मे भी कल्पना नही करते"—इत्यादि अनेक बात लिखी थी।

चारु वृक्ष की छाया मे बैठकर स्तब्ध होकर सुनने लगी। पढना समाप्त होने पर क्षण-भर चुप रहकर वोली, "तुम फिर नही लिख सकते ?"

उस दिन उस वृक्ष के नीचे अमल ने साहित्य के मादक-रस का प्रथम पान किया, साकी नया था, रसना भी नवीन, और अपराह्न का आलोक लम्बी छाया मे रहस्यपूर्ण-सा लग रहा था।

चारु वोली, "अमल, कुछ आँमडे तोड़कर ले चलने होगे, नही तो मन्दा को क्या हिसाव देगे ?"

मूढ मन्दा को अपनी पढाई-लिखाई और चर्चा की वाते वताने की इच्छा नही होती, इसलिए आँमड़े तोड़कर ले जाने पड़े।

: २ :

वाग लगाने का संकल्प उनके अन्य अनेक सकल्पो की भाँति सीमाहीन कल्पना क्षेत्र मे कव खो गया, अमल और चारु को इसका पता भी न चला।

अव अमल के लेख ही उनकी चर्चा और परामर्श के प्रधान विपय वन गए। अमल आकर कहता, "भाभी, एक वहुत सुन्दर भाव दिमाग मे आया है।"

चारु उत्साहित हो उठती। कहती, ' चलो, हमारे दक्षिण की ओर के वरामदे में—यहाँ अभी मन्दा पान लगाने आयेगी।"

चारु कश्मीरी वरामदे मे एक जीर्ण वेत की कुर्सी पर आकर वैठती और अमल रेलिङ्ग के नीचे की ऊँची जगह पर पैर फैला देता।

अमल के लिखने के विषय प्राय सुनिर्दिष्ट नही होते थे; उनको स्पष्ट रूप से वता सकना कठिन था। अव्यवस्थित ढग से वह जो कहता उसको स्पष्ट रूप से समझना किसी के लिए भी सभव नही था। अमल स्वयं ही वार-वार कहता, "भाभी, तुमको अच्छी तरह समझा नही पा रहा हूँ।"

चारु कहती, "नही, मैं वहुत-कुछ समझ गई; तुम इसीको लिख डालो, देरी मत करो!"

वह कुछ समझती, कुछ न समझती, वहुत-कुछ कल्पना करके, वहुत-कुछ अमल के व्यक्त करने के आवेग द्वारा उत्तेजित होकर मन के भीतर जाने क्या गढ लेती--उसी से वह सुख का अनुभव करती और व्यग्रता से अधीर हो उठती।

चारु उसी दिन अपराह्ण में पूछती, "कितना लिखा?"

अमल कहता, "इतनी जल्दी क्या लिखा जा सकता है?"

चारु दूसरे दिन प्रात कुछ झगडे के स्वर मे प्रश्न करती, "क्यो, तुमने वह लिखा नही?"

अमल कहता, "ठहरो, और थोडा सोच लूँ!"

चारु गुस्सा होकर कहती, "चलो, हटो!"

सन्ध्या को क्रोध घनीभूत होने पर चारु जव वातचीत वन्द करने का उपक्रम करती तव अमल लिखे कागज का एक अश रूमाल निकालने के वहाने जेव से थोडा वाहर निकालता।

क्षण-भर मे ही चारु का मौन भग हो जाता। वह वोल उठती, "अच्छा, तो तुमने लिख लिया है, मुझे वहका रहे थे! दिखाओ!"

अमल कहता, "अभी पूरा नही हुआ, थोडा और लिखकर सुनाऊँगा।"

चारु—"नही, अभी सुनाना होगा।"

अमल तुरन्त सुनाने के लिए व्याकुल रहता, किन्तु कुछ देर चारु के छीना-झपटी किये विना वह नही सुनाता था। उसके वाद अमल कागज हाथ मे लिए वैठा-वैठा पहले तो कुछ पन्ने ठीक करता, पेन्सिल लेकर दो-एक जगह दो-एक सशोधन करता रहता, इस वीच चारु का चित्त प्रसन्न कौतूहल भाव से जलभार-नत मेघ के समान कागज के उन कुछ पन्नो पर झुका रहता।

अमल जव-जो छोटे-मोटे दो-चार अनुच्छेद लिखता वे ही चारु को तभी सुनाने पडते। वाकी अलिखित भाग आलोचना और कल्पना द्वारा दोनो के वीच मथित होता रहता।

इतने दिन तक दोनो आकाश-कुसुम के सकलन मे लगे हुए थे, अव काव्य-कुसुम की कृषि आरम्भ करते ही वे और सव-कुछ भूल गए।

एक दिन अपराह्न मे कॉलेज से लौटने पर अमल की जेव कुछ ज्यादा भरी हुई प्रतीत हुई। अमल ने जव घर मे प्रवेश किया, तभी चारु ने अन्त.पुर के गवाक्ष से उसकी जेव की पूर्णता की ओर ध्यान दिया था।

और दिन कॉलेज से लौटकर घर के भीतर आने मे अमल देरी नही करता था, आज उसने अपनी भरी हुई जेव के साथ वाहर के कक्ष मे प्रवेश किया; जल्दी आने का नाम ही न लिया।

अन्त पुर की सीमा के पास आकर चारु ने वहुत वार तालियाँ वजाईं, किसी ने नही सुना। कुछ क्रोध से अपने वरामदे मे मन्मथ दत्त की एक पुस्तक लेकर चारु पढने की चेष्टा करने लगी।

मन्मथ दत्त नए लेखक थे। उनके लिखने की शैली वहुत-कुछ अमल के समान ही थी, इसी कारण अमल कभी भी उनकी प्रशसा नही करता था; वीच-वीच मे उनके लेखो को चारु के सामने विकृत उच्चारण से पढ़कर हँसी उड़ाता—चारु अमल से वह पुस्तक छीनकर अवज्ञा-भाव से दूर फेक देती।

आज जैसे ही अमल का पद-शव्द सुना तो उन्ही मन्मथ दत्त की 'कलकण्ठ' नामक कृति मुँह के पास लाकर चारु ने अत्यन्त एकाग्रभाव से पढना आरम्भ किया।

अमल ने वरामदे मे प्रवेश किया, चारु ने ध्यान भी न दिया। अमल ने कहा, 'क्यो भाभी, क्या पढाई हो रही है ?"

चारु को निरुत्तर देखकर अमल ने चौकी के पीछे आकर पुस्तक देखी। कहा, "मन्मथदत्त की गड़वड़।"

चारु ने कहा, "उफ ! परेशान मत करो, मुझे पढने दो !" पीठ के समीप खड़े होकर अमल व्यङ्ग्यपूर्ण स्वर मे पढ़ने लगा, "मैं तृण हूँ, क्षुद्र तृण, भाई रक्ताम्वर राजवेशधारी अशोक, मैं तृण-मात्र हूँ ! मेरे फूल नही, मेरी छाया नही, मैं आकाश मे अपना सिर नही उठा सकता, वसन्त की कोकिल मेरा आश्रय लेकर कुहू स्वर से जगत् को उन्मत्त नही करती—तो भी भाई अशोक, अपनी उस उच्च पुष्पित शाखा से तुम मेरी उपेक्षा मत करना, तुम्हारे पैरो मे पड़ा मैं तृण हूँ, सो भी मुझे तुच्छ मत समझना !"

अमल पुस्तक से इतना-सा पढ़ने के वाद वना-वनाकर कहने लगा, "मैं केले की गहर हूँ, कच्चे केले की गहर, भाई कूष्माण्ड भाई, गृह-छप्पर-विहारी कूष्माण्ड, मैं तो नितान्त कच्चे केले की गहर हूँ।"

चारु कौतूहल के मारे रोप वनाए न रह सकी; हँसकर उठती हुई पुस्तक पटककर वोली, "तुम वड़े ही ईर्ष्यालु हो, अपनी रचना के अलावा कुछ भी पसन्द

नही आता।"

अमल ने कहा, "तुम्हारी उदारता का क्या कहना है, तिनका भी मिल जाय तो निगल लो!"

चारु—"अच्छा जनाव, मजाक रहने दो, पॉकेट मे क्या है, निकाल डालो।"

अमल—'क्या है, अन्दाज लगाओ!"

वहुत देर तक चारु को परेशान करके अमल ने जेव से 'सरोरुह' नामक विख्यात मासिक पत्र वाहर निकला।

चारु ने देखा, पत्रिका मे अमल का वही 'खाता' (कॉपी) नामक लेख प्रकाशित हुआ है।

चारु देखकर चुप रह गई। अमल ने सोचा था, उसकी भाभी खूव खुश होगी। किन्तु प्रसन्नता का कोई विशेप लक्षण न देखकर वोला, "सरोरुह पत्र मे ऐसा-वैसा लेख प्रकाशित नही होता।"

अमल ने यह कुछ वढाकर कहा था। चाहे-जैसा काम चलाऊ लेख हो, मिल जाता तो संपादक छोडते न थे। किन्तु अमल ने चारु को समझा दिया, सपादक वहुत कड़ा आदमी होता है, सौ लेखो मे से एक छॉटता है।

सुनकर चारु प्रसन्न होने की चेष्टा करने लगी, किन्तु वह प्रसन्न नही हो सकी। क्यो उसके मन को आघात पहुँचा, उसे समझने की चेष्टा की, किन्तु कोई संगत कारण न खोज सकी।

अमल का लेख अमल और चारु दोनों की सम्पत्ति थी। अमल लेखक था और चारु पाठक: उसकी गोपनता ही उसका प्रधान रस था। उस लेख को सव कोई पढेगा और वहुत-से लोग उसकी प्रशंसा करेगे, यह चारु को क्यो इतना कष्ट दे रहा था, इसको वह ठीक से न समझ सकी।

किन्तु लेखक की आकाक्षा केवल एक पाठक-भर से ज्यादा दिन तक तृप्त नही होती। अमल ने अपने लेख छपाने आरम्भ किये। प्रशसा भी प्राप्त की।

वीच-वीच मे भक्तो के पत्र भी आने लगे। अमल उन्हे अपनी भाभी को दिखलाता। चारु इससे खुश भी होती और कष्ट भी पाती। अव अमल को लेख लिखने मे प्रवृत्त कराने के लिए एकमात्र उसके उत्साह और प्रेरणा की आवश्यकता नही रह गई थी। अमल को वीच-वीच मे कदाचित् नाम-हस्ताक्षर-विहीन रमणियो के पत्र भी मिलने लगे। इसे लेकर चारु उससे मज़ाक तो करती, किन्तु उसे सुख न मिलता। सहसा उनकी कमेटी का वन्द द्वार खोलकर वंगाल की पाठक-मडली उन दोनो के वीच मे आकर खड़ी हो गई।

भूपति ने एक दिन छुट्टी के समय कहा, "अरे चारु, अपना अमल इतना

अच्छा लिख सकता है यह तो मै जानता ही न था।"

भूपति की प्रशंसा से चारु खुश हुई। अमल भूपति का आश्रित था; किन्तु अन्य आश्रितो की अपेक्षा उसमे वहुत भेद था—इस वात को उसके पति के समझने पर चारु ने जैसे गर्व का अनुभव किया। उसका अभिप्राय यह था कि, 'अमल को क्यो मैं इतना प्यार-दुलार करती हूँ यह वात तुम लोग इतने दिनो वाद समझे। मैं वहुत दिनों पहले ही—अमल की मर्यादा समझ गई थी; अमल किसी की भी अवज्ञा का पात्र नही है।'

चारु ने प्रश्न किया, "तुमने उसका लेख पढ़ा है।"

भूपति ने कहा, "हाँ, नही, ठीक से नही पढा। समय नही मिला। किन्तु अपना निशिकान्त पढकर खूब प्रशसा कर रहा था'। वह वंगला-रचना अच्छी तरह समझता है।"

भूपति के मन मे अमल के प्रति सम्मान का भाव जग उठे, चारु की यह एकान्त इच्छा थी।

: ३ :

उमापद भूपति को अपने अखवार के साथ अन्य कई प्रकार के उपहार देने की वात समझा रहा था। उपहार से किस प्रकार नुकसान की वजाय लाभ हो सकता है, यह भूपति किसी प्रकार भी नही समझ पा रहा था।

चारु एक वार कमरे में झाँककर उमापद को देखकर चली गई। कुछ देर वाद फिर घूम-फिरकर उसने कमरे मे आकर देखा, दोनो व्यक्ति हिसाव को लेकर वहस कर रहे थे।

चारु की अधीरता देखकर उमापद कोई वहाना करके वाहर चले गए। भूपति हिसाव से माथा-पच्ची करने लगा।

कमरे मे प्रवेश कर चारु ने कहा, "क्या अभी तक तुम्हारा काम समाप्त नही हुआ? मै तो यही सोचती हूँ कि इस एक अखवार के पीछे तुम रात-दिन कैसे काट देते हो।"

हिसाव को एक ओर सरकाते हुए भूपति थोडा मुसकराए। मन-ही-मन सोचा, 'वास्तव मे चारु की ओर ध्यान देने का समय ही नही मिलता, यह वड़ा अन्याय है। उस वेचारी के पास समय काटने के लिए कुछ भी नही है।'

स्नेहपूर्ण स्वर मे भूपति ने कहा, "आज तुम्हारी पढाई नही होगी? मास्टर क्या भाग गए है? तुम्हारी पाठशाला का नियम सव उलटा है—छात्रा तो पोथी-पत्रा लिये तैयार है, मास्टर गायव! शायद आजकल अमल तमको पहले के समान

नियमित रूप से नही पढाता।"

चारु ने कहा, "मुझे पढाकर अमल का समय नष्ट करना क्या उचित है? अमल को तुमने क्या एक मामूली प्राइवेट ट्यूटर समझ लिया है?"

चारु की कमर पकडकर पास खीचकर भूपति ने यह कहा, "यह क्या मामूली प्राइवेट-ट्यूटरी हुई। तुम्हारी-जैसी भाभी यदि मुझे पढाने के लिए मिलती तो..."

चारु—"वस-वस रहने भी दो! पति वने हो यही क्या कम आफत है जो अव और···"

कुछ व्यथित-से होकर भूपति ने कहा, "अच्छा, कल से मैं अवश्य तुमको पढाऊँगा। अपनी पुस्तके तो लाओ, एक वार देखूँ तो तुम क्या पढ़ती हो?"

चारु—"वस, वस, हो गया, तुम्हे पढाने की जरूरत नही। पल-भर के लिए तो जरा अपना यह अखवार का हिसाव छोड नही सकते, अभी किसी और वात पर ध्यान दे सकते हो या नही, वताओ!"

भूपति ने कहा, "जरूर दे सकता हूँ। इस समय तुम मेरे मन को जिधर घुमाना चाहो उधर घूम जायगा।"

चारु—"वहुत खूव! तो फिर अमल के इस लेख को एक वार पढकर देखो कैसा सुन्दर वन पड़ा है! सम्पादक ने अमल को लिखा है, इस लेख को पढकर नवगोपाल वावू ने उसे 'वगला का रस्किन' नाम दिया है।"

सुनकर कुछ सकुचाते हुए भूपति ने पत्रिका हाथ मे ले ली। खोलकर देखा, लेख का शीर्पक था 'आपाढ़ का चाँद'। पिछले दो सप्ताह से भारत सरकार के वजट की समालोचना के सम्वन्ध मे भूपति अको की वडी-वडी तालिकाएँ वना रहा था। वे अक वहुपद कीडो के समान उसके मस्तिष्क के नाना विवरो मे रेग रहे थे। ऐसे मे अचानक वगला भापा मे 'आपाढ का चाँद' शीर्पक लेख आद्योपान्त पढने के लिए उसका मन तैयार न था। लेख भी नितान्त छोटा न था।

लेख इस प्रकार शुरू हुआ था, "आज आपाढ का चाँद रात-भर मेघो मे इस तरह छिपकर क्यो घूम रहा है, मानो स्वर्गलोक से वह कुछ चोरी कर लाया हो, मानो उसे अपना कलंक छिपाने की जगह न हो। फाल्गुन के महीने मे जव आकाश के किसी भी कोने मे कही मुट्ठी-भर भी मेघ नही थे तव तो जगत् की आँखो के सामने वह निर्लज्ज के समान उन्मुक्त आकाश मे अपने को प्रकाशित किये हुए था—और आज उसकी वही तरल हँसी—शिशु के स्वप्न के समान प्रिया की स्मृति के समान, सुरेश्वरी शची से अलकविलम्वित मोतियो की माला के समान..."

भूपति ने सिर खुजलाकर कहा, "अच्छा लिखा है। किन्तु मुझे क्या! यह

सब कवित्व क्या मैं समझता हूँ ?"

चारु ने लज्जित होकर भूपति के हाथ से पत्रिका छीनकर कहा, "तब तुम क्या समझते हो ?"

भूपति ने कहा, "मैं ससारी आदमी हूँ, मैं मनुष्य को समझता हूँ।"

चारु ने कहा, "मनुष्य की वात क्या साहित्य में नही लिखी जाती ?"

भूपति—"गलत लिखते है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के सशरीर वर्तमान रहते वनावटी वातों के बीच उसे खोजते फिरने की क्या जरूरत है ?"

यह कहकर चारुलता की ठोडी पकड़कर कहा, "यही तो, जैसे मैं तुमको समझता हूँ, किन्तु उसके लिए क्या 'मेघनाद-वध,' 'कविकंकणचण्डी' आदि आद्योपान्त पढने की जरूरत है ?"

भूपति को इस वात का अहंकार था कि वह काव्य नही समझता तो भी अमल के लेख को अच्छी तरह न पढने पर भी उसके प्रति मन-ही-मन भूपति को कुछ श्रद्धा थी। भूपति सोचता, 'कहने को कुछ भी नही, फिर भी अनर्गल इतनी वातें वनाकर कहना, यह तो मै सिर फोडकर मर जाऊँ तो भी नही कर सकता। अमल मे इतनी क्षमता है, यह कौन जानता था।'

भूपति अपनी रसज्ञता अस्वीकार करता, किंतु साहित्य के प्रति उसमे कृपणता नही थी। दरिद्र लेखक के उसको पकड लेने पर भूपति किताव छापने का खरचा देता, केवल विशेप रूप से यह कह देता, "किताव मुझे समर्पित न की जाय।" वंगला के छोटे-वडे सभी साप्ताहिक और मासिक पत्र, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध, पाठ्य-अपाठ्य सभी कितावे वह खरीदता। कहता, "एक तो पढता नही, ऊपर से यदि खरीदूं भी नही तो पाप भी करूँगा और प्रायश्चित्त भी न होगा।" पढता नही था, इसलिए खराव पुस्तको के प्रति उसका लेश-मात्र भी विद्वेप न था, इसी कारण उसकी वगला-पुस्तको की लाइब्रेरी ग्रन्थो से परिपूर्ण थी।

अमल अंग्रेजी के प्रूफ-संशोधन के कार्य मे भूपति की सहायता करता था; किसी कापी की दुर्बोध लिखावट दिखा लेने के लिए उसने एक गट्ठर कागज-पत्र लिये कमरे मे प्रवेश किया।

भूपति ने हँसकर कहा, "अमल, तुम आपाढ के चाँद और भाद्र मास के पके ताड-फल पर जो चाहो लिखो, उसमे मुझे कोई आपत्ति नही—मै किसी की भी स्वाधीनता मे हाथ नही डालना चाहता—किन्तु मेरी स्वाधीनता मे हस्तक्षेप क्यो ? वह सव मुझे पढाए विना नही छोड़ेगी, तुम्हारी भाभी का यह कैसा अत्याचार है।"

अमल ने हँसकर कहा, "ठीक तो है भाभी—मेरे लेखो को लेकर तुम भैया

पर जुल्म करने का उपाय निकाल लोगी, ऐसा जानता तो मैं लिखता ही नहीं।"

साहित्यरस-विमुख भूपति के सामने लाकर अपने अत्यन्त भावपूर्ण लेखों को अपदस्थ कराने के लिए अमल मन-ही-मन चारु के ऊपर नाराज हो गया एवं उसी क्षण यह समझते ही चारु दुखी हो गई। प्रसंग बदलने के अभिप्राय से उसने भूपति से कहा, "अपने भाई का विवाह करा दो, तो फिर कभी लेखों का उपद्रव न सहना पड़ेगा।"

भूपति ने कहा, "आजकल के लड़के हमारे समान अबोध नहीं हैं। वे कविता लिखने मे जैसे सयाने है वैसे ही काम-काज में भी हैं। भला तुम अपने देवर को विवाह करने के लिए राजी कहाँ करा पाई?"

चारु के चले जाने पर भूपति ने अमल से कहा, "अमल, मुझे एक अखबार की झंझट मे रहना पडता है, चारु बेचारी बड़ी अकेली रहती है। कोई काम-काज नही। बीच-बीच मे मेरे लिखने के कमरे में झाँककर चली जाती है। क्या करूँ, बताओ! अमल, तुम उसे जरा लिखने-पढ़ने में लगाए रख सको तो अच्छा हो। बीच-बीच मे यदि चारु को अँग्रेजी काव्य का अनुवाद करके सुनाओ तो उसको लाभ भी होगा और अच्छा भी लगेगा। चारु की साहित्य में [illegible] है।"

अमल ने कहा, "यह तो ठीक है। भाभी यदि थोड़ा और पढ़-लिख लें तो मेरा विश्वास है वे स्वयं अच्छा लिख सकेंगी।"

भूपति ने हँसकर कहा, "इतनी आशा नहीं करता, किन्तु [illegible] लेखों की अच्छाई-बुराई मेरी अपेक्षा ज्यादा समझ सकती।"

अमल—"उनकी कल्पना-शक्ति खूब है, महिलाओं में ऐसी नहीं मिलती।"

भूपति—"पुरुषों मे भी कम मिलती है, उसका प्रमाण मैं हूँ। अच्छी बात है, तुम यदि अपनी भाभी को गढ़कर तैयार कर सको तो मैं तुम्हें पारितोषिक दूँगा।"

अमल—"क्या दोगे, सुनूँ।"

भूपति—"तुम्हारी भाभी की जोड़ की कोई एक और [illegible] लाऊँगा।"

अमल—"फिर उसमें लगना होगा! सारा जीवन क्या [illegible] में ही काटूँगा।"

दोनों भाई आजकल के लड़के थे, किसी बात पर [illegible] नहीं अटकती।

: ४ :

पाठक-समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त करके अव अमल का सिर ऊँचा हो गया है। पहले वह स्कूली विद्यार्थी की भाँति रहता था, अव वह मानो समाज का गण्य-मान्य व्यक्ति वन गया है। वीच-वीच मे सभाओं मे साहित्यिक निवन्ध पढता है— सम्पादक और सम्पादक के दूत उसके कमरे मे आकर वैठे रहते है, उसको निमंत्रित करके खिलाते है, नाना सभाओ का सदस्य और सभापति वनने के लिए अनुरोध आते है, भूपति के घर मे नौकर-चाकरों तथा कुटुम्त्रियो की दृष्टि मे उसकी प्रतिष्ठा वढ़ गई है।

मन्दाकिनी अभी तक उसको महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नही समझती थी। अमल और चारु के हास्यालाप तथा आलोचना को वह वचपन कहकर उपेक्षा करती, पान लगा देती और घर का काम-काज करती रहती; अपने को वह उनसे श्रेष्ठ और संसार के लिए आवश्यक समझती थी।

अमल वेहद पान खाता था। मन्दा के ऊपर पान लगाने का भार था, इसलिए वह पान के अनुचित अपव्यय से चिढती। पड्यन्त्र करके मन्दा के पान-भण्डार को प्राय लूट लाना अमल और चारु के आमोदो मे से एक था। किन्तु इन दोनों शौकीन चोरो का चोरी का मजाक मन्दा को अच्छा नही लगता था।

असल वात है, एक आश्रित व्यक्ति दूसरे आश्रित व्यक्ति को अच्छी नजर से नही देखता। अमल के लिए मन्दा को जो थोड़े-वहुत अतिरिक्त काम-काज करने पड़ते उन्ही से वस मानो कुछ अपमान का अनुभव करती। चारु को अमल का पक्षपाती समझकर वह मुख से स्पष्ट कुछ कह नही पाती थी, किन्तु अमल की अवहेलना करने की उसकी कोशिश वरावर रहती। अवसर पाते ही पीठ पीछे नौकर-चाकरो से भी वह अमल के नाम पर ताने देना न भूलती। वे भी साथ देते।

किन्तु जव अमल का उत्थान आरम्भ हुआ तो मन्दा कुछ चौकी। अमल अव वह नही था। अव उसकी सकोचभरी नम्रता एकदम लुप्त हो गई थी। दूसरे की अवज्ञा करने का अधिकार अव मानो उसी के हाथ मे था। ससार मे प्रतिष्ठा प्राप्त करके जो व्यक्ति विना किसी हिचकिचाहट के निस्सकोच अपना प्रचार कर सकता है, जिस व्यक्ति ने एक निश्चित अधिकार प्राप्त कर लिया है, वह समर्थ व्यक्ति सहज ही स्त्री की दृष्टि आकर्षित कर सकता है। मन्दा ने जव देखा, अमल चारो ओर से श्रद्धा पा रहा है तव उसने भी अमल के ऊँचे उठे हुए मस्तक की ओर मुँह उठाकर देखा। अमल के तरुण मुख मे नवगौरव की गर्वोज्ज्वल दीप्ति ने

मन्दा की आँखों मे मोह उत्पन्न कर दिया; उसने मानो अमल को एक नए रूप मे देखा।

अब पान चुराने की आवश्यकता न रही। अमल के प्रसिद्धि पाने से चारु को यह एक और हानि हुई, उनके षड्यन्त्र का विनोद-बन्धन विच्छिन्न हो गया; पान अब अमल को अपने-आप मिल जाता, कोई अभाव न होता।

इसके अलावा, वे अपने दोनो के संगठित दल से मन्दाकिनी को विभिन्न उपायो द्वारा दूर रखने मे जिस आनन्द का अनुभव करते थे, उसमे नष्ट होने की भी तैयारी हो गई। मन्दा को दूर रखना कठिन हो गया। अमल का यह सोचना कि चारु ही उसकी एक-मात्र मित्र और प्रशंसक है, मंदा को अच्छा न लगता। पहले की अवहेलना को वह ब्याज-सहित शोधकर देने के लिए उद्यत थी। अत. अमल और चारु की भेंट होते ही मन्दा किसी-न-किसी बहाने बीच मे पडकर छाया डालकर ग्रहण लगा देती। मन्दा के इस आकस्मिक परिवर्तन को लेकर चारु उसकी अनुपस्थिति मे परिहास कर ले, इसका भी अवसर पाना कठिन हो गया।

मन्दा का यह अनामन्त्रित प्रवेश चारु को जितना अरुचिकर लगता था अमल को उतना नही—यह कहना व्यर्थ है। विमुख रमणी का मन क्रमश उसकी ओर फिर रहा था, इससे वह भीतर-ही-भीतर एक आसक्ति का अनुभव करता था।

किन्तु चारु जब दूर से मन्दा को देखकर धीमे से तीखे स्वर मे कहती, "यह लो, आ रही है।" तब अमल भी कहता, "सच, नाक मे दम कर दिया।" संसार के और सभी लोगो के सग के प्रति असहिष्णुता प्रकट करना उनका दस्तूर था, अमल सहसा उसे कैसे छोड़े। अन्त मे मन्दाकिनी के पास आने पर अमल जैसे बलपूर्वक शिष्टता दिखाकर कहता, "कहो, मन्दा भाभी, तुम्हें अपने पानदान मे आज बटमारी के कुछ चिह्न दिखे!"

मन्दा—"जब माँगते ही पा जाते हो, तब चोरी करने की क्या ज़रूरत!"

अमल—"माँगकर पाने से इसमे ज्यादा मज़ा है।"

मन्दा—"तुम लोग क्या पढ रहे थे, पढो न, भई। रुक क्यो गए? पाठ सुनना मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

इसके पूर्व पाठानुराग मे प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए मन्दा की ओर से कोई प्रयत्न नही देखा गया था, किन्तु 'कालो हि बलवत्तर'।'

चारु की इच्छा नही थी कि अरसिका मन्दा के सामने अमल पढ़े, अमल की इच्छा थी कि मन्दा भी उसका लेख सुने।

चारु—"अमल कमलाकान्त के दफ़्तर की समालोचना लिखकर लाया है, वह क्या तुमको...?"

मन्दा—"मैं मूर्ख ही सही, फिर भी अगर सुनूँ तो क्या बिलकुल भी नही समझ पाऊँगी ?"

तब अमल को और एक दिन की बात याद आ गई। चारु और मन्दा ताश खेल रही थी, वह हाथ मे अपना लेख लिये खेल की मजलिस मे प्रविष्ट हुआ था। वह चारु को सुनाने के लिए अधीर था, खेल खत्म न होते देखकर खीझ रहा था, अन्त मे बोल पडा, "तो फिर भाभी तुम खेलो, मैं अखिल बाबू को लेख सुना आता हूँ।"

चारु ने अमल की चादर पकडकर कहा था, "अरे ! बैठो ना, कहाँ जाते हो !" यह कहकर चटपट हार मानकर खेल खत्म कर दिया था।

मन्दा ने कहा, "क्या तुम लोगो का पाठ आरम्भ होगा ? तो मैं उठूँ ?"

चारु ने शिष्टाचार दिखाते हुए कहा था, "क्यों, तुम भी सुनो न, भई !"

मन्दा—"नही भैया, मै तुम्हारी ये बाते खाक भी नही समझती। मुझे तो बस नीद आने लग जाती है"—यह कहते हुए वह बीच ही मे खेल खत्म हो जाने के कारण दोनो पर खीझती हुई चली गई थी।

वही मन्दा आज कमलाकान्त की समालोचना सुनने के लिए उत्सुक थी। अमल बोला, "यह तो अच्छी बात है, मन्दा भाभी, तुम सुनो यह तो मेरा सौभाग्य है।" यह कहते हुए उसने पन्ने पलटकर फिर शुरू से पढने की तैयारी की। लेख के आरम्भ मे उसने पर्याप्त मात्रा मे रस बरसाया था, उसे शामिल किए बिना पढने की उसकी इच्छा नही हुई।

चारु चट-से बोली, "देवरजी, तुमने कहा था न कि जाह्नवी लाइब्रेरी से कुछ पुराने मासिक पत्र ला दोगे !"

अमल—"आज थोडे ही।"

चारु—"आज ही तो। वह भूल गए शायद ?"

अमल—"भूलूँगा क्यो। तुमने कहा था न .."

चारु—"अच्छी बात है, मत लाओ। तुम लोग पढो। मैं चलूँ, चलकर परेश को लाइब्रेरी भेज दूँ।" कहकर चारु उठ खड़ी हुई।

अमल को विपद की आशंका हुई। मन्दा मन-ही-मन समझ गई और क्षण-भर मे ही उसका मन चारु के प्रति विपाक्त हो उठा। चारु के चले जाने पर जब अमल उठे, या न उठे, यह सोचता हुआ इधर-उधर कर रहा था तब मन्दा जरा हँसकर बोली, "जाओ भई, जाकर मनाओ; चारु रूठ गई है। मुझे लेख सुनाओगे तो मुश्किल मे पड़ जाओगे।"

इसके बाद अमल के लिए उठना अत्यन्त कठिन हो गया। अमल ने चारु पर

कुछ रुष्ट होकर कहा, "क्यो, मुश्किल काहे की ?" कहते हुए लेख खोलकर पढ़ने की तैयारी करने लगा।

मन्दा ने दोनो हाथो से उसका लेख ढकते हुए कहा, "क्या जरूरत है, भई, मत पढो !" कहकर मानो आँसू रोकने के लिए अन्यत्र चली गई।

: ५ :

चारु दावत मे गई थी। मन्दा कमरे मे बैठी बालों मे चुटीला गूँथ रही थी। 'भाभी' कहते हुए अमल ने कमरे मे प्रवेश किया। मन्दा अच्छी तरह जानती थी कि चारु के दावत मे जाने का समाचार अमल से छिपा नही है। हँसकर बोली, "अल्लाह, अमल बाबू, किसे खोजने आये और मिला कौन ! तुम्हारी तकदीर ही ऐसी है।"

अमल ने कहा, "जैसा बाँई ओर का पुआल, ठीक वैसा ही दाहिनी ओर का पुआल। गदहे के लिए तो दोनो बराबर प्रिय है।" कहकर वही बैठ गया।

अमल—"मन्दा भाभी, अपने गाँव की कहानी कहो, मैं सुनूँगा।"

लेख के विषय संग्रह करने के लिए अमल सभी जनो की सारी बाते कौतूहल के साथ सुनता। इसी कारण अब वह मन्दा की पहले के समान पूर्ण उपेक्षा नही करता था। मन्दा का मनस्तत्त्व, मन्दा का इतिहास अब उसकी उत्सुकता के विषय थे। उसकी जन्मभूमि कहाँ थी, उसका गाँव कैसा था, बचपन किस प्रकार बिताया, विवाह कब हुआ, इत्यादि सभी बाते खोद-खोदकर पूछने लगा। मन्दा के लघु जीवन-वृत्तान्त के सम्बन्ध मे इतनी उत्सुकता कभी किसी ने प्रकट नही की थी। मन्दा आनन्दपूर्वक अपनी बाते सुनाती जा रही थी; बीच-बीच मे कहती, "क्या कहती जा रही हूँ, कोई ठिकाना है !"

अमल ने प्रोत्साहन देते हुए कहा, "नही, मुझे बहुत अच्छा लग रहा है, कहे जाओ !" मन्दा के पिता का एक काना गुमाश्ता था, वह अपनी दूसरी स्त्री के साथ झगडा करके किसी-किसी दिन रूठकर अनशन व्रत करता, अन्त मे भूख की ज्वाला से त्रस्त मन्दा के घर किस प्रकार छिपकर भोजन करने आता और दैवात् एक दिन स्त्री के द्वारा किस प्रकार पकड़ा गया, जिस समय यह कहानी चल रही थी और अमल मनोयोगपूर्वक सुनते हुए सकौतुक हँस रहा था उसी समय चारु ने आकर कमरे मे प्रवेश किया।

कहानी का सूत्र टूट गया। उसके आगमन से सहसा एक जमी हुई सभा भग हो गई, चारु इसको साफ समझ गई।

अमल ने प्रश्न किया, "भाभी, इतनी जल्दी कैसे लौट आई ?"

चारु ने कहा, "यही तो देख रही हूँ। बहुत जल्दी लौट आई।" यह कहते हुए चले जाने को तैयार हुई।

अमल बोला, "अच्छा ही किया, मुझे बचा लिया। मैं सोच रहा था, न मालूम कब लौटोगी। मन्मथ दत्त की 'सन्ध्यार पाखि' (सन्ध्या का पक्षी) नामक नई पुस्तक तुमको पढकर सुनाने के लिए लाया हूँ।"

चारु—"अभी रहने दो, मुझे काम है।"

अमल—"काम है तो मुझे हुक्म दो, मैं कर डालता हूँ।"

चारु जानती थी कि अमल आज पुस्तक खरीदकर उसे सुनाने आयेगा; चारु ईर्ष्या उत्पन्न करने के लिए, मन्मथ के लेख की खूब प्रशंसा करेगी और अमल उस पुस्तक को विकृत करके पढकर हँसी उड़ायेगा। यह सब कल्पना करके अधैर्यवश वह समय से पहले ही निमत्रण-गृह की समस्त अनुनय-विनय का उल्लंघन करके तबियत खराब के बहाने घर लौट आई थी। अब बार-बार मन मे सोच रही थी, 'वही ठीक थी, चला आना अनुचित हुआ।'

मन्दा भी तो कम बेहया नही। अमल के साथ एक कमरे मे अकेली बैठी दाँत निपोरकर हँस रही है। लोग देखेगे तो क्या कहेगे। किन्तु मन्दा की इस बात को लेकर फटकारना चारु के लिए बडा कठिन था। कारण, यदि मन्दा ने उनके ही दृष्टान्त का उल्लेख करके उत्तर दिया तो ? किन्तु वह अलग बात है, और यह अलग। वह अमल को लिखने के लिए उत्साह देती है, अमल के साथ साहित्या-लोचना करती है, किन्तु मन्दा का तो वह उद्देश्य ज़रा भी नही। मन्दा निस्सन्देह ही सरल युवक को मुग्ध करने के लिए जाल बिछा रही है। इस भयंकर विपत्ति से बेचारे अमल की रक्षा करना उसीका कर्त्तव्य है। अमल को इस मायाविनी का उद्देश्य किस प्रकार समझाए ? समझाने पर उसके प्रलोभन की निवृत्ति न होकर यदि उलटा हुआ तो ?

बेचारे भैया ! वे तो अपने मालिक के अखबार मे दिन-रात पिसे जा रहे हैं, और मन्दा यहाँ कौने मे बैठी अमल को भुलाने का आयोजन कर रही है। भैया एकदम निश्चिन्त है। मन्दा के ऊपर उनका अगाध विश्वास है। इन सब बातो को स्वय अपनी आँखो देखकर चारु कैसे स्थिर रहे ! बडी ज्यादती है।

किन्तु पहले अमल अच्छा था जिस दिन से लिखना आरम्भ करके ख्याति प्राप्त की है उसी दिन से सारे अनर्थ दिखने लगे है। चारु ही तो उसके लिखने के मूल मे थी। किस अशुभ क्षण मे उसने अमल को रचना करने के लिए उत्साहित किया ! अब क्या अमल के ऊपर उसका पहले की भाँति जोर चलेगा ? अब अमल को पाँच जनो के प्यार का स्वाद मिल चुका है, अतएव एक को छोड़ देने से उसका

कुछ आता-जाता नही।

चारु ने स्पष्ट समझा, उसके हाथ से निकलकर पांच जनो के हाथ मे जा पड़ने पर अमल के लिए चारों ओर विपद है। अमल अब चारु को ठीक अपना समकक्ष नही समझता, चारु से वह आगे निकल गया है। अब वह लेखक है, चारु पाठक। इसका प्रतिकार करना ही होगा।

ओह ! सरल अमल, मायाविनी मन्दा, बेचारे भैया ?

: ६ :

उस दिन आषाढ के नवीन मेघों से आकाश ढक गया था। कमरे मे घनीभूत अन्धकार होने के कारण चारु अपने खुले जंगले के पास खूब झुककर न जाने क्या लिख रही थी।

अमल कब चुपचाप पीछे आकर खडा हो गया इसका उसे पता न चला। बादलो के स्निग्ध आलोक मे चारु लिखती रही, अमल पढ़ने लगा। पास मे अमल के ही छपाये दो-एक लेख खुले पड़े थे, चारु के लिए वे ही रचना के एकमात्र आदर्श थे।

"तुम तो कहती थी, तुम लिख ही नही सकती।"

अचानक अमल की आवाज़ सुनकर चारु जोर से चौंक पड़ी, झटपट कापी छिपाकर बोली, "यह तुम्हारी ज्यादती है।"

अमल—"क्या ज्यादती की है ?"

चारु—"छिपे-छिपे क्यो देख रहे थे ?"

अमल—"प्रकट रूप से देख नही पाता, इसलिए।"

चारु ने अपना अपना लेख फाड डालने का प्रयत्न किया। अमल ने झट से उसके हाथ से कापी छीन ली। चारु बोली, "अगर तुम पढ़ोगे तो तुम्हारे साथ हमेशा के लिए कुट्टी हो जायगी।"

अमल—"अगर पढने से रोकोगी तो तुम्हारे साथ हमेशा को कुट्टी हो जायगी।

चारु—"तुम्हे मेरे सिर की सौगंध है देवरजी, मत पढो।"

अन्त मे चारु को ही हार माननी पडी। कारण, अमल को अपना लेख दिखाने लिए मन छटपटा रहा था, लेकिन दिखलाने के समय उसे इतनी लज्जा का अनुभव होगा, यह उसने नही सोचा था ! अमल ने जब बहुत अनुनय-विनय करके पढना प्रारंभ किया तो लज्जा से चारु के हाथ-पैर बरफ के समान ठंडे हो गए। बोली, "मैं पान ले आती हूँ।" यह कहती हुई झटपट अमल के पास से पान लगाने

का बहाना करके चली गई।

पढना समाप्त करके अमल ने चारु के पास जाकर कहा, "बहुत सुन्दर है।"

चारु ने पान मे कत्था लगाना भूलकर कहा, "चलो, अब मजाक रहने दो। लाओ, मेरी कॉपी दे दो!"

अमल ने कहा, "कापी अभी नही दूँगा, लेख की नकल करके पत्र मे भेजूँगा।"

चारु—"हाँ, पत्र मे तो भेजोगे ही, यह नही हो सकता।" चारु ने बड़ी आफत कर दी, अमल ने भी किसी तरह नही छोड़ा। उसने जब बार-बार शपथ खाकर कहा, "पत्र मे देने के उपयुक्त है।" तब चारु ने मानो अत्यंत हताश होकर कहा, "तुम्हारे साथ तो पार पाना मुश्किल है! जो तय कर लेते हो फिर उसे किसी भी तरह नही छोडते!"

अमल ने कहा, "एक बार भैया को दिखाना होगा।"

सुनकर पान लगाना छोड कर चारु आसन से तेजी से उठ खडी हुई; कापी छीनने की कोशिश करती हुई बोली, "न, उनको नही सुना सकते! उनसे यदि मेरे लिखने की बात कहोगे तो फिर मैं एक अक्षर भी नही लिखूँगी।"

अमल—"भाभी, तुम बहुत गलत समझ रही हो। भैया मुख से चाहे जो कहे, किन्तु तुम्हारा लेख देखकर बहुत खुश होगे।"

चारु—"होने दो, मुझे खुशी से क्या लेना है!"

चारु प्रतिज्ञा कर बैठी थी कि वह लिखेगी—अमल को आश्चर्य मे डाल देगी। मन्दा और उसमे बहुत अन्तर है, वह उस बात को प्रमाणित किये बिना न रहेगी। इधर कई दिन उसने ढेरो लिखा और फाडकर फेंक दिया। जो भी लिखने बैठती वह एकदम अमल का-सा लेख हो जाता। मिलाने पर देखती कोई-कोई अश अमल की रचना से प्राय अविकल उद्धृत किया हुआ लगता। वे ही अश अच्छे होते, बाकी सब कच्चे। देखने पर अमल अवश्य ही मन-ही-मन हँसेगा, यही कल्पना करके उन सब लेखो के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करके फाडकर तालाब मे फेंक देती, बाद मे कहीं उसका एक भी टुकड़ा अमल के हाथो मे न आ पड़े।

सबसे पहले उसने लिखा 'श्रावण का मेघ'। सोचा था, 'भावाश्रुजल अभिषिक्त एक बहुत ही नवीन लेख लिखा है।' सहसा होश आने पर देखा, लेख अमल के 'आषाढ़ का चाँद' का रूपान्तर मात्र है। अमल ने लिखा था 'भाई चाँद, तुम मेघो के बीच चोर के समान छिपकर क्यो घूम रहे हो।' चारु ने लिखा, 'सखी कादम्बिनी, सहसा कहाँ से आकर अपने नीलाञ्चल के नीचे चाँद को चुराकर भाग रही हो' इत्यादि।

किसी प्रकार भी अमल की सीमा को न लाँघ पा सकने पर अन्त मे चारु ने

रचना का विपय-परिवर्तन किया। चाँद, मेघ, शेफालिका, वहू-कथा कहो[1] इन सवको छोडकर उसने 'काली तला'[2] नामक एक लेख लिखा। उसके गाँव में छायान्धकारयुक्त तालाव के किनारे काली का मन्दिर था; उस मन्दिर को लेकर उसके वाल्य-काल की कल्पना, भय, औत्सुक्य, उसके सम्बन्ध मे उसकी विचित्र स्मृति, उस जाग्रत देवी के माहात्म्य के सम्वन्ध में गाँव मे चिरप्रचलित प्राचीन कहानी—इन सवको लेकर उसने एक लेख लिखा। उसका आरम्भिक हिस्सा अमल के लेख के समान काव्याडम्वरपूर्ण हुआ, किन्तु थोड़ा आगे चलकर उसका लेख सहज, सरल और ग्रामीण भापा-भंगी के आभास से परिपूर्ण हो उठा।

इस लेख को अमल ने छीनकर पढ़ा। उसको लगा, प्रारम्भ का भाग वहुत सरस वन पड़ा है, किन्तु कवित्व की अत तक रक्षा नही हो सकी है। जो हो, प्रथम रचना की दृष्टि से लेखिका का उद्यम सराहनीय था।

चारु ने कहा, "देवरजी, आओ हम लोग एक मासिक पत्र निकाले। क्या कहते हो!"

अमल—"ढेरों रौप्यचक्र हुए विना वह पत्र चलेगा कैसे!"

चारु—"अपने इस पत्र मे कोई खर्च नही होगा। छापा तो जायगा नही—हाथ से लिखेगे। उसमे तुम्हारे और मेरे अतिरिक्त और किसी का लेख नही निकलेगा, किसी को पढने नही दिया जायगा। केवल दो प्रतियाँ निकलेगी, एक तुम्हारे लिए, एक मेरे लिए।"

कुछ दिन पहले अमल इस प्रस्ताव पर उन्मत्त हो उठता; इस समय उसका गोपनीयता का उत्साह चला गया है। इस समय तो दस व्यक्तियों को उद्देश्य किये विना किसी रचना से उसे सुख नही मिलता। तो भी वीते हुए समय का ठाठ वनाए रखने के लिए उसने उत्साह प्रकट किया। कहा, "वड़ा मज़ा आयेगा।"

चारु ने कहा, "किन्तु प्रतिज्ञा करनी होगी, अपने पत्र को छोडकर और कहीं तुम लेख नही छपवा सकोगे।"

अमल—"तव तो सम्पादक लोग मार ही डालेंगे।"

चारु—"और मेरे हाथ जैसे मारने का अस्त्र ही नही है?"

वात पक्की हो गई। दोनों सम्पादक, दोनों लेखक और दोनो पाठकों की सम्मिलित कमेटी वैठी। अमल ने कहा, "पत्र का नाम रखा जाय, चारुपाठ।" चारु ने कहा, "नही इसका नाम हो अमला।"

इस नवीन वन्दोवस्त मे चारु वीच के कई दिनो की दुखभरी खीझ भूल गई।

---

१ कोकिलजातीय एक पक्षी। वोली के अनुकरण पर नामकरण।

२ कालिका देवी की पूजा के लिए निर्दिष्ट स्थान।

उनके मासिक पत्र में मन्दा के प्रवेश करने के लिए भी कोई ऐसा मार्ग नही था और बाहर के लोगों के प्रवेश का द्वार बंद था।

: ७ :

भूपति ने एक दिन आकर कहा, "चारु, तुम लेखिका बनोगी, पहले तो ऐसी कोई आशा नही थी।"

चारु चौककर लाल होकर बोली, "मैं लेखिका! तुमसे किसने कहा? कभी नही।"

"चोर माल समेत गिरफ्तार। हाथो-हाथ प्रमाण"—कहते हुए भूपति ने 'सरोरुह' की एक प्रति निकाली। चारु ने देखा जिन लेखों को वह अपनी गुप्त सम्पत्ति समझकर अपने हस्तलिखित मासिक पत्र मे सञ्चित कर रखती वे ही लेखक-लेखिका के नाम के साथ 'सरोरुह' मे प्रकाशित हुए है।

उसे लगा कि न जाने किसने बडी साध से पाले गए पक्षियो को पिंजडे का द्वार खोलकर उडा दिया हो, भूपति द्वारा पकडी जाने की लज्जा को भूलकर विश्वास-घाती अमल के ऊपर मन-ही-मन उसे बड़ा क्रोध आया।

"और हाँ, यह तो देखो!" कहते हुए 'विश्ववन्धु' समाचार-पत्र खोलकर भूपति ने चारु के सामने रख दिया। उसमे 'आधुनिक बंगला लेख का ढंग' शीर्षक एक प्रबन्ध प्रकाशित हुआ था।

चारु ने हाथ से उसे हटाते हुए कहा, "इसे पढकर मैं क्या करूँगी?" उस समय अमल से मान के कारण अपने मन को कही लगा नही पा रही थी। भूपति ने जिद्द करके कहा, "एक बार पढ ही देखो न!"

चारु ने हारकर उस पर दृष्टि डाली! कुछ आधुनिक लेखको की भावाडम्बर पूर्ण गद्य-रचनाओं को गाली देते हुए लेखक ने खूब कडा निबन्ध लिखा था। उसमे समालोचक ने अमल और मन्मथ दत्त की लेखन-शैली का कटु उपहास किया था; और उसीके साथ तुलना करते हुए नवीन लेखिका श्रीमती चारुबाला की भाषा की अकृत्रिम सरलता, अनायास सरसता और चित्ररचना-नैपुण्य की खूब प्रशंसा की थी। लिखा था, "इसी प्रकार की रचना-प्रणाली का अनुकरण करके सफलता प्राप्त करने से ही अमल-कम्पनी का विस्तार सम्भव है, नही तो वह पूर्णरूप से फेल होगी इसमे कोई सन्देह नही है।"

भूपति ने हँसकर कहा, "इसीको कहते है, गुरु गुड ही रहे चेला शक्कर हो गए।"

चारु अपनी रचना-शैली की इस प्रथम प्रशसा से ज्यों ही जरा खुश होती त्यो

ही उसे पीड़ा होने लगती। उसका मन जैसे किसी भी प्रकार प्रसन्न नही होना चाहता था। प्रशसा के लुभावने सुधा-पात्र को वह मुँह के पास पहुँचते ही दूर ठेल देती।

वह समझ गई, उसके लेख पत्र मे छपवाकर अमल ने एकाएक उसे विस्मित कर देने का सकल्प किया था। अन्त मे छप जाने पर निश्चय किया होगा कि किसी पत्र मे प्रशसापूर्ण समालोचना छप जाने पर दोनो को एक साथ दिखाकर चारुकी रोप-शान्ति और उत्साहवर्द्धन करेगा। जव प्रशसा छप गई तव अमल क्यों आग्रह-पूर्वक उसे दिखाने नही आया ? इस समालोचना से अमल को चोट पहुँची और चारु को दिखाना नही चाहा, इसीलिए इन पत्रो को उसने एकदम छिपा लिया। चारु स्वान्त:सुखाय चुपचाप एकान्त मे एक छोटे साहित्यनीड की रचना कर रही थी, सहसा प्रशंसा शिला-वृष्टि की एक वडी-सी शिला ने आकर उसको एकदम गिराने का प्रयत्न किया। चारु को यह विलकुल अच्छा नही लगा।

भूपति के चले जाने पर चारु अपने सोने के कमरे मे खाट पर चुपचाप वैठी रही; सामने 'सरोरुह' और 'विश्वबन्धु' खुले पडे थे।

चारु को सहसा चकित कर देने के लिए कापी हाथ मे लिये अमल ने पीछे से चुपचाप प्रवेश किया। पास आकर देखा, 'विश्ववन्धु' की समालोचना खोले हुए चारु ध्यानमग्न वैठी थी !

फिर अमल चुपचाप वाहर चला गया। 'मुझे गाली देकर चारु की रचनाओ की प्रशसा की गई है। इसीलिए प्रसन्नता के कारण चारु को होश नही है।' क्षण-भर मे ही उसका सारा मन जैसे कडवा हो गया। वह जरूर इस मूर्ख की समा-लोचना पढ़कर अपने को अपने गुरु की अपेक्षा अधिक वडा समझ रही है, इस निश्चित धारणा के कारण अमल चारु पर वहुत क्रुद्ध हुआ। चारु को चाहिए था कि उस पत्र को फाडकर टुकड़े-टुकडे करके आग मे डालकर भस्म कर देती।

चारु के ऊपर गुस्सा होकर अमल ने मन्दा के कमरे के द्वार पर खड़े होकर जोर से पुकारा, "मन्दा भाभी !"

मन्दा—"आओ, भई, आओ ! आज तो विना माँगे ही दर्शन मिल गए, वड़े सौभाग्य की वात है।"

अमल—"मेरे दो-एक नए लेख सुनोगी ?"

मन्दा—"कितने दिन से, सुनाऊँगा, सुनाऊँगा कहकर आशा दे रखी है ? किन्तु सुनाते तो हो नही। क्या जरूरत है, भई—फिर कही कोई नाराज हो वैठे तो तुम्ही मुश्किल मे पड़ोगे—मेरा क्या ?"

अमल ने कुछ ऊँचे स्वर से कहा, "गुस्सा कौन होगा, और क्यो गुस्सा होगा ?

अच्छा वह देखा जायेगा, तुम इस समय तो सुनो।"

मन्दा जैसे अत्यन्त आग्रह से झटपट तैयार होकर बैठ गई। अमल ने सस्वर समरोह के साथ पढना आरम्भ किया।

अमल का लेख मन्दा के लिए नितान्त अपरिचित था, उसमे वह कही कोई कूल-किनारा नही पा सकी। इसीलिए मुँह पर प्रसन्नता की हँसी लाकर और भी उत्सुक भाव से सुनने लगी। उत्साह पाकर अमल की आवाज उत्तरोत्तर ऊँची होती गई।

वह पढ रहा था—'अभिमन्यु ने गर्भावस्था मे जिस प्रकार व्यूह मे प्रवेश करना सीखा था, व्यूह से बाहर निकलना नही सीखा था—उसी प्रकार नदी की धारा ने भी पर्वत-गह्वरो पाषाण-गर्भ में रहकर केवल आगे चलना ही सीखा है, पीछे लौटना नही सीखा। हा नदी के स्रोत, हा यौवन, हा काल, हा संसार। तुम केवल आगे ही चल सकते हो—जिस पथ पर स्मृति के स्वर्णमण्डित उपलखण्ड बिखरा आते हो, उस पथ पर फिर किसी दिन लौटकर नही जाते। केवल मनुष्य का मन ही पीछे की ओर देखता है, अनन्त ससार उस ओर कभी मुडकर भी नही देखता।'

इसी समय मन्दा के द्वार के समीप एक छाया पडी, मन्दा ने उस छाया को देखा। किन्तु जैसे उसने न देखा हो, ऐसी चेष्टा करके निर्निमेष दृष्टि से अमल के मुख की ओर देखती हुई गम्भीर मनोयोग से पाठ सुनने लगी।

छाया उसी क्षण हट गई।

चारु ने प्रतीक्षा की थी कि अमल के आते ही उसके सामने 'विश्वबन्धु' पत्र को यथोचित लाछित करेगी, और उसने प्रतिज्ञा-भंग करके उसके लेख मासिक पत्र मे छपा दिए है, इसके लिए अमल को भी फटकारेगी।

अमल के आने का समय निकल गया, तो भी वह नही आया। चारु ने एक लेख ठीक करके रखा था, अमल को सुनाने की इच्छा से; वह भी पडा रह गया।

ऐसी अवस्था मे कही से अमल का कण्ठ-स्वर सुनाई पडा। लगा, जैसे मन्दा के कमरे से। शरविद्ध के समान वह उठ खड़ी हुई। दबे पैर वह द्वार के समीप आकर खडी हो गई। अमल जो लेख मन्दा को सुना रहा था अभी चारु ने उसको नही सुना। अमल पढ़ रहा था—'केवल मनुष्य का मन ही पीछे की ओर जाता है—अनत ससार उस ओर कभी मुडकर भी नही देखता।'

चारु जिस प्रकार चुपचाप आई थी, उसी प्रकार चुपचाप फिर लौट न सकी। आज एक के बाद एक, दो-तीन आघातो ने उसको एकदम धैर्यच्युत कर दिया था। मन्दा एक अक्षर भी नही समझ रही है और अमल नितांत निर्बोध मूढ़ की भाँति

उसे पाठ सुनाकर तृप्ति-लाभ कर रहा है—यह वात चिल्लाकर कह आने की उसकी इच्छा हुई। किंतु विना वोले सक्रोध पद-शब्दों द्वारा वह यही प्रचार कर आई। शयन-कक्ष मे जाकर चारु ने सशब्द द्वार वन्द कर लिया।

क्षण-भर के लिए अमल ने पढना वद कर दिया। मन्दा ने हँसकर चारु की ओर इशारा किया। अमल ने मन-ही-मन कहा, 'भाभी यह कैसा निष्ठुर आच-रण ! क्या उन्होने समझ रखा है, मैं उनका ही क्रीतदास हूँ ? उनको छोडकर और किसी को भी पढ़कर नही सुना सकता ? ये तो वड़ा जुल्म है।' ऐसा सोचकर वह और भी ऊँचे स्वर से पढकर मन्दा को सुनाने लगा।

पढना समाप्त होने पर चारु के कमरे के सामने से होकर वह वाहर चला गया। एक वार दृष्टि डाली, कमरे का द्वार वद था।

चारु ने पैरो की आहट से जान लिया, अमल उसके कमरे के सामने से निकल गया—एक वार भी नही रुका। क्रोध और क्षोभ के कारण उसे रुलाई नही आई। अपने नए लेख वाली कापी को निकालकर वैठे-वैठे उसके प्रत्येक पृष्ठ को फाड-कर टुकडे-टुकड़े कर ढेर लगा दिया। हाय ! किस अशुभ क्षण मे यह लेखा-लेखी आरम्भ हुई थी।

: ८ :

संध्या समय वरामदे के गमले से जुही के फूलों की सुगंध आ रही थी, विखरे वादलो मे से स्निग्ध आकाश मे तारे दिख रहे थे। आज चारु ने केश नही वाँधे, कपडे नही वदले। जगले के पास अधकार मे वैठी थी, मन्द पवन मे उसके खुले केश धीरे-धीरे उड़ रहे थे, और उसके नेत्रो से इस प्रकार टप-टप करके आँसू क्यो गिर रहे थे, इसको वह स्वय भी नही समझ पा रही थी।

तभी भूपति ने कमरे मे प्रवेश किया। उसका मुख बिलकुल उतरा हुआ, हृदय भाराक्रात था। भूपति के आने का अभी समय नही था। अखवार के लिए लिख-कर प्रूफ देखकर अन्त.पुर मे आने मे प्राय उनको देर होती थी। आज संध्या के तुरन्त वाद ही मानो किसी सांत्वना की प्रत्याशा से वह चारु के पास आकर उप-स्थित हुआ है।

घर मे दीपक नही जल रहा था। खुले जंगले के क्षीण आलोक मे भूपति चारु को खिड़की के पास स्पष्ट नही देख पाया; धीरे-धीरे पीछे आकर खड़ा हो गया। पैरो की आहट सुनकर भी चारु ने मुँह नही फेरा—मूर्तिवत् स्थिर, कठिन होकर वैठी रही।

भूपति ने कछ आश्चर्यान्वित होकर पुकारा, "चारु !"

भूपति के स्वर से चौंककर वह झटपट उठ खड़ी हुई। भूपति आया है, उसने नही सोचा था। भूपति ने चारु के केशों मे उँगली फेरते-फेरते स्नेहार्द्र स्वर में पूछा, "अंधकार में तुम अकेली क्यो बैठी हो, चारु ? मन्दा कहाँ गई ?"

चारु ने जैसी आशा की थी आज सारे दिन वह सब-कुछ भी नही हुआ। उसने यह निश्चित रूप से सोच रखा था कि अमल आकर क्षमा माँगेगा---उसके लिए तैयार होकर वह प्रतीक्षा कर रही थी, इतने मे भूपति के अप्रत्याशित कंठ-स्वर को सुनकर वह जैसे और अधिक आत्म-संवरण नही कर सकी---एकदम रो पड़ी।

भूपति ने घबराकर व्यथित होकर पूछा, "चारु, क्या हुआ ?"

क्या हुआ यह कहना कठिन था। ऐसा तो कुछ नही हुआ। विशेष तो कुछ नही हुआ। अमल ने अपना नया लेख पहले उसको न सुनाकर मन्दा को सुनाया है, इस बात को लेकर भूपति के पास वह क्या नालिश करे? सुनकर क्या भूपति हँसेगा नही ? उस तुच्छ बात मे गुरुतर शिकायत का विषय कहाँ छिपा हुआ था, उसको खोज निकालना चारु के लिए दुस्तर था। अकारण ही वह क्यो इतना अधिक कष्ट पा रही है ? इसको पूर्णरूप से समझ पाने के कारण उसकी वेदना और भी बढ़ गई।

भूपति—"बोलो न चारु, तुमको क्या हुआ है ! मैंने क्या तुम्हारे प्रति कोई अन्याय किया है ? तुम तो जानती ही हो, अखबार के झंझट को लेकर मैं किस प्रकार अति व्यस्त रहता हूँ, यदि तुम्हारे मन को कोई आघात पहुँचा हो तो जान-बूझकर नही पहुँचाया है।"

भूपति ऐसे विषयो पर प्रश्न कर रहा था जिनमे से किसी का कोई उत्तर नही। इसी कारण चारु भीतर-ही-भीतर अधीर हो उठी। सोचने लगी, 'भूपति यदि उसे इस समय निष्कृति दे दे तो जान बचे।'

दूसरी बार भी कोई उत्तर न पाकर भूपति ने फिर स्नेहसिक्त-स्वर मे कहा, "चारु, मैं हर समय तुम्हारे पास नही आ सकता, इसलिए मैं अपराधी हूँ, किंतु अब ऐसा नही होगा, अब से दिन-रात अखबार मे नही लगा रहूँगा। मुझे तुम जितना चाहोगी उतना ही पाओगी।"

चारु अधीर होकर बोली, "इसलिए नही।"

भूपति ने कहा, "तो फिर किसलिए ?" कहता हुआ खाट पर बैठ गया।

चारु खीझ के स्वर को न छिपा सकी। बोली, "अभी रहने दो, रात को बताऊँगी !"

क्षण-भर स्तब्ध रहकर भूपति ने कहा, "अच्छा, इस समय रहने दो !" कहते

हुए उठकर धीरे-धीरे बाहर चला गया। उसे अपनी कोई बात कहनी थी, वह भी न कह पाया।

भूपति क्षोभ से चला गया, चारु से यह छिपा नही रहा। सोचा, 'बुलाऊँ। किंतु बुलाकर क्या कहूँगी।' पश्चात्ताप ने उसे पीड़ित किया, किंतु उसका कोई भी प्रतिकार वह नही ढूँढ पाई।

रात हुई। चारु ने आज बहुत यत्न से भूपति का रात का भोजन परोसा और स्वय हाथ मे पंखा लेकर बैठी रही।

इसी समय उसने सुना, मन्दा ऊँचे स्वर मे पुकार रही थी, "ब्रज, ब्रज !" नौकर ब्रज के उत्तर देने पर पूछा, "अमल बाबू ने भोजन कर लिया है क्या ?" ब्रज ने उत्तर दिया, "कर लिया।" मन्दा ने कहा, "भोजन हो गया और तू पान नही ले गया, क्यों !" मन्दा ब्रज को बहुत डाँटने लगी।

इसी समय भूपति अन्त.पुर मे आकर भोजन करने बैठा, चारु पंखा करने लगी।

चारु ने आज निश्चय किया था कि भूपति के साथ प्रफुल्ल स्नेह भाव से अनेक बाते करेगी। बातचीत पहले से ही ठीक करके तैयार होकर बैठी थी। किंतु मन्दा की आवाज से उसका सारा विस्तृत आयोजन नष्ट हो गया, भोजन के समय वह भूपति से एक बात भी नही कर सकी। भूपति भी अत्यन्त उदास और अन्यमनस्क था। उसने अच्छी तरह भोजन भी नही किया, चारु ने केवल एक बार पूछा, "कुछ खा नही रहे हो, क्यो ?"

भूपति ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "क्यो, कम तो नही खाया।"

शयन-कक्ष मे दोनो के मिलने पर भूपति ने कहा, "आज रात को तुमने क्या कहने के लिए कहा था ?"

चारु ने कहा, "देखो, कुछ दिनो से मन्दा का व्यवहार मुझे अच्छा नही लग रहा है। उसको यहाँ रखने का मुझे और साहस नहीं हो रहा है।"

भूपति—"क्यो, उसने क्या किया है ?"

चारु—"अमल के साथ वह ऐसा व्यवहार करती है कि उसे देखने मे लज्जा लगती है।"

भूपति हँस पडा। कहा, "धत् तुम पागल हो गई हो ! अमल तो बच्चा है। कल का छोकरा ."

चारु—"तुम तो घर की कोई भी खबर नही रखते, केवल बाहर की खबर इकट्ठी करते फिरते हो। जो हो, बेचारे भैया के लिए मैं चिंतित हूँ। वे कब खाते है, नही खाते है, इसकी मन्दा कोई सुध नही लेती, लेकिन अमल के कामों मे जरा-

सी भूल-चूक होते ही नौकर-चाकरो के साथ वक-झक करके अनर्थ कर देती है।"

भूपति—"तुम स्त्रियाँ वहुत संदेही होती हो।"

चारु गुस्से मे वोली, "अच्छा ठीक है, हम संदेही ही सही, किंतु घर मे मैं यह सव वेहयापन नही होने दूंगी—यह कहे देती हूँ।"

चारु की इस समस्त निराधार आशका से भूपति मन-ही-मन हँसा। खुश भी हुआ। घर जिससे पवित्र रहे, दाम्पत्य धर्म को आनुमानिक और काल्पनिक कलक भी लेश-मात्र स्पर्श न करे, इसके लिए साध्वी स्त्रियो मे जो अतिरिक्त सतर्कता और सदेहाकुल दृष्टि पाई जाती है उसमे अपना एक माधुर्य और महत्त्व होता है।

भूपति ने श्रद्धा और स्नेह से चारु के ललाट का चुम्वन करते हुए कहा, "इसको लेकर और कोई हगामा करने की आवश्यकता नही होगी। उमापद मेमनसिह मे प्रैक्टिस करने जा रहा है, मन्दा को भी साथ ले जायेगा।"

अन्त मे अपनी दुश्चिन्ता और यह सव अप्रीतिकर आलोचना दूर करने के लिए भूपति ने टेविल से एक कापी उठाकर कहा, "चारु, अपना लेख मुझे सुनाओ न।"

चारु ने कापी छीनकर कहा, "यह तुमको अच्छा नही लगेगा, तुम मजाक उडाओगे।"

इस वात से भूपति कुछ व्यथित हुआ, किंतु उसे छिपाकर हँसते हुए कहा, "अच्छा, मैं मजाक नही उडाऊँगा, इस प्रकार स्थिर होकर सुनूंगा कि तुम्हे लगेगा कि मैं सो गया हूँ।"

किंतु भूपति की एक न चली। देखते-देखते वह कापी अनेक आवरण आच्छादनो मे अन्तर्हित हो गई।

: ६ :

भूपति चारु से सारी वाते न कह सका। उमापद भूपति के अखवार का व्यवस्थापक था। चन्दा-अदायगी, छापेखाने और वाजार का हिसाव चुकाना, नौकरो को वेतन देना, यह सारा भार उमापद के ऊपर था।

इस वीच मे सहसा एक दिन कागज़ वाले के यहाँ से वकील की चिट्ठी पाकर भूपति को आश्चर्य हुआ। भूपति के पास उनका २७०० रुपया वाकी है, इसकी सूचना दी थी। भूपति ने उमापद को वुलाकर कहा, "यह क्या मामला है! यह रुपया तो मैंने तुमको दे दिया था। कागज का वकाया तो चार-पाँच सौ से अधिक नही होना चाहिए।"

उमापद ने कहा, "अवश्य ही उन्होने भूल की है।"

किंतु बात अब और दबी न रह सकी। कुछ समय से उमापद इसी प्रकार धोखा देता आ रहा था। केवल कागज के ही सबंध मे नही, भूपति के नाम से उमापद ने बाजार मे बहुत-सा उधार कर रखा था। वह गाँव मे जो एक पक्का मकान बनवा रहा था उसके लिए बहुत-कुछ सामान भूपति के नाम लिखवा दिया था, अधिकाश कागज के रुपयो मे से अदा कर दिया था।

जब वह बिलकुल पकडा ही गया तो रूखे स्वर से बोला, "मैं कही चला तो नही जा रहा हूँ। काम करते-करते मै धीरे-धीरे चुका दूँगा—तुम पर यदि एक कौड़ी भी उधार रहे तो मेरा नाम उमापद नही।"

उसका नाम बदलने मे भूपति के लिए कोई सात्वना की बात नही थी। अर्थ-क्षति से भूपति उतना दुखी नही हुआ, किंतु अकस्मात् इस विश्वास-घातकता से उसे ऐसा लगा मानो घर से शून्य मे पैर रखा हो।

उसी दिन वह असमय अन्त पुर मे गया था। ससार मे विश्वास का एक स्थान तो अवश्य ही है। क्षण-भर के लिए यही अनुभव करने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो गया था। चारु उस समय अपने दु ख मे संध्या-दीप बुझाकर जंगले के पास अंधकार मे बैठी थी।

दूसरे ही दिन उमापद मैमनसिंह जाने के लिए तैयार हुआ। बाजार के रुपया पाने वालो को खबर लगने के पहले ही वह खिसक जाना चाहता था। घृणा के कारण उमापद से भूपति ने बात नही की—भूपति की इस मौनावस्था को उमापद ने अपना सौभाग्य समझा।

अमल ने आकर पूछा, "भाभी, यह क्या मामला है? सामान ठीक करने की इतनी धूम क्यो मची हुई है?"

मन्दा—"अरे भाई, जाना तो है ही। हमेशा थोडे ही रहूँगी।"

अमल—"कहाँ जा रही हो?"

मन्दा—"गाँव।"

अमल—"क्यो, यहाँ क्या असुविधा हो रही है?"

मन्दा—"मुझे क्या असुविधा होगी? तुम पाँच जनो के साथ थी, सुख से ही थी। किंतु दूसरो को जो असुविधा होने लगी।"—कहते हुए चारु के कमरे की ओर कटाक्ष किया।

अमल गंभीर होकर चुप रहा। मन्दा ने कहा, "छी, छी, कैसी लज्जा की बात है! बाबू ने क्या सोचा होगा!"

इस बात को लेकर अमल ने और अधिक आलोचना नही की। केवल इतना

स्थिर किया, 'चारु ने उनके संबध मे भैया से कुछ ऐसी वात कही है, जो नही कहनी चाहिए थी।'

अमल घर से वाहर निकलकर सडक पर टहलने लगा। उसकी इच्छा हुई—इस घर मे फिर लौटकर न आए। भैया ने यदि भाभी की वात पर विश्वास करके उसे अपराधी समझ लिया है, तो जिस रास्ते मन्दा गई है उसको भी उसी रास्ते चला जाना चाहिए। मन्दा को विदा करना एक हिसाव से अमल के प्रति भी निर्वासन का आदेश था—केवल मात्र मुँह खोलकर कहा नही गया। इसके वाद तो कर्त्तव्य विलकुल स्पष्ट है—यहाँ अव और एक क्षण भी नही रहना। किंतु भैया मन-ही-मन उसके सवध मे किसी प्रकार की गलत धारणा पाल ले, यह नही हो सकता। इतने दिन से वे अक्षुण्ण विश्वास से उसे घर मे स्थान देकर पालन करते आ रहे है, और उस विश्वास को अमल ने तनिक भी आघात नही पहुँचाया है, भैया को यह वात विना समझाए वह किस प्रकार जायगा।

भूपति उस समय कुटुम्बियो की कृतघ्नता, महाजनों की भर्त्सना, विखरा हिसाव-किताव और रिक्त तहवील लिये सिर पर हाथ रखे सोच रहा था। उसके उस शुष्क मनोदु ख का कोई साथी नही था—चित्तवेदना और ऋण से अकेले खड़े होकर युद्ध करने के लिए भूपति तैयार हो रहा था।

ऐसे समय अमल ने आँधी के समान कमरे मे प्रवेश किया। भूपति ने सहसा अपनी अगाध चिंता से चौककर देखा। कहा, "क्या है, अमल !" अकस्मात् लगा, अमल शायद और कोई गुरुतर दु.सवाद लेकर आया है।

अमल ने कहा, "भैया, मेरे ऊपर सदेह करने का क्या तुम्हे कोई कारण मिला है ?"

भूपति ने आश्चर्य से कहा, "तुम्हारे ऊपर सदेह !" मन-ही-मन सोचा, "ससार जैसा दिखाई दे रहा है, उससे किसी दिन अमल पर भी सन्देह कर वैठूँ तो क्या आश्चर्य है !"

अमल—"क्या भाभी ने तुमसे मेरे चरित्र के सम्वन्ध मे किसी प्रकार का दोपारोपण किया है ?"

भूपति ने सोचा, 'ओह ! तो यह वात है। जान वची। स्नेह का उलाहना।' वह तो सोच वैठा था कि शायद एक सर्वनाश पर कोई दूसरा सर्वनाश घटित हुआ है ? किन्तु गुरुतर सकट के समय भी ये सव तुच्छ वाते सुननी पडती है ! दुनिया एक ओर तो पुल हिलाना भी नही छोडती और साथ-ही-साथ उस पुल पर से शाक-भाजी का वोझा पार उतारने के लिए ताकीद करना भी नही छोडती। और कोई अवसर होता तो भूपति अमल का परिहास करता, किन्तु आज उसमे वैसी

प्रसन्नता नही थी। उसने कहा, "पागल हो गए हो क्या ?"

अमल ने फिर पूछा, "भाभीजी ने कुछ नही कहा ?"

भूपति—"तुमसे स्नेह करती है, इसलिए कुछ कह बैठी हों तो भी उसमे क्रोध करने का तो कोई कारण नही है।"

अमल—"काम-काज की खोज मे अव मुझे अन्यत्र जाना चाहिए।"

भूपति ने डाँटकर कहा, "अमल, न जाने तुम यह क्या लड़कपन कर रहे हो, अभी पढो-लिखो, काम-काज पीछे होगा।"

अमल उदास चेहरे से चला गया, भूपति अपने अखवार के ग्राहको की शुल्क-प्राप्ति की तालिका लेकर तीन वर्ष के जमा-खर्च का हिसाव मिलाने बैठ गया।

: १० :

अमल ने तय किया, 'भाभी का मुकावला करना होगा, इस वात को समाप्त किये विना नही छोडेगा।' भाभी को जो कडी-कडी वाते सुनायेगा, मन-ही-मन उन्हे दुहराने लगा।

मन्दा के चले जाने पर चारु ने सकल्प किया, अमल को वह स्वय वुलाकर उसका क्रोध शान्त करेगी। किन्तु लेख का वहाना करके वुलाना होगा। अमल के ही एक लेख का अनुकरण करके 'अमावस्या का आलोक' शीर्षक एक निवध उसने तैयार किया। चारु यह समझ गई थी कि उसके स्वतन्त्र लेख अमल पसन्द नही करता।

पूर्णिमा अपने सम्पूर्ण आलोक को प्रकाशित कर देती है, इसलिए चारु ने अपनी नवीन रचना मे पूर्णिमा को तिरस्कृत करते हुए धिक्कारा। उसने लिखा—'अमावस्या के अतलस्पर्शी अन्धकार मे षोड्शकला चन्द्र का सम्पूर्ण आलोक तहो मे आवद्ध हो गया है, उसकी रश्मि भी विखरने नही पाती—इसीलिए पूर्णिमा की उज्ज्वलता की अपेक्षा अमावस्या की कान्मिा अधिक पूर्ण है. .' इत्यादि। अमल अपनी सारी रचनाएँ सवके सामने प्रकाशित कर देता है और चारु ऐसा नही करती—पूर्णिमा-अमावस्या की तुलना मे क्या इसी वात का आभास था ?

उधर इस परिवार का तीसरा व्यक्ति भूपति किसी आसन्न ऋण के तगादे से मुक्ति-लाभ करने की दृष्टि से अपने परम मित्र मतिलाल के पास गया था।

भूपति ने मतिलाल को सकट के समय कई हजार रुपये उधार दिये थे—उस

दिन अत्यन्त विपन्न होकर वे ही रुपये माँगने गया था। मतिलाल स्नान करके नगे बदन बैठा पखे की हवा खा रहा था और लडकी के एक वक्स पर कागज रखकर खूब छोटे-छोटे अक्षरो मे हजार वार दुर्गा का नाम लिख रहा था। भूपति को देखकर अत्यन्त आत्मीयता के स्वर मे वोला, "आओ, आओ—आजकल तो तुम्हारे दर्शन ही दुर्लभ है।"

रुपयो की बात सुनकर मतिलाल ने वहुत सोचकर कहा, "किन रुपयो की वात कर रहे हो ? इस बीच क्या तुमसे कुछ लिया है ?"

भूपति के साल, तारीख स्मरण करा देने पर मतिलाल ने कहा, "ओह ! उसे तो वहुत दिन हुए तमादी लग गई।"

भूपति की आँखो मे मानो चारो ओर दुनिया का स्वरूप ही वदल गया हो। ससार के जिस अश पर से चेहरा हट गया था, उसकी ओर देखकर भूपति का शरीर आतक से सिहर उठा। जिस प्रकार सहसा वाढ आ जाने से भयभीत व्यक्ति जहाँ सबसे ऊँची जगह देखता है वही दौड जाता है, संशयाक्रान्त भूपति ने भी उसी प्रकार वहि ससार से अन्त पुर मे प्रवेश किया। मन-ही-मन कहा, 'और जो हो, चारु तो मुझे धोखा नही देगी।'

चारु उस समय खाट पर बैठी गोद मे तकिया और तकिये पर कापी रखकर झुकी हुई एकाग्रचित्त से लिख रही थी। जब भूपति उसके अत्यन्त समीप पहुँच-कर खडा हो गया तभी उसे पता चला; जल्दी से कापी पैरो के नीचे दबाकर बैठ गई।

मन जब व्यथित रहता है तव छोटे-से आघात से भी गुरुतर व्यथा का अनुभव होता है। चारु को इस प्रकार अनावश्यक शीघ्रता से अपना लेख छिपाते देख भूपति के मन को कष्ट हुआ।

भूपति धीरे-धीरे खाट पर चारु के पास बैठ गया। चारु अपने रचना-स्रोत मे अप्रत्याशित बाधा पाकर और सहसा कापी छिपाने की व्यस्तता से अप्रतिभ होकर कोई भी वात शुरू न कर सकी।

उस दिन भूपति के पास स्वयं भी कुछ देने या कहने को न था। वह खाली हाथो चारु के पास प्रार्थी होकर आया था। चारु से यदि वह आशका-धर्मी प्रेम का कोई प्रश्न या प्यार का कोई चिह्न पा जाता तो उसकी क्षतयंत्रणा पर औषधि का लेप हो जाता। किन्तु लक्ष्मी ही लक्ष्मीहीन हो गई। जरूरत पड़ने पर एक क्षण के लिए चारु मानो प्रीति-भाण्डार की चावी कही खोज ही न पाई। दोनो के कठिन मौन के कारण कमरे की नीरवता बड़ी गहरी हो उठी।

कुछ देर बिलकुल चुपचाप बैठा भूपति दीर्घ-नि.श्वास लेकर खाट से उठा और

धीरे-धीरे बाहर चला गया।

इसी समय अमल अनेक कड़ी-कडी बाते मन मे संचित करके तेजी से चारु के कमरे की ओर आ रहा था। रास्ते मे भूपति के अत्यन्त शुष्क विवर्ण मुख को देख-कर अमल उद्विग्न होकर रुक गया। पूछा, "भैया, क्या तवियत खराब है ?"

अमल के स्निग्ध स्वर को सुनते ही हठात् भूपति का सारा हृदय अपनी अश्रु-धारा को लेकर मानो अन्दर-ही-अन्दर फूल उठा। कुछ देर तक कोई बात नही निकल सकी। बलपूर्वक आत्म-सवरण करके भूपति ने आर्द्र स्वर से कहा, "कुछ नही हुआ, अमल! इस बार पत्र मे तुम्हारा कोई लेख निकल रहा है क्या ?"

अमल ने जो कडी-कडी बाते सञ्चित की थी, वे कहाँ गई ? झटपट चारु के कमरे मे आकर उसने प्रश्न किया, "भाभी, भैया को क्या हुआ है, बताओ तो !"

चारु ने कहा, "कहाँ, कुछ समझ ही न पाई। शायद किसी अखबार मे उनके अखबार को गाली दी गई होगी।"

अमल ने सिर हिला दिया।

अमल बिना बुलाए ही आया था और सहज भाव से बातचीत कर रहा था। यह देखकर चारु को बहुत चैन मिला। सीधे लेख की बात छेड दी—बोली, "आज मैंने 'अमावस्या का आलोक' शीर्षक एक लेख लिखा था; और जरा देर हो जाती तो उन्होने उसे देख लिया होता।"

चारु को पूरा विश्वास था, कि उसका नया लेख देखने के लिए अमल जिद करेगा। इसी अभिप्राय से उसने कापी भी जरा इधर-उधर की। किन्तु, अमल ने एक बार तीखी निगाह से कुछ क्षण चारु के मुख की ओर देखा—क्या समझा, क्या सोचा, पता नही। फिर चौककर उठ खड़ा हुआ। मानो पर्वतीय पथ पर चलते-चलते सहसा कुहरे के बादल हटते ही पथिक ने चौककर देखा कि वह हजार हाथ गहरे गह्वर मे पैर देने जा रहा था। अमल बिना कुछ कहे सीधा कमरे से बाहर चला गया।

चारु अमल के इस अभूतपूर्व व्यवहार का कोई तात्पर्य न समझ सकी।

· ११ ·

दूसरे दिन भूपति ने फिर असमय शयन-कक्ष मे आकर चारु को बुलवाया। बोला, "चारु, अमल के विवाह का एक बडा बढिया प्रस्ताव आया है।"

चारु अन्यमनस्क थी। बोली, "क्या आया है बढिया ?"

भूपति—"विवाह का प्रस्ताव।"

चारु—"क्यों, मैं क्या पसन्द नही आई ?"

भूपति उच्च स्वर से हँस पडा। उसने कहा, "तुम पसन्द आई या नहीं आई, यह वात तो अभी अमल से पूछी नही गई। यदि पसन्द आ भी गई होओ तो भी मेरा भी तो एक छोटा-मोटा अधिकार है, मैं चट से थोडे ही छोड दूँगा।"

चारु—"उफान जाने क्या वकते हो! ठिकाना नही है। तुमने कहा था, न, कि तुम्हारे विवाह का सम्वन्ध आया है—" चारु का मुख लाल हो उठा।

भूपति—"ऐसा होना तो क्या दौडकर तुम्हे खवर देने आता ? वख्शीश पाने की तो कोई आशा नही थी।"

चारु—"अमल का मम्वन्ध आया है ? अच्छी वात है। तो फिर अव देर क्यो ?"

भूपति—"वर्दवान के वकील रघुनाथ वावू अपनी लड़की के साथ विवाह करके अमल को विलायत भेजना चाहते है।"

चारु ने विस्मित होकर प्रश्न किया, "विलायत ?"

भूपति—"हाँ, विलायत।"

चारु—"अमल विलायत जायगा ? वडे मजे की वात है। अच्छा हुआ, ठीक हुआ, तो फिर तुम उससे एक वार वात करके देखो!"

भूपति—"यदि मेरे कहने के पहले तुम एक वार उस वुलाकर समझाओ तो क्या अच्छा नही होगा ?"

चारु—"मैं तो हजारो वार कह चुकी हूँ। वह मेरी वात नही मानता। मैं उससे नही कह सकूँगी।"

भूपति—"तुम क्या सोचती हो ? वह नही करेगा ?"

चारु—"और भी तो अनेक वार प्रयत्न करके देखा है, किसी प्रकार भी तो राजी नही होता।"

भूपति—"किन्तु इस वार के इस प्रस्ताव को छोड़ना उसके लिए उचित न होगा। मुझ पर वहुत कर्ज हो गया है, अव मै इस तरह अमल को आश्रय दे नही पाऊँगा।"

भूपति ने अमल को वुलवाया। अमल के आने पर उससे कहा, "वर्दवान के वकील रघुनाथ वावू की लडकी के साथ तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव आया है। उनकी इच्छा है कि विवाह के वाद तुमको विलायत भेज दे। तुम्हारी क्या राय है ?"

अमल ने कहा, "यदि तुम्हारी अनुमति हो, तो मुझे इसमे कोई आपत्ति

नही है ।"

अमल की बात सुनकर दोनो को आश्चर्य हुआ। वह कहते ही राज़ी हो जायगा, यह किसी ने भी नही सोचा था।

चारु ने तीखे स्वर से मजाक करते हुए कहा, "भैया की अनुमति होने पर ये अपनी राय देगे ! वाह रे मेरे आज्ञाकारी छोटे भाई ! भैया के ऊपर भक्ति इतने दिनो तक कहाँ थी, देवर जी ?"

अमल ने उत्तर न देकर थोडा हँसने का प्रयत्न किया।

अमल को निरुत्तर देखकर चारु मानो उसे सतर्क करने के लिए द्विगुणित तेजी से वोली, "यह क्यो नही कहते कि तुम्हारी इच्छा है। इतने दिन यह वहाना करते रहने की क्या जरूरत थी कि विवाह नही करना चाहते ? 'मन मन भावे मूड हिलावे' ।"

भूपति ने मजाक करते हुए कहा, "तुम्हारी ही खातिर अमल इतने दिन मन को रोके रहा, कही देवरानी की वात सुनकर तुम्हे ईर्ष्या न हो ।"

यह वात सुनकर चारु लाल हो उठी। जोर से वोली, "ईर्ष्या ! अच्छा जी ! मुझे कभी ईर्ष्या नही होती। इस प्रकार की वात कहना तुम्हारा वड़ा अन्याय है।"

भूपति—"यह लो अपनी स्त्री से हँसी-मजाक भी नही कर सकता।"

चारु—"नही, इस तरह का मजाक मुझे अच्छा नही लगता !"

भूपति—"अच्छा, गुरुतर अपराध किया। माफ कर दो ! जो हो, तो फिर विवाह की वात तय रही ?"

अमल ने कहा, "हाँ।"

चारु—"लडकी अच्छी है या वुरी, एक वार यह देखने जाने की भी देर नही सह सकते। तुम्हारी ऐसी दशा हो गई है इसका तो जरा भी आभास न दिया।"

भूपति—"अमल, लडकी को देखना चाहो तो उसका वन्दोवस्त करूँ। मैंने पता लगाया है, लड़की सुन्दर है।"

अमल—"नही, देखने की तो कोई जरूरत मालूम नही पडती।"

चारु—"उसकी वात क्यो सुनते हो ? भला ऐसा होता है। लड़की देखे विना विवाह होगा ! वह न देखना चाहे, हम लोग तो देखेगे।

अमल—"नही भैया, इसको लेकर फिजूल देर करने की जरूरत नही दिखती।"

चारु—"रहने दो वावा, देर हुई तो छाती फट जायगी। तुम सिर पर मौर

लगाकर अभी चल दो। क्या पता, कही तुम्हारा सात राजाओ[1] का ईप्सित वहू-मूल्य माणिक्य कोई और न छीन ले जाय।"

अमल को किसी भी हँसी-मजाक से चारु जरा भी विचलित न कर पाई।

चारु—"विलायत भाग जाने के लिए तुम्हारा मन इतना उतावला क्यो हो रहा है? क्यो, यहाँ हम लोग तुमको क्या मारपीट रहे थे? हेट-कोट पहनकर साहव वने विना आजकल के लडको का मन ही नही भरता। देवर जी, विलायत से लौटकर हम-जैसे काले आदमियो को पहचान तो पाओगे न?"

अमल—"तो फिर भला विलायत जाने की क्या जरूरत है!"

भूपति ने हँसकर कहा, "काला रूप भूलने के लिए ही तो सात समुद्र पार जाते है। खैर, उसकी क्या वात है चारु, हम तो है, काले के भक्तो की कमी नही होगी।"

भूपति ने खुश होकर उसी समय चिट्ठी लिखकर वर्दवान भेज दी। विवाह का दिन निश्चित हो गया।

: १२ :

इसी वीच अखवार वन्द कर देना पडा। भूपति और खर्च नही जुटा सका। जन-साधारण नामक एक अत्यन्त निर्मम पदार्थ की जिस साधना मे भूपति वहुत समय से दिन-रात एकाग्र मन से लगा हुआ था उसे एक क्षण मे विसर्जित करना पड़ा। भूपति के जीवन का सारा प्रयत्न निरन्तर गत वारह वर्ष से जिस परिचित पथ पर चला आ रहा था वह सहसा एक जगह पहुँचकर मानो जल मे आ पड़ा हो। इसके लिए भूपति विलकुल भी तैयार न था। अपने इतने दिन के समस्त उद्यमो को अकस्मात् वाधा आ पड़ने पर वह लौटाकर कहाँ ले जाय? निराहार अनाथ शिशुओ की भाँति उन्होने भूपति के मुख की ओर देखा। भूपति ने उन्हे करुणामयी सेवापरायणा स्त्री के समीप अपने अन्तपुर मे लाकर खडा कर दिया।

स्त्री उस समय कुछ सोच रही थी। वह मन-ही-मन कह रही थी—'आश्चर्य है, अमल का विवाह होगा। यह तो वहुत ही अच्छी वात है। किन्तु इतने दिनो वाद हमे छोडकर पराए घर मे विवाह करके विलायत चला जाएगा, इससे उसके मन मे क्या एक वार जरा भी द्विविधा उत्पन्न नही हुई? इतने दिन हमने उसे इतने यत्न से रखा, और विदा लेने का जरा-सा अवसर पाते ही ऐसे कमर कसकर

---

१ वगला मे कहावत है 'सात राजाओ का एक धन माणिक्य', जिसका अर्थ है अत्यन्त वहूमूल्य धन।

तैयार हो गया मानो इतने दिन तक अवसर की प्रतीक्षा मे हो। वैसे ऊपर से कितना मिष्टभाषी और स्नेहशील है! मनुष्य को पहचानना कितना कठिन है! कौन जानता था कि जो व्यक्ति इतना लिख सकता है उसके पास हृदय है ही नही ?'

अपनी सहृदयता से तुलना करते हुए चारु ने अमल के रिक्त हृदय की अत्यन्त अवज्ञा करने की वहुत चेष्टा की, किन्तु कर न सकी। भीतर-ही-भीतर स्थित वेदना का उद्वेग तप्त शूल के समान उसके अभिमान को ठेल-ठेलकर जगाने लगा, 'अमल'आज नही तो कल चला जायगा, फिर भी इन कई दिनो से वह दिखाई नही दिया। हमारे वीच आपस मे जो एक मनोमालिन्य हो गया है उसे दूर करने का भी कोई अवसर नही मिला।' चारु प्रतिक्षण मन मे सोचती, 'अमल स्वय आएगा—उनकी इतने दिनो की खेल-कूद यो ही समाप्त नही हो जायगी, किन्तु अमल तो अव आता ही नही।' अन्त मे जव यात्रा का दिन अत्यन्त निकट आ पहुँचा, तव चारु ने स्वयं ही अमल को वुलवाया।

अमल ने कहा, "थोडी देर वाद आता हूँ।" चारु अपने उसी वरामदे की चौकी पर जाकर वैठ गई। सवेरे से ही घने वादलो के छाए रहने से उमस हो रही थी—चारु अपने खुले केशो का जूडा वनाकर हाथ का एक पखा लेकर थकी देह पर धीरे-धीरे पखा झलने लगी।

वहुत देर हो गई। अन्त मे हाथ का पंखा रुक गया। क्रोध, दु.ख, अधैर्य, उसके हृदय मे उमड़ पड़े। मन-ही-मन वोली—'अमल नही आया, तो क्या हुआ।' किन्तु तो भी पैरो की आहट-मात्र से उसका मन दरवाजे की ओर दौड पडता।

दूर गिरजे के घटे ने ग्यारह वजाए। स्नान करके अभी भूपति खाना खाने आएगा। अव भी आधा घण्टा समय है, काश अव भी अमल आ जाय। जैसे भी हो, पिछले कुछ दिनो का अपना नीरव झगडा आज चुका ही डालना होगा—अमल को इस प्रकार विदा नही किया जा सकता। इन समवयस्क देवर-भावज के वीच जो चिरन्तन मधुर सम्वन्ध है . प्रगाढ मित्रता, लडाई, गहरे स्नेह के उपद्रव नाना प्रशान्त सुखालोचनाओ से विजडित एक चिरच्छायामय लतावितान—अमल क्या आज उसे धूल मे मिलाकर वहुत दिनो के लिए वहुत दूर चला जायगा? जरा भी परिताप न होगा? क्या वह उसमे अन्तिम वार जल-सिचन करके भी नहीं जावेगा—उनके वहुत दिनो के देवर-भावज-सम्वन्ध का अन्तिम अश्रु-जल?

लगभग आधा घण्टा वीत गया। अपना ढीला जूडा खोलकर वालो की एक लट लेकर चारु द्रुतवेग से उसे अँगुली मे लपेटने और खोलने लगी। अव आँसू रोके

नही रुकते । नौकर ने आकर कहा, "माजी, बाबूजी के लिए डाभ[1] निकालना है ।"

चारु ने अचल से भण्डार की चाबी खोलकर झन-से नौकर के पैरों के पास फेंक दी—वह आश्चर्यचकित होकर चाबी लेकर चला गया ।

चारु के हृदय से न जाने क्या उमडता हुआ उसके कण्ठ तक आने लगा ।

यथासमय प्रसन्न-मुख से भूपति खाने के लिए आया । पंखा हाथ मे लिये चारु ने आहार-स्थान पर आकर देखा, अमल भूपति के साथ आया है । चारु ने उसके मुख की ओर नही देखा ।

अमल ने पूछा, "भाभी, मुझे बुलाया था ?"

चारु ने कहा, "नही, अब कोई जरूरत नही ।"

अमल—"तो मैं जाऊँ, मुझे बहुत सामान ठीक करना है ।"

चारु ने उस समय तीव्र दृष्टि से एक बार अमल के मुख की ओर देखा । कहा, "जाओ !"

अमल चारु के मुख की ओर एक बार देखकर चला गया ।

भोजनोपरान्त भूपति कुछ देर चारु के पास बैठता था । आज लेन-देन के हिसाब के झगड़े मे भूपति बहुत ही व्यस्त था—इसीसे आज अन्त पुर मे बहुत देर नही रुक सकेगा—इसलिए कुछ खिन्न होकर बोला, "आज मैं ज्यादा देर नही बैठ सकता—आज बहुत झंझट है ।"

चारु बोली, "तो जाओ न !"

भूपति ने सोचा, 'चारु रूठ गई', बोला, "फिर भी अभी तुरत जाना हो, ऐसा नही है, थोडा आराम करके जाऊँगा ।" यह कहते हुए वह बैठ गया । उसने देखा, चारु उदास है । भूपति अनुतप्त चित्त से बहुत देर तक बैठा रहा, किन्तु किसी प्रकार कोई बात शुरू न कर सका । काफी देर तक बातचीत करने की व्यर्थ कोशिश करके भूपति ने कहा, "अमल तो कल चला जा रहा है, कुछ दिन शायद तुमको बहुत सूना लगेगा ।"

चारु उसका कोई उत्तर न देकर जाने क्या लेने के लिए झट दूसरे कमरे मे चली गई । भूपति कुछ देर प्रतीक्षा करके बाहर चला गया ।

चारु ने आज अमल के मुख की ओर देखकर लक्ष्य किया, अमल इन कई दिनो मे बहुत दुबला हो गया है—उसके चेहरे पर तरुणाई की वह स्फूर्ति बिलकुल नही है । इससे चारु को प्रसन्नता भी हुई और वेदना भी । आसन्नविच्छेद अमल को दुःख दे रहा है, चारु को इसमे सन्देह न रहा—किन्तु तो भी अमल का ऐसा

---

१. कच्चा नारियल ।

व्यवहार क्यो ? क्यो वह दूर-दूर भागता फिर रहा है ? विदा की वेला को क्यो इच्छापूर्वक इस प्रकार विरोध से कटु वना रहा है ?

विस्तर पर लेटी हुई सोचते-सोचते वह सहसा चौककर उठ वैठी। सहसा मन्दा की वात याद आई। 'मान लो, अमल मन्दा को प्यार करता है। मन्दा चली गई है इसलिए यदि अमल इस प्रकार—छि ! अमल का मन क्या ऐसा होगा ? इतना छोटा ? ऐसा कलुपित ? विवाहित रमणी के प्रति उसका मन आसक्त होगा ?असम्भव।' सन्देह को पूरे प्रयत्न से दूर करना चाहा किन्तु सन्देह ने उसको वलपूर्वक जकड लिया था।

इस प्रकार विदा की वेला आ गई। वादल नही हटे। अमल ने आकर कम्पित स्वर मे कहा, "भाभी, मेरा जाने का समय हो गया। तुम अव से भैया को देखना। उनकी वडी सकटपूर्ण अवस्था है—तुम्हे छोडकर उनके लिए सान्त्वना का और कोई मार्ग नही है।"

अमल भूपति का विपण्ण, म्लान भाव देखकर, पता लगाकर उसकी दुर्गति की वात जान चुका था। भूपति किस प्रकार अकेला ही चुपचाप अपनी दु ख-दुर्दशा से जूझ रहा था, उसे किसी से भी सहायता या सान्त्वना नही मिल रही थी, फिर भी उसने अपने आश्रित-पालित आत्मीय जनो को इस संकटावस्था मे विचलित नही होने दिया, यह सोचकर वह चुप रह गया। फिर उसने चारु की वात सोची, अपने विपय मे सोचा। उसकी कनपटी लाल हो गई। तेज़ी से वोला, "चूल्हे मे जाय आपाढ़ का चाँद और अमावस्या का आलोक। मैं वैरिस्टर होकर लौटने पर यदि भैया की सहायता कर सकूँ तभी समझो कि मै पुरुष हूँ।"

कल रात-भर जागकर चारु ने सोच लिया था कि विदाई के समय अमल से क्या वाते कहेगी---सहास्य मन और प्रफुल्ल उदासीनता द्वारा मार्जित वातो को उसने मन-ही-मन उज्ज्वल तीक्ष्ण वना लिया था, किन्तु विदा देने के समय चारु के मुँह से कोई वात न निकली। उसने केवल कहा, "चिट्ठी तो लिखोगे, अमल ?"

अमल ने धरती पर सिर टेककर प्रणाम किया। चारु ने दौडकर शयन-कक्ष मे जाकर द्वार वन्द कर लिया।

: १३ .

भूपति वर्दवान जाकर अमल को विवाहोपरान्त विलायत रवाना करके घर लौट आया।

चारो ओर से चोट खाकर विश्वासपरायण भूपति के मन मे वहि ससार के प्रति कुछ वैराग्य आ गया था। सभा-समिति, मेल-मुलाकात कुछ भी उसे अच्छा

न लगा। उसे लगा— इन्ही वातो मे पडकर मैं इतने दिन तक अपने-आपको वस धोखा ही देता रहा—जीवन के सुख के दिन व्यर्थ चले गए और सार-भाग मैंने घूरे पर फेक दिया।

भूपति ने मन-ही-मन कहा, 'जाने दो, अखबार गया, अच्छा ही हुआ। मुक्ति मिली।' सध्या समय अन्धकार का सूत्रपात देखते ही पक्षी जिस प्रकार घोसले मे लौट आता है, उसी प्रकार भूपति अपने अनेक दिन के संचरण-क्षेत्र का परित्याग करके अन्त·पुर मे चारु के पास लौट आया। मन-ही-मन निश्चय किया, 'वस, अव और कही नही, यहीं मेरी स्थिति है। जिस कागज और जहाज को लेकर सारे दिन खेल किया करता था, वह डूव गया, अव घर चलूँ।'

मालूम होता है, भूपति का एक साधारण विश्वास था, कि पत्नी के ऊपर किसी को अधिकार प्राप्त नही करना पडता, वह ध्रुवतारे के समान अपने प्रकाश से स्वय को आलोकित रखती है—हवा से वुझती नही, तेल की आवश्यकता नही होती। वाहर जिस समय तोड-फोड शुरू हुई उस समय अन्त.पुर के किसी मेहराव मे दरार पड़ी है कि नही इसकी एक वार परीक्षा करके देखने की वात भी भूपति के मन मे नही आई।

सध्या समय वर्दवान से भूपति घर लौटकर आया। झटपट मुँह-हाथ धोकर जल्दी से खाना खाया। अमल के विवाह और विलायत-यात्रा का वर्णन आद्योपात सुनने के लिए चारु स्वभावत. विशेप उत्सुक होगी, ऐसा सोचकर भूपति ने आज जरा भी देर न की। भूपति सोने के कमरे मे विस्तर पर लेटकर हुक्के की लम्वी नाल गुडगुडाने लगा। चारु अभी तक अनुपस्थित थी, शायद घर का काम कर रही हो। तम्वाकू समाप्त हो जाने पर श्रान्त भूपति को नीद आने लगी। तन्द्रा भग होने पर क्षण-क्षण मे वह चौककर जागता हुआ सोचने लगा, 'अभी तक चारु आई क्यों नही ?' अन्त मे भूपति से न रहा गया। उसने चारु को वुलवा भेजा। भूपति ने पूछा, "चारु, आज वड़ी देर कर दी ?"

चारु ने कैफियत दिये विना ही कहा, "हाँ, आज देर हो गई।"

चारु के आग्रहपूर्ण प्रश्न की भूपति प्रतीक्षा करता रहा। चारु ने कोई प्रश्न नही किया। उससे भूपति कुछ खिन्न हुआ। तो क्या चारु अमल से स्नेह नही करती ? जितने दिन अमल यहाँ रहा चारु उसके साथ हँसती-खेलती रही, और जैसे ही वह चला गया वैसे ही उसके सम्वन्ध मे उदासीन ! इस प्रकार के विपम व्यवहार से भूपति के मन मे खटका हुआ। वह सोचने लगा—'तो क्या चारु के हृदय मे गहराई नही है ? वह केवल आमोद-प्रमोद करना ही जानती है, स्नेह

करना नही जानती ? स्त्रियो के लिए इस प्रकार का निरासक्त भाव तो अच्छा नही है ।'

चारु और अमल की मैत्री से भूपति आनन्द का अनुभव करता । इन दोनों का लडकपन, विवाद और मित्रता, खेल और मन्त्रणा उसके लिए मधुर कौतुक के विपय थे । अमल को चारु सदा जिस तरह लाड-प्यार करती उससे चारु की कोमल सहृदयता का परिचय पाकर भूपति मन-ही-मन प्रसन्न होता । आज आश्चर्य से वह सोच रहा था कि वह सब क्या केवल ऊपर-ही-ऊपर था, हृदय के भीतर उसकी कोई नीव नही थी ? भूपति ने सोचा, 'चारु के पास यदि हृदय नही है तो भूपति कहाँ आश्रय पायगा ?'

धीरे-धीरे परीक्षा करने के लिए भूपति ने वात छेडी, "चारु, तुम अच्छी तरह तो रही ? तुम्हारी तवीयत तो ठीक है ?"

चारु ने सक्षेप मे उत्तर दिया, "ठीक ही हूँ ।"

भूपति—"अमल का विवाह तो सम्पन्न हो गया ।"

यह कहकर भूपति चुप हो गया। चारु ने उस अवसर के अनुकूल कोई सगत वात कहने की वहुत चेष्टा की, किन्तु कोई वात नही मिली। वह जड़वत् रह गई ।

भूपति स्वभावत. कभी वात पर ध्यान नही देता था-- किन्तु अमल की विदाई का शोक उसके अपने मन पर छाया हुआ था। इसी कारण चारु की उदासीनता ने उसे आघात पहुँचाया। उसकी इच्छा थी, समवेदना से व्यथित चारु के साथ अमल के प्रसग मे वातचीत करके हृदय का भार हल्का करे ।

भूपति—"लडकी देखने मे सुन्दर है— चारु सो रही हो ?"

चारु ने कहा, "नही ।"

भूपति—"वेचारा अमल अकेला चला गया। जव उसे गाडी मे चढाया, तो वह वच्चो की भाँति रोने लगा—देखकर इस वृद्धावस्था मे मैं और आँसू न रोक सका । गाड़ी मे दो साहव थे, पुरुप को रोते देखकर उन्हे वडा कौतुक हुआ ।"

दीपक-वुझे शयन-कक्ष मे विछौने पर अन्धकार मे चारु पहले तो पीठ फेरकर लेटी रही, फिर सहसा झटपट विछौना छोडकर चली गई। चकित होकर भूपति ने पूछा, "चारु, तवीयत खराव है ?"

कोई उत्तर न पाकर वह भी उठा। पास के वरामदे से रोने की दवी आवाज सुनकर जल्दी से जाकर देखा, चारु धरती पर औधी पडी रोना रोकने की चेप्टा कर रही है ।

ऐसा प्रवल शोकोच्छ्वास देखकर भूपति को आश्चर्य हुआ। सोचा, 'चारु को

कितना गलत समझा था ? चारु का स्वभाव इतना भीतरी है कि मुझसे भी हृदय की कोई वेदना व्यक्त नही करना चाहती। जिन लोगो की ऐसी प्रकृति होती है उनका प्रेम अत्यन्त गम्भीर एव उनकी वेदना भी अत्यन्त गहन होती है। चारु का प्रेम साधारण स्त्रियों के समान वाहर से दिखने वाला नही है,' भूपति ने यह मन-ही-मन जाँचकर देखा। भूपति ने चारु के प्रेम का उच्छ्वास कभी नही देखा था, आज विशेप रूप से समझा कि उसका कारण था चारु के स्नेह का भीतर-ही-भीतर गोपन प्रसार। भूपति स्वय भी अपने-आपको प्रकट करने मे अपटु था, चारु की प्रकृति से भी हृदयावेग की गम्भीर अन्त शीलता का परिचय पाकर उसने एक प्रकार की तृप्ति का अनुभव किया।

तव भूपति चारु के पास वैठकर विना वोले धीरे-धीरे उसके शरीर पर हाथ फेरने लगा। किस प्रकार सान्त्वना दी जाती है, भूपति को इसका ज्ञान नही था— वह यह नही समझ सका कि जव कोई अन्धकार मे शोक को गला दवाकर हत्या करना चाहे तव साक्षी का वैठा रहना अच्छा नही लगता।

: १४ :

भूपति ने जव समाचार-पत्र से छुट्टी ली थी तव उसने अपने मन मे अपने भविष्य का एक चित्र खीच लिया था। उसने प्रतिज्ञा की थी, किसी प्रकार की दुराशा-दुश्चेष्टा की ओर नही जायगा, चारु को लेकर लिखना-पढना, प्रेम और प्रतिदिन के गार्हस्थ्य के छोटे-मोटे कर्त्तव्यो का पालन करता चलेगा। सोचा था, ये घरेलू सुख सवसे सुलभ है साथ ही सुन्दर है, पूरी तरह अपने अधिकार मे है साथ ही पवित्र और निर्मल है, उन्ही सहजलभ्य सुखो द्वारा वह अपने जीवन के घर के कोने मे सन्ध्या-प्रदीप जलाकर निभृत शान्ति की अवतारणा करेगा। हास-परिहास, वार्तालाप, परस्पर के मनोरजन के लिए प्रतिदिन के छोटे-मोटे आयोजन इन सवके लिए वहुत अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नही होती, फिर भी सुख अपरिसीम मिलता है।

कार्यान्वित करके उसने देखा, सहज सुख सहज नही है। जिसे मूल्य देकर खरीदना नही पड़ता, वह यदि अपने हाथ के पास न मिले तो उसे और किसी प्रकार कही भी खोजकर पाना सभव नही।

भूपति किसी भी प्रकार के चारु के साथ अच्छी तरह पटरी नही वैठा सका। इसके लिए उसने अपने को ही दोषी ठहराया। सोचा, 'वारह वर्ष तक केवल समाचार-पत्र लिखते-लिखते पत्नी के साथ कैसे वात की जाती है, यह विद्या विल-कुल गँवा दी है।' संध्या-दीप जलते ही भूपति आग्रह के साथ कमरे मे जाता—

एकाध वात करता, एकाध वात चारु करती, उसके वाद क्या कहे भूपति किसी भी प्रकार सोच नही पाता। अपनी इस अक्षमता के कारण पत्नी के समीप वह लज्जा का अनुभव करता। पत्नी के साथ वातचीत करना उसने वहुत-ही आसान समझा था, जव कि मूढ़ के लिए वह वहुत कठिन है। सभा मे भापण देना उसकी अपेक्षा सहज है।

भूपति ने जिस सन्ध्या को हास्य, कौतुक, प्रणय, प्रेम से रमणीय वना देने की कल्पना की थी, वही सन्ध्या वेला काटनी उसके लिए समस्या वन गई। कुछ देर मौन वैठे रहने के वाद भूपति सोचता—'उठकर चला जाऊँ'—किन्तु उठकर चले जाने पर चारु मन मे क्या सोचेगी यही सोचकर उठ भी नही पाता था। कहता, "चारु, ताश खेलोगी?" चारु और कोई रास्ता न देखकर कहती, "अच्छा।" यह कहकर अनिच्छापूर्वक वह ताश ले आती, वहुत-सी भूले करके अनायास ही हार जाती—उस खेल मे कोई आनन्द न आता।

वहुत सोचकर भूपति ने चारु से एक दिन पूछा, "चारु, मन्दा को वुला न लिया जाय? तुम विलकुल अकेली पड गई हो।"

चारु मन्दा का नाम सुनते ही जल उठी। वोली, "नही, मन्दा की मुझे ज़रूरत नही।"

भूपति हँसा। मन-ही-मन खुश हुआ। साध्वी जहाँ सती धर्म का थोड़ा भी व्यतिक्रम देखती है वहाँ धैर्य नही रख सकती।

विद्वेप के प्रथम धक्के से सम्हलकर चारु ने सोचा, 'मन्दा के रहने से शायद वह भूपति को वहुत-कुछ प्रसन्न रख सके। भूपति उससे मन का जो सुख चाहता है वह उसे किसी भी प्रकार नही दे पा रही है,' यह समझकर चारु पीड़ा का अनुभव करती। भूपति ससार का सव-कुछ छोड़कर एक-मात्र चारु से अपने जीवन का सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लेने की चेष्टा कर रहा है, इस एकनिष्ठ प्रयत्न को और अपने हृदय के दैन्य को समझकर चारु भयभीत हो गई थी। इस प्रकार—कितने दिन कैसे चलेगा? भूपति और कोई सहारा क्यो नही लेता? एक और समाचारपत्र क्यो नही चलाता? भूपति का मनोरजन करने का अभ्यास अभी तक चारु को कभी नही करना पड़ा था, भूपति ने उससे किसी प्रकार की सेवा की माँग नही की, किसी सुख की प्रार्थना नही की, चारु को उसने पूरी तरह से केवल अपने ही लिए प्रयोजनीय नही वनाया था; आज अचानक अपने जीवन के समस्त प्रयोजनो को चारु से माँग वैठने पर वह मानो कही कुछ खोज कर पा नही रही थी। भूपति को क्या चाहिए, क्या हो कि उसे तृप्ति मिले, चारु यह ठीक से नही जानती और जान ले तो भी वह चारु के लिए सहज उपलब्ध नही।

भूपति यदि धीरे-धीरे बढ़ता तो चारु के लिए शायद इतना कठिन न होता—किन्तु सहसा रात-भर मे ही दिवालिया होकर खाली भिक्षा-पात्र फैला देने से वह मानो विपन्न हो गई हो।

चारु ने कहा, "अच्छा, मन्दा को बुला लो, उसके रहने से तुम्हारी देखभाल की बहुत सुविधा हो सकेगी।"

भूपति ने हँसकर कहा, "मेरी देख-भाल ! कोई जरूरत नही।"

भूपति ने खिन्न होकर सोचा, 'मैं बडा नीरस व्यक्ति हूँ, चारु को किसी भी प्रकार मैं सुखी नही कर पा रहा हूँ।'

ऐसा सोचकर वह साहित्य के पीछे पड गया। मित्र कभी घर आते, विस्मित होकर देखते, भूपति टेनिसन, बायरन, बंकिम की कहानियाँ आदि लेकर बैठा है। भूपति के इस असमय काव्यानुराग को देखकर मित्र-मण्डली खूब हँसी-मज़ाक करने लगी। भूपति ने हँसकर कहा, "भाई, बाँस मे भी फूल लगते है, किन्तु कब लगते है—इसका पता नही।"

एक दिन सन्ध्या समय सोने के कमरे में बड़ी बत्ती जलाकर पहले भूपति ने लज्जा से कुछ इधर-उधर किया। बाद में कहा, "कुछ पढकर सुनाऊँ ?"

चारु बोली, "सुनाओ न !"

भूपति—"क्या सुनाऊँ ?"

चारु—"जो तुम्हारी इच्छा हो।"

भूपति चारु का अधिक आग्रह न देखकर कुछ हतोत्साहित हो गया। तो भी साहस करके कहा, "टेनिसन का कुछ तरजुमा करके तुमको सुनाऊँ।"

चारु ने कहा, "सुनाओ !"

सब मिट्टी हो गया। संकोच और निरुत्साह के कारण भूपति के पढ़ने मे बाधा पडने लगी, बंगला के ठीक प्रतिशब्द नही खोज पा रहा था। चारु की शून्य दृष्टि से यह स्पष्ट था, कि वह ध्यान नही दे रही थी। वह दीपालोकित छोटा कमरा, वह संध्यावेला का निभृत अवकाश वैसी प्रसन्नता से नही भर सका।

भूपति ने और दो-एक बार ऐसी भूल करके अंत मे पत्नी के साथ साहित्य-चर्चा करने का प्रयत्न छोड़ दिया।

: १५ :

जिस प्रकार कठोर आघात से स्नायु सुन्न पड जाती है और प्रारम्भ में वेदना का बोध नही होता, उसी प्रकार विच्छेद के आरम्भ-काल मे अमल के अभाव को चारु मानो अच्छी तरह से अनुभव नही कर पाई।

अंत मे ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे त्यो-त्यो ही अमल के अभाव मे मानो सासारिक शून्यता की मात्रा क्रमश. वढ़ने लगी। इस भयंकर अनुभव से चारु हतवुद्धि हो गई। निकुञ्ज-वन से बाहर निकलकर वह सहसा मानो किसी मरुभूमि मे आ पडी हो—दिन के वाद दिन वीत रहे है—मरुप्रान्त क्रमश. वढता ही चला जा रहा है। इस मरुभूमि की वात वह तनिक भी नही जानाती थी।

नीद से जागकर सहसा उसकी छाती धक् कर उठती—ध्यान आता, अमल नही है। सुवह जिस समय वह वरामदे मे पान लगाने वैठती, प्रतिक्षण उसे केवल यही लगता, अमल आज पीछे से नही आयगा। कभी-कभी अन्यमनस्क होकर ज्यादा पान लगा डालती, फिर सहसा ध्यान आता, ज्यादा पान खाने वाला आदमी है ही नही। जैसे ही भण्डारघर मे पैर रखती, मन मे आता अमल को जलपान नही देना है। अन्त.पुर की सीमा पर पहुँचकर मन का अधैर्य उसे स्मरण करा, देता अमल कॉलेज से नही लौटेगा। कोई नई पुस्तक, नया लेख, नई खवर, नए कौतुक की आशा नही है, किसी के लिए न कुछ सीना है, न कोई शौकीनी की वस्तु खरीदकर रखनी है।

अपनी असह्य वेदना और चाचल्य पर चारु स्वयं विस्मित थी। मनोवेदना की अविरत पीडा से वह डरने लगी, वह अपने से ही प्रश्न करने लगी, 'क्यो ? इतना कष्ट क्यो हो रहा है ? अमल मेरा ऐसा कौन है कि उसके लिए इतना दुख भोगूं ? मुझे क्या हो गया ? इतने दिन वाद मुझे यह क्या हुआ ? नौकर-चाकर, रास्ते के मजदूर भी तो निश्चिन्त होकर फिर रहे है, मुझे ऐसा क्यो हुआ ? हे भगवान् ! मुझे ऐसी विपद् मे क्यो डाल दिया ?'

वह प्रश्न करती रहती और आश्चर्य करती रहती, किन्तु दु.ख किसी भी प्रकार शान्त न होता। अमल की स्मृति से उसका भीतर-बाहर इस प्रकार परिव्याप्त रहता कि उसे कही भागने को स्थान ही न मिलता।

भूपति को कहाँ तो अमल की स्मृति के आक्रमण से उसकी रक्षा करनी चाहिए थी, ऐसा न करके वह वियोग-व्यथित स्नेहशील मूढ वार-वार अमल की ही याद दिला देता।

अन्त मे चारु ने हिम्मत हार दी--वह अपने-आपसे युद्ध करते-करते थक गई, हार मानकर अपनी अवस्था को निर्विरोध स्वीकार कर लिया। अमल की स्मृति को वड़े यत्न से अपने हृदय मे प्रतिष्ठित कर लिया।

वाद को ऐसा हो गया, एकाग्र चित्त से अमल का ध्यान करना उसके लिए छिपे गर्व का विषय हो गया—वह स्मृति ही मानो उसके जीवन का श्रेष्ठ गौरव हो।

गृह-कार्य से अवकाश का उसने एक समय निश्चित कर लिया। उस समय वह

एकान्त मे कमरे का द्वार वद करके एक-एक करके अमल के साथ अपने विगत जीवन की प्रत्येक घटना पर विचार करती। औधी होकर लेटी-लेटी वह तकिए पर मुँह रखकर वार-वार पुकारती, "अमल, अमल, अमल !" समुद्र-पार से जैसे उत्तर मिलता, "भाभी, क्या है भाभी ?" चारु भीगे नेत्रों को वन्द करके कहती, "अमल, तुम क्रोध करके क्यों चले गए ? मैंने तो कोई गलती नही की। तुम यदि प्रसन्न-मुख से विदा ले जाते, तो शायद मैं इतना दु:ख न पाती।" अमल के सामने रहने पर जिस प्रकार की वाते होती थी चारु ठीक उसी प्रकार ज़ोर से कहती, "अमल, तुमको मैं एक दिन भी नही भूली। एक दिन के लिए भी नही। मेरे जीवन के श्रेष्ठ पदार्थ सव तुमने अंकुरित किये है, अपने जीवन का सार-भाग देकर प्रति-दिन तुम्हारी पूजा करूँगी।"

इस प्रकार चारु ने अपनी सारी घर-गृहस्थी, सारे कर्त्तव्यो के अन्तरतम प्रदेश मे सुरंग खोदकर उस निरालोक निस्तव्ध अन्धकार मे अंशुमाला से सज्जित एक गोपन शोक-मन्दिर का निर्माण कर लिया। वहाँ उसके पति या संसार के अन्य किसी व्यक्ति का कोई अधिकार न था। वह स्थान जैसा गोपनतम था वैसा ही गम्भीरतम तथा प्रियतम था। उसीके द्वार पर वह संसार के सारे छद्मवेशो का परित्याग करके अपने अनावृत आत्मस्वरूप को लेकर प्रवेश करती और वहाँ से वाहर निकलते ही मुख पर फिर चेहरा लगाकर संसार के हास्यालाप और क्रिया-कर्म की रगभूमि मे आ उपस्थित होती।

: १६ :

इस तरह मन से द्वन्द्व और विवाद का त्याग करके चारु ने व्यापक विपाद मे एक प्रकार की शान्ति का अनुभव किया और एकनिष्ठ होकर पति की भक्ति और सेवा करने लगी। भूपति जव सो जाता तो चारु धीरे से उसके पैरो पर सिर रखकर पैरो की धूल माँग मे धारण करती। घर के काम मे, सेवा-शुश्रूपा मे पति की रंच-मात्र इच्छा भी यह अधूरी न रखती। आश्रित, प्रतिपालित लोगों के प्रति किसी प्रकार सेवा मे कमी देखकर भूपति कभी दुखी होता है, यह जानकर चारु उसके आतिथ्य मे तनिक भी त्रुटि न होने देती। इस तरह सारा काम-काज करके भूपति का जूठा प्रसाद खाकर चारु के दिन वीतते।

इस सेवा और देख-भाल के फलस्वरूप भग्नश्री भूपति ने मानो फिर नवयौवन पा लिया हो। मानो इसके पहले पत्नी के साथ विवाह ही नही हुआ था, मानो इतने दिनो के वाद अव हुआ हो। सज-धज, हास-परिहास से उत्फुल्ल होकर संसार की सारी दुर्भावनाओं को भूपति ने मन में एक ओर ठेलकर रख दिया। रोग-शमन

के वाद जिस प्रकार भूख वढ जाती है, शरीर मे भोग-शक्ति के विकास का सजीव भाव से अनुभव होने लगता है, भूपति के मन में इतने दिनों के वाद उसी प्रकार के एक अपूर्व और प्रकट भावावेश का संचार हुआ। मित्रों से, यही नही चारु से भी छिपाकर भूपति वस कविताएँ पढता रहता। मन-ही-मन कहता, 'समाचार-पत्र वन्द करके और अनेक दु:ख भोगकर इतने दिनो के वाद मैं अपनी पत्नी को जान पाया हूँ।'

भूपति ने चारु से कहा, "चारु, आजकल तुमने लिखना एकदम क्यो छोड दिया है ?"

चारु ने कहा, "क्या कहने है मेरे लेख के !"

भूपति—"सच कहता हूँ, तुम्हारे जैसी वँगला तो मैंने आजकल के लेखको मे और किसी की नही देखी। 'विश्ववन्धु' ने जो लिखा था मेरा भी ठीक वही मत है।

चारु—वस, "वस रहने दो।"

भूपति ने, "यह देखो न" कहकर 'सरोरुह' का एक अक निकालकर चारु और अमल की भाषा की तुलना करनी शुरू की। चारु का मुँह लाल हो गया। उसने भूपति के हाथ से पत्र छीनकर आँचल मे छिपा लिया।

भूपति ने मन-ही-मन 'सोचा, लेखन का कोई साथी न हो तो लेख प्रकट नही होता, ठहरो, मुझे लिखने का अभ्यास करना होगा। इस तरह से क्रमश. चारु मे भी लिखने के उत्साह का सचार कर सकूँगा।'

भूपति ने अत्यन्त छिपाकर कापी लेकर लिखने का अभ्यास करना शुरू किया। शब्दकोप देखकर वार-वार प्रतिलिपि करते हुए भूपति के वेकारी के दिन कटने लगे। उसे लिखने मे इतना कष्ट और प्रयत्न करना पडता कि उन कष्टो से लिखी गई रचनाओ के प्रति धीरे-धीरे उसके मन मे विश्वास और ममता उत्पन्न हो गई।

अन्त मे एक दिन अपने लेख को किसी दूसरे से नकल करवाकर भूपति ने लाकर पत्नी को दिया। कहा, "मेरे एक मित्र ने अभी-अभी लिखना शुरू किया है। मै तो कुछ समझता नही, तुम एक वार पढकर तो देखो तुम्हे कैसा लगता है ?"

कापी चारु के हाथ मे देकर जल्दी से भूपति वाहर चला गया। सरल भूपति की यह चालाकी चारु से छिपी न रह सकी।

पढा, लेख की शैली एव विषय देखकर कुछ हँसी। हाय ! चारु अपने पति की भक्ति करने के लिए इतना आयोजन कर रही है। वह क्यो इस प्रकार लडकपन

करके पूजा के अर्घ्य को बिखेरे डाल रहा है? चारु से वाह-वाह पाने के लिए उनका इतना प्रयत्न क्यों? वह यदि कुछ भी न करते, चारु का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही यदि हमेशा प्रयास न करते रहते, तो चारु के लिए पति की पूजा बहुत सहज होती। चारु की एकमात्र इच्छा थी, भूपति किसी भी प्रकार अपने को चारु की अपेक्षा छोटा न समझे।

चारु कापी मोडकर तकिए पर टिककर दूर की ओर देखती हुई बहुत देर तक सोचती रही। अमल भी उसे पढने के लिए नए लेख ला देता था।

सध्या-समय उत्सुक भूपति शयन-कक्ष के सामने स्थित बरामदे मे फूलों के गमलो के निरीक्षण में लग गया, कुछ पूछने का साहस न किया।

चारु स्वय बोली, "यह क्या तुम्हारे मित्र का पहला लेख है?"

भूपति ने कहा, "हाँ।"

चारु—"बहुत सुन्दर है—पहला लेख हो, ऐसा नही लगता।"

अत्यन्त प्रसन्न होकर भूपति सोचने लगा, 'बिना नाम के लेख के लिए अपना नाम किस प्रकार जारी किया जाए?'

भूपति की कापी अत्यन्त द्रुत गति से भरने लगी। नाम प्रकट होने मे भी देर न लगी।

: १७ :

विलायत से चिट्ठी आने का दिन कब पडता, इसकी खबर चारु हमेशा रखती। पहले अदन से भूपति के नाम एक चिट्ठी आई, उसमे अमल ने भाभी को प्रणाम निवेदित किया था, स्वेज से भी भूपति को चिट्ठी मिली, उसमे भी भाभी के लिए प्रणाम था। माल्टा से भी चिट्ठी मिली, उसमे फिर भाभी को प्रणाम निवेदित किया गया था।

चारु को अमल की एक भी चिट्ठी नही मिली। भूपति की चिट्ठियों को माँग-कर उलट-पलट कर बार-बार पढकर देखती—प्रणाम लिखने के अतिरिक्त और कही भी उसके सम्बन्ध मे आभास-मात्र भी नही था।

इधर कई दिन से चारु ने जो एक शान्त विषाद की चन्द्रातपछाया का आश्रय लिया था, अमल की इस उपेक्षा से वह नष्ट हो गया। अन्त मे अपने हृदय को लेकर मानो फिर छीना-झपटी शुरू हुई। ससार-विषयक उसकी कर्त्तव्य-स्थिति मे फिर भूकम्प का आदोलन जाग उठा।

अब भूपति किसी-किसी दिन आधी रात को उठाकर देखता, चारु बिछौने पर नही है। खोजकर देखता, चारु दक्षिण की ओर वाले कमरे के जँगले पर बैठी है।

उसको देखकर चारु तुरंत बोल उठती, "कमरे मे आज बड़ो गरमी है, इसलिए जरा खुले मे चली आई।"

उद्विग्न होकर भूपति ने बिछौने के ऊपर पंखा लगवाने का बन्दोस्त कर दिया, और चारु का स्वास्थ्य खराब होने की आशंका करते हुए हमेशा उस पर दृष्टि रखता। चारु हँसकर कहती, "मैं तो ठीक हूँ, तुम क्यो व्यर्थ चिंतित होते हो ?" मुँह पर यह हँसी लाने के लिए उसे अपने हृदय की सारी शक्ति लगानी पड़ती।

अमल विलायत पहुँच गया। चारु ने सोचा था, शायद मार्ग मे उसे अलग चिट्ठी लिखने का यथेष्ट सुयोग न मिला होगा, विलायत पहुँचकर अमल लम्बी चिट्ठी लिखेगा। किन्तु वह लम्बी चिट्ठी नहीं आई।

प्रत्येक डाक आने वाले दिन चारु अपने सारे काम-काज तथा बातचीत के बीच भीतर-ही-भीतर छटपटाती रहती। कही भूपति कहे, 'तुम्हारे नाम चिट्ठी नही है।' इसलिए साहस करके भूपति से और कोई प्रश्न नही कर पाती थी।

ऐसी ही अवस्था मे चिट्ठी आने वाले एक दिन धीरे-धीरे आते हुए भूपति ने मृदुहास्य के साथ कहा, "एक चीज है, देखोगी ?"

चारु ने अत्यन्त हड़बड़ाकर चौककर कहा, "कहाँ, दिखाओ !"

भूपति ने हँसी करते हुए न दिखाने का अभिनय किया।

अधीर होकर चारु ने भूपति की चादर से इच्छित पदार्थ निकाल लेने का प्रयत्न किया। उसने मन-ही-मन सोचा, 'सुबह से ही मेरा मन कह रहा है, आज मेरी चिट्ठी ज़रूर आयगी—यह कभी व्यर्थ नही हो सकता।'

परिहास करने की भूपति की इच्छा और भी बढी; चारु से बचकर वह खाट के चारो ओर चक्कर लगाने लगा।

चारु अत्यन्त खीझकर खाट के ऊपर बैठ गई और उसकी आँखे छल-छला आईं।

चारु के एकान्त आग्रह से अत्यन्त खुश होकर भूपति ने चादर के भीतर से अपनी रचना की कापी बाहर निकालकर तुरत चारु की गोद मे डालते हुए कहा, "क्रोध मत करो। यह लो !"

: १८ :

यद्यपि अमल ने भूपति को सूचना कर दिया था कि पढ़ाई-लिखाई की व्यस्तता के कारण उसे दीर्घ काल तक पत्र लिखने का समय नही मिलेगा, तो भी

दो-एक मेल से उसका पत्र न आने पर चारु के लिए सारा संसार काँटों की सेज-सा हो उठा ।

सन्ध्या समय इधर-उधर की वातों के वीच अत्यन्त उदासीन भाव से शान्त स्वर मे चारु ने अपने पति से कहा, "अच्छा देखो, क्या विलायत को एक तार भेजकर यह नही जाना जा सकता कि अमल कैसा है ?"

भूपति ने कहा, "दो सप्ताह पूर्व उसकी चिट्ठी मिली थी, वह इन दिनो पढने मे व्यस्त है ।"

चारु—"अच्छा ! तव कोई जरूरत नही । मैंने सोचा था, विदेश मे है, यदि वीमार हो गया हो— कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता ।"

भूपति— "ना वैसी कोई वात होती तो खवर मिलती । तार करने मे भी तो कम खर्चा नही है ।"

चारु—"अच्छा ? मैंने तो सोचा था, अधिक-से-अधिक एक या दो रुपये लगेंगे ।"

भूपति—"क्या कहती हो, लगभग सौ रुपये का धक्का है ।"

चारु—"तव तो कोई वात ही नही ।"

दो-एक दिन वाद चारु ने भूपति से कहा, "मेरी वहन यहाँ चूँचड़ा मे है, आज एक वार उसकी खवर ले आ सकते हो ?"

भूपति—"क्यो ? वीमार हो गई है क्या ?"

चारु— "नही वीमार नही, तुम तो जानते ही हो, तुम्हारे जाने से वे कितने खुश होते हैं ।"

चारु के अनुरोध से भूपति गाडी पर वैठकर हावडा स्टेशन की ओर रवाना हुआ । रास्ते मे वैलगाडियो की एक कतार ने आकर उसकी गाडी रोक ली ।

इसी समय तारघर के परिचित हरकारे ने भूपति को देखकर उसके हाथ मे एक तार थमा दिया । विलायन का तार देखकर भूपति वहुत भयभीत हुआ । सोचा, 'शायद अमल अस्वस्थ है ।' डरते-डरते खोलकर देखा, तार मे लिखा था, "मैं अच्छा हूँ ।"

इसका क्या अर्थ है ! जाँच करके देखा, यह प्रीपेड टेलिग्राम का उत्तर था ।

हावडा जाना नही हुआ । गाडी लौटकर भूपति ने घर आकर तार पत्नी को दिया । भूपति के हाथ मे टेलिग्राम देखकर चारु का मुख पीला हो गया ।

भूपति ने कहा, "मै तो इसका कुछ भी मतलव नही समझ पा रहा हूँ ।" पता

लगने पर भूपति अर्थ समझा। चारु ने अपना गहना गिरवी रखकर रुपया उधार लेकर तार भेजा था।

भूपति ने सोचा, इतना करने की तो कोई जरूरत नही थी। मुझसे थोडा-वहुत अनुरोध करती तो मैं ही तार कर देता, छिपाकर नौकर के हाथ गहना गिरवी रखने के लिए भेजना—यह तो अच्छा नही हुआ।

रह-रहकर भूपति के मन मे केवल मात्र यही प्रश्न उठने लगा, चारु ने क्यो इतनी अति की? एक अस्पष्ट सन्देह अलक्ष्य भाव से उसको विद्ध करने लगा। उस सन्देह को भूपति ने प्रत्यक्ष भाव से देखना नही चाहा, भूलने की चेष्टा की, किन्तु वेदना ने किसी प्रकार पीछा नही छोडा।

: १६ :

अमल की तवीयत ठीक है, तो भी वह चिट्ठी नही लिखता! एकदम इस तरह कठोर विच्छेद हुआ कैसे? एक वार आमने-सामने होकर इस प्रश्न का जवाव ले आने की इच्छा होती है, किन्तु वीच मे समुद्र है—पार करने का कोई रास्ता नही। निष्ठुर विच्छेद, निरुपाय विच्छेद, सव प्रश्न, सव प्रतिकारो से परे विच्छेद।

चारु अपने को अव और नही संभाल सकती। काम-काज पडा रहता, सभी कामो मे भूल होती, नौकर-चाकर चोरी करते, उसकी दयनीय दशा को लक्ष्य करके लोग तरह-तरह की कानाफूसी करते, उसे किसी की भी सुध न थी।

यहाँ तक कि चारु अचानक चौक पडती, वात करते-करते रोने के लिए उसे उठ जाना पडता, अमल का नाम सुनते ही उसका मुख विवर्ण हो जाता।

अन्त मे भूपति ने भी सव-कुछ देखा, और जिसकी क्षण-भर के लिए भी कल्पना न की थी वह भी सोचा—दुनिया उसके लिए एकदम पुरानी, शुष्क जीर्ण हो गई।

वीच मे जिन दिनो भूपति आनन्द के उन्मेप से अन्धा हो गया था, उन कुछ दिनों की स्मृति उसको लज्जित करने लगी। जो अज्ञानी वन्दर रत्न नही पहचानता, झूठा पत्थर देकर क्या उसको इसी तरह ठगा जाता है?

चारु की जिन सव वातो मे, प्रेम-व्यवहार मे भूपति भूला हुआ था वे मन मे आकर उसको 'मूढ, मूढ, मूढ' कहकर वेत मारने लगी।

अन्त मे वहुत कष्ट और वहुत प्रयत्न से लिखी अपनी रचनाओ की वात जव मन मे आई तव भूपति ने धरती फट जाने की प्रार्थना की। अंकुश मे

ताडित की भाँति द्रुत गति से चारु के पास जाकर भूपति ने कहा, "मेरे वे लेख कहाँ है ?"

चारु ने कहा, "मेरे ही पास है ।"

भूपति ने कहा, "वे दे दो ।"

चारु उस समय भूपति के लिए अडे की कचौड़ी तल रही थी। बोली, "तुम्हें क्या अभी चाहिए ?"

भूपति ने कहा, "हाँ अभी चाहिए।"

चारु कडाही उतारकर आलमारी से कापी और कागज निकाल लाई।

अधीर भाव से उसके हाथ से सब-कुछ छीनकर भूपति ने कापी-कागज तुरंत चूल्हे मे फेक दिए ।

चारु ने घबराकर उनको बाहर निकालने का प्रयत्न करते हुए कहा, "यह क्या किया ?"

भूपति ने कसकर उसका हाथ पकड़े हुए चिल्लाकर कहा, "रहने दो !"

विस्मित होकर चारु खडी रही। सारे लेख अन्त मे जलकर भस्म हो गए।

चारु समझ गई। दीर्घ निःश्वास ली। कचौडियो का तलना बीच ही मे छोड-कर धीरे-धीरे दूसरी जगह चली गई।

चारु के सामने कापी नष्ट करने का भूपति का संकल्प नही था। किन्तु ठीक सामने आग जल रही थी, उसे देखकर जाने उस पर कैसा खून सवार हो गया ! भूपति ने आत्म-संवरण न कर सकने पर प्रवञ्चित निर्वोध के सारे प्रयत्नो को वंचना-कारिणी के सामने ही आग मे फेक दिया।

सब-कुछ राख हो जाने पर भूपति की आकस्मिक उद्दामता जब शान्त हो आई, तब चारु अपने अपराध का भार वहन करती हुई जिस प्रकार गहरे विषाद से नीरव नतमुख होकर चली गई वह भूपित के मन मे साकार हो उठा—सामने दृष्टि डालने पर देखा, भूपति को खास तौर से पसन्द है इसलिए चारु अपने हाथ से यत्नपूर्वक भोजन तैयार कर रही थी।

भूपति बरामदे मे रेलिग के ऊपर टिककर खडा हो गया। मन-ही-मन सोचने लगा—'उसके लिए यह सब चारु का अथक प्रयत्न, इस सारी प्राणपण से की गई वञ्चना, इसकी अपेक्षा करुण बात संसार मे और क्या है ! यह समस्त प्रतारणा, यह तो छलनाकारिणी की तुच्छ छलना-मात्र नही है, इस छलना के लिए क्षत हृदय की क्षत यन्त्रणा चौगुनी बढाकर अभागिनी को प्रतिदित प्रतिक्षण हृदय से रक्त निचोडकर डालना पडता है।' भूपति ने मन-ही-मन कहा, 'हाय अबला ! हाय दुःखिनी ! कोई आवश्यकता नही थी, मुझे उस सबकी तनिक भी

ज़रूरत न थी। इतने समय तक मैं तो प्रेम न पाकर भी 'मिला नही' यह जान भी न पाया था—मेरे तो केवल प्रूफ देखकर, अखवार मे लिखकर दिन कट रहे थे; मेरे लिए इतना करने की कोई जरूरत नही थी।'

तव भूपति ने अपने जीवन को चारु के जीवन से दूर हटाकर—डॉक्टर जिस प्रकार भीषण रोगग्रस्त रोगी को देखता है, भूपति ने भी उसी प्रकार अपरिचित व्यक्ति की तरह चारु को दूर से देखा। एक क्षीणशक्ति नारी-हृदय कैसे प्रवल संसार द्वारा चारों ओर से आक्रान्त हो गया है। कोई भी ऐसा नही जिसके सामने सब वाते कही जा सके, ऐसी कोई वात नही जो व्यक्त की जा सके, ऐसा कोई स्थान नही, जहाँ समस्त हृदय को खोलकर वह हाहाकार कर सके—फलत: इस अप्रकाशित, अपरिहार्य, अप्रतिकारी पुञ्जीभूत दु ख-भार को अत्यन्त सहज व्यक्ति की भाँति प्रतिदिन वहन करती, अपनी स्वस्थ-चित्त पडौसिनो के सामन उसे प्रतिदिन का गृह-कर्म सपन्न करना पड़ता।

भूपति ने उसके शयन-कक्ष मे जाकर देखा—जंगले के सीखचे पकडकर अश्रुहीन निर्निमेप दृष्टि से चारु वाहर की ओर देख रही थी। धीरे-धीरे आकर भूपति उसके पास खडा हो गया—कुछ वोला नही, उसके सिर पर हाथ रख दिया।

२०

मित्रो ने भूपति से पूछा, "वात क्या है ? इतने परेशान क्यो हो ?"

भूपति ने कहा, "अखवार।"

मित्र—"फिर अखवार ? घर-द्वार अखवार मे लपेटकर गगाजी मे डालना है क्या।"

भूपति—"नही, अव अपना अखवार नही निकालूँगा।"

मित्र—"तव ?"

भूपति—"मैसूर से एक अख़वार निकलेगा। मुझे उसका सम्पादक वनाया गया है।"

मित्र—"घर-वार छोड़कर एकदम मैसूर जाओगे ? चारु को साथ ले जा रहे हो ?"

भूपति—"नही, मामा वगैरह यहाँ आकर रहेगे।"

मित्र—"सम्पादकी का तुम्हारा नशा किसी तरह नही छूटा ?"

भूपति—"मनुष्य को एक-न-एक नशा तो चाहिए ही।"

विदाई के अवसर पर चारु ने प्रश्न किया, "कव आओगे ?"

भूपति ने कहा, "तुम्हे यदि सूना-सूना लगे तो मुझे लिखना, मैं चला आऊँगा।"

कहकर विदा लेकर भूपति द्वार के पास पहुँचा तब सहसा दौड़कर चारु ने उसका हाथ पकड़ लिया। कहा, "मुझे संग ले चलो। मुझे यहाँ छोड़कर मत जाओ!"

भूपति जाते-जाते सहसा रुककर चारु के मुख की ओर देखता रहा। मुट्ठी शिथिल पडने के कारण भूपति के हाथ से चारु का हाथ छूट गया। भूपति चारु के पास से हट आकर बरामदे मे खड़ा हो गया।

भूपति समझ गया, अमल की वियोग-स्मृति जिस घर को लपेटकर जला रही है, चारु दावानलग्रस्त हरिणी के समान उस घर को छोडकर भागना चाहती है।—'किन्तु, मेरी स्थिति उसने एक बार भी सोचकर नही देखी? मैं कहाँ भागूं? जो पत्नी हृदय मे सदा दूसरे का ध्यान कर रही है, विदेश चले जाने पर भी उसे भूलने का अवसर नही पाऊँगा? निर्जन मित्ररहित प्रवास मे प्रतिदिन उसको संग दान करना होगा? दिन-भर परिश्रम करके सन्ध्या को जब घर लौटूंगा तब निस्तब्ध—शोकपरायणा नारी को लेकर वह सन्ध्या कैसी भयानक हो उठेगी! जिसके हृदय पर मृतभार है, उसे छाती से लगाकर रखना, यह मैं कितने दिन कर सकूंगा? प्रतिदिन यही करते-करते मुझे और कितने वर्ष जीवित रहना होगा! जो आश्रय चूर्ण होकर टूट गया है उसके टूटे ईट-काठादि को छोड़कर नही जा सकूंगा, कंधे पर लिये घूमना होगा?'

भूपति ने आकर चारु से कहा, "नही, यह मैं नही कर सकूंगा।"

क्षण-भर मे सारा रक्त उतरकर चारु का मुख कागज की तरह शुष्क, सफेद हो गया, चारु ने चारपाई मुट्ठी से कसकर पकड ली। उसी क्षण भूपति ने कहा, "चलो, चारु, मेरे ही संग चलो!"

चारु बोली, "नही, रहने दो!"

मास्टर साहब

भूमिका

उस समय रात के लगभग दो वजे थे। कलकत्ता के निस्तब्ध शब्द-समुद्र मे तरग उठाती हुई एक वडी वग्घी भवानीपुर की ओर से विर्जि तलाव के मोड के पास आकर रुकी। वहाँ भाड़े की एक गाडी देखकर गाड़ी पर सवार बाबू ने उसे वुलवाया। उनके पास हैट, कोट पहने विलायत से लौटा एक वगाली युवक सामने के आसन पर दोनो पैर उठाए कुछ मदहोशी मे गर्दन झुकाए सो रहा था। यह युवक हाल ही मे विलायत से आया था। इसी की अभ्यर्थना के उपलक्ष्य मे मित्र-मण्डली मे एक दावत हुई थी। दावत से लौटते सवय रास्ते मे एक मित्र ने उसे कुछ दूर पहुँचाने के लिए अपनी गाड़ी मे वैठा लिया था। उन्होने उसको दो-तीन वार ठेलकर जगाते हुए कहा, "मजूमदार, गाड़ी मिल गई, घर जाओ!"

मजूमदार चौककर एक पक्की विलायती कसम खाकर किराए की गाड़ी पर चढ गया। उसके गाड़ीवान को भली भाँति ठिकाना समझाकर ब्रूहाम[1] गाडी के आरोही अपने रास्ते चले गए।

भाडे की गाडी कुछ दूर सीधी जाकर पार्क स्ट्रीट के सामने मैदान के रास्ते की ओर मुडी। मजूमदार ने फिर एक वार अग्रेजी शपथ का उच्चारण करके अपने मन मे कहा, 'यह क्या! यह तो मेरा रास्ता नही है!' उसके वाद अर्द्ध-निद्रित अवस्था मे सोचा, 'क्या पता, शायद यही सीधा रास्ता हो!'

मैदान मे घुसते ही मजूमदार का शरीर काँप उठा। हठात् उसे लगा— कोई आदमी नही है, फिर भी उसकी वगल की मानो भरी-भरी लग रही थी, जैसे उसके आसन के खाली स्थान का आकाश ठोस होकर उसे भीच रहा हो। मजूमदार ने सोचा, 'यह क्या मामला है!'

'गाड़ी मेरे साथ यह कैसा व्यवहार कर रही है।'

"ए गाडीवान! गाड़ीवान!"

गाड़ीवान ने कोई उत्तर नही दिया। पीछे की खिड़की खोलकर सईस का

---

1 एक प्रकार की घोडगाडी, जो गोल होती थी।

हाथ पकड़ लिया; कहा, "तुम भीतर आकर बैठो।"

सईस ने भयभीत स्वर से कहा, "नही सा' ब, भीतर नही जायगा !"

सुनकर मजूमदार का शरीर रोमाञ्चित हो गया; उन्होने ज़ोर से सईस का हाथ पकड़कर कहा, "जल्दी भीतर आओ !"

सईस ने वलपूर्वक हाथ छुड़ाया और उतरकर छूट भागा। तव मजूमदार भय से वगल की ओर ताकने लगे; कुछ भी नही दिखा, तो भी ऐसा लगा, जैसे वगल मे कोई अटल पदार्थ एकदम भिचकर बैठा हो। किसी तरह गले मे बोल भरकर मजूमदार ने कहा, "गाडीवान, गाडी रोको !" ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे गाड़ीवान ने खड़े होकर दोनो हाथो से लगाम खीचकर घोडो को रोकने का प्रयत्न किया—घोडे किसी तरह रुके ही नही। रुकने की वजाय दोनो घोड़े रेड रोड का रास्ता पकडकर फिर दक्षिण की ओर मुड़ गए। मजूमदार ने घवराकर कहा, "अरे, कहाँ जाता है ?" कोई,उत्तर नही मिला। वगल की शून्यता की ओर रह-रहकर कटाक्ष करते-करते मजूमदार के सारे वदन से पसीना छूटने लगा। किसी प्रकार जड़वत् होकर अपनी देह को वह जितना समेट सकते थे, समेटा, किन्तु उसने जितनी जगह खाली की उतनी ही जगह भर उठी। मजूमदार मन-ही-मन तर्क करने लगे कि 'किसी प्राचीन यूरोपीय ज्ञानी ने कहा है—Nature abhors vacuum—सो वही तो देख रहा हूँ। किन्तु यह क्या है ! यह क्या नेचर है ? यदि मुझसे कुछ न कहे तो मैं अभी उसके लिए सव जगह छोड़कर कूद पड़ूँ।' कूदने का साहस नही हुआ—कही पीछे से कोई अनहोनी घटना न घट जाय। 'पहरे वाले' कहकर पुकारने की चेष्टा की—किन्तु वड़ी कठिनाई से ऐसी एक अद्भुत क्षीण आवाज़ निकली कि अत्यन्त भयभीत होने पर भी उसे हँसी आ गई। अँधेरे मे मैदान के वृक्ष भूतो की निस्तव्ध पार्लमेंट के समान परस्पर एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे, और गैस के खभे-जैसे सव-कुछ जानते हो फिर भी जैसे कुछ भी नही वतायँगे, इस प्रकार खडे हुए टिमटिमाती आलोक-शिखा द्वारा इशारा करने लगे। मजूमदार ने सोचा कि चट से कूदकर सामने के आसन पर जा वैठे। जैसे ही उसने यह सोचा वैसे ही उसे लगा जैसे सामने के आसन से खाली एक चितवन उसके मुँह की ओर ताक रही हो। आँखे नही, कुछ नही, फिर भी एक चितवन। वह चितवन किसकी थी यह जैसे उसे याद आ रही हो, फिर भी किसी भी तरह जैसे स्पष्ट रूप से स्मरण नही कर पा रहा हो। मजूमदार ने दोनो आँखे जवरदस्ती वन्द करने की चेष्टा की—किन्तु भय के कारण वन्द नही कर पाया—उस निरुद्देश्य चितवन की ओर दोनो आँखे इस प्रकार वलपूर्वक गड़ा रखी थी कि पलक गिराने का भी अवसर न मिला।

इधर गाड़ी वार-वार मैदान के रास्ते पर ही उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर चक्कर काटती हुई घूमने लगी। दोनो घोड़े जैसे उन्मत्त हो उठे हो—उनका वेग उत्तरोत्तर वढ चला—गाडी की थर-थर काँपती हुई खिड़कियो से खट-खट आवाज़ होने लगी।

इतने मे गाड़ी जैसे किसी से टकराकर जोर का धक्का खा हठात् रुक गई। मजूमदार ने चौंककर देखा, उसीके रास्ते पर गाडी खडी है और गाडीवान उसको हिलाकर पूछ रहा है, "साहव, कहाँ जाना होगा, वताइए।"

मजूमदार ने नाराज होकर पूछा, "इतनी देर मुझे मैदान मे क्यो घुमाया ?"

गाड़ीवान ने आश्चर्य से कहा, "कहाँ, मैदान मे तो नही घुमाया।"

मजूमदार ने विश्वास न करते हुए कहा, "तव क्या यह केवल स्वप्न था ?"

गाडीवान ने कुछ सोचते हुए डरकर कहा, "वावू साहव शायद, यह केवल स्वप्न न हो। आज तीन वर्ष हुए मेरी इसी गाडी मे एक घटना घटी थी।"

उस समय मजूमदार का नशा और नीद का झोका पूरी तरह दूर हो जाने के कारण वह गाडीवान की कहानी सुने विना ही भाडा चुकाकर चला गया।

किन्तु, रात मे उसे अच्छी तरह नीद नही आई—वस यही सोचता रहा, वह चितवन थी किसकी ?

: १ :

अधर मजूमदार के पिता साधारण शिप-सरकारी[1] पद से आरम्भ करके एक वड़े फर्म के कारिन्दे के पद तक पहुँच गए थे। अधर वावू पिता द्वारा उपार्जित नगद रुपयो को व्याज पर लगाते थे, उनको स्वय परिश्रम नही करना पडता था। पिता सिर पर सफेद साफा वाँधकर पालकी मे वैठकर ऑफिस जाते थे, दूसरी ओर वे क्रिया-कर्म, दान-ध्यान भी पर्याप्त करते थे। विपद् आपद्, अभाव-अकाल मे सभी श्रेणी के लोग आकर उन्हे घेरते, इसे वे गर्व का विषय समझते थे।

अधर वावू ने वडा घर वनवा लिया है, गाड़ी, घोडा लिया है, किन्तु लोगो के साथ उनका संपर्क नही है; केवल रुपया उधार दिलाने वाला दलाल आकर उनके भरे हुए हुक्के से तम्वाकू पी जाता है और एटॉर्नी के ऑफिस के वावुओ के साथ स्टाम्प-लगी दलील की शर्त के विषय मे वातचीत होती रहती है। उनकी गृहस्थी मे खर्चे से सवधित हिसाव की ऐसी खीच-तान है कि मुहल्ले के फुटवॉल-क्लव के पीछा न छोडने वाले लडके तक वहुत प्रयत्न करने पर भी उनके खजाने से कुछ वसूल नही कर पाते।

---

१ जहाजो पर आने-जाने वाले माल-असवाव के प्रवन्ध-विभाग का साधारण कर्मचारी।

ऐसी स्थिति मे उनकी गृहस्थी मे एक अतिथि का आगमन हुआ। लड़का नही हुआ, नही हुआ, करते-करते बहुत दिन बाद उनके एक लड़का पैदा हुआ। लड़के का चेहरा मां की तरह का था। बड़ी-बड़ी आंखें, नुकीली नाक, रजनीगन्धा की पंखुड़ी के समान रंग—जिसने देखा उसीने कहा, "आहा! लड़का क्या है, मानो कार्तिकेय हो!" अधर बाबू का अनुगत अनुचर रतिकान्त बोला, "बड़े घर मे जैसा लड़का होना चाहिए वैसा ही हुआ है।"

लड़के का नाम रखा वेणुगोपाल। इससे पहले अधरबाबू की स्त्री ननीबाला ने गृहस्थी के खर्च के विषय मे पति के विरुद्ध अपना मत इस तरह बलपूर्वक कभी प्रदर्शित नही किया था। अपने शौक की दो-एक बातों अथवा दुनियादारी के अत्यावश्यक कार्यों को लेकर बीच-बीच मे बहस अवश्य हुई है, किन्तु अन्ततः पति की कृपणता के प्रति अवज्ञा दिखाकर चुपचाप हार मान ली है।

इस बार ननीबाला को अधरलाल नही दबा सके, वेणुगोपाल को लेकर उनका हिसाब कदम-कदम आगे बढ़ने लगा। उसके पैरों की पैजनी, हाथ का बाला, गले का हार, सिर की टोपी उसकी देशी-विलायती नाना प्रकार की नाना रंग की वेश-भूषा के सबध मे ननीबाला ने जो कुछ मांग की, सभी उन्होंने कभी चुपचाप आंसू बहाकर, कभी जोर की वाक्य-वर्षा द्वारा प्राप्त कर ली। वेणुगोपाल के लिए जो जरूरी हो वह भी और जो जरूरी न हो वह भी चाहिए ही चाहिए—वहां खाली खजाने का बहाना या भविष्य के लिए कोरा आश्वासन एक दिन भी नही टिक सका।

: २ :

वेणुगोपाल बड़ा होने लगा। वेणु के लिए खर्च करने का अधरलाल को अभ्यास हो चला। उसके लिए अधिक मासिक वेतन देकर खूब पढ़ा-लिखा एक बूढ़ा मास्टर रख लिया। इन मास्टर ने मीठी बोली और शिष्टाचार द्वारा वेणु को वश मे करने की बहुत कोशिश की—किन्तु वे शायद आज तक छात्रों पर बराबर कड़ा अनुशासन रखकर मास्टरी की मर्यादा को अक्षुण्ण रखते आए थे, इसलिए उनकी भाषा की मिष्टता और व्यवहार की शिष्टता बस बेसुरी ही लगती रही—यह शुष्क साधना लड़के को बहला नही सकी।

ननीबाला ने अधरलाल से कहा, "यह तुम्हारा मास्टर कैसा है? उसे देखते ही लड़का घबरा जाता है। उसे छुड़ा दो!"

बूढ़ा मास्टर विदा हो गया। पुराने समय मे लड़किया जिस प्रकार स्वयवरा होती थी उसी प्रकार ननीबाला का बेटा स्वयं-मास्टर बनने चला—वह जिसे

स्वीकार नही करेगा उसकी सारी डिग्रियाँ और सर्टिफिकेट व्यर्थ है।

इसी समय देह पर एक मैली चादर डाले और पैरो में कैन्वास का फटा जूता पहने मास्टरी की उम्मीदवारी के लिए हरलाल आ पहुँचा। उसकी विधवा माँ ने दूसरे के घर की रसोई बनाकर और धान कूटकर उसे मुफस्सिल एंट्रेस स्कूल से किसी प्रकार एंट्रेस पास करा दिया था। अब हरलाल कलकत्ता के कॉलेज मे पढ़ने के लिए प्राणपण से प्रतिज्ञा करके वाहर निकला था। भोजन के विना उसके मुँह का निचला भाग सूखकर भारतवर्ष की 'कन्या कुमारी' के समान नुकीला हो गया था, केवल चौडा माथा हिमालय की भाँति प्रशस्त होकर आँखो को आकर्पित करता था। मरुभूमि की वालू से सूर्य की किरणे जिस प्रकार टकराकर लौटती है उसी प्रकार उसके दोनो नेत्रो से दैन्य की एक अस्वाभाविक दीप्ति निकल रही थी।

दरबान ने पूछा, "तुम क्या चाहते हो ? किसे चाहते हो ?"

हरलाल ने डरते-डरते कहा, "घर के मालिक के साथ भेट करना चाहता हूँ।"

दरवान ने कहा, "भेट नही होगी।" इसके उत्तर मे हरलाल क्या कहे, यह न सोच पाने के कारण इधर-उधर कर रहा था, तभी सात वर्ष का लडका वेणुगोपाल वाग मे खेल खत्म करके डयौढी मे आ पहुँचा। हरलाल को द्विविधा मे देखकर दरवान ने फिर कहा, "वावू चले जाओ !"

वेणु को अचानक जिद सवार हो गई—उसने कहा, "नही जायगा।" यह कहते हुए उसने हरलाल का हाथ पकडकर उसे दोतल्ले के बरामदे मे अपने पिता के पास ले जाकर हाज़िर किया।

वावू उस समय दिवा-निद्रा पूरी करके जडालस भाव से वरामदे मे वेत की कुरसी पर चुपचाप बैठे पैर हिला रहे थे और बूढा रतिकान्त काठ की एक चौकी पर आसन लगाए बैठा हुआ धीरे-धीरे हुक्का पी रहा था। उस दिन के ऐसे समय ऐसी अवस्था मे दैवयोग से हरलाल मास्टरी पर वहाल हो गया।

रतिकान्त ने प्रश्न किया, "आप कहाँ तक पढे है ?"

हरलाल ने कुछ मुँह नीचा करके कहा, "एंट्रेस पास किया है।"

रतिकान्त ने भौहे तानकर कहा, "सिर्फ एंट्रेस पास ! मैंने तो समझा था, कॉलेज मे पढ चुके है। आपकी उम्र भी तो कुछ कम नही दिखती।"

हरलाल चुप रह गया। आश्रित और आश्रय-प्रत्याशियो को प्रत्येक प्रकार से पीडित करना ही रतिकान्त के आनन्द का प्रधान विपय था।

रतिकान्त ने प्यार से वेणु को अपनी गोद के पास खीचने का प्रयत्न करते हुए

कहा, "कितने एम० ए०, बी० ए० आए और गए, कोई पसन्द नहीं आया—भला अन्त में क्या सोनाबाबू एंट्रेंस पास मास्टर से पढ़ेंगे ?"

वेणु ने रतिकान्त के स्नेहाकर्षण से अपने को जबरदस्ती छुडाकर कहा, "हटो।" रतिकान्त को वेणु किसी तरह सहन नही कर पाता था, किन्तु रति भी वेणु की इस असहिष्णुता को उसके बाल्य-माधुर्य का एक लक्ष्य समझकर उसमें खूब आनंदित होने की चेष्टा करता, और उसको सोनाबाबू, चाँदबाबू कह-कहकर चिढ़ाकर आग-बबूला कर देता।

हरलाल को उम्मीदवारी मे सफलता पाना कठिन हो गया; वह मन-ही-मन सोच रहा था, कि बस अब किसी सुयोग से चौकी से उठकर बाहर चला जाय तो जान बचे। तभी सहसा अधरलाल के मन मे आया कि इस छोकरे को बिलकुल मामूली वेतन देकर भी रखा जा सकता है। अन्त मे तय हुआ कि हरलाल घर मे ही रहेगा, खायगा और पाँच रुपया महीना वेतन लेगा। घर मे रखने से जितनी अतिरिक्त दया प्रदर्शित करनी होगी, उसके बदले मे अतिरिक्त काम करा लेने से वह दया सार्थक हो सकेगी।

: ३ :

इस बार मास्टर टिक गया। प्रारम्भ से ही हरलाल के साथ वेणु की ऐसी जमी जैसे वे दोनों भाई हो। कलकत्ता मे हरलाल का आत्मीय मित्र कोई नही था—इस सुन्दर नन्हे लडके ने उसके सम्पूर्ण हृदय पर अधिकार कर लिया। अभागे हरलाल को इससे पहले किसी व्यक्ति से इस प्रकार स्नेह करने का सुयोग नही मिला था। किसी तरह उसकी अवस्था सुधर जाय, इसी आशा में उसने बड़े कष्ट से पुस्तकें इकट्ठी करके अकेले अपने प्रयत्न से दिन-रात पढाई ही की थी। माँ को पराधीन बनकर रहना पडा, इससे लडके की बाल्यावस्था केवल संकोच ही मे बीती—रोक-टोक की सीमा लाँघकर नटखटपन द्वारा अपने बाल्यप्रताप को विजयी बनाने का सुख उसे कभी नही मिला। वह किसी के दल मे नही था, वह अपनी फटी किताब और टूटी स्लेट के बीच नितान्त अकेला था। जगत् मे जन्म लेकर जिस लड़के को बचपन में ही गुम-सुम भला आदमी बनना पड़े, बचपन से ही माता का दुःख और अपनी अवस्था समझकर जिसे सावधानी से चलना पड़े, एकदम अविवेकी होने की स्वाधीनता जिसके भाग्य मे कभी न जुटे, प्रसन्न होकर चंचलता दिखाना या दुःख पाकर रोना, इन दोनो को ही जिसे दूसरे लोगों की असुविधा और नाराजी के भय से सारी बाल्य-शक्ति का प्रयोग करके दबाकर रखना पड़े,

उसके समान करुणा का पात्र, फिर भी करुणा से वञ्चित जगत् मे और कौन है।

विश्व के सव मनुष्यो के नीचे दवा पडा हुआ यह हरलाल स्वयं भी नही जानता था कि उसके मन के भीतर इतना स्नेह-रस अवसर की अपेक्षा मे इस प्रकार जमा था। वेणु के साथ खेलकर, उसे पढ़ाकर, अस्वस्थता के समय उसकी सेवा करके हरलाल भली भाँति समझ गया कि अपनी स्थिति सुधारने से भी वढकर मनुष्य के लिए एक और चीज है—वह जव मिल जाती है तव उसे और कुछ अच्छा नही लगता।

वेणु भी हरलाल को पाकर जी उठा। कारण घर मे वह अकेला लड़का था, एक वहुत ही छोटी तीन वर्ष की एक वहन और थी—वेणु उसे साथ देने के योग्य ही नही समझता था। मुहल्ले मे समवयस्क लड़को की कमी नही थी, किन्तु अधरलाल द्वारा मन-ही-मन अपने घर को अत्यन्त वड़ा घर समझ लेने के कारण वेणु के भाग्य मे मिलने-जुलने योग्य लडके नही जुटे। इस कारण हरलाल उसका एक मात्र सगी हो गया। अनुकूल परिस्थिति मे वेणु की जो सारी शैतानी दस जनो मे वँटकर एक प्रकार से सहन योग्य हो सकती थी वह सव अकेले हरलाल को सहन करनी पडती। यह सारा उपद्रव प्रतिदिन सहन करते-करते हरलाल का स्नेह और भी दृढ होने लगा। रतिकान्त कहने लगा, "हमारे सोना वावू को मास्टर साहव चौपट करने पर तुले है।" अधरलाल को भी वीच-वीच मे लगने लगता, मानो मास्टर के साथ छात्र का सम्वन्ध शायद यथोचित न हो। किन्तु हरलाल को वेणु से अलग कर सके ऐसी सामर्थ्य अव किस मे थी ?

: ४ :

वेणु की अवस्था अव ग्यारह की थी। हरलाल एफ० ए० पास करके छात्रवृत्ति पाकर तृतीय वर्ष मे पढ रहा था। इस वीच मे कॉलेज मे उसके दो-एक मित्र न जुटे हो ऐसी वात नही थी, किन्तु वह ग्यारह साल का लड़का अपने सव मित्रो से वढकर था। कॉलेज से लौटकर वेणु को लेकर वह गोलदीघी और किसी-किसी दिन ईडन गॉर्डन घूमने जाता। उसको ग्रीक इतिहास के वीर पुरुषो की कहानी सुनाता, थोडी-थोडी करके वँगला मे स्कॉट और विक्टर ह्यूगो की कहानियाँ सुनाता—उच्च स्वर से अंग्रेज़ी कविता की आवृत्ति करके सुनाता और अनुवाद करके उसकी व्याख्या करता, माने वता-वताकर शेक्सपियर का 'जूलियस सीज़र' पढ-पढ़कर उसमे से उसे एण्टनी की वक्तृता कण्ठस्थ कराने का प्रयत्न करता। वह

नन्हा-सा बालक हरलाल के मन के उद्बोधन के लिए मानो सोने की छड़ी[1] बन गया था। जब वह अकेला बैठकर पाठ याद करता था तब अंग्रेजी साहित्य मे उसका इतना मन नही लगता था। अब इतिहास, विज्ञान, साहित्य जो कुछ भी वह पढ़ता उसमे थोडा-सा रस पाते ही वह उसे पहले वेणु को देने के लिए आग्रह अनुभव करता और वेणु के मन मे उस आनन्द का सचार करने के प्रयत्न मे ही उसकी अपनी समझाने की शक्ति और आनन्द का अधिकार मानो बढ़कर दुगुना हो जाता।

वेणु स्कूल से आते ही किसी प्रकार झटपट जलपान समाप्त कर के हरलाल के पास जाने के लिए एकदम अधीर हो जाता, उसकी माँ उसे किसी भी बहाने मे, किसी भी प्रलोभन से घर मे नही रोक पाती थी। ननीबाला को यह अच्छा नही लगता था। उसे लगता कि हरलाल अपनी नौकरी बनाए रखने के लिए लडके को इस प्रकार वश मे रखने का प्रयत्न कर रहा है। उसने एक दिन हरलाल को बुलाकर परदे की ओट मे से कहा, "तुम मास्टर हो, लडके को बस एक घंटा सवेरे और एक घटा शाम को पढाओ—दिन-रात इसके साथ क्यो लगे रहते हो? आजकल तो वह माँ-बाप किसी को भी नही मानता। वह कैसी शिक्षा पा रहा है! पहले जो लड़का माँ का नाम सुनते ही नाच उठता था आज वह बुलाने पर भी हाथ नही आता। वेणु अपने बड़े घर का लडका है, उसके साथ तुम्हारा इतना मेल-जोल किस लिए?"

उस दिन रतिकान्त अधर बाबू के साथ बाते कर रहा था कि उसकी जान-पहचान के ऐसे तीन-चार आदमी है, जिन्होने बडे आदमियो के लडको की मास्टरी करते हुए लडको का मन इस तरह वश मे कर लिया था कि लड़को के जायदाद का अधिकारी बनने पर उन्होंने सर्वेसर्वा बनकर लडको को अपनी इच्छानुसार चलाया था। हरलाल को ही इशारा करके ये सब बाते कही जा रही थी। यह समझने मे हरलाल को देर नही लगी। तो भी उसने चुप रहकर सब सह लिया। किन्तु, आज वेणु की माँ की बात सुनकर उसकी छाती फट गई। वह समझ गया कि बड़े आदमियों के घरो मे मास्टर की क्या इज्जत है? गोशाला मे लडके के दूध के लिए जैसे गाय रखी जाती है, उसी प्रकार उसको विद्या प्राप्त कराने के लिए एक मास्टर भी रखा जाता है—विद्यार्थी के साथ स्नेहपूर्ण आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करना इतना बडा दुस्साहस है कि घर के नौकरों से लेकर मालकिन तक

---

१ एक लोक-प्रचलित कथा, जिसमे राजकुमार ने सोने की छडी छुआकर सोती हुई राजकुमारी को जगा लिया था। सोने की छडी प्रेम तथा जाग्रत अवस्था की प्रतीक है।

कोई भी उसे सहन नही कर सकता; और सभी उसे स्वार्थ-साधन की चातुरी ही समझते है।

हरलाल ने कम्पित स्वर से कहा, "माँ, वेणु को मै केवल पढाऊँगा ही, उसके साथ मेरा और कोई सम्पर्क न रहेगा।"

उस दिन शाम को वेणु के साथ खेलने के समय हरलाल कॉलेज से ही नही लौटा। किस प्रकार सड़को पर घूम-घूमकर उसने समय काटा, यह वही जानता था। सध्या होने पर जब वह पढाने आया तो वेणु मुँह फुलाए रहा। हरलाल अपनी अनुपस्थिति की कोई सफाई दिये विना पढा गया—उस दिन पढाई अच्छी तरह नही हुई।

हरलाल प्रतिदिन रात रहते उठकर अपने कमरे मे वैठकर पढता। वेणु सवेरे उठकर, मुँह धोकर दौडकर उसके पास जाता। वगीचे मे पक्के हौज मे मछलियाँ थी। उनको लाई खिलाना इनका एक काम था। वगीचे के एक कोने मे वहुत-से पत्थर सजाकर छोटे-छोटे रास्ते और छोटा गेट और अहाता वनाकर वेणु ने वाल-खिल्य ऋषि के आश्रम के उपयुक्त एक वहुत छोटा-सा वाग वना दिया था। उस वगीचे पर माली का कोई अधिकार नही था। सवेरे इस वगीचे की देख-भाल करना इनका दूसरा काम था। उसके वाद धूप चढ़ने पर घर लौटकर वेणु हरलाल के साथ पढने वैठता। कल शाम को जिस कहानी का अंश सुने विना रह गया था उसीको सुनने के लिए आज वेणु यथासंभव तडके उठकर दौड़कर वाहर आया था। उसने सोचा था, सवेरे उठने मे आज उसने मास्टर साहव को जीत लिया है। कमरे मे आकर देखा, मास्टर साहव नही थे। दरवान से पूछने पर पता लगा, मास्टर साहव वाहर निकल गए है।

उस दिन भी सवेरे पढते समय वेणु नन्हे हृदय की वेदना लिये मुँह गम्भीर वनाए वैठा रहा। सवेरे हरलाल क्यो वाहर निकल गया था, यह भी नही पूछा। वेणु के मुँह की ओर देखे विना हरलाल किताव के पन्नो पर आँखे गडाए पढा गया। वेणु घर के भीतर अपनी माँ के पास जव खाने बैठा तव उसकी माँ ने पूछा, "कल शाम से तुझे क्या हो गया है—वता तो सही। मुँह हाँडी-सा क्यो कर लिया है—अच्छी तरह खाता भी नही—वात क्या है ?"

वेणु ने कोई उत्तर नही दिया। खाने के वाद माँ ने उसे पास खीचकर उसकी देह पर हाथ फेरकर खूव स्नेह दिखाते हुए जव वार-वार उससे पूछना शुरू किया, तव वह और नही रह सका, फफक-फफककर रो पडा। वोला, "मास्टर साहव..."

माँ ने कहा, "मास्टर साहव क्या ?"

वेणु नही वोल सका कि मास्टर साहव ने क्या किया है। अभियोग क्या था उसे भापा मे व्यक्त करना कठिन था।

ननीवाला ने कहा, "मालूम होता है मास्टर साहव ने तेरी माँ के संवंध मे तुमसे कुछ लगाया है।"

इस वात का कोई अर्थ न समझ सकने के कारण वेणु विना उत्तर दिए चला गया।

: ५ :

इस वीच अधर वावू के घर से कुछ कपड़े-लत्ते चोरी हो गए। पुलिस को खवर दी गई। पुलिस ने खाना-तलाशी मे हरलाल के वक्स की भी तलाशी करना नही छोड़ा। रतिकात ने अत्यन्त निरीह भाव से कहा, "जिस व्यक्ति ने चोरी की है वह क्या माल वक्स मे रखेगा।"

सामान का कोई पता नही लगा। इस प्रकार का नुकसान अधरलाल के लिए असह्य था। वे दुनिया के सभी लोगो पर नाराज हो गए। रतिकात ने कहा, "घर मे अनेक आदमी है, किसको दोपी ठहराऊँ, किस पर संदेह प्रकट करें? जिसकी जव खुशी होती है आता-जाता है?"

अधरलाल ने मास्टर को वुलाकर कहा, "देखो हरलाल, अव किसी को भी घर मे रखना हमारे लिए सुविधाजनक नही होगा। आज से तुम अलग घर मे रह-कर वेणु को निश्चित समय पर पढा जाया करो, यही करना ठीक होगा—न हो तो मैं तुम्हारे लिए दो रुपये महीना वढाने को राजी हूँ।"

रतिकात तवाकू पीते हुए वोला, "यह तो वड़ी अच्छी वात है—दोनो ही के लिए अच्छा है।"

हरलाल सिर झुकाए सुनता रहा। उस समय वह कुछ नही कह सका। घर आकर अधर वावू को चिट्ठी लिख भेजी, "कई कारणो से वेणु को पढ़ाना उसके लिए सभव नही होगा, अतएव आज ही वह विदा लेने के लिए तैयार है।"

उस दिन वेणु ने स्कूल से लौटकर देखा, मास्टर साहव का कमरा खाली था। उनका वह टीन का भग्नप्राय वक्स भी नही था। जिस रस्सी के ऊपर उनकी चादर और अगोछा लटका रहता, वह रस्सी तो थी, किंतु चादर और अँगोछा नही। टेवुल के ऊपर कापी, कागज और कितावे इधर-उधर विखरी रहती, उसके वदले वहाँ एक वडी वोतल मे चमकती हुई सुनहरी मछलियाँ ऊपर-नीचे आ जा रही थी। वोतल के ऊपर मास्टर साहव के हस्ताक्षरो मे वेणु के नाम लिखा एक कागज चिपका था। और एक नई अच्छी जिल्द वाली अंग्रेजी तस्वीरो की किताव

थी, उसके भीतर के पन्ने पर एक कोने मे वेणु का नाम और उसके नीचे आज की तारीख, महीना और सन् लिखा था।

वेणु ने दौडकर अपने पिता के पास जाकर कहा, "पिताजी, मास्टर साहव कहाँ गए ?"

पिता ने उसे पास खींचते हुए कहा, "वे काम छोडकर चले गए है।"

वेणु पिता का हाथ छुडाकर पास के कमरे मे विछौने के ऊपर औंधा लेटकर रोने लगा। व्याकुल होकर अधर वावू कुछ सोच न सके कि क्या करे।

दूसरे दिन साढे दस वजे हरलाल मेस के एक कमरे मे चौकी के ऊपर उदास बैठा हुआ सोच रहा था कि कॉलेज जाये या नही। इसी वीच हठात् देखा कि पहले अधर वावू के दरवान ने कमरे मे प्रवेश किया और उसके पीछे वेणु कमरे मे घुसते ही हरलाल के गले से लिपट गया। हरलाल का गला भर आया; वोलते ही उसकी आँखो से आँसू टपक पड़ेगे, इस डर से वह कुछ भी नही कह सका।

वेणु ने कहा, "मास्टर साहव, हमारे घर चलो !"

वेणु अपने वृद्ध दरवान चन्द्रभान के पीछे पड गया था कि जैसे भी हो उसे मास्टर साहव को घर ले ही चलना होगा। मुहल्ले का जो कुली हरलाल का पिटारा उठाकर लाया था उससे पता लगाकर आज स्कूल जाने वाली गाडी मे चन्द्रभान ने वेणु को हरलाल के मेस मे लाकर उपस्थित कर दिया।

हरलाल का वेणु के घर जाना क्यो एकदम असम्भव था, यह वह कह भी नही सका और उसके घर भी नही जा सका। वेणु ने जो उसके गले से लिपटकर उससे कहा था, 'हमारे घर चलो'—इस स्पर्श और इस वात की स्मृति ने कितने दिन, कितनी राते उसके गले को दवाकर जैसे उसकी साँस को रोक कर रखा हो ! किंतु, धीरे-धीरे ऐसा दिन भी आया जव दोनो ओर का सव-कुछ समाप्त हो गया, हृदय की नसो को जकडकर वेदना-निशाचर चमगादड के समान फिर लटकता नही रह सका।

: ६ :

वहुत प्रयत्न करने पर भी पढने मे हरलाल वैसा मनोयोग फिर नही दे पाया। किसी भी प्रकार स्थिर होकर वह पढने नही वैठ पाता था। पढने की थोडी-सी चेष्टा करते ही झट पुस्तक वन्द कर देता और अकारण ही तेजी से रास्ते का चक्कर लगा आता। कॉलेज मे लेक्चरो को नोट करने मे वीच-वीच मे वड़ा व्यवधान पड़ जाता और वीच-वीच मे जो कुछ घिच-पिच लिख पाता उसके साथ

प्राचीन ईजिप्ट की चित्र-लिपि को छोडकर और किसी वर्णमाला का सादृश्य नही था।

हरलाल ने समझा कि ये सब अच्छे लक्षण नही है। परीक्षा मे चाहे वह उत्तीर्ण हो भी जाय, लेकिन छात्रवृत्ति पाने की कोई संभावना नही थी। वृत्ति पाए बिना कलकत्ता मे उसका एक दिन भी काम नही चलेगा। दूसरी ओर घर माँ को भी दो-चार रुपए भेजने चाहिएँ। बहुत सोच-विचार करके वह नौकरी की कोशिश मे बाहर निकला। नौकरी पाना कठिन था। किंतु न मिलना उसके लिए और भी कठिन था; इस कारण आशा छोडकर भी वह आशा नहीं छोड सका।

हरलाल के सौभाग्य से एक बडे अग्रेज सौदागर के कार्यालय मे उम्मीदवारी के लिए जाने पर हठात् बडे साहब की निगाह उस पर पड गई। साहब का विश्वास था कि वह चेहरा देखकर आदमी पहचान लेता था। हरलाल को बुलाकर उसके साथ दो-चार बाते करके उन्होने मन-ही-मन सोचा, 'यह आदमी ठीक रहेगा।' प्रश्न किया, "काम जानते हो ?" हरलाल ने कहा, "नही।" "ज़मानत दे सकोगे ?" उसका उत्तर भी 'नही' मिला। "किसी बडे आदमी से सर्टीफिकेट ला सकते हो ?" वह किसी बड़े आदमी को नही जानता था।

सुनकर साहब ने जैसे और भी खुश होकर कहा, "अच्छा ठीक, पच्चीस रुपये वेतन पर काम आरम्भ करो, काम सीखने पर उन्नति होगी।" उसके बाद साहब ने उसकी वेश-भूषा की ओर देखते हुए कहा, "पंद्रह रुपया पेशगी देता हूँ, ऑफिस के उपयुक्त कपडे तैयार करा लेना !"

कपडे तैयार हुए, हरलाल ने ऑफिस जाना भी शुरू कर दिया। बड़े साहब उससे भूत के समान काम कराने लगे। और क्लर्कों के घर चले जाने पर भी हरलाल को छुट्टी नही मिलती थी। कभी-कभी साहब के घर जाकर भी उन्हे काम समझा आना पडता।

इस तरह काम सीख लेने मे हरलाल को देर नही लगी। उसके सहयोगी क्लर्कों ने उसे नीचा दिखाने की बहुत कोशिश की, उसके विरुद्ध ऊपर के लोगो से चुगली भी की, किन्तु इस मूक, निरीह, सामान्य हरलाल का कोई अपकार नही कर सका।

जब उसकी तनख्वाह चालीस रुपये हो गई, तब हरलाल घर से माँ को लाकर एक मामूली-सी गली मे छोटे घर मे रहने लगा। इतने दिनो बाद उसकी माँ का दुख दूर हुआ। माँ बोली, "बेटा, अब घर मे बहू लाऊँगी।"

हरलाल ने माता के पैरों की धूल लेकर कहा, "माँ, इसके लिए माफी देनी पड़ेगी।"

माता का एक और अनुरोध था। उन्होंने कहा, "तू जो दिन-रात अपने छात्र वेणुगोपाल की बात करता है, उसको एक बार भोजन के लिए निमन्त्रित कर। उसे देखने की मेरी इच्छा है।"

हरलाल ने कहा, "माँ, इस घर मे उसे कहाँ बैठाऊँगा? ठहरो, एक बड़ा घर तो लूँ, उसके बाद उसे निमन्त्रित करूँगा।"

: ७ .

वेतन-वृद्धि के साथ छोटी गली से बडी गली मे और छोटे घर से बडे मे हरलाल का निवास-परिवर्तित होता गया। तब भी वह पता नही मन मे क्या सोच-कर अधरलाल के घर जाने या वेणु को अपने घर बुला लाने का किसी प्रकार निश्चय नही कर पाया।

शायद उसका संकोच कभी भी न मिटता। तभी अचानक खबर मिली, कि वेणु की माँ जाती रही। सुनकर क्षण-भर भी देर न करके वह अधरलाल के घर जाकर पहुँचा।

इन दो असमवयसी मित्रो का बहुत दिन बाद फिर एक बार मिलन हुआ। वेणु के सूतक का समय बीत गया, तो भी इस घर मे हरलाल का आना-जाना चलता रहा। किंतु, ठीक पहले-जैसा अब कुछ नही रहा। वेणु अब बडा होकर अँगूठे और तर्जनी से अपनी नई मूँछो की रेखा को संभालने लगा था। चाल-चलन मे बाबूपन झलकने लगा था। अब उसके योग्य बन्धु-बान्धवो का भी अभाव नही था। फोनोग्राफ पर थिएटर की नर्तकियो के हल्के गाने बजाकर वह मित्रो का मनोरंजन करता। सोने के कमरे की वह पुरानी और टूटी चौकी और धब्बो वाली टेबिल जाने कहाँ गई। शीशे, तस्वीर, सामान से कमरा जैसे छाती फुलाए हुए हो। वेणु अब कॉलेज जाता, किन्तु उसमे द्वितीय वर्ष की सीमा पार करने की कोई जल्दी नही दिखती थी। बाप ने तय कर लिया था कि दो-एक परीक्षाएँ पास करवाकर विवाह की हाट मे लडके की बाजार-दर बढा लेगे। किंतु, लडके की माँ जानती थी और स्पष्ट रूप से कहती थी, "मेरे वेणु को साधारण लोगो के लडको के समान गौरव का प्रमाण देने के लिए परीक्षाएँ पास करने का हिसाब नही देना पडेगा। लोहे के सन्दूक मे कंपनी का कागज सुरक्षित बना रहे।" लडका भी माता की यह बात मन-ही-मन अच्छी तरह समझ गया था।

जो हो, वेणु के लिए अब वह नितान्त अनावश्यक था, यह हरलाल भली-भाँति समझ गया और केवल रह-रहकर उस दिन की बात याद आती जब वेणु ने सवेरे अचानक उसके उस मेस के निवास पर जाकर उसके गले से लिपटकर कहा

था, 'मास्टर साहब, हमारे घर चलो,' न वह वेणु था, न वह घर था, अब मास्टर साहब को कौन बुलायगा ?

हरलाल ने सोचा था, अब वह बीच-बीच मे वेणु को अपने घर आमंत्रित करेगा। किन्तु उसको बुलाने का साहस नही हुआ। एक बार सोचा, 'उसको आने के लिए कहूँ,' उसके बाद सोचा, 'कहने से लाभ क्या—वेणु शायद निमंत्रण की रक्षा करे, किन्तु, रहने दो !'

हरलाल की मां ने नही छोड़ा। वे बार-बार कहने लगी, वे अपने हाथों मे बनाकर उसे खिलायेंगी—'हाय ! बेचारे की मां मर गई !'

अन्त मे हरलाल एक दिन उसे निमंत्रित करने गया। बोला, "अधरबाबू से अनुमति लेकर आता हूँ।'

वेणु ने कहा, "अनुमति नही लेनी होगी, आप क्या सोचते है मैं अभी तक वही—छोटा बच्चा हूँ।"

हरलाल के घर वेणु भोजन करने आया। मां ने कार्तिकेय-जैसे इस लड़के को अपने स्निग्ध नेत्रो के आशीर्वाद से अभिषिक्त करके बड़े यत्न से खिलाया। उन्हे बार-बार लगने लगा, हाय ! इस उमर के ऐसे लड़के को छोड़कर इसकी मां जब मरी होगी तब पता नही उसके प्राणो को कैसा लगा होगा।"

भोजन समाप्त करते ही वेणु ने कहा, "मास्टर साहब, मुझे आज कुछ जल्दी जाना पड़ेगा, मेरे दो-एक मित्रो के आने की बात है।"

यह कहकर जेब से सोने की घड़ी निकालकर एक बार समय देखा; उसके बाद जल्दी से विदा लेकर बग्घी मे जाकर बैठ गया। हरलाल अपने घर के दरवाजे पर खड़ा रहा। गाड़ी सारी गली को कँपाती हुई क्षण-भर मे ही आँखो से ओझल हो गई।

माँ बोली, "हरलाल, उसको बीच-बीच मे बुला लाया कर ! इस उमर मे उसकी माँ मर गई है, यह सोचकर मेरा जी कैसा होने लगता है।"

हरलाल चुप रहा। इस मातृहीन लड़के को सान्त्वना देने की उसे कोई आवश्यकता नही प्रतीत हुई। लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन बोला, 'बस यही तक, अब फिर कभी नही बुलाऊँगा। एक दिन पाँच रुपए महीने की मास्टरी जरूर की थी—किन्तु, मैं तो साधारण हरलाल मात्र हूँ।'

: ८ :

एक दिन सध्या के बाद ऑफिस से लौटकर हरलाल ने देखा, उसके नीचे के कमरे मे अँधेरे मे कोई आदमी बैठा है। वहाँ कोई आदमी है इस पर ध्यान दिए

बिना ही वह शायद ऊपर चला जाता, किन्तु दरवाजे से घुसते ही लगा, वातावरण एसेन्स की सुगन्ध से भरा है। घर मे घुसते ही हरलाल ने प्रश्न किया, "कौन साहब है ?"

वेणु बोल पडा, "मास्टर साहब, मैं हूँ।"

हरलाल ने कहा, "क्या मामला है ? कब आए ?"

वेणु ने कहा, "बहुत देर का आया हूँ। आप ऑफिस से इतनी देर मे लौटते है यह तो मैं जानता ही न था।"

बहुत समय हुआ जब वह दावत खाकर गया था। उसके बाद से वेणु एक बार भी इस घर मे नही आया। न बात, न चीत, आज एकाएक इस प्रकार वह इस संध्या समय इस अँधेरे मे बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। इससे हरलाल का मन उद्विग्न हो उठा।

ऊपर के कमरे मे जाकर बत्ती जलाकर दोनों बैठ गए। हरलाल ने पूछा, "सब अच्छा तो है ? कोई विशेष खबर है ?"

वेणु ने कहा, "पढना, लिखना क्रमशः मेरे लिए बहुत नीरस होता जा रहा है। कहाँ तक मै सालो उसी सैकिण्ड इयर मे अटका पडा रहूँ ? मुझसे अवस्था मे बहुत छोटे अनेक लड़कों के साथ मुझको पढना पड़ता है, मुझे बडी शर्म लगती है। किन्तु पिताजी किसी भी तरह नही समझते।"

हरलाल ने पूछा, "तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

वेणु ने कहा, "उसकी इच्छा है कि वह विलायत जाए, बैरिस्टर हो आए। उसके साथ ही पढने वाले, यहाँ तक कि पढने-लिखने मे उससे बहुत कमजोर एक लड़के का विलायत जाना निश्चित हो गया है।"

हरलाल ने कहा, "अपने पिता को अपनी इच्छा बताई है ?"

वेणु ने कहा था कि बताई है। पिताजी कहते है, बिना पास हुए विलायत जाने का प्रस्ताव वे सुनना नही चाहते। किन्तु मेरा मन उचट गया है— यहाँ रहकर मैं किसी भी तरह पास नही हो सकूँगा।"

हरलाल चुपचाप बैठकर सोचने लगा।

वेणु ने कहा, "इस बात को लेकर आज पिताजी ने मुझसे जो मन मे आया कह डाला। इसी से घर छोड़कर चला आया हूँ। माँ के रहते ऐसा कभी नही हो सकता था।" कहते-कहते वह क्षोभ से रोने लगा।

हरलाल ने कहा, "चलो, हम तुम्हारे पिताजी के पास चले, परामर्श करके जो उचित होगा तय किया जायगा।"

वेणु ने कहा, "नही, मै वहाँ नही जाऊँगा।"

पिता पर गुस्सा होकर वेणु आकर हरलाल के घर रहेगा, यह बात हरलाल को बिलकुल अच्छी नही लगी। और 'मेरे घर नही रह सकोगे' यह कहना भी बहुत कठिन था।

हरलाल ने सोचा, 'और थोडी देर बाद मन कुछ ठण्डा होने पर फुसलाकर इसको घर ले जाऊँगा।' पूछा, "तुम खाना खा आए हो ?"

वेणु ने कहा, "नही, मुझे भूख नही है, आज मैं नही खाऊँगा।"

हरलाल ने कहा, "यह कैसे हो सकता है !" झटपट जाकर माँ से कहा, "माँ, वेणु आया है, उसके लिए कुछ खाना चाहिए।"

सुनते ही खूब खुश होकर माँ भोजन तैयार करने गई। हरलाल ऑफिस के कपडे उतारकर हाथ-मुँह धोकर वेणु के पास आकर बैठा। थोडा खाँसकर, कुछ इधर-उधर करके वेणु के कन्धे के ऊपर हाथ रखकर वह बोला, "वेणु, काम अच्छा नही हो रहा है। पिता के साथ झगड़ा करके घर से चले आना तुम्हारे लिए उचित नही है।"

सुनकर उसी क्षण चारपाई से उठकर वेणु ने कहा, "आपके यहाँ यदि सुविधा न हो तो मैं सतीश के घर चला जाऊँगा।"

यह कहते हुए वह जाने को तैयार हुआ। उसका हाथ पकडकर हरलाल ने कहा, "ठहरो, कुछ खाकर जाओ !"

वेणु गुस्सा होकर बोला, "नही, मैं नही खा सकूँगा।" कहते हुए हाथ छुडाकर कमरे से बाहर निकल आया।

इस बीच, हरलाल के लिए जो जल-पान तैयार था वही वेणु के लिए थाल मे सजाकर माँ उसके सामने आ उपस्थित हुई। बोली, "कहाँ जाते हो, बेटा !"

वेणु ने कहा, "मुझे काम है, मैं जा रहा हूँ।"

माँ बोली, "बेटा, ऐसा क्या हो सकता है ! बिना कुछ खाए नही जा सकते।" वह कहती हुई बरामदे मे ही खाने की व्यवस्था करके उसका हाथ पकड़कर खाने को बैठाया।

वेणु गुस्से के मारे कुछ खा नही रहा था, भोजन को लेकर कुछ टाल-मटूल कर रहा था कि इतने मे दरवाजे के पास आकर एक गाड़ी रुकी। पहले एक दरबान और उसके पीछे स्वयं अधरबाबू चर्च-मर्र करते हुए सीढ़ियाँ चढकर ऊपर आ उपस्थित हुए। वेणु का मुँह पीला पड़ गया।

माँ घर के भीतर चली गई। अधर लडके के सामने आकर क्रोध से काँपते हुए स्वर मे हरलाल की ओर देखकर बोले, "ओह, यह बात है ! रतिकान्त ने मुझसे तभी कहा था, किन्तु तुम्हारे पेट मे इतना कपट था यह मैंने विश्वास नही किया

था। तुमने सोचा है, वेणु को वश मे करके इसकी गर्दन मरोड़कर खाऊँगा। किन्तु ऐसा नही होने दूंगा। लडका चोरी करेगा! तुम्हारे नाम पुलिस-केस चलाऊँगा, तुम्हे जेल भेजकर छोडूँगा।"

यह कहकर वेणु की ओर देखते हुए बोले, "चल, उठ!" वेणु विना कुछ कहे अपने पिता के पीछे-पीछे चल दिया।

उस दिन वस हरलाल को ही भोजन नसीव नही हुआ।

: ६ :

इस वार हरलाल का व्यापारी, ऑफिस न जाने किस लिए ग्रामीण क्षेत्र से वहुत वडी मात्रा मे दाल-चावल की खरीद करने मे लगा था। इसके लिए हरलाल को प्रति सप्ताह शनिवार को सुवह की गाड़ी से सात-आठ हजार रुपया लेकर गाँवो मे जाना पडता। छोटे दुकानदारों को हाथो-हाथ दाम चुकाने के लिए ग्रामीण क्षेत्र के एक विशेप केन्द्र मे उनका जो एक ऑफिस था वही दस-दस, पाँच-पाँच रुपये के नोट और नकद रुपये लेकर वह जाता, वहाँ रसीद और खाता देखकर गत सप्ताह का वडा हिसाव मिलाकर, चालू सप्ताह का काम चलाने के लिए रुपये रख आता। ऑफिस के दो दरवान साथ जाते। हरलाल का जमानतदार नही है—यह वात ऑफिस मे उठी थी, किन्तु वडे साहव ने अपने ऊपर सारा भार लेकर कहा था—हरलाल के जमानतदार की आवश्यकता नही है।

माघ के महीने से इस प्रकार काम चल रहा था, चैत तक चलेगा, ऐसी सभावना थी। इस मामले को लेकर हरलाल विशेप रूप से व्यस्त था। प्रायः वह वहुत रात गए ऑफिस से लौट पाता।

एक दिन इसी तरह रात को लौटने पर सुना कि वेणु आया था। माँ ने खिलाकर यत्न से उसको बैठाया था। उस दिन उसके साथ वातचीत करके उनका मन उसकी ओर स्नेह से और भी आकर्षित हुआ।

और भी दो-एक दिन इसी प्रकार हुआ। माँ वोली, "घर मे माँ नही है न, इसीलिए वहाँ उसका मन नही लगता। मैं वेणु को तेरे छोटे भाई के समान, छोटे लडके के समान ही समझती हूँ। वैसा ही स्नेह पाकर केवल मुझे माँ कहकर पुकारने के लिए यहाँ आता है।" यह कहते हुए अचल के छोर से उन्होने आँखे पोछ ली।

एक दिन हरलाल की वेणु से भेंट हुई। उस दिन वह प्रतीक्षा मे वैठा था। काफी रात तक वातचीत हुई। वेणु ने कहा, "पिताजी आजकल ऐसे हो गए है कि मैं किसी भी प्रकार घर मे नही टिक सकता। खासकर मैं सुन रहा हूँ कि वे विवाह

करने की तैयारी कर रहे हैं। रतिबाबू सम्बन्ध लेकर आया करते हैं—बस उनके साथ लगातार परामर्श किया जा रहा है। पहले कहीं से यदि मैं देर से लौटता तो पिताजी बेचैन हो उठते थे, इस समय यदि मैं दो-चार दिन घर न लौटूं तो वे चैन का अनुभव करते हैं। मेरे घर रहने से विवाह की बातचीत सावधानी से करनी पड़ती है, इससे मेरे न रहने से वे सुख की सांस लेते हैं। यदि यह विवाह होता है तो मैं घर में नहीं रह सकूंगा। मुझे अब उद्धार का कोई रास्ता बतलाइए, मैं स्वतंत्र होना चाहता हूँ।"

स्नेह और वेदना से हरलाल का हृदय परिपूर्ण हो उठा। संकट के समय और सब को छोड़कर वेणु अपने उन मास्टर साहब के पास आया था, इस कारण दुःख के साथ-साथ उसे आनन्द भी हुआ। किन्तु, मास्टर साहब की बिसात ही क्या थी!

वेणु ने कहा, "जैसे भी हो, विलायत जाकर बैरिस्टर हो आने से इस विपद् से छुटकारा मिल जायगा।"

हरलाल बोला, 'क्या अधर बाबू जाने देंगे?"

वेणु ने कहा, "मेरे चले जाने से उनकी जान बच जायगी। किन्तु रुपए का उनको जैसा मोह है इससे विलायत जाने का खर्च उनसे आसानी से वसूल नही हो सकेगा। कुछ तरकीब करनी पड़ेगी।"

हरलाल ने वेणु की बुद्धिमानी पर हँसते हुए कहा, "कैसी तरकीब?"

वेणु ने कहा, "मैं हैण्डनोट लिखकर रुपया उधार लूंगा। उधार देने वाले के मेरे नाम नालिश करने पर पिताजी बाध्य होकर रुपया चुका देंगे। उस रुपये से भागकर विलायत चला जाऊँगा। वहाँ चले जाने पर खर्च दिये बिना उनसे रहा नही जायगा।"

हरलाल ने कहा, "तुम्हे रुपया उधार देगा कौन?"

वेणु ने कहा, "आप नही दे सकेंगे?"

हरलाल ने आश्चर्य से कहा, "मैं!" उसके मुंह से और कोई बात नहीं निकली।

वेणु ने कहा, "क्यो, आपका दरबान तो तोडों मे बहुत रुपया घर लाया है।"

हँसते हुए हरलाल ने कहा, "जैसे वह मेरा दरबान है, वैसे ही रुपया भी।"

यह कहते हुए उसने ऑफिस का रुपया किस काम के लिए था यह वेणु को समझा दिया, "यह रुपया केवल एक के लिए ही दरिद्र के घर मे आश्रय ग्रहण करता है, सवेरा होते ही दसो दिशाओ की ओर चला जाता है।"

वेणु ने कहा, "आपके साहब मुझे उधार नही दे सकेंगे? न हो तो मैं ज्यादा सूद दे दूंगा।"

हरलाल ने कहा, "तुम्हारे पिता यदि सिक्युरिटी दे तो मेरे अनुरोध करने पर शायद दे भी सकते है।"

वेणु ने कहा, "पिताजी यदि सिक्युरिटी ही देगे तो रुपया क्यों नही देगे ?"

तर्क यही समाप्त हो गया। हरलाल मन-ही-मन सोचने लगा, 'मेरे पास यदि कुछ होता, तो घर-वार, जमीन-जायदाद सव वेच-वाचकर रुपया दे देता।' किन्तु मुश्किल तो यही है कि घर-वार, जमीन-जायदाद कुछ भी नही है।

: १० :

एक दिन शुक्रवार की रात को हरलाल के घर के सामने एक वग्घी आकर रुकी। वेणु के वग्घी से उतरते ही हरलाल के दफ्तर का दरवान उसको लम्वा सलाम करके घवराया हुआ ऊपर वावू को समाचार देने चला गया। उस समय हरलाल अपने सोने के कमरे मे जमीन पर वैठा हुआ रुपया मिला रहा था। वेणु ने उसी कमरे मे प्रवेश किया। आज उसका विलकुल दूसरा ही ठाट-वाट था। शौकीनी धोती-चादर के वदले सुडौल देह मे पारसी कोट और पतलून पहने सिर पर टोप लगाकर आया था। उसके दोनो हाथो की अँगुलियो मे मोटी मणि-जडी अँगूठियाँ चमक रही थी। गले मे पडी हुई मोटी सोने की चैन मे वँधी घडी सीने के पॉकेट मे पडी थी। कोट की आस्तीन के भीतर से कुरते की आस्तीन मे लगे हीरे के वटन दिख रहे थे।

रुपया गिनना वंद करके आश्चर्य से हरलाल ने कहा, "क्या वात है! इतनी रात गए इस वेश मे क्यो ?"

वेणु ने कहा, "परसो पिताजी का विवाह है। उन्होने मुझसे यह छिपा रखा है, किन्तु मुझे खवर लग गई है। पिताजी से कहा कि मैं कुछ दिन के लिए अपने वैरकपुर के वाग मे जाऊँगा। यह सुनकर वहुत खुशी से वे राजी हो गए। अत· वाग मे जा रहा हूँ। इच्छा हो रही है कि फिर न लौटूँ। यदि साहस होता तो गंगा मे डूव मरता।"

कहते-कहते वेणु रो पडा। हरलाल की छाती मे जैसे छुरी चुभी। एक अपरिचित स्त्री के आकर वेणु की माँ के कमरे मे, माँ की खाट के स्थान पर अधिकार कर लेने पर, वेणु का स्नेह-स्मृति-जड़ित घर उसके लिए कैसा कण्टकमय हो जायगा, हरलाल ने सम्पूर्ण हृदय से इसकी अनुभूति की। मन-ही-मन सोचा, 'पृथ्वी पर गरीव होकर न जन्म लेने पर भी दु.ख और अपमान का अन्त नही है।' वेणु को क्या कहकर सान्त्वना दे, यह न समझ पाने के कारण उसने वेणु का हाथ अपने हाथ मे ले लिया। हाथ पकडते ही उसके मन मे एक विचार आया। उसने सोचा,

'विवाह के एक ऐसे अवसर पर वेणु में इतनी सजावट कैसे बन पड़ी ?'

हरलाल को अपनी अँगूठी पर आँख गड़ाए हुए देखकर वेणु ने जैसे उसके मन का भाव ताड़ लिया। वह बोला, "ये अँगूठियाँ मेरी माँ की हैं।"

सुनकर हरलाल बड़ी मुश्किल से आँसू रोक पाया। कुछ देर बाद बोला, "वेणु, खा आए हो ?"

वेणु ने कहा, "हाँ, आपका भोजन नहीं हुआ ?"

हरलाल ने कहा, "रुपया गिनकर आयरन-सेफ में रखे बिना कमरे से बाहर नहीं निकल सकता।"

वेणु ने कहा, "आप खा आइए, आपसे बहुत बातें करनी हैं। मैं कमरे में रहूँगा। माँ आपका खाना लिये बैठी है।"

हरलाल ने कुछ इधर-उधर करके कहा, "मैं झटपट खाकर आता हूँ।"

हरलाल ने झटपट खाना समाप्त करके माँ के साथ कमरे में प्रवेश किया। वेणु ने उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने वेणु की ठोड़ी छूकर चुम्बन लिया। हरलाल से सारा समाचार पाकर उनका हृदय जैसे फटा जा रहा था। अपना सारा स्नेह देकर भी वे वेणु के अभाव को पूरा नहीं कर सकतीं, इसका बड़ा दुःख था।

चारों ओर बिखरे रुपयों के बीच बैठे हुए तीनों में वेणु के बचपन की बातें होने लगीं। मास्टर साहब के साथ जुड़ी हुई उसी कितने दिनों की कितनी घटनाएँ थीं। उसके बीच-बीच में उस असीम स्नेह-शालिनी माँ की बात भी होने लगती।

इस तरह बहुत रात बीत गई। सहसा एक बार घड़ी देखकर वेणु ने कहा, "अब बस ! देरी करने पर गाड़ी निकल जाएगी।"

हरलाल की माँ ने कहा, "बेटा, आज रात यहीं रहो न ! कल प्रातःकाल हरलाल के साथ एक संग ही निकलना !"

वेणु ने अनुरोधपूर्वक कहा, "नहीं माँ, ऐसा अनुरोध न करें। आज रात जैसे भी हो मुझे जाना ही होगा।"

हरलाल ने कहा, "मास्टर साहब, ये अँगूठी, घड़ी आदि साथ में ले जाना सुरक्षित नहीं है। आपके पास ही रखे जाता हूँ, और लौटकर ले जाऊँगा। अपने दरवान से कह दीजिए, मेरी गाड़ी से चमड़े का हैण्डबैग ला दे। उसीमें ये चीजें रख दूँ।"

ऑफिस का दरवान गाड़ी से बैग ले आया। वेणु ने अपनी चेन, घड़ी, अँगूठी, बटन सब निकालकर बैग में भर दिए। सावधान हरलाल ने उस बैग को लेकर उसी समय लोहे की तिजोरी में रख दिया।

वेणु ने हरलाल की माँ के पैरों की धूल ली। उन्होने रुद्ध कण्ठ से आशीर्वाद दिया, "माँ जगदम्वा माँ वनकर तेरी रक्षा करे!"

उसके पश्चात् वेणु ने हरलाल का चरण-स्पर्श करके प्रणाम किया। और किसी दिन उसने हरलाल को इस प्रकार प्रणाम नही किया था। हरलाल विना कुछ कहे उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए उसके साथ-साथ नीचे उतर आया। गाड़ी की लालटेन की वत्ती जल उठी। दोनो घोड़े अधीर हो उठे। कलकत्ता के गैस की वत्तियो के प्रकाश से आलोकित अर्ध-रात्रि मे वेणु को लिये हुए गाडी अदृश्य हो गई।

हरलाल अपने कमरे मे आकर वहुत देर तक चुपचाप वैठा रहा। उसके वाद एक लम्वी साँस लेकर रुपया गिन-गिनकर विभाजित करके अलग-अलग थैलियों मे भरने लगा। पहले ही नोटो की गिनती करके थैली मे वन्द कर लोहे के सन्दूक मे रख दिया था।

: ११ :

लोहे के सन्दूक की चावी तकिये के नीचे रखकर उस रुपये वाले कमरे मे ही हरलाल वहुत रात गए सोने गया। अच्छी नीद नही आई। स्वप्न मे देखा—वेणु की माँ पर्दे की ओट से ऊँचे स्वर मे उसे फटकार रही थी, वात विलकुल भी स्पष्ट सुनाई नही दे रही थी, केवल उस अनिर्दिष्ट कण्ठ स्वर के साथ-साथ वेणु की माँ के मणि-पन्ना-हीरे के अलंकारो से लाल, हरी, सफेद प्रखर किरणे काले परदे को भेदकर वाहर आकर आलोडित हो रही थी। हरलाल प्राणपण से वेणु को पुकारने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु उसके गले से किसी भी प्रकार आवाज नही निकल रही थी। इसी वीच प्रचण्ड शव्द करता हुआ कुछ टूट कर परदे को फाडकर गिरा—चौककर आँखे मलकर हरलाल ने देखा, सघन अंधकार था। हठात् हवा का एक झोका आया और एक आवाज के साथ जगले को ठेलकर वत्ती को वुझा दिया। हरलाल का सारा शरीर पसीने से भीग गया। झटपट उठकर दियासलाई से उसने वत्ती जलाई। घडी मे देखा, चार वजे थे। सोने का अव समय नही था—रुपया लेकर मुफस्सिल जाने के लिए तैयार होना होगा।

हरलाल के मुँह धोकर लौटते समय माँ ने अपने कमरे से कहा, "क्या वेटा उठ गया है?"

हरलाल ने प्रभात-काल मे सवसे पहले माता का मगलमुख देखने के लिए कमरे मे प्रवेश किया। माँ ने उसका प्रणाम लेकर लेकर मन-ही-मन उसे आशीर्वाद देते

हुए कहा, "बेटा, मैंने अभी स्वप्न देखा था, तू बहू लेने जा रहा है। भोर का स्वप्न क्या मिथ्या होगा ?"

हँसते हुए हरलाल ने कमरे मे प्रवेश किया। रुपये और नोटो की थैलियो को लोहे के संदूक से वाहर निकालकर पैक वॉक्स मे वन्द करने का आयोजन कर रहा था। सहसा उसकी छाती धडकी, नोटो की दो-तीन थैली खाली थी। लगा, जैसे स्वप्न देख रहा हो। थैलियो को सन्दूक पर जोर से पछाडा—उससे खाली थैलियो का खालीपन अप्रमाणित नही हुआ। तो भी व्यर्थ की आशा मे थैलियो के वन्धनो को खोलकर अच्छी तरह से झाड़ा, एक थैली मे से दो चिट्ठियाँ निकलीं। वेणु के हाथ की लिखावट थी—एक चिट्ठी उसके पिता के नाम थी, और एक हरलाल के नाम।

जल्दी से खोलकर पढ़ने लगा। जैसे आँखो से दीख न रहा हो। लगा जैसे प्रकाश यथेष्ट न हो। वार-वार वत्ती उकसाने लगा। जो पढता था उसे अच्छी तरह नही समझ रहा था, जैसे वँगला भाषा भूल गया हो।

वात यह थी, वेणु तीन हज़ार रुपये के दस रुपये वाले नोट लेकर विलायत यात्रा के लिए चल पड़ा। आज सुवह ही जहाज छूटने की वात थी। हरलाल जव खाने गया था उसी समय वेणु ने यह काण्ड किया था। लिखा था "पिता को चिट्ठी लिखी है, वे मेरा यह ऋण शोध कर देंगे। उसके अतिरिक्त वैग खोलकर देखेंगे, उसमे माँ का जो गहना है, उसका कितना मूल्य है ठीक नही जानता, शायद तीन हजार रुपये से अधिक होगा। माँ यदि जीवित रहती तो मुझे विलायत जाने के लिए पिता के रुपया न देने पर भी वे इन गहनों को देकर अवश्य मेरे लिए खर्चे की व्यवस्था कर देती। मेरी माँ का गहना पिता और किसी को दे, यह मैं सहन नहीं कर सका। इसीलिए जैसे भी हो सका मैंने उसे ले लिया है। पिता यदि रुपया देने मे देरी करे तो आप स्वयं इन गहनो को वेचकर या गिरवी रखकर रुपया ले सकेंगे। यह मेरी माँ की चीज है—यह मेरी ही चीज है।" उसको छोड और भी अनेक वातें थी—वे कोई काम की वातें नही थी।

कमरे मे ताला लगा झट एक गाड़ी लेकर हरलाल गगा के घाट की ओर दौड़ा। किस जहाज से वेणु रवाना हुआ है उसका नाम भी वह नही जानता था। मेटियावुर्ज तक पहुँचने पर हरलाल को खवर मिली कि दो जहाज़ सवेरे रवाना हो गए है। दोनो ही इग्लैड जायँगे। किस जहाज मे वेणु है यह उसके अनुमान के वाहर की वात थी और उस जहाज को पकड़ने का क्या उपाय था, यह भी वह नही सोच सका।

मेटियावुर्ज से उसके घर की ओर जव गाड़ी लौटी तव सवेरे की धूप मे

कलकत्ता शहर जाग उठा था। हरलाल की आँखों को कुछ नहीं सूझ रहा था। उसका किंकर्त्तव्यविमूढ अन्तःकरण एक कलेवरहीन भयंकर प्रतिकूलता को जैसे बराबर प्राणपण से ठेल रहा हो—किन्तु उसे कही एक तिल-भर भी हिला न पा रहा हो। जिस घर मे उसकी माँ रहती थी, अब तक जिस घर मे पैर रखते ही कर्म-क्षेत्र की सारी क्लान्ति और संघर्ष की वेदना क्षण-भर मे ही उससे दूर हो जाती थी, उसी घर के सामने आकर गाड़ी रुकी—गाड़ीवान को किराया चुका-कर उसी घर मे अपरिचित नैराश्य और भय के साथ उसने प्रवेश किया।

उद्विग्नता के साथ माँ बरामदे मे खड़ी थी। पूछा, "बेटा, कहाँ गए थे ?"

हरलाल ने कहा, "माँ, तुम्हारे लिए बहू लेने गया था।" यह कह कर वह सूखे गले से हँसते-हँसते वही मूर्छित होकर गिर पडा।

"भैया, यह क्या हो गया !"—कहती हुई माँ झटपट पानी लाकर उसके मुँह पर छींटे मारने लगी।

कुछ देर बाद हरलाल आँखे खोल, शून्य दृष्टि से चारो ओर देखकर, उठ बैठा। हरलाल ने कहा, "माँ, तुम घबराना मत। मुझे थोडा अकेले मे रहने दो।" यह कह कर उसने झटपट कमरे मे घुसकर भीतर ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। माँ दरवाज़े के बाहर धरती पर बैठ गईं—फाल्गुन की धूप उनकी सारी देह पर आकर पड़ रही थी। वे बन्द दरवाज़े के ऊपर सिर रखकर, रह-रहकर बार-बार पुकारने लगी, "हरलाल, बेटा हरलाल।"

हरलाल ने कहा, "माँ, थोड़ी ही देर मे मैं बाहर निकलूँगा, अभी तुम जाओ।"

माँ धूप मे वही बैठकर जप करने लगी।

ऑफिस के दरबान ने आकर दरवाज़े पर धक्का देकर कहा, "बाबू, इस समय न निकले तो फिर गाडी नही मिल सकेगी।"

हरलाल ने भीतर से कहा, "आज सात बजे की गाड़ी से जाना नही हो सकेगा।"

दरबान ने कहा, "तब कब चलेगे ?"

हरलाल ने कहा, "यह मैं तुम्हे पीछे बताऊँगा।"

दरबान सिर हिलाकर हाथ मटकाते हुए नीचे चला गया।

हरलाल सोचने लगा, 'यह बात कहूँ किससे ? यह चोरी है। वेणु को कौन जेल भेजेगा ?'

अचानक उसे गहने की बात याद आई। यह बात एकदम भूल गया था। लगा जैसे किनारा मिल गया हो। बैग खोलकर देखा, उसमे केवल अँगूठी, घड़ी, बटन,

हार ही नही—ब्रेसलेट, चिक, सीमन्त, मोतियों की माला आदि और भी वहुत-से कीमती गहने थे। उनका मूल्य तीन हजार रुपये से कही ज्यादा था। किन्तु यह भी तो चोरी थी। यह भी तो वेणु का नही था। यह वैग जितनी देर उसके घर मे रहेगा उतनी देर उसके लिए विपत्ति थी।

तव और देर न करके अधरलाल के लिए वह चिट्ठी और वैग लेकर हरलाल कमरे से वाहर निकला।

माँ ने पूछा, "वेटा, कहाँ जा रहे हो ?"

हरलाल ने कहा, "अधरवावू के घर।"

माँ की छाती से हठात् अज्ञात भय का एक वडा वोझ उतर गया। उन्होंने सोचा; हरलाल ने कल जव से वेणु के पिता के विवाह की वात सुनी है, तव से वेचारे के मन मे शान्ति नही है। अहा ! वेणु को कितना चाहता है !

माँ ने पूछा, "तो आज फिर तुम्हारा देहात जाना नही होगा ?"

हरलाल ने कहा, "नही।" और वह तुरत वाहर निकल गया।

अधरलाल के घर पहुँचने के पहले ही दूर से सुनाई दिया कि शहनाई ने अल्हैया विलावल रागिनी के करुण स्वर में आलाप छेड़ दी है, किन्तु हरलाल ने भीतर घुसते ही देखा, विवाह के घर मे उत्सव के साथ जैसे अशान्ति के चिह्न मिले हुए हो। दरवानो का कडा पहरा था, घर से नौकर-चाकर कोई वाहर नही निकल सकता था—सभी के चेहरो पर भय और चिन्ता के भाव थे। हरलाल को खवर मिली, कल रात घर से वहुत मूल्यवान गहनो की चोरी हो गई। दो-तीन नौकरो पर विशेष रूप से सन्देह होने के कारण पुलिस को सौप देने का प्रयत्न हो रहा था।

दोतल्ले पर वरामदे में जाकर हरलाल ने देखा, अधरवावू आग-वबूला हुए वैठे थे और रतिकान्त तम्वाकू पी रहा था। हरलाल ने कहा, "आपसे अकेले मे मुझे कुछ वात करनी है।"

अधरवावू ने चिढकर कहा, "तुम्हारे साथ अकेले मे वात करने का इस समय मेरे पास समय नही है—जो वात हो यही कह डालो !"

उन्होने सोचा, 'हरलाल शायद इस समय उनके पास सहायता या उधार लेने आया है।'

रतिकान्त ने कहा, "मेरे सामने वावू को वताने मे यदि संकोच करे, न हो तो मैं उठ जाऊँ।"

अधर ने खीझकर कहा, "उँह, वैठो न।"

हरलाल ने कहा, "कल रात को वेणु मेरे घर यह वैग रख गया है।"

अधर—"वैग मे क्या है ?"

हरलाल ने वैग खोलकर अधरवावू के हाथ मे दे दिया।

अधर—"मास्टर-छात्र ने मिलकर अच्छा कार-वार खोला है ! यह जानते हो कि यह चोरी का माल वेचने से पकड़े जाओगे इसीसे ले आए हो···सोचते होगे, ईमानदारी के लिए वख्शीश पाओगे ?"

तव हरलाल ने अधर के नाम का पत्र उनके हाथ मे दे दिया। पढ़कर वे आग-ववूला हो उठे। वोले, "मे पुलिस को खवर दूँगा, मेरा लड़का अभी वालिग नही हुआ है—तुमने चोरी से उसको विलायत भेजा है। शायद पाँच सौ रुपया उधार देकर तीन हजार रुपया लिखवा लिया है। ऋण-शोध मैं नही करूँगा।"

हरलाल ने कहा, "मैंने उधार नही दिया।"

अधर वोले, "तो उसे रुपया मिला कहाँ से ? तुम्हारा वक्स तोडकर चोरी की है ?"

हरलाल ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया। रतिकान्त चवा-चवाकर वोला, "इनसे पूछिए ना, तीन हज़ार रुपया तो क्या, इन्होने क्या कभी पाँच सौ रुपया भी आँखो से देखा है !"

जो हो, गहनो की चोरी की तलाशी होने के वाद वेणु के विलायत भागने को लेकर घर मे एक हलचल मच गई। हरलाल सारे अपराध का भार अपने सिर पर लेकर घर से वाहर आया।

जव वह वाहर सडक पर आया तो उसका मन जैसे जड हो गया हो। उस समय उसमे भयभीत होने और सोचने की भी शक्ति नही रह गई थी। इस काण्ड का परिणाम क्या हो सकता था, मन मे यह विचार भी नही लाना चाहता था।

गली मे घुसते ही देखा, उसके घर के सामने एक गाडी खड़ी थी। चौक पडा। एकाएक आशा जगी, वेणु लौट आया है। अवश्य ही वेणु है। उसका संकट संपूर्ण—निरुपाय रूप से चूडान्त हो उठेगा यह वात वह किसी भी प्रकार विश्वास नही कर सका।

जल्दी से गाडी के पास आकर देखा, गाडी के भीतर उसके ऑफिस के एक साहव वैठे थे। साहव ने हरलाल को देखते ही गाडी से उतरकर हाथ पकड़े हुए घर मे प्रवेश किया। पूछा, "आज देहात क्यो नही गए ?"

ऑफिस के दरवान ने सन्देहवश वड़े साहव को खवर कर दी थी—इन्होने इनको भेजा था।

हरलाल वोला, "तीन हजार रुपये के नोट नही मिल रहे हैं।"

साहव ने पूछा, "कहाँ गए ?"

हरलाल 'नही जानता' यह उत्तर भी नही दे सका, चुप रह गया।

साहब ने कहा, "रुपया कहाँ है, रुपया कहाँ है, चलो देखूं।"

हरलाल उसको ऊपर के कमरे मे ले गया। साहब ने सब गिनकर चारो ओर ढूँढ, खोजकर देखा। घर के सभी कमरो की छान-बीन करने लगे। यह सारा हाल देखकर माँ से और नही रहा गया—उन्होने साहब के सामने ही बाहर निकलकर व्याकुल होकर पूछा, "अरे हरलाल, क्या हुआ रे!"

हरलाल ने कहा, "माँ, रुपया चोरी चला गया है।"

माँ ने कहा, "चोरी कैसे जा सकता है, हरलाल, यह सर्वनाश किसने किया!"

हरलाल ने कहा, "माँ, चुप रहो!"

तलाशी समाप्त करके साहब ने पूछा, "इस कमरे मे रात को कौन था?"

हरलाल ने कहा, "दरवाजा बन्द करके मैं अकेला सोया था—और कोई नही था।"

साहब ने रुपया गाडी मे रखकर हरलाल से कहा, "अच्छा, बड़े साहब के पास चलो!"

हरलाल और साहब को साथ जाते देख माँ ने उनका रास्ता रोककर कहा, "साहब, मेरे लडके को कहाँ ले जाओगे। भूखे रहकर इसको पाला है—मेरा लडका कभी भी दूसरे के रुपयों को हाथ नही लगायगा।"

बँगला की बात बिलकुल भी न समझते हुए साहब ने कहा, "अच्छा, अच्छा।"

हरलाल ने कहा, "माँ, तुम क्यो घबरा रही हो? बड़े साहब से मिलकर मैं अभी आता हूँ।"

चिंतित होकर माँ ने कहा, "तूने सवेरे से कुछ नही खाया है।"

इस बात का कुछ भी उत्तर दिये बिना हरलाल गाडी मे बैठकर चला गया। माँ जमीन पर लोटी पडी रही।

बडे साहब ने हरलाल से कहा, "सच कहो, बात क्या है?"

हरलाल ने कहा, "मैंने रुपया नही लिया है।"

बडा साहब—"इस बात का मैं पूरा विश्वास करता हूँ। किन्तु तुम यह, अवश्य जानते हो किसने लिया?"

कोई उत्तर न देकर हरलाल मुँह नीचा किये बैठा रहा।

साहब— "तुम्हारे जानते यह रुपया किसी ने लिया है?"

हरलाल ने कहा, "मेरे प्राणो के रहते मेरे जानते कोई यह रुपया नही ले सकता था।"

बडे साहब ने कहा, "देखो हरलाल, मैंने तुम पर विश्वास करके विना कोई ज़मानत लिये यह उत्तरदायित्वपूर्ण काम दिया था। ऑफिस के सब लोग विरोध मे थे। तीन हज़ार रुपया कुछ भी ज्यादा नही है। किन्तु तुम मेरी बडी वदनामी करोओगे। आज पूरे दिन का समय तुमको देता हूँ—जैसे भी हो रुपया इकट्ठा करके लाओ—तव इसे लेकर कोई चर्चा नही करूँगा, तुम जैसे काम कर रहे हो वैसे ही करते रहोगे।"

यह कहकर साहब उठ गए। उस समय ग्यारह वज गए थे। हरलाल जब सिर नीचा किये वाहर चला गया तव ऑफिस के वावू लोग वहुत खुश होकर हरलाल के पतन की आलोचना करने लगे।

हरलाल को एक दिन का समय मिला। नैराश्य के अन्तिम तल के पंक को आलोड़ित करने के लिए मियाद मे और भी एक लम्वा दिन वढ़ गया।

उपाय क्या है? उपाय क्या है? उपाय क्या है?—यही सोचते-सोचते उस धूप मे हरलाल सड़क पर चक्कर काटने लगा। उपाय है या नही, अन्त में यह चिंता समाप्त हो गई, किन्तु विना कारण सडक पर चक्कर काटना वंद नही हुआ। जो कलकत्ता हजारो लोगो का आश्रय स्थान है वही क्षण-भर मे हरलाल के लिए एक विशाल चूहेदानी के समान हो उठा। उसमे किसी ओर से वाहर जाने का कोई रास्ता नही था। सम्पूर्ण जन-समाज इस अति क्षुद्र हरलाल को चारो ओर से रोके हुए खड़ा था। कोई उसे जानता भी नही, और उसके प्रति किसी के मन मे कोई विद्वेष भी नही, किन्तु हर एक व्यक्ति उसका शत्रु था। किन्तु सडक के लोग, उसकी देह से सटकर उसके पास से चले जा रहे थे; ऑफिस के वावू लोग वाहर आकर दौने मे जल-पान कर रहे थे, उसकी ओर कोई नही देखता था; मैदान के किनारे थके हुए पथिक सिर के नीचे हाथ रखकर, पैर के ऊपर पैर रखकर पेड़ के नीचे पड़े थे; घोडागाड़ी मे वैठकर हिन्दुस्तानी (अवंगाली) लड़कियाँ काली-घाट जा रही थी। एक चपरासी ने एक चिट्ठी हरलाल के सामने करके कहा, "वावू, पता पढ दो"—जैसे उसमे तथा अन्य पथिकों मे कोई भेद न हो, उसने भी ठिकाना पढकर उसे समझा दिया। क्रमश ऑफिस वन्द होने का समय हो गया। ऑफिस के भवनो से वाहर निकलकर विभिन्न सडको पर से होकर गाड़ियाँ घरो की ओर दौड़ पड़ी। ऑफिस के वावू लोग ट्राम मे वैठकर थिएटर के विज्ञापनो को पढते हुए घर को लौट चले। आज हरलाल का ऑफिस नही था; ऑफिस की छुट्टी भी नही थी, घर लौटने के लिए ट्राम पकड़ने की कोई जल्दी नही थी।

शहर के समस्त क्रिया-कलाप, घर-बार, गाडी-घोडा, आना-जाना हरलाल के लिए कभी अत्यन्त भयानक सत्य के समान दाँत निकालकर खडे हो जाते, कभी एकदम वस्तुहीन स्वप्न के समान छाया बन जाते। आहार नही, विश्राम नही, आश्रय नही, किस प्रकार हरलाल का दिन वीत गया, यह वह भी न जान सका—रास्तो पर गैस का प्रकाश हो गया—मानो एक सावधान अंधकार चारो ओर से अपने हजारो क्रूर नेत्र खोले हुए शिकार-लुब्ध दानव के समान चुप बैठा हो। रात कितनी बीत गई थी, इस बात की हरलाल ने चिन्ता भी नही की। उसके सिर की धमनियाँ धप-धप कर रही थी; माथा जैसे फटा जा रहा हो, सारे शरीर मे आग जल रही हो; पैर अब नही उठते। सारे दिन एक-एक करके दु ख के आवेग और अवसाद की जडता से केवल माँ की बात मन मे आती रही थी—कलकत्ता की असख्य जनसख्या मे से केवल मात्र वही एक नाम सूखे गले को भेदकर मुँह मे आता रहा है— माँ, माँ, माँ। और कोई पुकारने के लिए नही था। सोचा, रात जब सघन हो जायेगी, कोई भी आदमी जब इस तुच्छ निरपराध हरलाल का अपमान करने के लिए जागता नही रहेगा, तब वह चुपके से अपनी माँ की गोद मे जाकर सो जाएगा—उसके वाद मानो फिर नीद न टूटे! इस आशंका से, कि कही उसकी माँ के सामने पुलिस के आदमी या और कोई उसका अपमान करने आवे वह घर नही जा पा रहा था। देह का कोई भार जब वह और नही सभाल पा रहा था तब किराए की गाडी को देखकर हरलाल ने उसे बुलाया। गाडीवान ने पूछा, "कहाँ जाना है ?"

हरलाल ने कहा, "कही नही। इसी मैदान के रास्ते पर कुछ देर हवा खाता हुआ घूमूँगा।"

शकित गाड़ीवान को चले जाने को तैयार देखकर हरलाल ने उसके हाथ मे एक रुपया पेशगी भाड़ा दे दिया। तब वह गाड़ी हरलाल को लेकर मैदान के रास्ते पर चक्कर काटती हुई घूमने लगी।

तब थके हरलाल ने अपने गर्म सिर को खुले जगले के ऊपर रखकर आँखे मूँद ली। धीरे-धीरे उसकी सारी वेदना जैसे दूर होने लगी। शरीर शीतल हो गया। मन मे एक गम्भीर, निविड़ आनन्दपूर्ण शान्ति सघन होने लगी। मानो किसी परम परित्राण ने उसका चारो ओर से आलिगन कर लिया। उसने सारे दिन सोचा था, कि उसके लिए कही कोई रास्ता नही, सहारा नही, निष्कृति नही, उसके अपमान का अन्त नही, दु ख की सीमा नही, वह बात मानो एक क्षण मे मिथ्या हो गई हो। अब लगा, वह तो केवल भय था, वह तो सत्य नही था। जिसने उसके जीवन को लोहे की मुट्ठी मे दबाकर पीस डाला था, हरलाल ने उसे बिलकुल

भी स्वीकार नही किया—मुक्ति ने अनन्त आकाश को भर दिया है, शान्ति की कही कोई सीमा नही । इस तुच्छ हरलाल को वेदना मे, अपमान मे, अन्याय मे, वन्दी वनाकर रख सके ऐसी शक्ति विश्व-व्रह्माण्ड के किसी राजा-महाराजा मे भी नही थी । जिस आतक मे उसने अपने-आपको वाँध रखा था वह सव खुल गया । तव हरलाल अपने वन्धन-मुक्त हृदय के चारो ओर अनन्त आकाश मे अनुभव करने लगा, मानो उसकी वह दरिद्र माँ देखते-देखते घर-घर मे विराट् रूप धारण करके सम्पूर्ण अन्धकार को घेरती जा रही हो। वे कही समा नही रही थी। कलकत्ता के रास्ते, घाट, घर-वार, दुकान-वाजार क्रमश उस स्वरूप मे समाकर विलीन होते जा रहे थे—वायु भर गई, आकाश भर उठा, एक-एक करके नक्षत्र उसमे विलीन हो गए—हरलाल के शरीर-मन की सारी वेदना, सारी चिन्ता, सारी चेतना उसमे थोडा-थोडा करके विलीन हो गई, चली गई, गर्म भाप का वुद्-वुद् एकदम फूट गया—अव तो अन्धकार भी नही, प्रकाश भी नही, केवल एक प्रगाढ़ परिपूर्णता रह गई ।

गिरजे की घडी मे एक वजा । गाडीवान ने अँधेरे मैदान मे गाड़ी लेकर चक्कर काटते-काटते अन्त मे खीझकर कहा, "वावू घोडा अव और नही चल सकता—वोलो कहाँ जाना है ?"

कोई उत्तर नही मिला । कोचवान ने उतरकर हरलाल को हिलाकर फिर पूछा । कोई उत्तर नही । तव डरकर गाडीवान ने परीक्षा करके देखा, हरलाल का शरीर अकडा हुआ था, उसकी साँस नही चल रही थी ।

'कहाँ जाना होगा' इस प्रश्न का हरलाल से और कोई उत्तर नही मिल सका ।

गुप्त धन

: १ :

अमावस्या की आधी रात थी। मृत्युजय तान्त्रिक मतानुसार अपनी प्राचीन देवी जयकाली की पूजा करने बैठा। पूजा समाप्त करके जब उठा तो निकटस्थ आम के बगीचे से प्रात:काल का पहला कौआ बोला।

मृत्युजय ने पीछे घूमकर देखा, मन्दिर का द्वार वन्द था। तव उसने देवी के चरणों मे एक बार माथा टेककर उनका आसन सरकाया। आसन के नीचे से कटहल के काठ का एक वक्स बाहर निकला। जनेऊ मे चाबी बँधी थी। वही चाबी लगाकर मृत्युजय ने वक्स खोला। खोलते ही चौककर हाथ से माथा ठोका।

मृत्युजय का अन्दर का वगीचा प्राचीर से घिरा हुआ था। उसी बाग के एक भाग मे बडे-बडे पेडो की छाया के अन्धकार मे यह छोटा-सा मन्दिर था। मन्दिर मे जयकाली की मूर्ति को छोडकर और कुछ न था। उसमे केवल एक प्रवेश-द्वार था। मृत्युजय ने वक्स उठाकर बहुत देर तक हिला-डुलाकर देखा। मृत्युजय के वक्स खोलने के पहले वह बन्द ही था—किसी ने उसको तोडा नही था। मृत्युजय ने कई बार प्रतिमा के चारो ओर चक्कर लगाकर-टटोलकर देखा—कुछ भी नही नही मिला। उन्मत्त होकर मन्दिर का दरवाज़ा खोल दिया—उस समय प्रभात की किरणे फूट रही थी। मन्दिर के चारो ओर मृत्युजय घूम-घूमकर व्यर्थ की आशा मे खोजते हुए चक्कर लगाने लगा।

प्रभातकालीन आलोक जब प्रस्फुटित हो उठा तब वह वाहर के चण्डी-मण्डप मे आकर सिर पर हाथ रखे बैठकर सोचने लगा। सारी रात जागने के वाद श्रान्त-देह की थोडी-सी झपकी आ गई, इसी समय हठात् चौक पडा। सुना, 'जय हो वावा।"

प्रागण मे सामने एक जटाजूटधारी संन्यासी खड़े थे। मृत्युजय ने भक्ति-भाव से उनको प्रणाम किया। सन्यासी ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा, "बेटा, तुम मन मे व्यर्थ शोक कर रहे हो।"

सुनकर मृत्युंजय को आश्चर्य हुआ। कहा, "आप अन्तर्यामी है, नही तो मेरा शोक किस प्रकार जाना! मैंने तो किसी से भी कुछ नही कहा।"

संन्यासी वोले, "वत्स, मैं कहता हूँ, तुम्हारा जो कुछ खो गया है उसके लिए तुम आनन्द मनाओ, शोक मत करो!"

मृत्युजय ने उनके दोनो पैर पकडकर कहा, "तव तो आप सभी-कुछ जान गए है—किस तरह खो गया है, कहाँ जाकर फिर मिलेगा, वह जव तक न वतायँगे मैं आपके चरण नही छोडूँगा।"

सन्यासी ने कहा, "मैं यदि तुम्हारी अमगल कामना करता तो वताता। किंतु भगवती ने कृपा करके जो हर लिया है उसके लिए शोक न करना!"

सन्यासी को प्रसन्न करने के लिए मृत्युजय ने सारे दिन विविध प्रकार से उनकी सेवा की। दूसरे दिन प्रात अपनी गोशाला से लोटा-भर फेनयुक्त दूध दुहकर लाने पर देखा, संन्यासी नही थे।

: २ :

मृत्युंजय जव वच्चा था, जव उसके पितामह हरिहर एक दिन इसी चडी-मडप मे वैठकर तम्वाकू पी रहे थे, तव इसी तरह एक संन्यासी 'जय हो वावा' वोलते हुए इसी आँगन मे आ खडे हुए थे। हरिहर ने उस संन्यासी को कई दिन घर मे रखकर विधिपूर्वक सेवा द्वारा सन्तुष्ट किया था।

विदा के समय संन्यासी ने जव यह प्रश्न किया, "वत्स, तुम क्या चाहते हो।" हरिहर ने कहा, "वावा, यदि सन्तुष्ट हुए हो तो एक वार मेरी हालत सुनें। एक समय इस गाँव मे हम सवसे समृद्ध थे। मेरे पितामह ने दूर के एक कुलीन को वुलवाकर उससे अपनी एक कन्या का विवाह कर दिया था। उनके वह दौहित्र-वशज ही हमको धोका देकर आजकल इस गाँव मे वड़े आदमी वन वैठे हे। इस समय हमारी अवस्था अच्छी नही है, इसी कारण इनका अहकार सहन करते रहते है। किन्तु अव और नही सहा जाता। कैसे हमारा कुल फिर से वडा हो जाय, यही उपाय वता दे, यही आशीर्वाद दे।"

सन्यासी ने थोडा हँसकर कहा, "वेटा, छोटे होकर सुख से रहो, वड़े होने के प्रयत्न मे मुझे भलाई नही दिखती।"

किन्तु हरिहर ने फिर भी नही छोडा, वंश को वडा करने के लिए वह सव-कुछ स्वीकार करने के लिए राजी था।

तव संन्यासी ने अपनी झोली से कपडे मे लिपटा रुई से वने कागज़ पर लिखा एक लेख निकाला। कागज लम्वा था, जन्म-पत्र के समान लिपटा था। संन्यासी

ने उसको जमीन पर फैला दिया। हरिहर ने देखा, उसमे बने नाना प्रकार के चक्रों मे अनेक प्रकार के साकेतिक चिह्न अंकित थे, और सबके नीचे एक लम्बी तुकबंदी लिखी हुई थी जिसका आरम्भ इस प्रकार था .

पाये धरे साधा।
रा नाहि देय राधा ॥
शेषे[1] दिल[2] रा।
पागोल छाड़ो पा ॥
तेंतूल बटेर कोले[3],
दक्षिण याओ चले,
दक्षिण याओ[4] चले ॥
ईशानकोणे ईशानी
कहे दिलाम[5] निशानी ॥ इत्यादि

हरिहर ने कहा, "बाबा, कुछ भी तो नही समझा।"

संन्यासी बोले, "पास रख लो, देवी की पूजा करो। उनके प्रसाद से तुम्हारे वंश मे कोई-न-कोई इस लिखावट को समझ सकेगा। उस समय वह इतना ऐश्वर्य पायगा जिसकी जगत् मे तुलना नही।"

हरिहर ने मिन्नत करके कहा, "बाबा, क्या समझा देगे नही ?"

सन्यासी ने कहा, "नही, साधना द्वारा समझना होगा।"

इसी समय हरिहर का छोटा भाई शकर आ पहुँचा। उसको देखकर हरिहर ने चटपट लेख छिपाने की चेष्टा की। संन्यासी ने हँसकर कहा, "बड़े होने के रास्ते का दु ख अभी से शुरू हो गया। किन्तु छिपाने की आवश्यकता नही है। कारण, इसका रहस्य केवल एक ही व्यक्ति जान सकेगा। हजार प्रयत्न करने पर भी और कोई उसको नही जान पायगा। तुममे से वह व्यक्ति कौन है, यह कोई नही जानता। अतएव इसे सबके सामने निर्भय खोलकर रख सकते हो।"

सन्यासी चले गए। किन्तु हरिहर उस कागज को छिपाकर रखे बिना न रह सका। कही और कोई इससे लाभान्वित न हो जाय, कही उसका छोटा भाई शकर इसका फल-भोग न कर ले, इसी आशंका से हरिहर ने इस कागज को कटहल के काठ के एक बक्स मे बन्द करके अपनी आराध्य देवी जयकाली के आसन के नीचे छिपा दिया था। प्रत्येक अमावस्या की अर्धरात्रि को देवी की पूजा करके एक बार वह उस कागज को खोलकर देखता, काश देवी प्रसन्न होकर उसको अर्थ

१ अन्त मे, २. दिया, ३ वट की गोद मे इमली, ४. जाओ, ५ कह दी।

समझने की शक्ति दे दे।

कुछ दिन से शंकर हरिहर से विनती करने लगा था, "भैया, एक बार अच्छी तरह मुझे वह कागज देख लेने दो न !"

हरिहर ने कहा, "धत् पगले, वह कागज क्या अब धरा है ! वह पाखण्डी संन्यासी कागज मे कुछ चीलबिलौआ बनाकर झाँसा दे गया था—मैने उसे जला डाला है।"

शकर चुप रह गया। सहसा एक दिन शंकर घर मे दिखाई नही दिया। उसके बाद से वह लापता रहा।

हरिहर का सारा काम-काज नष्ट हो गया—गुप्त ऐश्वर्य का ध्यान वह क्षण-भर के लिए भी न भूल सका।

मृत्यु-काल आ पहुँचने पर सन्यासी के दिए हुए उस कागज को वह अपने बडे लड़के श्यामापद को दे गया।

यह कागज़ पाने पर श्यामापद ने नौकरी छोड़ दी। जयकाली की पूजा और एकाग्रचित्त से इस लेख के पाठ की चर्चा मे उसका सम्पूर्ण जीवन कैसे बीत गया, इसका उसे पता भी न चला।

मृत्युजय श्यामापद का बडा लडका था। पिता की मृत्यु के पश्चात् वह सन्यासी के दिये हुए इस गुप्त लेख का अधिकारी हुआ। उसकी अवस्था उत्तरोत्तर जितनी ही खराब होती जाती थी, उतने ही आग्रह से उस कागज के प्रति उनका सारा ध्यान एकाग्र होता जाता। तभी गत अमावस्या की रात को पूजा के पश्चात् वह लेख नही दिखाई पड़ा—सन्यासी भी कही अन्तर्धान हो गया।

मृत्युजय ने कहा, "उस सन्यासी को छोड़ने से काम नही चलेगा। सारा पता उसीसे मिलेगा।"

यह कहकर वह घर छोडकर सन्यासी की खोज मे निकला। एक वर्ष रास्तो मे घूमते ही बीत गया।

: ३ :

गॉव का नाम धारागोल था। वहाँ मोदी की दुकान पर बैठा मृत्युजय तम्बाकू पी रहा था और अन्यमनस्क भाव से अनेक बाते सोच रहा था। कुछ दूर पर मैदान की बगल से एक संन्यासी जा रहा था। पहले तो मृत्युजय का ध्यान उधर नही गया। थोडी देर बाद सहसा उसे लगा, जो आदमी जा रहा था, यह वही संन्यासी है। झटपट हुक्का रखकर मोदी को आश्चर्य मे डाल, एक दौड़ मे वह

दुकान से वाहर निकल गया। किन्तु, वह संन्यासी दिखाई नही दिया।

उस समय संध्या का अँधेरा हो गया था। अपरिचित स्थान मे वह संन्यासी की खोज करने कहाँ जाय, यह निश्चय न कर सका। लौटकर दुकान पर आकर मोदी से पूछा, "यह जो सघन वन दिख रहा है, वहाँ क्या है ?"

मोदी ने कहा, "किसी समय यह वन शहर था, किन्तु अगस्त्य मुनि के शाप से वहाँ के राजा-प्रजा सब महामारी मे मर गए। कहा जाता है, वहाँ खोजने से आज भी वहुत धन-रत्न मिल सकता है; किन्तु दिन दोपहरी मे भी कोई उस वन मे जाने का साहस नही कर पाता। जो गया वह फिर नही लौटा।"

मृत्युजय का मन चचल हो उठा। सारी रात मोदी की दुकान मे चटाई पर लेटा वह मच्छरो के मारे अपने अंगो को चपेटता रहा और उस वन की वात, सन्यासी की वात, उस खोए हुए लेख की वात सोचता रहा। वार-वार पढ़ने के कारण वह लेख मृत्युजय को प्राय: कण्ठस्थ हो गया था, इसलिए अनिद्रा की इस अवस्था मे उसके मस्तिष्क मे वस यही घूम रहा था :

पाये धरे साधा।
रा नहि देय राधा॥
शेषे दिल रा।
पागोल छाड़ो पा॥

सिर भन्ना गया, इन पक्तियो को वह किसी भी प्रकार अपने मन से न निकाल सका। अन्त मे भोर वेला मे जव उसे जरा झपकी आई तव स्वप्न मे इन चार पक्तियो का अर्थ उसे अत्यन्त सहज प्रतीत हुआ। 'रा नहि देय राधा' अर्थात् 'राधा' का 'रा' न रहने से 'धा' रह गया—'शेषे दिल रा' अर्थात् 'धारा' हो गया—'पागोल छाडो', 'पागोल' का 'पा' छोड़ देने से 'गोल' वाकी रहा—अर्थात् सव मिलकर 'धारागोल' हुआ—इस जगह का नाम तो 'धारागोल' ही था।

सपना देखते-देखते मृत्युंजय उछल उठा।

: ४ :

दिन-भर वन मे घूमकर वड़े कष्ट से रास्ता खोजकर विना कुछ खाए संध्या-समय मृत्युप्राय. हालत मे मृत्युजय गाँव को लौटा।

दूसरे दिन चादर मे चिवड़ा वाँधकर फिर उसने वन की यात्रा की। अपराह्ण मे वह एक वावडी के पास जा पहुँचा।

वावड़ी के पश्चिमी किनारे पर मृत्युंजय अचानक चौककर खड़ा हो गया। देखा, इमली के पेड को घेर कर एक विशाल वट वृक्ष खडा था। तत्क्षण उसे याद आया :

तेंतुल वटेर कोले (वट की गोद मे इमली)
दक्षिणे याओ चले (दक्षिण दिशा मे चले जाओ)

कुछ दूर दक्षिण दिशा की ओर जाने पर वहाँ घने जगल मे आ पहुँचा। वहाँ बेंत की झाड़ियो को पार करके चलना उसके लिए एकदम असम्भव हो गया। जो हो, मृत्युजय ने तय किया, इस वृक्ष को खो देने से किसी भी प्रकार काम नही चलेगा।

इस पेड़ के पास लौटकर आते हुए वृक्ष के वीच मे से पास ही एक मन्दिर का शिखर दिखाई पडा। उसी दिशा की ओर लक्ष्य करके चलता हुआ मृत्युजय एक टूटे मन्दिर के पास आ पहुँचा। उसने देखा, पास ही एक छोटा चूल्हा, जली लकडी और राख पडी थी। खूब सावधानी से मृत्युजय ने मन्दिर के टूटे दरवाजे मे झाँका। वहाँ कोई आदमी नही था, प्रतिमा नही थी, केवल एक कम्वल, कमंडलु और गेरुआ उत्तरीय पडा था।

उस समय सन्ध्या हो चली थी; गाँव वहुत दूर था, अँधेरे मे वन मे रास्ता ढूँढा जा सकेगा या नही, अतः इस मन्दिर मे मनुष्य के वसने का लक्षण देखकर मृत्युजय खुश हुआ। मन्दिर का एक वहुत वडा पत्थर का टुकडा टूटकर द्वार के पास पड़ा हुआ था; उस पत्थर के ऊपर वैठकर नीचा सिर किए सोचते-सोचते मृत्युंजय ने अचानक पत्थर पर जाने क्या खुदा हुआ देखा। झुककर देखा, एक चक्र अंकित था, उसमे कुछ स्पष्ट कुछ लुप्तप्राय ढंग से निम्नलिखित के साकेतिक अक्षर खुदे हुए थे .
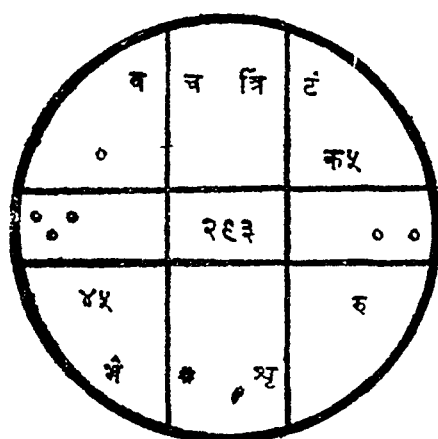
यह मृत्युञ्जय का सुपरिचित चक्र था। अमावस्या की कितनी रातें उसने सुगंधित धूप के धुएँ और घी के दिये से प्रकाशित पूजा-गृह मे रुई के कागज़ पर अंकित हुए चक्र-चिह्न पर झुककर रहस्य जानने के लिए एकाग्रचित से देवी की कृपा की याचना की थी। अभीष्ट सिद्धि के अत्यन्त पास आ पहुँचने पर आज उसका सर्वाङ्ग जैसे काँपने लगा। कही किनारे आकर नौका न डूब जाय, कही किसी एक साधारण भूल के कारण उसका सब-कुछ नष्ट न हो जाय, कही वह संन्यासी पहले ही आकर सब-कुछ ढूँढकर न ले जा चुका हो, इसी आशंका से उसके हृदय मे उथल-पुथल मच गई, उस समय उसका क्या कर्तव्य था यह वह न सोच सका। उसे लगा वह कदाचित् ऐश्वर्य-भण्डार के बिलकुल ऊपर बैठा है, फिर भी कुछ जान नही पा रहा है।

बैठे-बैठे वह काली का नाम जपने लगा, संध्या का अंधकार घना हो आया; झिल्ली की छनकार से वनभूमि मुखरित हो उठी।

: ५ :

तभी कुछ दूर पर घने जगल मे आग की चमक दिखाई पडी। मृत्युञ्जय अपना पत्थर का आसन छोडकर उठा, और उस अग्नि-शिखा को लक्ष्य करके चलने लगा।

अत्यन्त कठिनाई से कुछ दूर जाकर पीपल के तने की ओट से स्पष्ट देखा, उसका वही परिचित सन्यासी अग्नि के प्रकाश मे वह रुई का कागज लेख फैलाकर एक सीक से राख के ऊपर एकाग्र मन से सवाल लगा रहा था।

मृत्युञ्जय के घर के उस पैतृक लेख की लिखावट! अरे पाखण्डी चोर! इसी कारण उसने मृत्युञ्जय को शोक न करने को कहा था।

संन्यासी बार-बार सवाल लगाता, और एक छड़ी लेकर जमीन नापता थोडी दूर नापकर हताश होकर गर्दन हिलाकर फिर आकर सवाल लगाने मे जुट जाता।

इस तरह करते हुए रात जब समाप्त होने को आई, जब रात के अन्त की शीतल वायु से वनस्पतियो की चोटियो के पत्ते मर्मरित हो उठे, तब संन्यासी वह लेखपत्र लपेटकर चला गया।

मृत्युञ्जय यह नही समझ सका कि क्या करे। वह यह भली भाँति समझ गया कि सन्यासी की सहायता के बिना इस लिखावट का रहस्य-भेद करना उसके लिए सभव नही था। और यह भी निश्चित था कि लुब्ध संन्यासी मृत्युजय की सहायता नही करेगा। अतः छिपकर संन्यासी के ऊपर निगाह रखने के अतिरिक्त और कोई

उपाय न था। किन्तु, दिन में गाँव मे विना गए उसे भोजन नही मिलेगा; अतएव कम-से-कम कल सवेरे एक वार गाँव मे जाना आवश्यक था।

भोर की तरफ अंधकार के तनिक फीका पड़ते ही वह पेड से नीचे उतर आया। जहाँ संन्यासी राख पर सवाल लगा रहा था, वहाँ अच्छी तरह देखा कुछ समझ न सका। चारों ओर घूमकर देखा, जगल मे कोई खास वात न थी।

वन-प्रान्त का अंधकार धीरे-धीरे जव क्षीण हो आया, तव वडी सावधानी से चारो ओर देखता हुआ मृत्युजय गाँव की ओर चला। उसे डर था कि कहीं सन्यासी उसे देख न ले।

जिस दुकान मे मृत्युजय ने आश्रय ग्रहण किया था, उसके पास एक कायस्थ-गृहिणी व्रत के उपलक्ष्य मे उस दिन ब्राह्मण-भोजन कराने की तैयारी कर रही थी। वही अव मृत्युंजय को भोजन मिल गया। कई दिन के भोजन के कष्ट के पश्चात् आज उसका भोजन भारी हो गया। इस भारी भोजन के वाद उसने जैसे ही तम्वाकू पीकर दुकान की चटाई पर जरा लेटने की इच्छा की वैसे ही गत रात्रि को न सो सकने के कारण मृत्युजय को गहरी नीद आ गई।

मृत्युजय ने सोचा था कि आज जल्दी ही भोजनादि करके काफी दिन रहते वाहर निकलेगा। ठीक इसका उल्टा हुआ। जव उसकी नीद टूटी तव सूर्य अस्त हो चुका था। तो भी मृत्युजय निरुत्साहित नही हुआ। अँधेरे मे ही उसने वन मे प्रवेश किया।

देखते-देखते रात घनीभूत हो आई। पेडों की छाया मे निगाह काम नही देती थी, जंगल मे रास्ता रुक जाता। मृत्युजय किस ओर कहाँ जार हा था, उसका उसे कोई पता नही चला। जव रात वीत गई तव देखा कि सारी रात वह वन के किनारे एक ही जगह चक्कर काटता रहा था।

कौओ का झुण्ड काँव-काँव करता हुआ गाँव की ओर उड़ चला। यह शब्द मृत्युजय के कानो को व्यंग्यपूर्ण धिक्कार-वाक्य-जैसा लगा।

: ६ :

गणना करने मे वार-वार भूल होती रही थी, वही भूल ठीक करते-करते अंत मे संन्यासी ने सुरग का रास्ता ढूंढ लिया। मशाल लेकर वे सुरंग मे घुसे। पक्की भीत पर काई जमी थी। वीच-वीच मे किसी-किसी जगह जल टपक रहा था। जगह-जगह अनेक मेढक एक-दूसरे से सटे हुए स्तूपाकार होकर सो रहे थे। इस रपटीले रास्ते से कुछ दूर जाते ही संन्यासी ने देखा, सामने दीवार खडी थी। राह अवरुद्ध थी। कुछ भी न समझ सके। हर जगह दीवाल मे लोहे के डडे से ठोककर

देखा, कहीं से पोली होने की आवाज नहीं आई, कहीं रन्ध्र नहीं। इसमें सन्देह नहीं रहा कि वह रास्ता यहीं समाप्त हो गया था।

फिर वही कागज खोले। सिर पर हाथ धरकर बैठे सोचने लगे। वह रात इसी तरह कट गई।

दूसरे दिन गणना पूरी करके फिर सुरंग में प्रवेश किया। उस दिन गुप्त संकेत का अनुसरण करते हुए एक स्थान विशेष से पत्थर सरकाकर दूसरे रास्ते की खोज की उस रास्ते पर चलते-चलते फिर एक जगह रास्ता बन्द हो गया।

अंत मे पाँचवी रात सुरंग मे प्रवेश करके संन्यासी बोल उठे, "आज मुझे रास्ता मिल गया है, अब आज मुझसे कोई भूल नही होगी।"

रास्ता अत्यन्त जटिल था, उसकी शाखा-प्रशाखाओं का अन्त न था—कहीं ऐसा सँकरा कि घुटनों के बल चलना पड़ता, बहुत सावधानी से मशाल लिये चलते हुए सन्यासी गोलाकार कमरे-जैसी एक जगह मे जा पहुँचे। कमरे के बीच मे एक बडा कुआँ था। मशाल की रोशनी मे संन्यासी उसका तला न देख सके। कमरे की छत से मोटी लोहे की एक विशाल जजीर कुएँ मे लटक रही थी। संन्यासी के प्राणपण से बलपूर्वक ठेलते ही इस जजीर के थोडा-सा हिलने-मात्र से ठन् करके एक शब्द कुएँ के गह्वर से उठा और सारा कमरा प्रतिध्वनित होने लगा। सन्यासी उच्च स्वर से चीख उठे 'मिल गया।"

उनके चीखने के साथ ही कमरे की टूटी हुई दीवार से एक पत्थर खिसक कर गिरा और उसी के साथ-साथ एक और कोई जीवित पदार्थ धम्म से गिरकर चीख उठा। सन्यासी इस आकस्मिक आवाज से चौंक पड़े और उनके हाथ से मशाल गिरकर बुझ गई।

: ७ :

संन्यासी ने पूछा, "तुम कौन हो ?" कोई उत्तर नही मिला। इस पर अँधेरे मे टटोलकर देखने से उनका हाथ एक आदमी की देह से टकराया। उसको हिला-कर पूछा, "तुम कौन ?"

कोई उत्तर नही मिला। आदमी मूर्छित हो गया था।

तब चकमक रगड़-रगडकर संन्यासी ने बड़ी मुश्किल से मशाल जलाई। इस बीच वह आदमी भी सचेत हो गया था, और उठने का प्रयत्न करते हुए पीड़ा से आर्त्तनाद कर उठा।

संन्यासी ने कहा, "अरे, यह तो मृत्युजय है ! तुम्हारी ऐसी मति क्यो हुई ?"

मृत्युजय बोला, "बाबा, माफ करो ! भगवान् ने मुझे दंड दिया है। पत्थर

फेककर तुम्हे मारने जा रहा था, सभल नही सका—फिसलकर पत्थर-सहित मैं गिर पडा। पैर अवश्य ही टूट गया होगा।"

सन्यासी ने कहा, "मुझे मारने से तुम्हे क्या लाभ होता?"

मृत्युजय ने कहा, "तुम लाभ की बात पूछ रहे हो। तुम लोभ से मेरे पूजा-घर से लेख चुराकर इस सुरंग मे घूमते फिर रहे हो। तुम चोर हो, तुम पाखडी हो! मेरे पितामह को जिन सन्यासी ने यह लेख दिया था उन्होने कहा था कि हमारे ही वंश का कोई इस लेख के सकेत को समझ पायगा। यह गुप्त ऐश्वर्य हमारे ही वश का प्राप्य है। इसलिए मैं कई दिन से, विना खाए, विना सोए छाया के समान तुम्हारे पीछे घूमता रहा। आज जिस समय तुम चिल्लाए 'मिल गया' तो मुझसे और नही रहा गया। मैं तुम्हारे पीछे आकर इस गड्ढे मे छिपा वैठा था। वहाँ से एक पत्थर सरकाकर तुमको मारने चला था, किन्तु शरीर दुर्वल था, जगह वहुत रपटीली थी—इसी से गिर पडा—इस समय तुम मुझे मार डालो तो वह भी अच्छा है—मैं यक्ष होकर इस धन की रक्षा करूँगा—किन्तु तुम इसे ले नही पाओगे—किसी भी प्रकार नही। यदि लेने का यत्न करोगे, मैं व्राह्मण हूँ, तुम्हे अभिशाप देकर इस कुएँ मे कूदकर आत्म-हत्या कर लूँगा। यह धन तुम्हारे लिए व्राह्मण, गौ के रक्त के समान होगा—इस धन का तुम कभी भी सुख से भोग नही कर सकोगे। हमारे पिता-पितामह इस धन के ऊपर पूर्ण ममता रखकर मरे हैं—इस धन का ध्यान करते-करते हम दरिद्र हो गए है—इस धन की खोज मे मै घर मे अनाथा स्त्री और छोटे वच्चे छोडकर, आहार-निद्रा त्यागकर अभागे पागल के समान घाट-मैदानो मे घूमता फिर रहा हूँ—इस धन को तुम मेरे देखते कभी नही ले सकोगे।"

: ८ :

संन्यासी वोले, "मृत्युजय, तो फिर सुनो! तुम्हे सारी वात सुनाता हूँ।—तुम जानते हो, तुम्हारे पितामह का एक छोटा सहोदर भाई था, उसका नाम था शंकर।"

मृत्युजय ने कहा, "हाँ, वे घर से लापता हो गए थे।"

संन्यासी ने कहा, "मैं वही शकर हूँ।"

मृत्युजय ने हताश होकर दीर्घ निश्वास छोडी। इतने दिन तक वह यह निश्चय किये वैठा था कि इस गुप्त धन के ऊपर एकमात्र उसी का अधिकार है, उसीके वश के आत्मीय ने आकर यह अधिकार नष्ट कर दिया।

शकर ने कहा, "संन्यासी से लेख पाने के वाद से भैया ने मुझसे उसे छिपाने

का पूरा यत्न किया था। किंतु वे जितना ही छिपाने लगे उतनी ही मेरी उत्सुकता वढने लगी। देवी के आसन के नीचे वक्स में उन्होंने इस लेख को छिपाकर रखा था, मुझे उसका पता लग गया, और दूसरी चावी वनवाकर प्रतिदिन थोडा-थोड़ा करके लेख की प्रतिलिपि करने लगा। जिस दिन नकल समाप्त कर ली, उसी दिन मैं इस धन की खोज मे घर छोडकर वाहर निकल पड़ा। मेरे भी घर मे अनाथा स्त्री और एक वच्चा था। आज उनमें से कोई नही वचा है।

"कितने देश-देशातरों मे भ्रमण किया है उसका विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नही है। सन्यासी के दिये हुए इस लेख को कोई संन्यासी मुझे अवश्य समझा देगा, यह समझकर मैंने अनेक संन्यासियो की सेवा की। अनेक पाखंडी संन्यासियो ने मेरे इस कागज का पता लगाकर इसे चुराने की भी कोशिश की। इस प्रकार एक के वाद एक कितने ही वर्ष बीत गए, मेरे मन को क्षण-भर के लिए भी सुख नही मिला, शाति नही मिली।

"अन्त मे पूर्व जन्म मे अर्जित पुण्य के प्रभाव से कुमायूं-पर्वतो मे वावा स्वरूपानद स्वामी का संग मिला। उन्होनें मुझसे कहा—वेटा, तृष्णा दूर करो, तभी विश्व-व्यापी अक्षय सम्पद अपने-आप तुम्हे प्राप्त होगी।

"उन्होने मेरे मन के ताप को शीतल कर दिया। उनकी कृपा से आकांक्षा का आलोक और धरती की श्यामलता मेरे लिए राजसम्पदा हो गई। एक दिन पर्वत की शिला के नीचे शीतकाल की संध्या के दिन परमहंस वावा की धूनी मे आग जल रही थी—उसी आग मे अपना कागज समर्पित कर दिया। वावा थोड़ा मुस्कराए। उस हँसी का अर्थ उस समय नही समझा था, आज समझा हूँ। उन्होने अवश्य मन-ही-मन कहा होगा कि कागज को राख कर डालना आसान है, किंतु वासना इतनी जल्दी भस्मसात् नही होती।

"कागज का जब कोई चिह्न शेष नही रहा तब मेरे मन के चारों ओर से जैसे एक नागपाश-बधन पूर्ण रूप से खुल गया हो। मुक्ति के अपूर्व आनन्द से मेरा चित्त परिपूर्ण हो उठा। मैंने सोचा, "अव मुझे और कोई भय नही—जगत् मे मैं और कुछ नही चाहता।'

"उसके कुछ समय वाद परमहंस वावा का साथ छूट गया। उनको बहुत ढूँढा, कही भी उन्हे न देख सका।

"अव मैं सन्यासी होकर निरासक्त मन से विचरने लगा। अनेक वर्ष वीत गए—उस लेख की वात प्रायः भूल ही गया था।

"इसी वीच एक दिन धारागोल के इस जगल मे प्रवेश करके एक टूटे मंदिर मे आश्रय किया। दो-एक दिन रहते-रहते देखा, मंदिर की भीत पर स्थान-स्थान

पर अनेक प्रकार के चिह्न वने हुए है। यह चिह्न मेरे पूर्व परिचित थे।

"कभी वहुत दिनो तक जिसकी खोज में फिरा था उसका सुराग मिल गया, इसमे मुझे सन्देह न रहा। मैंने कहा, 'यहाँ अव रहना नही होगा, यह वन छोड चलूँ।'

"किंतु छोड़कर जाना सभव नही हुआ। सोचा, 'देख ही क्यो न लिया जाय, क्या है—कौतूहल को विलकुल शात कर देना ही अच्छा है।' चिह्नो को लेकर काफी विचार किया, कोई फल न निकला। वार-वार लगने लगा कि वह कागज़ क्यों जला डाला—उसको रखे रहने मे ही क्या क्षति थी ?

"तव मैं फिर अपने जन्म-स्थान गया। अपने पैतृक घर की अत्यन्त दुरवस्था देखकर सोचा, 'मैं संन्यासी हूँ, मुझे धन-रत्नों से क्या प्रयोजन, किंतु ये गरीव लोग तो गृहस्थ है, उस गुप्त सम्पत्ति का इनके लिए उद्धार करने मे कोई दोष नही है।'

"मुझे पता था कि वह लेख कहाँ है, उसे प्राप्त करना मेरे लिए तनिक भी कठिन नही हुआ।

"उसके वाद एक वर्ष से यह कागज़ लिये मैंने इस निर्जन वन मे गणना की है और खोज की है। मन मे और कोई चिता न थी। वार-वार जितनी वाधाएँ आती थी उत्तरोत्तर उतना ही आग्रह वढता जाता था—उन्मत्त की भाँति रात-दिन उस एक ही अध्यवसाय मे रत रहा।

"इस वीच मे कव तुमने मेरा पीछा किया, मैं नही जान सका। मै अपनी सहज अवस्था मे रहता तो तुम अपने को मुझसे कभी छिपाकर न रख पाते, किंतु मैं तन्मय था, वाहर की घटनाएँ मेरी दृष्टि आकर्पित नही करती थी।

"उसके वाद, जो खोज रहा था वह आज अभी मिला है। यहाँ जितना है, पृथ्वी पर किसी राजराजेश्वर के भडार मे भी उतना धन नही है। वस केवल एक सकेत का रहस्य समझते ही वह धन मिल जायगा।

"यह संकेत ही सवसे कठिन है। किंतु वह संकेत भी मैंने मन-ही-मन जान लिया है। इसीलिए 'मिल गया' कहकर मन के उल्लास मे चीख उठा। यदि चाहूँ तो क्षण-भर मे उस सोने और माणिको के भडार के वीच खडा हो सकता हूँ।"

मृत्युञ्जय ने शकर के पैर पकडकर कहा, "तुम संन्यासी हो, तुम्हे धन की कोई ज़रूरत नही है—मुझे उस भडार मे ले चलो। मुझे वचित मत करो!"

शकर ने कहा, "आज मेरा अन्तिम वंधन खुल गया है। तुम जो पत्थर फेंक-कर मुझे मारने के लिए तैयार हुए थे उसकी चोट तो मेरे शरीर मे नही लगी, किंतु उसने मेरे मोहावरण को भेद डाला है। आज मैंने तृष्णा की कराल मूर्ति देख

ली। मेरे गुरु परमहंसदेव की गूढ प्रशात हँसी ने इतने दिनो के वाद मेरे हृदय मे कल्याण-दीप की सदा जलने वाली आलोक-शिखा जला दी है।"

मृत्युञ्जय ने शकर के पैर पकड़कर फिर कातर स्वर मे कहा, "तुम मुक्त पुरुष हो, मै मुक्त नही, मैं मुक्ति नही चाहता, मुझे इस ऐश्वर्य से वचित नही कर पाओगे।"

संन्यासी ने कहा, "वत्स, तव तुम अपना यह लेख लो। यदि धन ढूँढ सको तो ढूँढ लो।"

इतना कहकर अपना डंडा और लेख मृत्युञ्जय के पास रखकर संन्यासी चले गए। मृत्युञ्जय ने कहा, "मुझ पर दया करो, मुझे छोड़कर मत जाओ—मुझे दिखा दो!"

कोई उत्तर नही मिला।

तव मृत्युञ्जय ने लाठी का सहारा लेकर हाथ से टटोलते हुए सुरंग से वाहर निकलने की चेष्टा की। किंतु रास्ता अत्यन्त जटिल था, गोरखधन्धे के समान वार-वार रुकावटे आने लगी। अन्त मे घूमते-घूमते थककर एक जगह लेट गया और नीद आते देर नही हुई।

नीद से जव जगा तव रात थी या दिन, या कितना समय था, यह जानने का कोई उपाय नही था। खूव भूख लगने पर मृत्युञ्जय ने चादर के कोने मे वँधा चिवड़ा खोलकर खा लिया। उसके वाद फिर एक वार हाथ से टटोलकर सुरंग से वाहर निकलने का रास्ता खोजने लगा। अनेक जगह रुकावटे मिलने के कारण बैठ गया। तव चिल्लाकर पुकारा, "हे संन्यासी, तुम कहाँ हो।"

उसकी वह पुकार सुरंग की समस्त शाखा-प्रशाखाओ से वार-वार प्रतिध्वनित होने लगी। थोडी दूर से उत्तर आया, "मैं तुम्हारे पास ही हूँ—क्या चाहते हो, वोलो!"

मृत्युञ्जय ने दीन स्वर मे कहा, "धन कहाँ है, दया करके मुझे दिखा दो!"

फिर कोई उत्तर नही मिला। मृत्युञ्जय ने वारम्वार पुकारा। कोई उत्तर नही मिला। दड पहरो द्वारा अविभक्त पृथ्वी की इस चिररात्रि मे मृत्युञ्जय और एक वार सो लिया। नीद से फिर उसी अंधकार मे वह जागा। चिल्लाकर पुकारा "अजी हो क्या?"

पास से ही उत्तर मिला, "यही हूँ। क्या चाहते हो?"

मृत्युञ्जय ने कहा, "मै और कुछ नही चाहता—इस सुरग से मेरा उद्धार करके ले चलो!"

सन्यासी ने प्रश्न किया, "तुम धन नही चाहते?"

मृत्युञ्जय ने कहा, "नहीं, नही चाहता।"

तभी चकमक रगडने का शब्द हुआ और कुछ देर वाद वत्ती जल गई।

संन्यासी ने कहा, "तो फिर आओ मृत्युजय, इस सुरंग से वाहर चले।"

मृत्युजय ने दयनीय स्वर मे कहा, "वावा, क्या सव-कुछ विलकुल व्यर्थ जायगा? इतने कष्ट के वाद भी क्या धन नही मिलेगा?"

उसी क्षण वत्ती वुझ गई। मृत्युञ्जय वोला, "तुम कितने निष्ठुर हो!" और यह कहकर वही वैठकर सोचने लगा। समय का कोई हिसाव नही था, अधकार का कोई अन्त नही था। मृत्युजय को इच्छा हुई कि अपने तन-मन के सारे वल से इस अंधकार को फोडकर चूर्ण कर डाले। प्रकाश, आकाश और विश्व-सौदर्य की विचित्रता के लिए उसके प्राण व्याकुल हो उठे, वोला, "हे सन्यासी! निष्ठुर सन्यासी! मैं धन नही चाहता, मेरा उद्धार करो!"

सन्यासी ने कहा, "धन नही चाहते? तो फिर मेरा हाथ पकड़ो। मेरे साथ चलो!"

इस वार वत्ती नही जली। एक हाथ मे लाठी और एक हाथ मे सन्यासी का उत्तरीय पकडकर मृत्युजय धीरे-धीरे चलने लगा। वहुत देर तक कई टेढे-मेढ़े रास्तो मे खूव घूम-फिरकर एक जगह आकर संन्यासी से कहा, "खड़े रहो!"

मृत्युजय खडा रहा। उसके वाद मोरचा लगे लोहे के एक दरवाजे के खुलने का भयंकर शब्द सुनाई दिया। संन्यासी ने मृत्युजय का हाथ पकडकर कहा, "आओ!"

मृत्युजय ने आगे वढकर जैसे किसी कमरे मे प्रवेश किया। तव फिर चकमक रंगडने का शब्द सुनाई दिया। कुछ देर वाद जव मशाल जल गई तव यह कैसा अद्भुत दृश्य! चारो ओर दीवारों पर पृथ्वी के गर्भ मे रुद्ध प्रखर सूर्यालोक-पुज के समान सोने का मोटा-मोटा पत्तर तह पर तह मढा हुआ था। मृत्युजय की दोनो आँखे चमकने लगी। वह पागल की भाँति वोल उठा, "यह सोना मेरा है—इसे मैं किसी भी प्रकार छोडकर नही जा सकता।"

सन्यासी ने कहा, "अच्छा छोड़कर मत जाना, यह मशाल रही— और यह सत्तू-चिवड़ा और एक वडे लोटे मे जल रखे जाता हूँ।"

देखते-देखते संन्यासी वाहर चले गए, और उस स्वर्ण-भण्डार के लोहे के दर-वाजे के किवाड वन्द हो गए।

मृत्युजय वार-वार इस स्वर्ण-पुज का स्पर्श करता हुआ सारे कमरे मे चक्कर लगाने लगा। सोने के छोटे-छोटे टुकड़े तोड़कर जमीन के ऊपर फेकने लगा, गोद मे वटोरने लगा, एक से दूसरे को टकराकर शब्द करने लगा और सारे शरीर पर

फेरकर उसका स्पर्श लेने लगा। अन्त मे थककर सोने का पत्तर बिछाकर उसके ऊपर लेटकर सो गया।

जगकर देखा, चारों ओर सोना झिलमिला रहा था। सोने के अलावा और कुछ न था। मृत्युजय सोचने लगा, 'धरती पर शायद अब तक प्रभात हो गया होगा समस्त जीव-जन्तु आनन्द मे जाग उठे होगे।' उसके घर मे तालाब के किनारे के बाग से प्रात.काल जो स्निग्ध सुगंध आती थी वही मानो उसकी कल्पना मे उसकी नाक मे प्रवेश करने लगी। उसे मानो स्पष्ट दिखाई दिया कि छोटी-छोटी बत्तखें झूमती-झूमती कलरव करती हुई प्रात'काल आकर तालाब में तैर रही हों। और घर की नौकरानी बामा कमर मे आँचल लपेटे ऊपर उठे दाहिने हाथ मे पीतल-काँसे की थाली-कटोरियो का ढेर लिये घाट पर जमा कर रही है।

दरवाजा पीटकर मृत्युजय पुकारने लगा, "ओ संन्यासी महाराज, हो क्या ?"

द्वार खुल गया। संन्यासी ने कहा, "क्या चाहते हो ?"

मृत्युजय बोला, "मैं बाहर जाना चाहता हूँ—किन्तु क्या सोने के दो-एक पत्तर भी साथ नही ले जा सकूँगा ?"

उसका कोई उत्तर दिये बिना संन्यासी ने फिर मशाल जलाई—एक भरा हुआ कमण्डल रख दिया और उत्तरीय से कई मुट्ठी चिवडा जमीन पर रखकर बाहर चले गए। द्वार बन्द हो गया।

मृत्युजय ने सोने का एक पतला पत्तर लेकर उसे मोडकर टुकडे-टुकड़े करके तोड डाला। उस टूटे हुए सोने को लेकर कमरे के चारों ओर मिट्टी के ढेले के समान बिखेरने लगा। कभी दाँतो से काटकर सोने के पत्तर मे दाग करता। कभी सोने के किसी पत्तर को ज़मीन पर फेंककर उसके ऊपर बार-बार पदाघात करता। मन-ही-मन कह उठता, 'पृथ्वी पर ऐसे सम्राट् कितने है जो सोने को इस प्रकार इधर-उधर बिखेर सकते है !' मृत्युंजय पर मानो एक प्रलय की सनक सवार हो गई। उसकी इच्छा होने लगी कि वह उस स्वर्ण-राशि को चूर्ण करके धूल के समान झाड-झाड़कर उड़ा दे—और इस प्रकार से पृथ्वी के सारे स्वर्ण-लुब्ध राजा-महाराजाओ का तिरस्कार करे।

इस तरह जितनी देर हो सका, मृत्युजय ने सोने को लेकर खीच-तान की और फिर थककर सो गया। नीद खुलने पर वह अपने चारो ओर फिर वही स्वर्णराशि देखने लगा। तब दरवाज़े को पीटकर वह चिल्लाकर बोल उठा, "ओ संन्यासी, मैं यह सोना नही चाहता—सोना नही चाहता !"

किन्तु, द्वार नही खुला। चिल्लाते-चिल्लाते मृत्युजय का गला बैठ गया, किन्तु द्वार नही खुला। सोने के एक-एक पिंड को लेकर वह फेंककर दरवाजे के ऊपर

मारने लगा, किन्तु कोई परिणाम न निकला। मृत्युजय का हृदय वैठने लगा—'तव क्या संन्यासी नही आयँगे ? इस स्वर्ण-कारागार मे तिल-तिल, पल-पल करके सूखकर मर जाना होगा !'

तव सोना देखकर उसे डर लगने लगा। विभीषिका के मौन कठोर हास्य के समान सोने का वह स्तूप चारो ओर स्थिर होकर खडा था—उसमे स्पदन नही था, परिवर्तन नही—मृत्युजय का हृदय अव काँपने लगा, व्याकुल होने लगा,इसके साथ उनका कोई सम्पर्क नही था, वेदना का कोई सम्वन्ध नही था। सोने के ये पिंड न प्रकाश चाहते थे, न आकाश, न वायु, न प्राण, न मुक्ति, ये इस चिर अन्धकार मे चिरकाल से उज्ज्वल रहकर, कठोर होकर, स्थिर होकर पड़े थे।

पृथ्वी पर अव गोधूलि वेला होगी ! अहा ! गोधूलि का वह सुनहलापन क्षण भर के लिए आँखो को शीतल करके अन्धकार-प्रान्त मे रोकर विदा ले लेता है। उसके पश्चात् कुटिया के आँगन मे सन्ध्या-तारा निर्निमेष दृष्टि से देखने लगता है। गोशाला मे दीपक जलाकर वहू घर के कोने मे सन्ध्या-दीप रखती है। मन्दिर की आरती का घण्टा वजने लगता है।

गाँव की, घर की अत्यन्त क्षुद्र और तुच्छ वातें आज मृत्युंजय की कल्पना-दृष्टि के आगे उज्ज्वल हो गई। उनका वह भोला कुत्ता पूँछ, सिर एक करके आँगन के कोने मे सन्ध्या के वाद सोता रहता, वह कल्पना भी जैसे उसको व्यथित करने लगी। धारागोल गाँव में कई दिन जिस मोदी की दुकान मे उसने आश्रय लिया था वह इस समय रात मे दीपक वुझाकर, दुकान वन्द करके धीरे-धीरे गाँव मे घर की ओर भोजन करने जा रहा होगा, यह वात स्मरण करके उसको लगने लगा, मोदी कितना सुखी है ! आज कौन दिन है, क्या पता। यदि रविवार होगा तो अव तक हाट से आदमी अपने-अपने घर लौट रहे होगे, विछुडे हुए साथी को ऊँचे स्वर मे वुला रहे होगे, दल वनाकर पार जाने वाली नावो द्वारा पार हो रहे होंगे, मैदान के रास्ते, अनाज के खेतो की मेड पार करके, गाँव के सूखे वाँसो के पत्तो से ढके आँगन की वगल से होकर किसान लोग हाथ मे दो-एक मछली लटकाए सिर पर टोकरी लिये अँधेरे मे तारो से सारे आकाश के क्षीण प्रकाश मे एक गाँव से दूसरे गाँव चले जा रहे होगे।

पृथ्वी के ऊपरी तल की इस विचित्र वृहत् चिर-चंचल जीवन-यात्रा मे तुच्छतम, दीनतम होकर अपना जीवन मिला देने के लिए मिट्टी के सैकडो स्तर भेदता हुआ जगत् का आह्वान उसके पास पहुँचने लगा। वह जीवन, वह आकाश, पृथ्वी के सम्पूर्ण मणि-माणिक्यो से उमे अधिक मूल्यवान प्रतीत होने लगा। उसको लगने लगा, 'केवल क्षण-भर के लिए एक वार यदि अपनी उस श्यामा जननी

धरित्री की धूल-भरी गोद मे, उस उन्मुक्त आलोकित नील गगन के नीचे, घास-पात की गंध से बसी उस वायु से हृदय भरकर एक बार अन्तिम निःश्वास लेकर मर सकता तो जीवन सार्थक हो जाता।'

इसी समय द्वार खुल गया। कमरे मे प्रवेश करके संन्यासी ने कहा, "मृत्युजय, क्या चाहते हो!"

वह बोल उठा, "मैं और कुछ नही चाहता—मैं इस सुरंग से, अन्धकार से, गोरख-धन्धे से, इस सोने के कारागार से बाहर निकलना चाहता हूँ। मैं प्रकाश चाहता हूँ, आकाश चाहता हूँ, मुक्ति चाहता हूँ।"

संन्यासी ने कहा, "इस सोने के भण्डार से भी अधिक मूल्यवान रत्न-भण्डार यहाँ है।"

आगे कहा, "एक बार वहाँ नही चलोगे?"

मृत्युजय ने कहा, "नही, नही जाऊँगा।"

सन्यासी ने कहा, "एक बार देख आने की भी उत्सुकता नही है?"

मृत्युजय ने कहा, "नही, मैं देखना भी नही चाहता। मुझे यदि कोपीन पहनकर भिक्षा माँगने घूमना पड़े तो भी मैं यहाँ क्षण-भर भी नही काटना चाहता।"

सन्यासी ने कहा, "अच्छा तो फिर आओ।"

मृत्युजय का हाथ पकडकर संन्यासी उसे उस गहरे कुएँ के पास ले गए उसके हाथ मे वह लेख-पत्र देकर कहा, "इसे लेकर तुम क्या करोगे?"

मृत्युजय ने उस पत्र को फाडकर टुकडे-टुकड़े करके कुएँ मे फेक दिया।

रासमणि का बेटा

: १ :

रासमणि कालीपद की माँ थी—किन्तु उन्हे वाध्य होकर पिता का पद ग्रहण करना पड़ा। माँ, अगर माँ-वाप दोनों वन जाय तो लड़के के लिए ठीक नही होता। उनके पति भवानीचरण पुत्र पर नियंत्रण रखने मे बिलकुल असमर्थ थे। यह पूछने पर कि वे इतना ज्यादा लाड़ क्यो करते है, वे जो उत्तर देते, उसे समझने के लिए पूर्व-इतिहास जानना जरूरी है।

वात यह थी—भवानीचरण का जन्म शानियाडी के विख्यात सम्भ्रान्त धनी वंश मे हुआ था। भवानीचरण के पिता अभयाचरण की पहली पत्नी के पुत्र थे श्यामाचरण। पत्नी-वियोग के पश्चात् अधिक आयु मे अभयाचरण ने जव दूसरा विवाह किया तो उनके श्वसुर ने आलन्दि ताल्लुका विशेप रूप से अपनी कन्या के नाम लिखा लिया था। जामाता की आयु का हिसाव करके उन्होने मन-ही-मन सोचा कि यदि कन्या विधवा हो गई तो खाने-पहनने के लिए उसे सौतेले पुत्र के अधीन न रहना पडे।

उन्होने जो कल्पना की थी उसके प्रथम अश को फलते देर नही लगी। अपने दौहित्र भवानीचरण के जन्म के कुछ ही समय वाद उनके जामाता की मृत्यु हो गई। उनकी पुत्री ने अपनी विशेप सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। अपनी आँखो यह देखकर वे भी परलोक-यात्रा के समय अपनी पुत्री के जीवन के सम्वन्ध मे वहुत-कुछ निश्चिन्त हो गए।

श्यामाचरण उस समय वयस्क हो चुका था। यहाँ तक कि उसका वडा लडका उस समय भवानी से एक साल वडा था। श्यामाचरण अपने पुत्र के साथ-ही-साथ भवानी का भी पालन-पोपण करने लगे। भवानीचरण की माता की सम्पत्ति मे से कभी एक पैसा भी न लेते और प्रतिवर्ष हिसाव साफ करके अपनी विमाता को दिखाकर वे उसकी रसीद ले लेते, यह देखकर सभी उनकी साधुता पर मुग्ध थे।

वस्तुत प्राय सभी ने सोचा कि इतनी साधुता अनावश्यक है, यहाँ तक कि

यह मूर्खता का ही नामान्तर है। अविभाजित पैतृक सम्पत्ति का एक भाग दूसरे विवाह की स्त्री के हाथ मे पड जाय, यह गाँव के किसी भी को अच्छा नही लगा। यदि श्यामाचरण धोखा देकर लिखित दस्तावेज़ों को किसी प्रकार अस्वीकार कर देते तो पडोसी उनके पौरुप की प्रशसा ही करते, और जिस उपाय से वे भली प्रकार सफल हो सकते ऐसे परामर्शदाता निपुण व्यक्तियो का भी अभाव नही था। किन्तु, श्यामाचरण ने अपने पुश्तैनी पारिवारिक अधिकार को अंग-भग करके भी अपनी विमाता की सम्पत्ति को पूरी तरह स्वतन्त्र रखा।

इन्ही कारणो से तथा सहज स्नेहशील स्वभाव के कारण विमाता व्रजसुन्दरी श्यामाचरण पर अपने पुत्र के समान स्नेह और विश्वास करती थी। और उनकी सम्पत्ति को श्यामाचरण विलकुल अलग समझते थे। इसलिए उन्होने अनेक वार फटकारा भी था, वे कहती थी, "वेटा, यह सव तो तुम ही लोगों का है, इस संपत्ति को साथ लेकर तो मैं स्वर्ग नही जाऊँगी, यह तुम्ही लोगों की रहेगी; इतना हिसाव-किताव देखने की मुझे जरूरत क्या है।"

श्यामाचरण इस वात पर कान ही न देते।

श्यामाचरण अपने लडको पर कठोर नियंत्रण रखते थे। किन्तु भवानीचरण के ऊपर उनका कोई नियंत्रण नही था। यह देखकर सभी एक स्वर से कहते, 'अपने लडको की अपेक्षा भवानी के ऊपर उनका अधिक स्नेह है।' इस तरह भवानी का पढना-लिखना कुछ भी नही हुआ और रुपये-पैसे के मामले मे हमेशा वच्चे के समान वने रहकर वे पूर्ण रूप से वडे भाई पर निर्भर होकर दिन काटने लगे। धन-सम्पत्ति के विषय मे उन्हे कभी कोई चिन्ता नही करनी पड़ती थी—केवल वीच-वीच मे एक-आध दिन हस्ताक्षर करने पड़ते। क्यो हस्ताक्षर करते, उसको समझने का प्रयत्न ही न करते, क्योकि प्रयत्न करने पर भी सफल नही हो सकते थे।

दूसरी ओर श्यामाचरण का वड़ा लड़का तारापद हर काम मे पिता की सहायता करते रहने के कारण काम-काज मे पक्का हो गया। श्यामाचरण की मृत्यु के वाद तारापद ने भवानीचरण से कहा, "काकाजी, हम लोगो का साथ रहना अव और नही चल सकता। क्या पता किस दिन किसी साधारण वात को लेकर मनोमालिन्य हो जाय, तो फिर गृहस्थी नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी।"

अलग होकर किसी दिन अपनी सम्पत्ति की स्वयं देख-भाल करनी पड़ेगी, इस वात की भवानी ने स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी। जिस गृहस्थी मे वचपन से वह वड़े हुए थे उसको वे सम्पूर्ण, अखण्ड ही समझते थे—उसमे किसी एक स्थान पर जोड है और उस जोड की जगह से उसके दो हिस्से किये जा सकते है, सहसा

यह समाचार पाकर वे व्याकुल हो गए।

वंश की सम्मान-हानि और आत्मीयजनों की मनोवेदना जब तारापद को तनिक भी विचलित न कर सकी, तब सम्पत्ति का विभाजन किस प्रकार हो सकता है, इस असाध्य चिन्ता में भवानी को प्रवृत्त होना पड़ा। उनकी चिन्ता देखकर तारापद ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा, "काकाजी, बात क्या है ? आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं, सम्पत्ति का बँटवारा तो हो ही चुका है। पितामह अपने सामने ही तो विभाजन कर गए थे।"

हतबुद्धि होकर भवानी ने कहा, "सच ! मैं तो इस विषय में कुछ भी नहीं जानता।"

तारापद ने कहा, "कमाल है। जानते कैसे नहीं ! देश-भर के लोग जानते हैं, बाद में आपके साथ हमारा कोई झगड़ा न हो इसलिए आलन्दि ताल्लुका आपके हिस्से में लिखकर पितामह ने पहले से ही आपको अलग कर दिया है—इसी भाँति तो अब तक चलता आया है।"

भवानीचरण ने सोचा, 'सभी-कुछ सम्भव है।' प्रश्न किया, "यह घर ?"

तारापद ने कहा, "चाहे तो यह घर आप ही रख सकते हैं। सदर महकमे में कोठी है वह मिल जाए तो हमारा काम किसी-न-किसी तरह चल जायगा।"

तारापद को इस तरह अनायास ही पैतृक घर छोड़ने के लिए राजी होते देखकर वे उनकी उदारता पर विस्मित रह गए। सदर महकमे का अपना मकान उन्होंने कभी नहीं देखा था और उसके प्रति उनकी तनिक भी ममता नहीं थी।

भवानी ने जब अपनी माता व्रजसुन्दरी को सारा वृत्तान्त बताया तो उन्होंने माथा ठोककर कहा, "मैया री, यह क्या बात हुई ? आलिन्द ताल्लुका तो अपने भरण-पोषण के लिए मुझे निजी सम्पत्ति के रूप में मिला था—उसकी आमदनी भी कोई ऐसी ज्यादा नहीं है। पैतृक सम्पत्ति में तुम्हारा जो हिस्सा है वह तुम्हें क्यों नहीं मिलेगा ?"

भवानी ने कहा, "तारापद कहता है, पिता ने इस ताल्लुके के अलावा हमें और कुछ नहीं दिया था।"

व्रजसुन्दरी ने कहा, "यह बात क्या मैं कहने से ही मान लूँगी ? मालिक ने अपने हाथ से अपने वसीयतनामे की दो प्रतियाँ लिखी थीं—उसकी एक प्रति उन्होंने मुझे सौंप दी थी। वह मेरे सन्दूक में ही है।"

सन्दूक खोला गया। उसमें आलिन्द ताल्लुके का दानपत्र तो था, किन्तु वसीयतनामा नहीं था। वसीयतनामे की चोरी हो गई थी।

परामर्शदाता को बुलाया गया। यह व्यक्ति उनके गुरु महाराज का पुत्र था, नाम था बगलाचरण। सब कहते थे, उसकी बुद्धि बहुत मँजी हुई है। उसका पिता गाँव का मन्त्रदाता था, और पुत्र मन्त्रणादाता। पिता-पुत्र ने गाँव के लोगों के परलोक और इहलोक का बँटवारा कर लिया था। दूसरों के लिए उसका फलाफल चाहे जैसा हो उनको अपने लिए कोई असुविधा नहीं हुई।

बगलाचरण ने कहा, "वसीयतनामा न मिला न सही। पिता की सम्पत्ति मे दो भाइयो का समान भाग तो रहेगा ही।"

इसी समय अपर पक्ष द्वारा एक वसीयतनामा पेश किया गया। उसमे भवानी-चरण का कुछ भी हिस्सा नही लिखा था। सारी सम्पत्ति पौत्रों को दी गई थी। उस समय अभयाचरण के कोई पुत्र नही पैदा हुआ था।

बगला को कर्णधार बनाकर भवानी मुकद्दमे के महासमुद्र मे उतर पड़े। बन्दर मे आकर लोहे के संदूक की जब परीक्षा की तो मालूम हुआ कि लक्ष्मी के वाहन उल्लू का घोसला बिलकुल सूना था। साधारण दो-एक सोने के पंख टूटे पड़े थे। पैतृक सम्पत्ति अपर पक्ष के हाथ मे चली गई और आलिन्द तालुके का जो भाग मुकद्दमे के खरचे से बच गया था उसके सहारे से किसी प्रकार गुजर तो हो सकती थी, किन्तु वंश-मर्यादा की रक्षा नही की जा सकती थी। पुराने घर के मिलने पर भवानीचरण ने सोचा, 'भारी जीत हुई है।' तारापद का दल सदर मे चला गया। उभय पक्षो मे अब कोई मेल-जोल न रहा।

: २ :

श्यामाचरण की विश्वासघातकता व्रजसुन्दरी को शूल के समान लगी। श्यामाचरण ने अन्यायपूर्वक मालिक का वसीयतनामा चुराकर भाई को धोखा दिया और पिता का विश्वास भग किया, इसको वे किसी भी तरह न भूल सकी। वे जितने दिन जीवित रही, प्रतिदिन ही दीर्घ नि:श्वास लेकर बार-बार कहती, "धर्म इसे कभी नही सह सकेगा।" भवानीचरण को प्राय प्रतिदिन वे यह कहकर आश्वासन देती रही कि "मै कानून-अदालत कुछ नही समझती; मैं तुमसे कहती हूँ, मालिक का वह वसीयतनामा बहुत दिनों तक कभी नहीं दबा रह सकता। वह तुमको वापस अवश्य मिलेगा।"

माता से बराबर यह बात सुनते-सुनते भवानीचरण के मन को दृढ भरोसा हो गया था। वे स्वय अक्षम थे, इस कारण ऐसे आश्वासनपूर्ण वचन उनके लिए अत्यत सान्त्वनाजनक थे। सती-साध्वी के वचन अवश्य पूरे होंगे, जो उनका है वह अपने-आप उनके पास अवश्य लौट आयगा, इस बात को वे निश्चित मान बैठे थे। माता

की मृत्यु के पश्चात् उनका यह विश्वास और भी दृढ हो गया—क्योंकि मृत्यु के विच्छेद से माता का पुण्य तेज उनको और भी वड़ा प्रतीत होने लगा। दरिद्रता के सारे अभाव और कष्ट मानो उन्हे छू ही न पाते हो। उन्हे लगता, वह अन्न-वस्त्र का कष्ट, यह पहले के ठाट-वाट मे व्यतिक्रम, ये तो जैसे दो दिन के लिए एक अभिनय-मात्र हो—इनमे कोई सत्य ही न हो। इसीलिए जब ढाका की पुरानी धोती फट जाने पर उन्हे कम दामो की मोटी धोती खरीदनी पडी तो उन्हे हँसी आ गई। पूजा (दुर्गापूजा) के समय पहले के समान धूमधाम न हो सकी; 'नमो नम.' करके काम चलाना पडा, अभ्यागतो ने यह दरिद्र आयोजर देखकर दीर्घ नि.श्वास लेकर पुराने समय की वातो की चर्चा चलाई। भवानीचरण मन-ही-मन हँसे, उन्होने सोचा, 'ये जानते नही—यह सव केवल थोड़े दिनो के लिए है—उसके वाद एक दिन ऐसी धूम से पूजा होगी कि इनकी आँखे खुल जाएँगी।' भविष्य के इस निश्चित समारोह को वे इस तरह प्रत्यक्ष की भाँति देखते कि वर्तमान का दैन्य उन्हे नज़र ही न आता।

इस विपय पर उनके साथ चर्चा करने वाला प्रधान व्यक्ति था—उनका नौकर नोटो। न जाने कितनी वार पूजोत्सव की दरिद्रता के वीच वैठकर प्रभु और भृत्य इस पर विस्तार से चर्चा कर चुके थे कि भविष्य मे अच्छे दिन आने पर किस प्रकार का आयोजन करना होगा। यहाँ तक कि किसे निमन्त्रित करना होगा, किसे नही, और कलकत्ता से यात्रा-दल लाने की आवश्यकता है या नही, इसको लेकर दोनो पक्षो मे घोरतर मतान्तर और तर्क-वितर्क होता रहता था। स्वाभाविक अनौदार्यवश उस भविष्य-काल के लिए सूची वनाने मे कृपणता दिखाने के लिए नटविहारी (नोटो) को भवानीचरण द्वारा दी गई कड़ी फटकार भी सहनी पड़ती। ऐसी घटना प्राय. घटती रहती।

भवानीचरण के मन मे मोटे तौर से सम्पत्ति विपयक किसी भी प्रकार की दुश्चिन्ता नही थी। उनकी चिन्ता का एकमात्र कारण था, उस धन का भोग कौन करेगा। अभी तक उनके सन्तान नही हुई थी। कन्याभारग्रस्त हितैपी उनसे जव एक और विवाह करने का अनुरोध करते तो कभी-कभी उनका मन चचल हो उठता, उसका कारण यह नही था कि नव-वधू के लिए उन्हे कोई विशेष शौक था—वरन् सेवक और अन्न की भाँति स्त्री के पुरातनत्व को भी वे श्रेष्ठ गिनते थे—किन्तु जिसे सम्पत्ति की सम्भावना हो उसके लिए सन्तान की सम्भावना का न होना वे विषम विडम्वना ही मानते थे।

ऐसी अवस्था मे जव उनके पुत्र का जन्म हुआ तव सभी ने कहा, 'अव इस घर का भाग्य पलटेगा, यह उसी का सूत्रपात हुआ है—स्वयं स्वर्गीय मालिक

अभयाचरण ने फिर इस घर मे जन्म लिया है, ठीक उसी प्रकार की वडी आँखे।' वालक की जन्मकुण्डली मे भी देखा गया, ग्रह-नक्षत्रों का इस प्रकार का योगायोग हुआ था कि अपहृत सम्पत्ति का उद्धार हुए विना रह ही नही सकता।

पुत्र-जन्म के वाद से भवानीचरण के व्यवहार में कुछ परिवर्तन दिखने लगा। इतने दिन तक उन्होने दरिद्रता को एकदम हँसी-खेल की तरह अनायास ही वहन किया था, किन्तु पुत्र के मामले मे वे उसकी रक्षा न कर सके। शानियाड़ी के विख्यात चौधुरी के घर मे वुझते हुए कुल-प्रदीप को उज्ज्वल करने के लिए आकाश-व्यापी समस्त ग्रह-नक्षत्रो की अनुकूलता के फलस्वरूप जो शिशु धराधाम पर अवतरित हुआ था उसके प्रति कुछ-न-कुछ उत्तरदायित्व था ही। पुरातन काल से आज तक इस परिवार मे हर पुत्र को जन्म से ही जो आदर-सम्मान मिलता आया है, उससे भवानीचरण का ज्येष्ठ पुत्र ही पहले-पहल वंचित हुआ—इस दुख को वे न भूल सके। 'इस वश का जो चिरप्राप्त मुझे मिला वह मैं अपने पुत्र को न दे पाया'—यह स्मरण करके उन्हे लगने लगा, मैंने ही इसे वंचित किया है।' इसलिए कालीपद के लिए वे जो अर्थ-व्यय न कर सके, अपने अत्यधिक लाड-प्यार द्वारा उन्होने उसकी पूर्ति करने की चेष्टा की।

भवानी की पत्नी रासमणि भिन्न स्वभाव की स्त्री थी। उन्होने शानियाड़ी के चौधुरियो के वश-गौरव के सम्वन्ध मे कभी उत्कण्ठा का अनुभव नही किया। भवानी यह जानते थे और इसको लेकर मन-ही-मन हँसते थे, सोचते थे, जैसे साधारण दरिद्र वैष्णव वश मे उनकी पत्नी का जन्म हुआ था उसे देखते उनकी यह भूल क्षमा करने योग्य थी—चौधुरियो की मान-मर्यादा के सम्वन्ध मे यह अनुमान करना उनके लिए असम्भव ही था।

रासमणि स्वय भी इसको स्वीकार करती। कहती, 'मैं गरीव की वेटी हूँ, मान-सम्मान की परवाह नही करती, मेरा कालीपद वना रहे, वही मेरा सवसे वडा ऐश्वर्य है।" वसीयतनामा फिर मिल जायगा और कालीपद के कल्याण के लिए इस वश के विलुप्त सम्पत्ति-जल-शून्य नदी-पथ मे फिर जल की वाढ़ आयगी, इन सब वातो पर वे कान भी नही देती थी। ऐसा कोई व्यक्ति नही था जिसके साथ उनके पति खोए वसीयतनामे के विषय मे चर्चा न करते हो। केवल अपनी पत्नी के साथ वे अपने मन की इस सवसे वडी वात की चर्चा नही करते थे। दो-एक वार उसके साथ चर्चा करने का प्रयत्न किया था, किन्तु कोई रस नही मिला। अतीत की महिमा, एवं भावी महिमा, इन दोनो पर उनकी पत्नी कोई ध्यान नही देती थी, वर्तमान आवश्यकताओ ने ही उनके समस्त हृदय को आकर्षित कर रखा था।

ये आवश्यकताएँ भी कोई छोटी नहीं थी। नाना प्रयत्नों द्वारा गृहस्थी चलानी पडती। क्योकि, लक्ष्मी चली जाने पर भी अपना थोड़ा-बहुत भार पीछे फेक जाती है; ऐसी स्थिति मे कोई उपाय नही रहता, किन्तु अपाय रह जाता है। इस परिवार का आश्रय प्राय नष्ट हो गया था, किन्तु आश्रित दल अब उन्हे छुट्टी नही देना चाहता था। भवानीचरण भी ऐसे आदमी नही थे कि अभाव के भय से किसी को भी विदा कर दे।

इस भारग्रस्त भग्न गृहस्थी को चलाने का भार रासमणि के ऊपर था। किसी से उन्हे कोई विशेप सहायता भी नही मिलती थी। कारण, इस परिवार की अच्छी स्थिति के दिनो मे सभी आश्रितजनो ने आराम और आलस्य मे अपने दिन बिताये थे। चौधुरी-वंश के महावृक्ष के नीचे इन लोगों की सुख-शय्या के ऊपर अपने-आप छाया होती रही और पका फल अपने-आप इनके मुँह के पास आकर गिरता था—इसलिए इनमे से किसी को भी कुछ प्रयत्न नही करना पड़ा। आज इनसे किसी प्रकार के काम करने को कहने पर ये बड़े अपमान का अनुभव करते—और रसोई-घर का धुआँ लगते ही इनके सिर मे दर्द होने लगता, और चलने-फिरने मे न जाने कहाँ से ऐसी निगोड़ी गठिया की बीमारी आकर अभिभूत कर देती कि वैद्य के बहुमूल्य तेल से भी रोग का उपशमन होने मे न आता, इसके अतिरिक्त भवानीचरण कहते रहते थे कि आश्रय के बदले मे आश्रितो से काम लिया जाय तो वह चाकरी कराना हुआ—उससे तो आश्रयदान का मूल्य ही चला जाता है—चौधुरियों के परिवार में ऐसा नियम नही है।

अतएव सारा भार रासमणि के ही ऊपर था। दिन-रात अनेक युक्तियो और परिश्रमो द्वारा इस परिवार के समस्त अभावो को चुपचाप मिटाकर चलना पड़ता। इसी तरह दिन-रात दैन्य के साथ संग्राम करके, खीचातानी करके, मोलभाव करके काम चलाना मनुष्य को बहुत कठोर बना देता है—उसकी कमनीयता चली जाती है। जिनके लिए वह पग-पग पर मरता-खपता रहता है, वे ही उसे सहन नही कर पाते। रासमणि केवल रसोईघर मे भोजन पकाती हो ऐसा नही था, भोजन-सामग्री को जुटाने का भार भी बहुत-कुछ उन्ही के ऊपर था—लेकिन उसी अन्न का सेवन करके मध्याह्न मे जो सोते वे प्रतिदिन उस अन्न की भी निन्दा करते, और अन्न-दाता की भी प्रशसा नही करते थे।

केवल घर का ही काम नही, ताल्लुके की जो थोड़ी-बहुत मिल्कियत अभी बाकी थी उसका हिसाब-किताब देखना, लगान अदायगी की व्यवस्था करना, सब-कुछ रासमणि को करना पडता। वसूली आदि के सम्बन्ध में इतनी खीच-तान पहले कभी नही थी—भवानीचरण का रुपया अभिमन्यु से ठीक उल्टा था, वह बाहर

से नही देखती थी। अपने पति के सम्बन्ध मे वे सोचती, 'वेचारा क्या करे, उसका क्या दोष, वह वडे आदमी के घर मे जन्मा है—उसके लिए और उपाय ही क्या है!' इस कारण, उनके पति किसी प्रकार का कष्ट स्वीकार करे, इसकी वे आशा ही नही कर सकती थी। इसलिए हजारो अभावो के रहते हुए भी वे अपनी प्राणपण शक्ति से पति के लिए सारी आवश्यक वस्तुएँ यथासम्भव इकट्ठी कर देती। उनके घर मे वाहरी आदमियो के लिए खूब कड़ा हिसाव था, किन्तु भवानीचरण के आहार-व्यवहार मे भरसक पुराने नियमो मे तनिक भी व्यतिक्रम न होने पाता। नितान्त खीचातानी के दिन यदि किसी चीज की कोई विशेष कमी रह जाती तो वह केवल अभाव के कारण ही हो गई है, इस वात को वे किसी भी तरह पति को न जानने देती—कदाचित् कहती, "अरे! मरे कुत्ते ने भोजन मे मुँह डालकर सव भ्रष्ट कर डाला!" और इस तरह अपनी कल्पित असावधानी को धिक्कारती। अथवा 'अभागे नोटो की गलती से नया खरीदा कपड़ा खो गया'—कहकर उसकी वुद्धि के प्रति घोर अश्रद्धा प्रकट करती—ऐसे अवसर पर भवानीचरण अपने प्रिय भृत्य का पक्ष लेकर गृहिणी के क्रोध से उसको वचाने के लिए व्यग्र हो उठते। यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि जो धोती न तो गृहिणी ने खरीदी और न भवानीचरण ने आँखो से देखी और जिस काल्पनिक धोती को खो देने के कारण नटविहारी दोषी ठहराया गया—भवानीचरण ने प्रसन्नमुख स्वीकार कर लिया है कि उस धोती को नोटो ने चुनिया कर दिया था। उन्होने उसे पहना भी था और उसके वाद—उसके वाद क्या हुआ यह उनकी कल्पना-शक्ति मे नही आया—उसको स्वय पूरा करते हुए रासमणि ने कहा है—"निश्चय ही तुमने अपनी वाहरी वैठक मे छोड दी होगी वहाँ जो चाहे आता-जाता है, किसी ने चुरा ली होगी।"

भवानीचरण के लिए इस प्रकार की व्यवस्था थी। किन्तु अपने पुत्र को वे किसी भी मात्रा मे पति के समकक्ष नही समझती थी। वह तो उन्ही के गर्भ की सन्तान थी—फिर उसके लिए वावूपन कैसा! वह काम करने वाला मजवूत आदमी वनेगा—अनायास ही दुख सहन करेगा और परिश्रम करके खायगा। इसके विना उसका काम नही चलेगा, ऐसा न हुआ तो उसे अपमान झेलना पडेगा, इस प्रकार की वात किसी प्रकार शोभा नही दे सकती। कालीपद के लिए रासमणि ने मोटा-झोटा खाना-पहनना निश्चित कर दिया था। फरवी और गुड देकर उसे जलपान कराती और सिर-कान ढँककर रुई का सलूका पहनाकर उसके शीत निवारण की व्यवस्था करती। शिक्षक महोदय को स्वय वुलवाकर उन्होने कह दिया था कि विशेष ध्यान देकर अनुशासन मे सयत रखकर शिक्षा दी जाय, जिससे पढ़ाई-लिखाई मे वह किसी तरह की शिथिलता न कर सके।

अव एक वड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। निरीह स्वभाव भवानीचरण वीच-वीच मे विद्रोह के लक्षण प्रकट करने लगे, किन्तु रासमणि ने मानो उनको देखकर भी न देखा। प्रवल पक्ष से भवानी सदा ही हार मानते आ रहे थे, इस वार भी उनको वाध्य होकर हार माननी पड़ी, किन्तु मन से उनका विद्रोह-भाव नही मिटा। इस परिवार का लड़का दुलाई ओढे तथा फरवी खाय, ऐसा असंगत दृश्य कैसे देखा जा सकता है!

दुर्गा-पूजा के समय उन्हे याद आता, मालिकों के राज में नई सज-धज के साथ वे किस प्रकार उत्सव का अनुभव करते थे। दुर्गा-पूजा के दिन रासमणि ने कालीपद के लिए जिन सस्ते कपडो की व्यवस्था की थी वीते ज़माने मे उनके घर के नौकर भी उस पर आपत्ति करते। रासमणि पति को समझाने का अनेक प्रकार से प्रयत्न करती कि "कालीपद को जो दिया जाता है उसीसे वह प्रसन्न होता है। वह पुराने दस्तूर की वात विलकुल नही जानता—तुम क्यो व्यर्थ ही मन भारी करते हो?" किन्तु, भवानीचरण यह किसी प्रकार नही भूल पाते थे कि वेचारा कालीपद अपने वंश का गौरव नही जानता इसीसे उसको ठगा जा रहा है। वस्तुत. मामूली उपहार पाकर जव गर्व और आनन्द से नाचता हुआ वह दौड़कर उनको दिखाने आता तो उससे भवानीचरण को मानो और भी आघात पहुँचता। वे इसे किसी भी तरह न देख पाते थे। उन्हे मुँह फेरकर चले जाना पड़ता।

भवानीचरण का मुकद्दमा शुरू होने के वाद से उनके गुरु महाराज के घर मे वहुत-कुछ धन की प्राप्ति हुई है। इतने से ही सन्तुष्ट न रहकर गुरुपुत्र प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा के कुछ पहले कलकत्ता से नाना प्रकार की नेत्राकर्षक सस्ती शौकीनी चीज़े मँगवाकर कई महीने तक व्यवसाय चलाते रहते। छिपी स्याही, वन्सी (मछली मारने का यत्र), छड़ी-छातो का एकत्र संग्रह, चिट्ठी का सचित्र कागज, नीलाम मे खरीदा अनेक रगो का सडा रेशम और साटन का थान, कविता लिखी किनारी वाली साडी आदि के द्वारा वे गाँव के स्त्री-पुरुषों का मन चलायमान कर देते। कलकत्ता के वावू लोगो के घरो मे आजकल उन सारी चीजो के विना शिष्टाचार की रक्षा नही होती—ऐसा सुनकर गाँव का उच्चाभिलाषी हरेक आदमी अपने देहातीपन को मिटाने के लिए सामर्थ्य से वाहर खर्च किये विना न रहता।

एक वार वगलाचरण एक वड़ी ही अद्भुत मेम की मूर्ति लाए थे। उसमे किसी एक जगह चाभी भरने से मेम कुरसी से उठकर खड़ी होकर तेज़ी से अपने ऊपर पखा झलने लगती।

पंखा झलने मे निपुण गरमी से भयभीत इस मेम की मूर्ति के प्रति कालीपद

के मन मे बड़ा लोभ पैदा हुआ। कालीपद अपनी माँ को अच्छी तरह जानता था, इसीलिए माँ से कुछ न कहकर उसने भवानीचरण के सम्मुख करुण स्वर मे आवेदन प्रस्तुत किया। तत्काल भवानीचरण ने उदारता के साथ उसे आश्वस्त किया, किन्तु उसका मूल्य सुनकर उनका मुँह सूख गया।

रासमणि ही रुपया-पैसा वसूल करती थी, जमा भी उन्हीके पास रहता था, खर्च भी उन्ही के हाथो होता था। भवानीचरण भिखारी की भाँति अपनी अन्नपूर्णा के दरवाजे पर जाकर उपस्थित हुए। शुरू मे अप्रासगिक बातो की विस्तार से चर्चा करके अन्त मे एकाएक धाँय से अपने मन की इच्छा कह डाली।

रासमणि ने अत्यन्त सक्षेप मे कहा, "पागल हुए हो।"

भवानीचरण चुप होकर कुछ देर सोचने लग गए। उसके बाद हठात् बोल उठे, "अच्छा देखो, रोज भात के साथ तुम मुझे जो घी और खीर देती हो, उसकी क्या जरूरत है।"

रासमणि बोली, "क्यो, जरूरत क्यो नही है।"

भवानीचरण ने कहा, "वैद्यजी कहते हैं, उससे पित्त बढ जाता है ?"

उग्र भाव से सिर हिलाते हुए रासमणि ने कहा, "तुम्हारा वैद्य तो सब जानता है !"

भवानीचरण ने कहा, "मैं तो कहता हूँ, रात को मेरे लिए पूडियाँ बन्द करके भात की व्यवस्था कर दो तो अच्छा होगा। पूड़ियो से पेट भारी रहता है।"

रासमणि ने कहा, "पेट भारी होने से आज तक तो तुम्हे कोई नुकसान होते नही देखा। जन्म से पूडी खाकर ही तो तुम बड़े हुए हो।"

भवानीचरण सब प्रकार का त्याग स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत थे—किन्तु, उस ओर बड़ी कडाई थी। घी की दर बढ रही थी तो भी पूडियों की सख्या ठीक पहले-जैसी ही थी। मध्याह्न-भोजन मे जब खीर रहती तो दही न देने से कोई क्षति न होती—किन्तु, अनावश्यक होने पर भी इस घर मे बाबू लोग बराबर दही-खीर खाते रहे थे। एक भी दिन भवानीचरण के भोग मे उस चिरन्तन दही का व्यतिक्रम देखना रासमणि किसी भी प्रकार सहन नही कर पाती थी। अतएव देह पर पखा झलती वह मेम की मूर्ति भवानीचरण के दही-खीर, घी-पूडी के किसी छिद्र-पथ मे प्रवेश कर सके इसका कोई उपाय नही दिखा।

भवानीचरण एक दिन बिलकुल अकारण ही अपने गुरुपुत्र के निवास-स्थान पर गए और अनेक अप्रासंगिक बातचीत के बाद उन्होने उस मेम की चर्चा छेड दी। उनकी वर्तमान आर्थिक दुर्गति की बात बगलाचरण से छिपी रहने का कोई कारण नही था, यह वे जानते थे; तो भी आज उनके पास रुपया न होने के कारण

यह एक साधारण खिलौना अपने लड़के के लिए नहीं खरीद सकते, इस बात का आभास देने मे भी मानो उनका सिर कटा जा रहा हो। फिर भी विषम संकोच को दबाकर उन्होंने अपनी चादर में से कपड़े में लिपटा हुआ एक बूटेदार पुराना कीमती शाल बाहर निकाला। अवरुद्ध स्वर मे कहा, "समय कुछ खराब आ गया है, नकद रुपया हाथ मे बहुत नही है—इसलिए सोचा है कि इस शाल को तुम्हारे यहाँ गिरवी रखकर कालीपद के लिए वह गुडिया ले जाऊँगा।"

उस शाल की अपेक्षा यदि कम कीमत की कोई वस्तु होती तो बगलाचरण हिचकता नही—किन्तु वह जानता था, इसे वह हज़म नही कर सकेगा—गांव के लोग तो निन्दा करेगे ही, तिस पर रासमणि की रसना से जो बातें निकलेंगी वे भी सरस नही होगी। शाल को दुबारा चादर मे छिपाकर हताश होकर भवानी-चरण को लौटना पडा।

कालीपद रोज पिता से पूछता, "पिताजी, मेरी उस मेम का क्या हुआ ?"

भवानीचरण रोज ही हँसकर कहते, "ठहरो—जल्दी क्या है ? पहले सप्तमी पूजा का दिन तो आये।"

प्रतिदिन प्रयत्न करके मुँह पर हँसी लाना निरन्तर कठिन होने लगा।

उस दिन चतुर्थी थी। कोई बहाना बनाकर भवानीचरण असमय घर के अन्दर गए। सहसा मानो किसी बात के प्रसंग मे रासमणि से बोल उठे, "देखो, मैं कई दिन से ध्यान से देख रहा हूँ, कालीपद की तबियत जैसे दिन-ब-दिन खराब होती जा रही हो।"

रासमणि ने कहा, "राम ! राम ! खराब क्यों होगी भला ? उसकी तबियत मे तो मुझे कोई गडबडी नही दिखाई देती।"

भवानीचरण ने कहा, "देखते नही ! चुपचाप बैठा रहता है। न जाने क्या सोचता रहता है।"

रासमणि ने कहा, "अगर वह एक पल भी चुप बैठ सकता तो मेरी तो जान बचती। वह और चिन्ता ! कब क्या ऊधम करना होगा, वह यही बात सोचता रहता है।"

इस ओर से दुर्ग-प्राचीर में कोई दुर्बलता नही दिखी—पत्थरो पर गोले का दाग भी नही पडा। निश्वास छोडकर सिर पर हाथ फेरते हुए भवानीचरण बाहर चले गए। कमरे के बरामदे मे अकेले बैठकर खूब जमकर हुक्का पीने लगे। पचमी के दिन उनकी पत्तल मे दही खीर यो ही पड़े रहे। सन्ध्या-समय केवल एक सन्देश खाकर पानी पी लिया, पूड़ी छू भी नही पाये। बोले, "भूख जरा भी नही है।"

इस वार दुर्ग के प्राचीर मे एक वड़ा सूराख दिखा। षष्ठी के दिन रासमणि ने स्वय कालीपद को अकेले मे बुलाकर उसको स्नेह-सूचक नाम से पुकारकर कहा, "भेटु, तुम्हारी इतनी उमर हो गई, तो भी तुम्हारा वच्चो की तरह मचलना नही गया! छि! छि! जिसे पाना संभव नही है उसके लिए लालच करना आधी चोरी करना है, यह जानते हो।"

कालीपद ने नकियाकर कहा, "मैं क्या जानूँ? पिताजी ने ही कहा है कि वह मुझे देंगे।"

पिताजी के कथन का क्या अर्थ था, रासमणि कालीपद को समझाने वैठी। पिता की इस वात मे कितना स्नेह और कितनी वेदना है फिर भी अगर यह चीज देनी पडी तो उनके दरिद्र घर की कितनी क्षति होगी, कितना दु ख होगा, यह विस्तार से समझाया। इस तरह रासिमणि ने कालीपद को कभी भी कुछ नही समझाया था--वे जो करती, अत्यन्त संक्षेप मे और जोर के साथ करती—किसी भी आदेश को नरम वनाने की उन्हे आवश्यकता ही न होती, इसलिए जव कालीपद की आज उन्होने इतनी मिन्नत की, इतने विस्तार से वाते की तो वह चकित हो गया और माता के हृदय मे कही एक स्थान पर कितनी सवेदना है वालक होने पर भी वह इसे एक तरह से समझ गया। किन्तु, मेम की ओर से एक क्षण के लिए भी मन को हटाना कितना कठिन था, यह प्रौढ पाठको को समझने मे कठिनाई नही होगी। अत कालीपद अत्यन्त गम्भीर मुँह वनाकर एक सीक लेकर जमीन पर लकीर खीचने लगा।

तव रासमणि फिर कठोर हो उठी। कठोर स्वर मे वोली, "तुम चाहे गुस्सा हो जाओ, चाहे रोओ-पीटो, जो मिलने का नही है वह किसी भी प्रकार नही मिलेगा।"

यह कहकर वे व्यर्थ मे और समय नष्ट न करके तेजी से घर का काम करने चली गई। कालीपद वाहर चला गया। उस समय भवानीचरण अकेले वैठे हुक्का पी रहे थे। कालीपद को दूर से देखते ही चटपट उठकर जैसे कोई विशेष काम हो, ऐसा दिखाकर वे कही चल दिए। कालीपद ने दौड़ते हुए आकर कहा, "पिताजी, मेरी वह मेम...?"

आज भवानीचरण के मुँह पर हँसी नही दिखी, कालीपद को गले से लगाकर वोले, "ठहरो वेटा, मुझे एक काम है—कर आऊँ, फिर सारी वाते होगी।"—कहते हुए वे घर से वाहर निकल गए। कालीपद को लगा, जैसे चटपट उन्होने अपनी आँखो से आँसू पोछ लिये हो। उस समय मुहल्ले के एक घर मे उत्सव के लिए शहनाई की जाँच-परख करके वयाना दिया जा रहा था। शहनाई

के प्रातःकालीन करुण स्वर से शरद ऋतु की नई धूप मानो प्रच्छन्न अश्रुभार से व्यथित हो उठी थी। कालीपद अपने घर के दरवाजे के पास खड़ा होकर चुपचाप रास्ते की ओर देखता रहा। उसके पिता कही किसी काम से नही जा रहे थे—यह उनकी चाल से ही दिख रहा था—उनके पैर ऐसे पडते थे मानो नैराश्य का बोझ लादे चले जा रहे हो और उसे उतारने का कही स्थान न पा रहे हो, यह उनके पीछे से भी स्पष्ट दिख रहा था।

कालीपद ने अन्त पुर मे लौटकर कहा, "माँ, मुझे वह पंखा डुलाती हुई मेम नही चाहिए।"

माँ उस समय सरौता लेकर जल्दी-जल्दी सुपारी काट रही थी। उनका मुख प्रसन्न हो उठा। वही बैठे-बैठे माँ और बेटे मे क्या सलाह हो गई, यह कोई भी नही जान पाया। सरौता रखकर डलिया-भर कटी-अनकटी सुपारियाँ छोडकर रासमणि उसी समय बगलाचरण के घर चली गईं।

भवानीचरण को घर लौटने मे आज बहुत देरी हुई। स्नान करके जब वे भोजन करने बैठे तो उनका मुँह देखकर लगा, आज भी दही-खीर की सद्गति नही होगी, यही नही आज मछली के पूरे-के-पूरे सिर से बिल्ली का भोग लगेगा। तभी रासमणि ने डोरी से बँधा कागज का एक डिब्बा अपने पति के सामने लाकर उपस्थित किया। भोजन के पश्चात् भवानीचरण जब विश्राम करने जायँगे तभी इस रहस्य का वे उद्घाटन करेगी, रासमणि की यही इच्छा थी, किन्तु दधि, खीर और मछली के सिर का अनादर दूर करने के लिए उसे उसी समय निकालना पड़ गया। डिब्बे के भीतर से मेम की वह मूर्ति बाहर निकलकर अविलम्ब प्रबल उत्साह से ग्रीष्म-ताप निवारण मे लग गई। बिल्ली को आज हताश होकर लौटना पडा। भवानीचरण ने पत्नी से कहा, "आज भोजन बहुत उत्तम बना है। बहुत दिन से मछली का ऐसा झोल नही खाया। और, दही कितनी बढिया जमा है, उसकी क्या तारीफ करूँ।"

सप्तमी के दिन कालीपद ने बडे दिनो की आकाक्षा का धन प्राप्त किया। उस दिन दिन-भर उसने मेम का पखा डुलाना देख अपने समवयस्क बन्धु-बान्धवो को दिखाकर उनकी ईर्ष्या उकसाई। यदि कोई और स्थिति होती तो वह हर समय इस गुडिया के निरन्तर समान रूप से पखा डुलाते रहने से अवश्य ही एक ही दिन में ऊब जाता—किन्तु यह जानकर कि अष्टमी के ही दिन प्रतिमा का विसर्जन कर देना पड़ेगा, उसका अनुराग अटल बना रहा। अपने गुरुपुत्र को दो रुपये नकद देकर रासमणि केवल एक दिन के लिए इस गुडिया को भाड़े पर ले आई थी। अष्टमी के दिन लम्बी साँस लेकर कालीपद अपने हाथ से डिब्बे समेत गुड़िया

बगलाचरण को लौटा आया। इस एक दिन के मिलन की सुख स्मृति उसके मन में बहुत दिनो तक जागरूक बनी रही; उसके कल्पना-जगत् में पंखा चलना कभी बन्द नही हुआ।

अब से कालीपद माता की मन्त्रणा का साथी हो गया और अब से प्रतिवर्ष भवानीचरण कालीपद को इतनी आसानी से पूजा का ऐसा मूल्यवान उपहार दे पाते कि वे स्वयं आश्चर्यचकित हो जाते।

बिना मूल्य दिये संसार में कुछ भी नही मिलता और वह मूल्य दुःख का मूल्य है, माता का अन्तरंग बनकर यह बात कालीपद प्रतिदिन जितना ही समझ पाता, देखते-देखते वह मानो भीतर से उतना ही प्रौढ होने लगा। अब वह सभी कामों मे अपनी माता का दाहिना हाथ हो गया था। संसार का भार वहन करना होगा, संसार का भार बढाना नही चाहिए—यह बात बिना उपदेश-वचनो के ही उसके रक्त मे समा गई।

जीवन का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए उसको तैयार होना पड़ेगा, यह बात स्मरण करके कालीपद प्राणपण से पढने लगा। छात्र-वृत्ति की परीक्षा मे उत्तीर्ण होने पर जब उसे छात्रवृत्ति मिली तब भवानीचरण ने सोचा कि और ज्यादा पढने-लिखने की जरूरत नही है, अब कालीपद को अपनी जमीन-जायदाद की देख-भाल मे लगना चाहिए।

कालीपद ने आकर माँ से कहा, "कलकत्ता जाकर पढ़े-लिखे बिना मैं आदमी नही बन सकता।"

माँ ने कहा, "सो तो है ही बेटा, कलकत्ता तो जाना ही होगा।"

कालीपद ने कहा, "मेरे लिए कोई खर्च नही करना पड़ेगा। छात्र-वृत्ति से ही काम चला लूँगा—और भी कुछ काम-काज जुटा लूँगा।"

भवानीचरण को राज़ी कराने मे बहुत कष्ट उठाना पड़ा। देख-भाल के लायक कुछ भी तो जमीन-जायदाद नही है, यह बात कहने पर भवानीचरण बहुत दुःख का अनुभव करते, इससे रासमणि को यह युक्ति दबा देनी पड़ी। उन्होने कहा, "कालीपद को आदमी तो बनना है।" किन्तु वंश-परम्परानुसार शानियाड़ी के बाहर गए बिना ही तो चौधरी लोग इतने दिनो तक आदमी बनते आए थे। विदेश से वे यमपुरी की भाँति डरते थे। कालीपद जैसे बालक को अकेला कलकत्ता भेजने का प्रस्ताव किसी के दिमाग मे आ ही कैसे सकता है, यह वे सोच भी न सके। अन्त मे गाँव के सर्वप्रधान बुद्धिमान व्यक्ति बगलाचरण तक ने रासमणि के पक्ष में मत दिया। उसने कहा, "कालीपद एक दिन वकील होकर उस वसीयतनामे की चोरी के धोखे का बदला चुकायगा, निश्चय ही यह उसके भाग्य मे लिखा है—

अतएव कलकत्ता जाने से उसे कोई नही रोक सकता।"

यह वात सुनकर भवानीचरण को वडी सान्त्वना मिली। गमछे में वँधे सारे पुराने कागज-पत्र निकालकर वसीयतनामे की चोरी के वारे मे वार-वार कालीपद से चर्चा करने लगे। माता के मन्त्री का काम तो कालीपद अभी तक खूब चतुराई से चला रहा था, किन्तु पिता की मन्त्रणा-सभा मे उसका जोर नही चला। क्योंकि, अपने परिवार के प्रति इस पुराने अन्याय के सम्वन्ध मे उसके मन मे पर्याप्त उत्तेजना नही थी। तो भी उसने पिता की वात का समर्थन किया। सीता का उद्धार करने के लिए वीर श्रेष्ठ राम ने जिस प्रकार लंका की यात्रा की थी, कालीपद की कलकत्ता-यात्रा को भी भवानीचरण ने उसी प्रकार खूब वढा करके देखा—वह केवल सामान्य परीक्षा उत्तीर्ण करने की वात नही थी—घर की लक्ष्मी को घर लौटाने का आयोजन था।

कलकत्ता जाने के पहले दिन रासमणि ने कालीपद के गले में एक रक्षा-कवच वाँध दिया, और उसके हाथ मे पचास रुपये का नोट देते हुए कहा, "इस नोट को संभालकर रखना, आपद्-विपद् मे आवश्यकता पड़ने पर काम आएगा।" गृहस्थी के खर्च से वहुत कष्टपूर्वक जमा किये हुए इस नोट को कालीपद ने यथार्थ पवित्र कवच के समान मानकर ही ग्रहण किया—'माता के आशीर्वाद के समान इन नोटो की वह सदा रक्षा करेगा, कभी खर्च नही करेगा,' मन-ही-मन उसने यह संकल्प किया।

: ३ :

भवानीचरण के मुँह से वसीयतनामे की चोरी की वात अव उतनी नही सुनाई पडती। अव उनकी आलोचना का एक मात्र विषय था, कालीपद। उसी की वात कहने के लिए वे अव सारे मुहल्ले मे घूमते-फिरते थे। उसकी चिट्ठी मिलने पर घर-घर उसे पढकर सुनाने की लालसा मे नाक से चश्मा ही नही उतरना चाहता था। इसके पहले उनके वश मे कभी कोई कलकत्ता नही गया था इसलिए कलकत्ता के गौरव-वोध से उनकी कल्पना अत्यन्त उत्तेजित हो उठी। हमारा कालीपद कलकत्ता मे पढता है एव कलकत्ता की कोई भी वात उनसे छिपी नही है—यहाँ तक कि हुगली के पास गगा का एक और पुल वनाया जा रहा है, ये सारी वडी-वडी खवरे उनके लिए विलकुल घरेलू वातो-जैसी थी। "सुना है, भाई! गंगा के ऊपर एक और पुल वनाया जा रहा है—आज ही कालीपद की एक चिट्ठी मिली है, उसमे पूरा समाचार लिखा है।" कहकर चश्मा खोलकर उसके काँच को अच्छी तरह पोछकर वड़ी आहिस्ता-आहिस्ता चिट्ठी आद्योपान्त पढ़कर पड़ोसी को

सुनाई। "देखा भैया ! कालान्तर मे न जाने क्या-क्या होने वाला है, कोई ठिकाना है ! आखिर ऐसा भी दिन कभी आयगा जव धूल-भरे पैरो से गंगा के ऊपर से कुत्ते, सियार आदि भी पार हो जायेंगे, कलियुग मे वात यहाँ तक पहुँच गई जी।" गंगा के माहात्म्य को इस प्रकार कम करना निस्संदेह शोचनीय वात थी, किन्तु कालीपद ने कलिकाल की एक इतनी वडी जय-वार्त्ता लिपिवद्ध करके उनके पास भेजी थी और गाँव के अत्यन्त अनभिज्ञ लोग इस समाचार को उसी के कारण जान सके है, इस आनन्द मे वे वर्तमान युग मे जीवों की असीम दुर्गति की दुश्चिन्ता भी अनायास ही भूल गए। जिस को देखा उसी से उन्होने सिर हिलाकर कहा, "मैं कहे देता हूँ, गगा और ज्यादा दिन नही रहने की। मन-ही-मन यह आशा कर रहे थे कि गंगा जव भी जाने की तैयारी करेगी तभी उसका समाचार सवसे पहले कालीपद की चिट्ठी से ही मिलेगा।"

इधर कलकत्ता मे कालीपद वडे कष्ट से पराये घर रहकर लड़को को पढाकर रात को वहीखाते की नकल करके पढाई चलाने लगा। किसी प्रकार एन्ट्रेस परीक्षा पास करने पर उसे फिर से छात्र-वृत्ति मिल गई। इस अनोखी घटना के उपलक्ष्य मे सारे गाँव के लोगो को एक वडा भोज देने के लिए भवानीचरण उद्विग्न हो उठे। उन्होंने सोचा कि नाव तो प्राय· किनारे आकर लग गई है—इस साहस के वल पर अव से मन खोलकर खर्च किया जा सकता है। रासमणि से कोई प्रोत्साहन न पाने से कारण भोज रुका रहा।

इस वार कालीपद ने कॉलेज के पास एक मेस मे आश्रय पाया। मेस के अधिकारी ने उसे निचले तल्ले के एक काम में न आ सकने वाले कमरे मे रहने की अनुमति दे दी। कालीपद घर पर उनके लड़के को पढाकर दोनो समय भोजन पाता और मेस के उस सीले अँधेरे कमरे मे उसका निवास था। कमरे की एक सवसे वडी सुविधा यह थी कि वहाँ कालीपद का कोई साझीदार नही था। अतएव, यद्यपि वहाँ हवा नही पहुँचती थी तो भी पढाई-लिखाई निर्विघ्न चलती। जो भी हो, सुविधा-असुविधा का विचार करने लायक कालीपद की स्थिति नही थी।

इस मेस मे जो लोग भाडा देकर रहते थे, विशेष करके जो दूसरी मंजिल पर उच्चलोक मे रहते थे उनके साथ कालीपद का कोई सम्पर्क नही था। किन्तु, सम्पर्क न रहने पर भी सघर्ष से वचा नही जा सकता। ऊँचे का वज्राघात नीचे वालो के लिए कितना प्राणघातक होता है, कालीपद को यह समझते देर न लगी।

इस मेस के उच्चलोक मे जो इन्द्र के सिंहासन पर था, उसका परिचय आवश्यक है। उसका नाम था शैलेन्द्र। वह वड़े आदमी का लड़का था; कॉलेज में

पढते समय उसके लिए मेस मे रहना अनावश्यक था—तो भी उसे मेस मे ही रहना अच्छा लगता था।

उसके वृहत् परिवार मे से कई स्त्री और पुरुष आत्मीय लोगों को कलकत्ता लाकर एक किराए के मकान मे रहने के लिए घर से अनुरोध किया गया था—वह इसके लिए किसी भी प्रकार राजी नही हुआ।

उसने कारण बताया था कि घर के लोगो के साथ रहने पर उसकी पढाई-लिखाई कुछ भी नही हो पायेगी। किन्तु असल कारण यह नही था। शैलेन्द्र को लोगो की सगत खूब अच्छी लगती; किन्तु आत्मीय लोगों से कठिनाई यह थी कि सिर्फ उनके साथ रह लेने से ही तो मुक्ति नही मिल सकती थी। उनकी तरह-तरह की जिम्मेदारियाँ भी ओढनी पड़ती—अमुक के साथ यह नही करना चाहिए, अमुक के संबंध मे वह न करना अत्यन्त बुरी बात होगी। इसी कारण शैलेन्द्र के लिए सबसे बढकर सुविधापूर्ण जगह थी मेस। वहाँ आदमी तो थे काफी, फिर भी उसके ऊपर उनका कोई भार नही था। आते-जाते थे, हँसते थे, बातें करते थे, वे नदी के जल के समान थे, जो बस बहता चला जाता है और कही भी लेश-मात्र छिद्र नही छोडता।

शैलेन्द्र की धारणा थी कि वह आदमी अच्छा है जिसको सहृय कहते हैं। सभी जानते हैं कि इस धारणा की सबसे बड़ी सुविधा यह है कि इसे अपने साथ बनाए रखने के लिए भला आदमी होने की कोई आवश्यकता नही होती। अहंकार नाम की चीज हाथी-घोड़े की भाँति नही होती; उन बहुत ही थोडे खरचे पर बिना खुराक के खूब मोटा करके रखा जा सकता है।

किन्तु, शैलेन्द्र मे खर्च करने की सामर्थ्य भी थी और प्रवृत्ति भी—इसलिए वह अपने अहंकार को तनिक भी खर्च किये बिना चरकर खाने नही देता था—कीमती खूराक देकर उसे सुन्दर सुसज्जित करके रखता था।

वस्तुत शैलेन्द्र के मन मे दया काफी थी। लोगो का दुःख दूर करना उसे वास्तव मे अच्छा लगता था। किन्तु, इतना अच्छा लगता कि यदि कोई दुःख दूर कराने के लिए उसकी शरण मे न आता तो वह उसे विधिपूर्वक दुःख दिये बिना नही छोडता था। उसकी दया जब निर्दय हो उठती तब बडा भीषण रूप धारण कर लेती।

मेस के लोगो को थिएटर दिखाना, बकरे का माँस खिलाना, रुपया उधार देकर उसकी बात हमेशा याद न रखना—उसके द्वारा प्राय ही घटित होता। नवपरिणीत मुग्ध युवक पूजा की छुट्टी मे घर जाते समय कलकत्ता के निवास का व्यय पूरा चुकाकर जब धनहीन हो जाता तब वधू से मन को लुभाने मे उपयोगी

फैन्सी साबुन और एसेन्स, और उसी के साथ हाल मे आई हुई नई विलायती छीट की एक-आध जाकेट जुटाने के लिए उसे बहुत अधिक दुश्चिंता मे न पड़ना पड़ता। शैलेन्द्र की सुरुचि पर पूर्ण निर्भर होकर वह कहता, "पर भाई, पसन्द तुम्ही को करनी पड़ेगी।" दुकान पर उसे साथ लिये जब वह खुद अत्यन्त सस्ती और खराब चीज़ छाँटता, तब शैलेन्द्र उसे डाँटकर कहता, "अरे छिः-छि तुम्हारी पसन्द भी कैसी है?"—और सबसे फैन्सी चीज उठा लेता। दुकानदार आकर कहता, "हाँ, चीज़ तो यह पहचानते है।" मूल्य की बात की चर्चा से खरीददार के मुख पर चिंता आते ही शैलेन्द्र दाम चुकाने का अकिञ्चन भार स्वयं लेता—दूसरे पक्ष के बार-बार आपत्ति करने पर भी कान न देता।

इस प्रकार जहाँ शैलेन्द्र था, वहाँ वह अपने चारो ओर के सभी लोगो का सभी बातो मे अवलम्बस्वरूप बन गया था। यदि कोई उसका आश्रय स्वीकार न करता तो उसके उस औद्धत्य को वह किसी भी प्रकार सहन न कर पाता। लोगो का हित करने का उसे ऐसा ही प्रबल शौक था।

बेचारा कालीपद नीचे के सीले कमरे मे फटी बनियान पहने मैली चटाई पर पर बैठा पुस्तको के पन्नों पर आँखे गड़ाए झूम-झूमकर पाठ याद करता रहता। जैसे भी हो उसे स्कॉलरशिप पाना ही होगा।

कलकत्ता आने के पहले माता ने उसे अपने सिर की सौगध देकर कहा था कि वह बडे आदमियो के लडकों के साथ हेल-मेल बढाकर कही आमोद-प्रमोद मे मतवाला न हो जाय। माता का आदेश होने के कारण ही नही, कालीपद को जो दैन्य स्वीकार करना पड़ा था उसकी रक्षा करते हुए बड़े आदमियों के लडकों के साथ मिलना उसके लिए असम्भव था। वह कभी भी शैलेन्द्र के पास न फटकता—और यद्यपि वह जानता था कि शैलेन्द्र का मन जीतने पर उसकी प्रतिदिन की अनेक दुरूह समस्याएँ क्षण-भर मे आसान बन सकती है, फिर भी कभी किसी कठिन सकट मे भी कालीपद उसके प्रसाद-लाभ के लोभ से आकर्षित नही हुआ। वह अपना अभाव सँजोए अपने दारिद्र्य के निभृत अधकार मे दुबका पडा रहता।

गरीब होकर भी दूर रहे, शैलेन इस अहकार को किसी भी प्रकार सहन नही कर सका। इसके अतिरिक्त भोजन, वस्त्र मे कालीपद का दारिद्र्य इतना प्रत्यक्ष था कि वह आँखो को अत्यन्त अखरता था। जब भी दोतल्ले की सीढी चढ़ते उसके अत्यन्त फटे-पुराने कपड़े-लत्ते और मसहरी-बिछौना निगाह मे पड़ते तभी वह मानो एक अपराध की भाँति मन मे खटकता। इसके अतिरिक्त, उसके गले मे तावीज लटकता रहता और वह दोनो समय यथाविधि संध्या-वंदन करता।

उसकी यह सब विचित्र ग्राम्यता ऊपर के दल के लिए अत्यन्त हास्यप्रद थी। शैलेन्द्र के पक्ष के एक-दो व्यक्ति इस एकांतवासी निरीह आदमी के रहस्य का उद्‌घाटन करने के लिए दो-चार दिन उसके कमरे मे भी आये-गए। किन्तु वे इस लज्जाशील आदमी का मुँह न खुलवा सके। उसके कमरे मे ज्यादा देर बैठे रहना सुखकर तथा स्वास्थ्यकर तो था नही, इसलिए उठना पड जाता।

'यदि इस अकिंचन को एक दिन बकरे के मास की दावत मे बुलाया जाय तो वह अवश्य कृतार्थ होगा,' यह सोचकर कृपा करके उसे एक बार निमन्त्रण-पत्र भेजा गया। कालीपद ने कहला भेजा, भोज के भोज्य को सहना उसके लिए सभव नही है, उसका अभ्यास दूसरे प्रकार का है। इस प्रत्याख्यान से शैलेन्द्र और उसका दल अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

कुछ दिनों तक उसके ठीक ऊपर के कमरे मे ऐसे धमाधम शब्द और ज़ोर से गाना-बजाना चलता रहा कि कालीपद के लिए पढने में मन लगाना असभव हो गया। दिन के समय जब भी सभव होता वह गोलदिघी मे एक पेड़ के नीचे पुस्तक लेकर पढ़ा करता एव रात रहते ही उठकर बड़े सवेरे एक दीपक जलाकर अध्ययन मे लग जाता।

कलकत्ता के भोजन और निवास-स्थान के कष्ट तथा अति परिश्रम के कारण कालीपद को सिर-दर्द की बीमारी ने आ घेरा। कभी-कभी ऐसा होता कि तीन-चार दिन तक उसको पड़े रहना पड़ता। वह निश्चयपूर्वक जानता था, कि यह समाचार मिलने पर उसके पिता उसे कभी भी कलकत्ता मे नही रहने देगे और व्याकुल होकर शायद कलकत्ता तक दौड़े आयँगे। भवानीचरण समझते थे कि कलकत्ता मे कालीपद ऐसे सुख मे है जिसकी गाँव के लोगो के लिए कल्पना करना भी असभव है। देहात मे जिस प्रकार पेड़-पौधे, झाड़-झखाड़ अपने आप पैदा होते है, कलकत्ता की हवा सब तरह के आरामो के उपकरण मानो उसी तरह अपने-आप उत्पन्न होते है और सभी उनका फल भोग सकते है—ऐसी उनकी धारणा थी। कालीपद ने उनकी इस भ्राति को किसी भी प्रकार नष्ट नही किया। अस्वस्थता के अत्यन्त कष्ट के समय भी उसने एक दिन भी पिता को पत्र लिखना बन्द नही किया। किन्तु ऐसी पीड़ा के दिन शैलेन्द्र का दल जब ऊधम मचाकर भूतो का तमाशा करने लगता तो कालीपद के कष्ट की सीमा न रहती। वह खोली करवटे बदलता रहता और निर्जन कमरे मे पड़ा-पड़ा माता को पुकारता और पिता का स्मरण करता। इस तरह दरिद्रता का अपमान और दु.ख वह जितना भुगतता उतनी ही इसके बन्धन से अपने पिता-माता को मुक्त करने की उसकी प्रतिज्ञा उसके मन मे और भी दृढ होती जाती।

कालीपद ने अपने को समेटकर सबकी दृष्टि से बचाकर रखने की चेष्टा की, किन्तु उससे उत्पात तनिक भी कम न हुआ। एक दिन उसने देखा कि चीना बाजार से खरीदे गए उसके पुराने सस्ते जूतों की जोड़ी के एक जूते के बदले में एक अति सुन्दर विलायती जूता रखा था। इस प्रकार के अनमेल जूते पहनकर कॉलेज जाना असंभव ही था। उसने इस सम्बन्ध मे कोई शिकायत न करके वह पराया जूता कमरे के बाहर रख दिया और जूतों की मरम्मत करने वाले मोची से कम दाम पर पुराना जूता खरीदकर काम चलाने लगा। एक दिन ऊपर से एक लड़के ने अचानक कालीपद के कमरे मे आकर पूछा, "क्या आप भूले से मेरे कमरे से मेरा सिगरेट-केस ले आए है? मुझे कही मिल नही रहा है।" कालीपद ने खीझकर कहा, "मैं आप लोगो के कमरे मे नही गया।" "अरे! यह लो, यही तो है"—कहते हुए वह लडका कमरे के एक कोने से एक मूल्यवान सिगरेट-केस उठाकर बिना कुछ कहे ऊपर चला गया।

कालीपद ने मन-ही-मन निश्चय किया, 'अगर एफ० ए० की परीक्षा में अच्छी छात्र-वृत्ति पा जाऊँ तो इस मेस को छोडकर चला जाऊँगा।'

मेस के लडके प्रतिवर्ष मिलकर धूम-धाम से सरस्वती-पूजा करते थे। उसके व्यय का प्रधान अंश शैलेन्द्र वहन करता, किन्तु चन्दा सभी लडके देते। गतवर्ष अत्यन्त अवहेलना करके कालीपद के पास कोई चन्दा माँगने भी नही आया। इस वर्ष महज़ उसे तग करने के लिए उसके सामने चन्दे की कापी लाकर रख दी। जिस दल से कालीपद ने कभी भी कुछ भी सहायता नही ली थी, जिनके प्राय. नित्य मनाए जाने वाले आमोद-प्रमोद मे योग देने के सौभाग्य को उसने एकदम अस्वीकार कर दिया था, वे जब कालीपद के पास चन्दे की सहायता माँगने आए तो पता नही उसने क्या सोचकर पाँच रुपये दे डाले। पाँच रुपये शैलेन्द्र को अपने दल के किसी भी व्यक्ति से नही मिले थे।

कालीपद के दारिद्रय की कृपणता की अभी तक तो सभी उपेक्षा करते आये थे, किन्तु आज उसका यह पाँच रुपये का दान उनके लिए बिलकुल असह्य हो गया। "इसकी अवस्था जैसी है वह तो हमसे छिपी नही है, तब इसका इतना दिखावा किसलिए? मालूम होता है, सब पर तुरप लगाना चाहता है।"

सरस्वती-पूजा खूब धूमधाम से हुई—कालीपद ने जो पाँच रुपये दिये थे, ये न भी दिये होते तो भी कोई विशेष कमी न पड़ती। किन्तु कालीपद के पक्ष मे यह बात नही कही जा सकती। उसे पराये घर भोजन करना पडता—हमेशा समयानुसार भोजन भी न मिलता। इसके अतिरिक्त पाकशाला के भृत्य लोग ही

उसके भाग्यविधाता थे, अतएव भले-बुरे, कम-ज्यादा के विषय में कोई अप्रिय चर्चा न करके जलपान के लिए कुछ सम्बल उसे हाथ में रखना ही पड़ता। वही पूँजी गेंदे के फूलों के शुष्क स्तूप के साथ विसर्जित देवी प्रतिमा के पीछे अन्तर्धान हो गई।

कालीपद को सिर-दर्द की बीमारी बढ़ गई। इस बार की परीक्षा में वह फेल तो नहीं हुआ, किन्तु छात्र-वृत्ति न पा सका। इस कारण पढ़ने का समय कम करके उसे एक और ट्यूशन की व्यवस्था करनी पड़ी। और बहुत ज्यादा उपद्रव होने पर भी वह मुफ्त का निवास-स्थान न छोड़ सका।

ऊपर की मंजिल पर रहने वालों ने आशा की थी कि इस बार छुट्टियों के बाद निश्चित रूप से कालीपद इस मेस में लौटकर नहीं आयगा। किन्तु यथा-समय उसके उस नीचे के कमरे का ताला खुल गया। धोती के ऊपर वही अपना धारीदार पुराना चीनी कोट पहने कालीपद ने कोठरी में प्रवेश किया, एवं एक मैले कपड़े में बँधी बड़ी पोटली के साथ टीन का बक्स उतारकर रखने के बाद सियालदह के कुली ने उसके कमरे के सामने उकड़ूँ बैठकर काफी झगड़ा करके भाड़ा चुकवाया। इस पोटली में बहुत-सी छोटी-बड़ी हाँडी-सकोरों, कुल्हड़ों में कालीपद की माँ ने कच्चे आम, बेर, चालता आदि चीजों से बने अनेक प्रकार के मुखरोचक पदार्थ स्वयं तैयार करके रख दिए थे। कालीपद जानता था कि उसकी अनुपस्थिति में मजाक बनाने वाला ऊपरी मंजिल का दल उसके कमरे में प्रवेश करता था। उसे और कोई आशंका नहीं थी, बस इसी बात का बड़ा संकोच था कि कहीं उसके पिता-माता के स्नेह की को कोई निशानी इन हँसी उड़ाने वालों के हाथ में न पड़ जाय। उसकी माँ ने उसे खाने को जो चीजें दी थीं वे उसके लिए अमृत-तुल्य थीं— पर वे सभी उसके दरिद्र ग्रामीण-घर की स्नेह-सम्पत्ति ही थी। जिस पात्र में वे रखी थीं वह मैदा लगाकर चिपकाई सकोरे से ढँकी हाँडी थी उसमें भी शहर के वैभव का कोई चिह्न न था, न तो वह काँच का पात्र था, न चीनी मिट्टी का बरतन; किन्तु उन्हें कोई शहरी लड़का अवज्ञा भाव से देखे यह उसके लिए एकदम असह्य था। पहले वह अपनी इन सारी विशेष वस्तुओं को तखत के नीचे पुराने समाचार-पत्रादि से ढककर रखता था। इस बार ताले-चाभी का सहारा लिया। अगर वह पाँच मिनट के लिए भी कमरे से बाहर जाता तो कमरे में ताला बन्द करके जाता।

यह बात सबकी आँखों में खटकी। शैलेन्द्र बोला, "बड़ी भारी धन-सम्पत्ति है न! जिस कमरे में घुसने पर चोर की आँखों में भी पानी आ जाय—उसी कमरे में बार-बार ताला लगता है—देखता हूँ, एकदम दूसरा 'बैंक ऑफ बंगाल' हो

गया है। हम मे से किसी पर भी विश्वास नही—कही उस पवना की छीट के चीनी कोट का लोभ न सवरण कर पायँ! अरे राधू! उसको भले आदमियों के लायक एक नया कोट खरीदकर दिये विना तो किसी भी तरह नही चलेगा। हमेशा उसका वही एकमात्र कोट देखते-देखते मुझे ऊब हो गई है।"

शैलेन्द्र ने कालीपद के उस सीलन-भरे उखड़े चूने वाली दीवारो वाले अँधेरे कमरे मे कभी प्रवेश नही किया था। सीढियो से ऊपर चढते ममय वाहर से देखते ही उसका सारा शरीर संकुचित हो उठता। विशेपकर जव वह सन्ध्या के समय देखता, एक टिमटिमाता दीपक लिये कालीपद उस घुटन वाले वन्द कमरे मे नगे-वदन अकेला वैठा पुस्तक के ऊपर झुका पढाई कर रहा है, तव उसका दम घुटने लग जाता। दल के लोगो से शैलेन्द्र ने कहा, "इस वार कालीपद सात राजाओं का कौन-सा धन-वैभव हरकर ले आया है, जरा इसका पता चलाओ!"

इस कौतुक मे सवने उत्साह प्रकट किया।

कालीपद के कमरे का ताला वहुत ही कम दामो वाला ताला था, उसकी रोक वहुत मजवूत रोक नही थी; प्राय. सभी चावियो से वह खुल जाता। एक दिन सन्ध्या समय जव कालीपद लड़को को पढाने गया था, उसी वीच मे दो-तीन अत्यन्त आमोदप्रिय लड़को ने हँसते-हँसते ताला खोलकर हाथ मे एक लालटेन लिये उसके कमरे मे प्रवेश किया। तख्त के नीचे से आचार, चटनी, अमावट आदि के वरतनो को खोज निकाला, किन्तु, ये चीज़ें वहुमूल्य गोपनीय सामग्री हों, ऐसा उन्हे नही लगा।

खोजते-खोजते तकिए के नीचे से छल्लेसहित एक चावी मिली। उस चावी से टीन का वक्स खोलते ही कुछ मैले कपड़े, कितावे, कापी, कैंची, छुरी, कलम इत्यादि दिखे। वक्स वन्द करके वे जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि सारे कपड़े-लत्तो के नीचे रूमाल मे लिपटी कोई एक चीज़ वाहर निकली। रूमाल खोजते ही फटे कपडो का एक पुलिदा दिखाई पडा। उस पुलिदे को खोलने के वाद एक के वाद एक लगभग तीन-चार कागजो के आवरण उतार डालने पर पचास रुपये का एक नोट निकला।

इस नोट को देखकर फिर कोई अपनी हँसी नही रोक सका। वे हा-हा, करके उच्च स्वर मे हँस पडे। सव ने निश्चय किया कि इस नोट के लिए ही कालीपद वार-वार कमरे मे ताला लगाता है, दुनिया के किसी आदमी का विश्वास नही कर पाता। उसकी कृपणता और सन्देहशील प्रकृति पर शैलेन्द्र के प्रसाद-प्रत्याशी सहचरगण विस्मित हो उठे।

इसी समय सहसा लगा, मानो सडक पर कालीपद-जैसी किसी की खांसी

सुनाई पडी हो। तत्क्षण बक्स का ढक्कन बन्द करके नोट हाथ मे लिये वे ऊपर भाग गए। एक ने झटपट दरवाजे मे ताला लगा दिया।

शैलेन्द्र उस नोट को देखकर खूब हँसा। पचास रुपये शैलेन्द्र के लिए कुछ भी नही थे, फिर भी इतना रुपया कालीपद के बक्स मे है उसका व्यवहार देखकर कोई इसका अनुमान नही कर सकता था। तिस पर इस नोट के लिए इतनी सावधानी! सबने तय किया, देखा जाय इन रुपयो के खो जाने पर यह विचित्र व्यक्ति क्या काण्ड करता है!

लडके पढ़ाकर रात मे नौ के बाद थके हुए कालीपद ने कमरे की अवस्था पर तनिक भी ध्यान न दिया। विशेषकर उसका सिर मानो फटा जाता हो। समझ गया कि अब कुछ दिन उसके सिर की पीड़ा चलेगी।

दूसरे दिन उसने कपड़े निकालने के लिए तखत के नीचे से टीन का बक्स खींचा तो देखा, बक्स खुला हुआ है। यद्यपि कालीपद स्वभावत. असावधान नही था फिर भी उसको लगा शायद वह ताला लगाना भूल गया होगा। कारण, यदि कमरे मे चोर आता तो बाहर के दरवाज़े का ताला बन्द न रहता।

बक्स खोलकर देखा तो उसके कपडे-लत्ते सब उलट-पुलट गए थे। उसका हृदय हताश हो गया। जल्दी से सारी चीजे बाहर करके देखी, माता का दिया हुआ उसका वह नोट नही था। कागज और कपडे के पुलिन्दे थे। कालीपद ने सारे कपडों को बार बार जोर-जोर से झाडा, पर नोट नही निकला। उधर ऊपर की मंजिल के लोग एक-एक दो-दो करके मानो अपने काम से सीढियो से उतरकर उस कमरे की ओर दृष्टिपात करते हुए बार-बार चढने-उतरने लगे। ऊपर अट्टहास का फव्वारा छूट रहा था।

जब नोट की कोई आशा न रही और जब सिर की पीड़ा के मारे सामान इधर-उधर करना उसके लिए और सम्भव नही रह गया, तब वह बिस्तर पर मृत-तुल्य औंधा लेट गया। वह उसकी माता की बडी तपस्या का नोट था—जीवन के न जाने कितने क्षणो को कठिन यत्रणाओं मे घिसकर दिन-पर-दिन धीरे-धीरे यह नोट सचित हुआ था। एक दिन था जब वह इस दु ख के इतिहास को बिलकुल भी नही जानता था, उस समय उसने अपनी माता के भार को जरूर बढाया था, अन्त मे जिस दिन माँ ने उसको अपने प्रतिदिन भुगते जाने वाले दु ख का साथी बना लिया उस दिन के-से गौरव का उसने अपने जीवन मे फिर कभी अनुभव नही किया। कालीपद ने अपने जीवन मे जो सबसे बड़ा सन्देश, जो महत्तम आशीर्वाद पाया था, वह इसी नोट मे समाया हुआ था। अपनी माता के अतलस्पर्शी स्नेह-समुद्र-मन्थन से प्राप्त अमूल्य साधना के उस उपहार का चोरी चला जाना उसे एक

पैशाचिक अभिशाप के समान प्रतीत हुआ। बगल के जीने पर आज पैरो की आहट बार-बार सुनाई पड़ रही थी। अकारण चढ़ने-उतरने का आज अन्त ही नही हो रहा था। गाँव आग मे जलकर राख हुआ जा रहा हो, और ठीक उसके समीप हो आनन्दपूर्ण कल-कल शब्द करती नदी अविरत बही जा रही हो—यह भी ठीक वैसा ही था।

ऊपर के तल्ले का अट्टहास सुनकर सहसा एक बार कालीपद को लगा कि यह चोर का काम नही है। पलक मारते वह समझ गया कि शैलेन्द्र का दल मजाक मे उसका वह नोट ले गया है। चोर के चुराने पर भी उसके मन को इतना कष्ट न होता। उसे लगने लगा मानो धन-मद-गर्वित युवको ने उसकी माँ की देह पर हाथ उठाया हो। इतने दिन से कालीपद इस मेस मे था, उसने एक भी दिन इन सीढियो से होकर ऊपर के तल्ले पर पैर तक न रखा था। आज अपनी देह पर वही फटी बनियान लिये, खाली पैर मन के आवेग और सिर-दर्द की उत्तेजना से उसका मुँह लाल हो गया था— तेजी से वह ऊपर चढ गया।

आज रविवार था—कॉलेज जाने का कार्यक्रम नही था, लकडी की छत वाले बरामदे मे मित्र लोग कोई कुरसी पर, कोई बेत के मूढ़े पर बैठे हास्यालाप कर रहे थे। कालीपद दौडकर उनके बीच जा धमका और क्रोध के मारे भर्राये गले से बोल उठा, "दीजिए, मेरा नोट दीजिए!"

यदि वह विनती के स्वर मे बोलता तो वह सफल हो जाता, इसमे सन्देह नही किन्तु, उसकी उन्मत्तवत् क्रुद्धमूर्ति देखकर शैलेन्द्र अत्यन्त क्रोधित हो उठा। इसमे सन्देह नही कि यदि उसके घर का दरबान होता तो वह उससे इस असभ्य का कान पकडकर दूर कर देता—सब खडे होकर एक साथ गरज उठे, "क्या कह रहे है जनाब! कैसा नोट!"

कालीपद ने कहा, "आप लोग मेरे बक्से से नोट ले आए है।"

"इतनी बडी बात! हमे चोर बनाना चाहते है!"

यदि कालीपद के हाथ मे कुछ होता तो वह उसी क्षण खून-खराबी कर डालता। उसका रुख देखकर चार-पाँच लोगो ने मिलकर उसके हाथ पकड लिए। वह जाल मे फँसे बाघ की तरह दहाडने लगा।

इस अन्याय का प्रतिकार करने की उसमे कोई शक्ति न थी, कोई प्रमाण न था—सभी उसके सन्देह को पागलपन कहकर उड़ा देते। जिन्होने उसको मृत्यु-बाण मारा था, वे उसके औद्धत्य को असह्य कहकर जोर-जोर से छाती फुलाने लगे।

वह रात कालीपद ने किस प्रकार बिताई, यह कोई नही जान सका। सौ रुपये

का एक नोट निकालकर शैलेन्द्र ने कहा, "जाओ, उस उजड्ड को दे आओ !"

सहचरो ने कहा, "पागल हो गए हो ! गर्व तो चूर होने दो—पहले हम सबको एक लिखित क्षमा-याचना दे, उसके वाद विचार किया जायगा।"

यथासमय सब सोने गए और नींद आते ही किसी को देर नही लगी। सुवह कालीपद की वात प्राय: सव भूल ही गए। सुवह किसी-किसी ने सीढ़ियों से नीचे उतरते समय उसके कमरे से वोलने की आवाज सुनी। सोचा, शायद वकील को बुलाकर परामर्श कर रहा हो। किवाड अन्दर से वन्द थे। वाहर से कान लगाकर जो सुना उससे कानून का कोई सम्पर्क नही था, विलकुल असवद्ध प्रलाप था।

ऊपर जाकर शैलेन्द्र को खवर दी। शैलेन्द्र उतरकर दरवाजे के वाहर आ खड़ा हुआ। कालीपद न जाने क्या वक रहा था, अच्छी तरह समझ मे नही आ रहा था, केवल रह-रहकर 'पिताजी-पिताजी' पुकार उठता था।

भय हुआ, शायद नोट के शोक से पागल हो गया हो। वाहर से दो-तीन वार पुकारा, "कालीपद वावू !" किसी ने कोई उत्तर नही दिया। केवल वडी वड़वड़ाहट चलती रही। शैलेन्द्र ने फिर उच्चस्वर मे कहा, "कालीपद वावू, दरवाजा खोलिए, आपका वह नोट मिल गया है।"

दरवाजा नही खुला, केवल वडवडाने की अस्पष्ट ध्वनि सुनाई पडी।

वात इतनी वढ जायगी इसकी शैलेन्द्र ने कल्पना भी नही की थी। उसने मुँह से अपने अनुयायियो के सामने पश्चात्ताप प्रदर्शित नही किया। किन्तु, उसके मन मे काँटा चुभने लगा। वह वोला, "दरवाजा तोडना चाहिए।"

किसी-किसी ने सलाह दी, "पुलिस को वुला लाओ—क्या पता पागल होकर अगर अचानक कुछ कर वैठे—कल जिस तरह का हाल देखा है—साहस नही होता।"

शैलेन्द्र ने कहा, "नही, अभी जल्दी से कोई जाकर अनादि डॉक्टर को वुला लाओ !"

अनादि डॉक्टर घर के पास ही रहते थे। उन्होने आकर दरवाजे से कान लगा कर कहा, "यह तो विकार ही मालूम पडता है।"

दरवाजा तोडने पर भीतर घुसकर देखा—तख्त पर विछा अस्त-व्यस्त विस्तर कुछ खिसककर जमीन पर लोट रहा था। कालीपद जमीन के ऊपर पडा था—वह चेतनाशून्य था। वह लोट लगा रहा था, रह-रह कर हाथ-पैर पटकता और प्रलाप करता था, उसकी लाल-लाल आँखे खुली हुई थी और उसके चेहरे से मानो खून फूटा पड रहा था।

डाक्टर ने उसके पास वैठकर वहुत देर तक परीक्षा करके शैलेन्द्र से पूछा,

"इसका कोई सम्बन्धी है ?"

शैलेन्द्र का मुँह विवर्ण हो गया। उसने डरकर प्रश्न किया, "क्यो, वात क्या है ?"

डॉक्टर ने गम्भीर होकर कहा, "खवर कर देना अच्छा है, लक्षण अच्छे नही है।"

शैलेन्द्र ने कहा, "इनके साथ हमारा घनिष्ठ परिचय नही है—कुटुम्वियों का समाचार हम कुछ भी नही जानते। खोज करेगे। किन्तु, इस वीच मे क्या करना चाहिए ?"

डॉक्टर ने कहा—"इस कमरे से रोगी को इसी वक्त दूसरे तल्ले के किसी अच्छे कमरे मे ले जाना उचित होगा। दिन-रात सेवा-सुश्रूषा की व्यवस्था भी करनी चाहिए।"

शैलेन्द्र वीमार को स्वयं अपने कमरे मे ले गया। अपने साथियो को भीड न करने के लिए कहकर कमरे से विदा कर दिया। कालीपद के सिर पर वरफ की थैली रखकर अपने हाथ से हवा करने लगा।

पहले ही कह चुका हूँ, इस कमरे की ऊपरी मजिल पर रहने वाला दल कही किसी प्रकार का अपमान या परिहास न करे इसलिए अपने पिता-माता का पूरा परिचय कालीपद ने इनसे छिपा रखा था। स्वय उनके नाम जो चिट्ठी लिखता उसे सावधानी से डाकघर मे जाकर दे आता और डाकघर के पते से ही उसके नाम चिट्ठी आती—प्रतिदिन वह स्वय जाकर ले आता।

कालीपद के घर का परिचय पाने के लिए एक वार फिर उसका वक्स खोलना पड़ा। उसके वक्स मे चिट्ठियो के दो वण्डल थे। प्रत्येक वण्डल वड़े यत्न से फीते से वँधा हुआ था। एक वण्डल मे उसकी माता की चिट्ठियाँ थी और दूसरे मे उसके पिता की। माता की चिट्ठियो की संख्या थोड़ी थी, पिता की चिट्ठियाँ ही अधिक थी।

चिट्ठियों को हाथ मे लेकर शैलेन्द्र ने दरवाजा वन्द कर दिया और रोगी विस्तर के पास वैठकर आरम्भ किया। चिट्ठी मे पता पढ़ते ही एकदम चौक पडा। शानियाड़ी, चौधुरी का परिवार, छः आने के हिस्सेदार! नीचे नाम देखा, भवानीचरण देव शर्मा। भवानीचरण चौधुरी!

चिट्ठी रखकर स्तब्ध होकर वैठकर वह कालीपद के मुख की ओर देखता रहा। कुछ दिन पहले एक वार उसके सहचरो मे से किसी ने कहा था कि उसके चेहरे से कालीपद का चेहरा वहुत मिलता है। यह वात सुनने मे उसे अच्छी नही लगी थी और सवने उसे एकदम उड़ा दिया था। आज वह समझा कि वात निर्मूल

नही थी। उसके पितामह दो भाई थे—श्यामाचरण और भवानीचरण, यह बात वह जानता था। उसके परवर्तीकाल के इतिहास की उसके घर मे कभी चर्चा नही हुई। भवानीचरण के पुत्र है और उसका नाम कालीपद है, यह वह नही जानता था। यह कालीपद! यह उसका चाचा!

तब शैलेन को याद आने लगा, शैलेन की पितामही, श्यामाचरण की पत्नी जितने दिन जीवित रही, अन्त तक बड़े स्नेह से वे भवानीचरण के विषय मे चर्चा करती रही। भवानीचरण का नाम लेते ही उनकी आँखो मे आँसू भर आते। भवानीचरण उनके देवर थे, किन्तु अवस्था मे उनके पुत्र की अपेक्षा छोटे थे, उनको उन्होंने अपने पुत्र के समान ही पाल-पोसकर बड़ा किया था। सम्पत्ति के झगडे के कारण जब वे अलग हो गए तो भवानीचरण की थोडी-बहुत खबर पाने के लिए उनका हृदय लालायित रहता। उन्होंने बार-बार अपने लडको से कहा था, "भवानीचरण को अत्यन्त सीधा भला आदमी समझकर जरूर तुमने उसको धोखा दिया है--मेरे ससुर उसे इतना प्यार करते थे कि मै इस बात पर विश्वास नही कर सकती कि वे उसको सम्पत्ति से वंचित कर जायँ।" उनके लडके इन बातो पर बहुत खीझते और शैलेन्द्र को याद आया कि वह भी अपनी पितामही के ऊपर बहुत क्रोधित होता। यही नही, पितामही के उनका पक्ष लेने के कारण, भवानीचरण के ऊपर भी उसे बडा क्रोध आता। अब भवानीचरण की ऐसी दरिद्र अवस्था थी यह भी वह नहीं जानता था—कालीपद की स्थिति देखकर वह सब बात समझ गया और हजारो प्रलोभनो के रहते हुए भी इतने दिन तक कालीपद उसकी अनुचर-मण्डली मे भर्ती नही हुआ इससे उसने बड़े गौरव का अनुभव किया। यदि दैववश कालीपद उसका अनुवर्ती होता तो आज उसकी लज्जा की सीमा न रहती।

: ४ :

शैलेन के दल के लोगो ने इतने दिन तक प्राय. प्रतिदिन ही कालीपद को कष्ट दिया था और अपमानित किया था। शैलेन इस घर मे उनके बीच काका को नही रख सका। डॉक्टरो का परामर्श लेकर बडे यत्न से उसको एक अच्छे घर मे स्थानान्तरित कर दिया।

शैलेन की चिट्ठी पाकर एक साथी का सहारा लिये भवानीचरण चट-पट कलकत्ता दौड़े आए। आते समय व्याकुल होकर रासमणि ने कष्ट से संचित अपने धन का अधिकाश अपने पति के हाथ मे देते हुए कहा, "देखना कही देख-भाल मे कमी न हो। यदि ठीक समझो तो खबर मिलते ही मैं आ जाऊँगी।" चौधुरी

परिवार में वधू के लिए चट-से कलकत्ता जाने का प्रस्ताव बहुत ही असगत था। अत पहले समाचार के मिलते ही उनका जाना सभव नही हुआ। उन्होने रक्षा काली देवी की मनौती की और ज्योतिषी को बुलाकर स्वस्त्ययन कराने की व्यवस्था कर दी।

कालीपद की अवस्था देखकर भवानीचरण हतबुद्धि हो गए। कालीपद को उस समय अच्छी तरह चेतना नही आई थी, उसने उनको मास्टर साहस कहकर पुकारा—इससे उनका हृदय विदीर्ण हो गया। प्राय बीच-बीच मे कालीपद प्रलाप करता हुआ 'पिताजी' 'पिताजी' पुकार उठता था—वे उसका हाथ पकड-कर उसके मुँह के पास मुँह ले जाकर जोर से कहते, "मै यह रहा वेटा, मै आ गया हूँ।" किन्तु इन्हे पहचाना हो, ऐसा भाव प्रकट नही किया।

डॉक्टर ने आकर कहा, "ज्वर पहले की अपेक्षा कुछ कम हो गया है, अब शायद अच्छे की ही ओर चलेगा।" कालीपद अच्छे की ओर नही जायगा, यह बात भवानीचरण सोच ही नही सकते थे। विशेषकर उसके वचपन से सभी कहते चले आ रहे थे कि कालीपद वडा होकर कोई असाधारण कार्य करेगा—इसे भवानीचरण ने केवल-मात्र लोगो के मुँह की कही बात समझकर ग्रहण नही किया था—यह विश्वास उनके लिए बिलकुल संस्कारगत हो गया था। कालीपद को बचाना ही होगा, वह उसके भाग्य का लेख है।

इसी कारण, डॉक्टर जितना अच्छा बताता वे उससे कही ज्यादा अच्छा सुन लेते और रासमणि को जो पत्र लिखते उसमे आशका की कोई बात ही न रहती।

शैलेन्द्र के व्यवहार से भवानीचरण एकदम आश्चर्यान्वित हो गए। यह कौन कहेगा कि वह उनका परमात्मीय नही था। विशेषकर कलकत्ता का सुशिक्षित सभ्य लडका होने पर भी वह उनके प्रति जिस प्रकार श्रद्धा-भक्ति रखता था ऐसा दिखता नही। उन्होने सोचा कि कलकत्ता के लडको का शायद इसी तरह का स्वभाव होता है। मन-ही-मन विचारा, 'यह तो होने की ही बात है, अपने देहाती लडको की शिक्षा ही क्या और सोहबत ही क्या।'

ज्वर कुछ-कुछ कम होने लगा और कालीपद ने धीरे-धीरे चेतना प्राप्त की। पिता को चारपाई के पास देखकर वह चौक पडा; सोचा उसके कलकत्ता की स्थिति की बात अब उसके पिता को मालूम हो जायगी। उसमे अधिक चिन्ता यह थी कि उसके ग्रामीण पिता शहर के लडको के परिहास के पात्र बन जायेगे। चारो ओर देखकर वह समझ न पाया कि वह कौन-सा कमरा था। लगा, 'यह क्या स्वप्न देख रहा हूँ!'

उस समय अधिक सोचने की शक्ति उसमे नही थी। उसे लगा कि बीमारी का समाचार पाकर उसके पिता ने आकर एक अच्छे मकान मे ला रखा है। कैसे लाए, उसका खर्च कहाँ से जुटा, इतना खर्च करने के बाद कैसा संकट उपस्थित होगा, यह सब बाते सोचने का समय उसके पास नही था। इस समय तो उसे अच्छा होना ही होगा, मानो सारी दुनिया से वह यह माँग कर सकता हो।

एक बार जब उसके पिता कमरे मे नही थे तब शैलेन एक बर्तन मे कुछ फल लेकर उसके पास आकर उपस्थित हुआ। कालीपद अवाक् होकर उसके चेहरे की ओर देखता रहा। सोचने लगा, 'इसमे कोई परिहास है क्या!' पहली बात जो उसके मन मे आई वह यही थी कि उसके हाथ से तो पिताजी की रक्षा करनी होगी।

फलो का पात्र टेबिल के ऊपर रखकर पैर पकडकर शैलेन ने कालीपद को प्रणाम किया और कहा, "मैंने गुरुतर अपराध किया है, मुझे क्षमा करें।"

कालीपद हड़बडा गया। शैलेन का मुँह देखते ही वह समझ गया कि उसके मन मे कोई कपट नही है। पहले जब कालीपद मेस मे आया था, यौवन की दीप्ति से चमकती हुई इन सुन्दर मुखश्री को देखकर कितनी बार उसका मन कितना आकर्षित हुआ था, किन्तु वह अपनी दरिद्रता के संकोच के कारण कभी उसके निकट भी नही गया। यदि वह समकक्ष होता, यदि मित्र के समान उसके पास जाने का अधिकार उसके लिए सुलभ होता, तो वह कितना खुश होता—किन्तु एक-दूसरे के अत्यन्त पास रहते हुए भी दोनों के बीच रहने वाले अपार व्यवधान को पार करने का उपाय नही था। शैलेन जब जीने से ऊपर चढता या उतरता तो उसकी बढिया चादर की सुगन्ध कालीपद के अँधेरे कमरे मे पहुँच जाती—तब पढाई छोडकर इस हँसमुख, चिन्ता-रेखाहीन तरुण मुख की ओर एक बार देखे बिना उससे न रहा जाता। तुरन्त क्षण-भर के लिए उसके उस सीले कोने वाले कमरे मे दूर के सौन्दर्य-लोक के ऐश्वर्य की चमकती हुई रश्मि की छटा आ पड़ती। उसके बाद उसी शैलेन्द्र का निर्दय तारुण्य उसके लिए कैसा प्राणघातक हुआ, यह सभी को ज्ञात है। आज जब शैलेन ने बिस्तर पर उसके सामने फलों का पात्र लाकर उपस्थित किया तब कालीपद ने दीर्घ निश्वास लेकर उस सुन्दर मुँह की ओर फिर एक बार आँख उठाकर देखा। क्षमा की बात अपने मुँह मे बिलकुल भी नही निकाली—धीरे-धीरे फल उठाकर खाने लगा—जो कहना था वह इसी के द्वारा कह दिया गया।

कालीपद प्रतिदिन आश्चर्य से देखने लगा कि उसके ग्रामीण पिता भवानीचरण के साथ शैलेन की मित्रता खूब जम गई है। शैलेन उनको दादा (पितामह) कहता,

और एक-दूसरे के वीच निरन्तर हँसी-मजाक चलता रहता। उन दोनो के हँसी-मजाक का प्रधान लक्ष्य थी अनुपस्थित दादी, (पितामही)। इतने समय वाद हँसी-मजाक के इस दक्षिण-पवन के हिल्लोल से भवानीचरण के मन मे मानो यौवन-स्मृति का पुलक सचरित होने लगा। दादी से अपने हाथो का तैयार किया हुआ अचार, अमावट आदि सारी चीजे शैलेन ने रोगी की अनवधानता के समय चुराकर खा डाली थी, यह वात आज उसने निस्सकोच भाव से स्वीकार की। इस चोरी की खवर से कालीपद को वडे ही गहरे आनन्द का अनुभव हुआ। अपनी माँ के हाथ की चीजे वह दुनिया के लोगो को वुलाकर खिलाना चाहता था यदि वे उसका मूल्य समझ सके। कालीपद के लिए आज उसकी रोग-शय्या आनन्द सभा वन गई—ऐसा सुख उसे अपने जीवन मे कम ही मिला था। उसे प्रतिक्षण लगने लगा, 'माँ होती तो कितना अच्छा होता! यहाँ होती तो उसकी माँ इस विनोदप्रिय सुन्दर युवक को कितना स्नेह करती'—इस वात की वह कल्पना करने लगा।

रोगी के कमरे की सभा मे वातचीत का केवल एक विषय था जो कभी-कभी आनन्द-प्रवाह मे वडी वाधा डाल देता। कालीपद के मन मे मानो दारिद्रय का एक अभिमान था—किसी समय उनके पास प्रचुर ऐश्वर्य था इस वात को लेकर व्यर्थ ही गर्व करने से उसको वडी लज्जा का अनुभव होता। 'हम गरीव है' इस वात को किसी 'किन्तु' से ढक देने के लिए वह तनिक भी राजी न था। भवानी-चरण भी अपने ऐश्वर्य के दिनो की वात गर्व से चलाते हो, ऐसा नही था। किन्तु वे उनके सुख से दिन थे, उनके पूर्ण यौवन के दिन थे। विश्वास-घाती ससार का वीभत्स रूप तव तक उनके सामने नही आया था। विशेपकर श्यामाचरण की पत्नी उनकी अत्यन्त स्नेहमयी भाभी रमासुन्दरी जव उनके घर की मालकिन थी तव उस लक्ष्मी के भरे भण्डार के दरवाजे पर खड़े होकर उन्होने कितना अजस्र स्नेह लूटा था—उन अस्तमित सुख के दिनो की स्मृति के आलोक से ही तो भवानीचरण के जीवन की सध्या स्वर्ण-मण्डित हो गई थी। किन्तु इस सम्पूर्ण सुखद स्मृति की वातचीत मे घूम-फिरकर उस वसीयतनामे की चोरी की वात आ ही जाती। इस प्रसग के आते ही भवानीचरण वड़े उत्तेजित हो जाते। अव भी वह वसीयतनामा मिल जायगा, इस सम्वन्ध मे उनके मन मे लेश-मात्र भी सन्देह न था—उनकी सती-साध्वी माँ की वात कभी व्यर्थ नही जायगी। यह वात चलते ही कालीपद मन-ही-मन अशात हो उठता। वह जानता था कि यह उसके पिता का निरा पागलपन था। माता-पुत्र दोनो ने इस पागलपन को प्रश्रय भी दिया था, किन्तु शैलेन के सामने उसके पिता की यह दुर्वलता प्रकट हो यह

उसको जरा भी अच्छा न लगा। कितनी बार उसने पिता से कहा है, "नहीं पिताजी, यह तुम्हारा मिथ्या सन्देह है।" किन्तु इस प्रकार के तर्क का परिणाम उलटा होता। यह प्रमाणित करने के लिए कि उनका सन्देह निर्मूल नहीं था वे सारी घटना का विस्तार से विश्लेषण करने लगते। तब कालीपद अनेक प्रयत्न करने पर भी किसी भी प्रकार उनको रोक न पाता।

विशेषकर शैलेन को यह प्रसंग बिलकुल भी अच्छा न लगता था। कालीपद ने यह स्पष्ट रूप से लक्ष्य किया था। यही नहीं वह भी कुछ विशेष उत्तेजित होकर मानो भवानीचरण की युक्तियों का खण्डन करने का प्रयत्न करता तो अन्य सब मामलों में भवानीचरण और सबका मत मान लेने को प्रस्तुत थे, किन्तु इस मामले मे वे किसी से भी हार नही मान पाते थे। उनकी माँ पढना-लिखना जानती थी — उन्होंने स्वय अपने हाथ से उनके पिता का वसीयतनामा और अन्य प्रमाण-पत्र बक्स में बद करके लोहे के सदूक मे रख दिए थे; फिर भी उनके सामने ही जब माँ ने बक्स खोला तो देखा कि अन्य प्रमाण-पत्र तो ज्यों-के-त्यों थे, किन्तु वसीयत-नामा नही था, इसको चोरी न कहा जाय तो और क्या! कालीपद उनको ठंडा करने के लिए कहता, "अच्छा तो है पिताजी, जो तुम्हारी सपत्ति का उपभोग कर रहे है वे भी तो तुम्हारे बेटे की ही तरह है, वे तुम्हारे भतीजे ही तो है। वह सम्पत्ति तुम्हारे पिता के वश मे ही रही—यही क्या कम खुशी की बात है!" शैलेन यह सब बाते बहुत देर तक नही सह पाता था, वह कमरे से उठकर चला जाता था। कालीपद मन-ही-मन दुखी होकर सोचता, शैलेन शायद उसके पिता को अपने मन मे अर्थलोलुप विषयी समझता है। उसके पिता मे अर्थलोलुपता की गन्ध तक नही थी—अगर वह यह बात किसी प्रकार शैलेन को समझा पाता तो कालीपद को बडा आराम मिलता।

इतने दिनो मे शैलेन कालीपद और भवानीचरण को अपना परिचय अवश्य दे देता। किन्तु, इस वसीयतनामे की चोरी की चर्चा ने ही उसमे बाधा पहुँचाई। यह बात वह किसी भी प्रकार स्वीकार नही करना चाहता था कि उसके पिता तथा पितामह ने वसीयतनामे की चोरी की है। लेकिन इसके साथ यह बात भी वह किसी प्रकार अस्वीकार नही कर सका कि पैतृक सम्पत्ति के न्याययुक्त अंश से वचित रखने से भवानीचरण के प्रति एक निष्ठुर अन्याय हुआ है। अब इस प्रसग मे किसी प्रकार का तर्क करना उसने बन्द कर दिया—वह बिलकुल चुप रहता —और यदि कोई मौका पाता तो उठकर चला जाता।

अब भी शाम को कालीपद को थोड़ा ज्वर और सिरदर्द रहता था, किन्तु उसको वह बीमारी नही समझता था। पढने के लिए उनका मन बेचैन हो उठा।

एक वार वह छात्र-वृत्ति चूक गया, दुवारा तो इस तरह काम नही चलेगा। शैलेन से छिपकर उसने फिर पढना शुरू कर दिया; इस विषय मे डाक्टर का कडा निषेध है, यह जानते हुए भी उसने उसे अमान्य कर दिया।

भवानीचरण से कालीपद ने कहा, "पिताजी तुम घर लौट जाओ—वहाँ माँ अकेली है। मैं तो काफी अच्छा हो गया हूँ।"

शैलेन ने भी कहा, "अव आपके जाने से कोई हानि नही। अव तो चिन्ता की कोई वात मैं नही देखता। अव जो थोड़ा-बहुत रह गया है वह दो दिन मे सुधर जायगा। फिर हम लोग तो हैं ही।"

भवानीचरण ने कहा, "वह तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कालीपद के लिए चिन्ता करने की कोई वात नही। मेरे कलकत्ता आने की कोई आवश्यकता थी ही नही, फिर भी भाई मन कही मानता है। खासकर तुम्हारी दादी जव जिस पर अड जाती हैं उससे पीछा छुडाने का तो फिर कोई रास्ता ही नही रहता।"

शैलेन हँसकर वोला, "दादा, तुम्ही ने तो दुलार करके दादी को इतना विगाडा है।"

भवानीचरण ने हँसकर कहा, "अच्छा भाई, अच्छा, घर मे जव पोते की वहू आएगी तव तुम्हारी शासन-प्रणाली कैसा कठोर रूप धारण करेगी, देखा जायगा।"

भवानीचरण पूर्ण रूप से रासमणि की सेवा मे पले हुए जीव थे। कलकत्ता का अनेक प्रकार का सुविधापूर्ण आयोजन भी रासमणि की स्नेह और सेवा के अभाव को किसी भी प्रकार पूरा न कर सका। इस कारण घर जाने के लिए उनसे वहुत ज्यादा अनुरोध नही करना पडा।

सवेरे सामान वाँधकर तैयार हुए थे, तभी कालीपद के कमरे मे जाकर देखा, उसका मुँह और आँखे अत्यन्त लाल हो गई थी—उसका शरीर जैसे आग के के समान जल रहा था, कल आधी रात तक उसने लॉजिक कंठस्थ की थी, वाकी रात एक क्षण के लिए भी वह न सो सका।

कालीपद की दुर्वलता तो दूर नही हुई, उसके ऊपर रोग का और प्रवल आक्रमण देखकर डॉक्टर विशेप चिन्तित हुए। शैलेन को अलग ले जाकर वोले, "इस वार तो दशा अच्छी नही मालूम होती।"

शैलेन्द्र ने भवानीचरण से कहा, "देखो, दादा, तुमको भी कष्ट हो रहा है, रोगी की भी शायद भली-भाँति सेवा नही हो रही है, इससे मैं सोचता हूँ, और देरी न करके दादी को वुला लिया जाय।"

शैलेन ने कितना ही छिपाकर क्यो न कहा हो, एक भीषण डर ने भवानीचरण के मन को आकर अभिभूत कर लिया। उनके हाथ-पैर थर-थर काँपने लगे। वे बोले, "तुम जैसा ठीक समझो वही करो!"

रासमणि के पास चिट्ठी गई; वे फौरन बगलाचरण को साथ लेकर कलकत्ता आ गई। सन्ध्या समय कलकत्ता पहुँचकर वे केवल कुछ घंटों के लिए ही कालीपद को जीवित देख सकी। ज्वर की अवस्था मे उसने रह-रहकर माँ को पुकारा था—वही आवाज उनके हृदय में चुभी रह गई।

यह आघात सहकर भवानीचरण किस प्रकार बच सकेंगे, इसी भय के कारण रासमणि अपने शोक को भली-भाँति प्रकट करने का फिर अवसर नही पा सकी—उनका पुत्र फिर उनके पति मे जाकर विलीन हो गया—फिर पति के रूप मे दो व्यक्तियो का भार उन्होंने अपने व्यथित हृदय पर ले लिया। उनके प्राणो ने कहा, "अब अधिक मैं नही सह सकती।" फिर भी उन्हे सहना ही पडा।

: ५ :

उस समय रात बहुत थी। गहरे शोक की भारी थकावट से रासमणि केवल क्षण-भर के लिए अचेत होकर सो गई थी, किन्तु भवानीचरण को नीद नही आ रही थी। कुछ देर बिस्तर पर करवटें बदलकर अन्त मे लम्बी साँस के साथ 'दयामय हरि' कहकर उठ पडे। कालीपद जब गाँव की पाठशाला मे पढता था, जब वह कलकत्ता नही गया था, तब वह कोने के जिस कमरे मे बैठकर पढता-लिखता था, भवानीचरण ने काँपते हाथो मे एक दीपक लिये हुए उसी निर्जन कमरे मे प्रवेश किया। रासमणि के हाथ से चित्रित फटी हुई कथरी अब भी तख्त पर बिछी थी, उसमे अब भी कई जगह उस स्याही के दाग थे; मैली दीवाल के ऊपर कोयले से खिची उस रेखागणित की रेखाएँ दिख रही थी; तख्त के एक कोने मे हाथ से बँधी मैले कागजों की कई कापियों के साथ रॉयल रीडर के तीसरे भाग के फटे पन्ने आज भी बिखरे पडे थे। और—हाय, हाय!—उसके बचपन के छोटे पैरो मे से एक पैर की चट्टी जिस कमरे के कोने मे पड़ी थी, उसको इतने दिन किसी ने देखकर भी नही देखा था, आज वह आँखो को सबसे बडी होकर दिख रही थी—ससार मे ऐसी कोई बडी चीज नही थी जो आज इस छोटी चट्टी को ढक सके।

ताक मे दिया रखकर भवानीचरण आकर उस तख्त पर बैठ गए। उनके सूखे नेत्रों मे जल नही आया, किन्तु उनके हृदय को न जाने कैसा लग रहा था—लम्बी

साँस लेते हुए उनकी पसलियाँ मानो विदीर्ण हुई जा रही थी। कमरे का पूर्व की ओर का दरवाजा खोलकर जंगले मे से उन्होंने वाहर की ओर देखा।

अँधेरी रात थी, टप्-टप् करके वर्षा हो रही थी। सामने चहारदीवारी से घिरा घना जंगल था। उसमे पढने के कमरे के ठीक सामने थोडी-सी जमीन मे कालीपद ने वगीचा लगाने का प्रयत्न किया था। अव भी उसके अपने हाथ से लगाई हुई झूमका वेल वाँस के वेड़े के ऊपर खूव पल्लवित होकर हरिया रही थी —वह फूलो से लद गई थी।

आज वालक के उस यत्नपालित वगीचे की ओर देखकर उनके प्राण जैसे मुँह को आ गए हो। और कोई आशा नही रह गई थी, गर्मी के समय और पूजा के अवसर पर कॉलेज की छुट्टी होती, किन्तु जिसके लिए उनका दरिद्र घर खाली पडा था वह अव कभी किसी छुट्टी मे लौटकर घर नही आयगा। "हाय ! मेरे वेटे !" कहते हुए भवानीचरण वही ज़मीन पर वैठ गए। अपने पिता के दारिद्र्य को दूर करने के लिए ही कालीपद कलकत्ता गया था, किन्तु वह इस वृद्ध को संसार मे विलकुल निस्सहाय छोड़कर चला गया।—वाहर वर्षा ने और भी जोर पकड़ लिया।

इसी समय अँधेरे मे घास-पत्तो मे पैरो की आहट सुनाई पड़ी। भवानीचरण का हृदय धडकने लगा। जिस वात की कोई भी आशा नही थी उसकी भी मानो वे आशा कर वैठे। उन्हे लगा, मानो कालीपद वगीचा देखने आया हो। किन्तु मूसलाधार वर्षा जो पड रही थी—वह तो भीग जायगा, इस असम्भव उद्वेग के कारण जव उनका मन भीतर से चंचल हो उठा तव जगले के वाहर उनके कमरे के सामने आकर कोई क्षण-भर के लिए खडा हो गया। चद्दर से वह सिर ढके हुए था—उसका चेहरा पहचानने का कोई उपाय नही था। किन्तु, उसका सिर कालीपद के समान ही रहा होगा। "आ गए, वेटे !" कहते हुए भवानीचरण झटपट उठकर वाहर का दरवाजा खोलने गए। दरवाजा खोल-कर वगीचे मे आकर उसी कमरे के सामने उपस्थित हुए। वहाँ कोई नही था। उस वर्षा मे ही सारे वगीचे मे घूमकर देखा, किसी को भी नही देख पाए। आधी रात के उस अन्धकार मे खडे होकर टूटे स्वर मे एक वार 'कालीपद' कहकर जोर से पुकारा—कोई उत्तर नही मिला। उस पुकार से नटु नौकर गोशाला से निकल आया और यत्नपूर्वक वृद्ध को कमरे मे ले गया।

दूसरे दिन सवेरे नटु ने कमरे मे झाडू देते हुए देखा, जंगले के सामने ही कमरे के भीतर पोटली मे वँधा कुछ पड़ा है। वह उसने लाकर भवानीचरण के हाथ मे दे दिया। भवानीचरण ने खोलकर देखा, एक पुराना दस्तावेज-सा था।

चश्मा निकालकर आँखों पर चढाया। थोड़ा-सा पढते ही वे चटपट दौड़कर रासमणि के सामने जा उपस्थित हुए और कागज उसके सामने खोलकर रख दिया।

रासमणि ने प्रश्न किया, "यह क्या है ?"

भवानीचरण बोले, "वही वसीयतनामा।"

रासमणि ने कहा, "किसने दिया ?"

भवानीचरण ने कहा, "वह कल रात आया था, वही दे गया है।"

रासमणि ने प्रश्न किया, "इसका क्या होगा ?"

भवानीचरण ने कहा,"अब मुझे कोई जरूरत नही।" कहकर उस वसीयतनामे के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

यह समाचार जब गाँव मे फैला तब बगलाचरण ने सिर हिलाते हुए गर्व के साथ कहा, "मैंने कहा था न कि कालीपद के द्वारा ही वसीयतनाामा मिल सकेगा ?"

रामचरण मोदी ने कहा, "किन्तु दादाजी, कल रात जब दस बजे की गाड़ी आकर स्टेशन पर पहुँची तब देखने मे सुन्दर एक बाबू ने मेरी दुकान पर आकर चौधुरियो के घर का रास्ता पूछा था—मैंने उनको रास्ता दिखा दिया था। उसके उसके हाथ मे ऐसा ही कुछ देखा था।"

"अरे हट !" कहते हुए बगलाचरण ने यह बात एकदम उडा दी।

हालदार परिवार

इस परिवार मे किसी प्रकार का झगडा होने का कोई सगत कारण नही था। अवस्था भी अच्छी थी, लोग भी अच्छे थे। पर फिर भी झगडा खडा हो गया। क्योकि यदि सगत कारण होने पर भी मनुष्य का सव-कुछ घटित होता तव तो मानव-जगत् गणित-कापी के समान होता। जरा-सी सावधानी वरतते ही हिसाव मे कही कोई भूल न होती; और यदि हो भी जाती तो उसे रवर से मिटाकर सशोधन करने से ही काम चल जाता।

किन्तु मनुष्य के भाग्यदेवता को रस का वोध है; पता नही गणितशास्त्र मे उनका पाण्डित्य है या नही, किन्तु अनुराग नही है, मानव-जीवन की जोड-वाकी का विशुद्ध परिणाम निकालने मे वे मनोयोग प्रगट नही करते। इसीलिए अपनी व्यवस्था मे उन्होने एक वस्तु को जोड़ दिया है, वह है असंगति। जो हो सकता है उसे वह अचानक आकर अस्त-व्यस्त कर देती है। इसीसे नाट्य-लीला जम उठती है, ससार के दोनो कूलो को डुवाकर हास्य-रुदन का तूफान चलता रहता है।

इस प्रसग मे भी वही घटा—जहाँ कमल-वन था वहाँ मस्त हाथी आ उपस्थित हुआ। पङ्क के साथ पङ्कज का वेमेल सम्मिश्रण हो गया। ऐसा न होता तो इस कहानी की रचना न हो पाती।

जिस परिवार की कहानी प्रस्तुत की है उसमे निस्सन्देह सवसे योग्य व्यक्ति वनवारीलाल था। इसे वह स्वय भी अच्छी तरह जानता था और इसी वात ने उसे अशात कर डाला था। इजिन की स्टीम के समान योग्यता उसे भीतर से ठेलती थी, सामने यदि उसे रास्ता मिलता तो ठीक, यदि न मिलता तो जो आ जाता उसे ही धकेल देता।

उसके पिता मनोहरलाल का ढंग पुरानी परिपाटी के वड़े आदमियो-जैसा था। अपने समाज के मस्तक पर आश्रय लेकर व उसके शिरोभूपण होकर रहे, यही उनकी इच्छा थी। फलस्वरूप समाज के हाथ-पैरो के साथ वे कोई सपर्क नही रखते थे। साधारण व्यक्ति काम-काज करता है, चलता-फिरता है; वे काम-काज न करने और न चलने-फिरने के अनेक आयोजनो के केन्द्रस्थल मे

ध्रुववत् विराजमान रहते।

प्राय देखा जाता है कि उस प्रकार के आदमी बिना प्रयत्न के अपने पास कम-से-कम दो-एक कड़े और खरे व्यक्तियो को चुम्बक के समान खीच लेते है। इसका और कोई कारण नही, धरती पर एक ऐसे वर्ग का भी जन्म होता है जिसका धर्म ही है सेवा करना। ये स्वयं प्रकृति की चरितार्थता के लिए ही ऐसे अक्षम मनुष्यो को चाहते है जो अपना सोलह आना भार उनके ऊपर छोड़ सकें। इन सहज सेवकों को अपने काम मे कोई सुख नही मिलता; किन्तु और किसी व्यक्ति को निश्चित करना, उसको पूरी तरह आराम पहुँचाना, उसको सब प्रकार के संकटों से बचाकर ले चलना, लोक तथा समाज मे उसके सम्मान की वृद्धि करना, इन्ही वातो मे उसको परम उत्साह मिलता हे। ये मानो एक प्रकार के पुरुष-माँ है, सो भी अपने लडको के नही, पराये लडको के।

मनोहरलाल का जो नौकर था रामचरण, उसकी अपनी शरीर-रक्षा और स्वास्थ्य-हानि का एकमात्र लक्ष्य था वाबू की देह की रक्षा करना। यदि उसके साँस लेने से वाबू के साँस लेने की मेहनत वच जाती तो वह दिन-रात लुहार की धौंकनी के समान हाँफने के लिए राजी था। वाहर के आदमी प्राय: सोचते कि मनोहरलाल अपने नौकर से व्यर्थ परिश्रम कराकर अन्यायपूर्वक कष्ट देते है। क्योकि यदि हाथ से छूकर हुक्के की नगाली जमीन पर गिर पड़े तो उसे उठाना कठिन काम नही है फिर भी उसके लिए पुकारकर दूसरे कमरे से रामचरण को दौडाना अत्यन्त अनुचित-सा प्रतीत होता है, किन्तु, इन सब नितान्त अनावश्यक कामो मे अपने को अत्यावश्यक समझवाने मे ही रामचरण को अपार आनन्द मिलता था।

जिस प्रकार रामचरण था, उसी प्रकार उनका एक और अनुचर था नीलकण्ठ। धन-सम्पत्ति की रक्षा का भार इस नीलकण्ठ के ऊपर था। वाबू के प्रसाद से परि-पुष्ट रामचरण खूब चिकना था, किन्तु नीलकण्ठ की देह के अस्थि-कंकाल के ऊपर किसी प्रकार की आव नही थी, यह कहना ही ठीक होगा। वाबू के ऐश्वर्यभण्डर के दरवाजे पर वह साक्षत् दुर्भिक्ष के समान पहरा देता था। सम्पत्ति तो थी मनो-हरलाल की, किन्तु उसकी ममता थी सारी नीलकण्ठ की।

नीलकण्ठ के साथ वनवारीलाल की खट-पट वहुत दिनो से चल रही थी। मान लो, पिता के यहाँ दरवारदारी करके वनवारी ने वडी वहू के लिए एक नया गहना वनवाने का हुक्म प्राप्त किया। उसकी इच्छा थी कि वह रुपया लेकर अपनी रुचि के अनुसार चीज तैयार करावे। किन्तु ऐसा होने की गुजायश नही था। आय-व्यय का सारा काम नीलकठ के हाथों से ही होना चाहिए। फल यह हुआ कि

गहना वना तो सही, किन्तु किसी के मन के माफिक नही वना। वनवारी को दृढ विश्वास हो गया कि सुनार के साथ नीलकठ का हिस्सा-वँटवारा चलता है। खरे आदमियो के शत्रुओ की कमी नही होती। ढेरो लोगो से वनवारी यही वात सुनता आ रहा था कि नीलकंठ दूसरे लोगो को जिस मात्रा मे वचित रखता है उसके अपने घर मे उतनी ही अधिक मात्रा मे संचित होता जा रहा है। और इन दो पक्षो मे यह जो इतना विरोध जम गया था, वह मामूली दस-पाँच रुपये लेकर। नीलकठ मे व्यावहारिक वुद्धि का अभाव नही था—यह वात समझना उसके लिए कठिन नही था कि वनवारी के साथ मेल रखकर न चलने से किसी-न-किसी दिन उस पर संकट आने की सम्भावना हो सकती है। किन्तु मालिक के धन के सम्वन्ध मे नीलकंठ को कृपणता का रोग था। जिस खर्च को वह अनुचित समझता था उसे मालिक का हुक्म पाने पर भी वह किसी भी प्रकार नही कर सकता था।

दूसरी ओर वनवारी को प्राय: अनुचित खर्चे की आवश्यकता पड़ती रहती। पुरुषो के अनेक अनुचित कार्यो के मूल मे जो कारण रहता है वही कारण यहाँ भी पर्याप्त प्रवल भाव से उपस्थित था। वनवारी की पत्नी किरणलेखा के सौंदर्य के सम्वन्ध मे नाना मत हो सकते थे, उसको लेकर आलोचना करना अनावश्यक है। उसमे जो मत वनवारी का था, प्रस्तुत प्रसग मे एकमात्र वही काम का है। वस्तुत: पत्नी के प्रति वनवारी के मन मे जिस मात्रा मे आकर्पण था उसे घर की अन्य स्त्रियाँ अति ही मानती थी। अर्थात् वे अपने पति से जितना प्यार चाहती, किन्तु पाती नही थी, यह उतना था।

किरणलेखा की आयु जितनी भी रही हो, देखने मे वच्ची-सी लगती थी। घर की वड़ी वहू की आकृति-प्रकृति जैसी मालकिन के ढग की होनी चाहिए वैसी उसकी तनिक भी नही थी। सव मिलाकर वह जैसे वहुत थोड़ी हो।

वनवारी उसे प्यार से अणु कहता। जव इससे भी पूरा न पडता तो कहता परमाणु। रसायन-शास्त्र की जिनको जानकारी है वे जानते है कि विश्व के निर्माण मे अणु-परमाणुओ की शक्ति ऐसी कम नही है।

किरण ने किसी भी दिन पति से किसी चीज़ की माँग नही की। उसका कुछ ऐसा उदासीन भाव था मानो उसे विशेप किसी से प्रयोजन न हो। घर मे उसकी वहुत-सी छोटी-वडी ननदे थी, उसका मन सदा उन्ही मे लगा रहता। नवयौवन के नवजाग्रत प्रेम मे जो एक एकान्त तपस्या होती है, वह उसे उतनी आवश्यक प्रतीत नही होती थी। इसी कारण वनवारी के साथ उसके व्यवहार मे कुछ विशेप आग्रह के लक्षण नही दिखते थे। वनवारी से जो कुछ उसे मिलता उसे वह शान्तभाव से ग्रहण करती। आगे वढकर कुछ नही चाहती थी। इसका

परिणाम यह हुआ कि पत्नी किस प्रकार खुश होगी, यह बात बनवारी को स्वयं सोचकर ढूँढनी पडती। पत्नी जहाँ स्वय अपने मुख से फर्माइश करती है वहाँ उसे तर्क द्वारा कुछ-न-कुछ काम करना संभव होता है, किन्तु स्वय अपने साथ मोल-भाव नही चल सकता। ऐसे स्थल पर अयाचित दान मे याचित दान की अपेक्षा खर्च अधिक पड जाता है।

फिर पति के प्रेम का उपहार पाकर किरण को कितनी खुशी हुई, उसे ठीक से समझने का कोई उपाय न था। इस सम्बन्ध मे प्रश्न करने पर वह कहती—'बढ़िया है, अच्छा है!' किन्तु बनवारी के मन का खटका किसी भी तरह दूर नही होता। क्षण-क्षण मे उसे लगता, शायद पसन्द नही आया। किरण पति को कुछ डॉटकर कहती, 'तुम्हारा तो स्वभाव ही ऐसा है। न जाने नुक्ताचीनी क्यों करते रहते हो? क्यो, यह तो खूब अच्छा बना है।"

बनवारी ने पाठ्य-पुस्तक मे पढा था— सन्तोष गुण मनुष्य का महत् गुण है। किन्तु, पत्नी के स्वभाव मे यह महत् गुण उसे कष्ट पहुँचाता था। उसकी पत्नी ने तो उसे केवल सन्तुष्ट ही नही किया था; अभिभूत भी किया था। वह भी पत्नी को अभिभूत करना चाहता था। उसकी पत्नी को तो कोई विशेष प्रयत्न नही करना पडता था—यौवन का लावण्य अपने-आप उछला पडता था, सेवा का नैपुण्य स्वय प्रकाशित हो जाता। किन्तु पुरुष को ऐसा सहज सुयोग प्राप्त नही है; पौरुष का परिचय देने के लिए उसे कुछ-न-कुछ करना पडता है। उसमे कोई एक विशेष शक्ति है, इसका प्रमाण दिये बिना पुरुष का प्रेम म्लान बना रहता है। और यदि कुछ न भी रहे, धन जो शक्ति का एक निदर्शन है, मोर के पखो के समान पत्नी के समीप उस धन की सारी वर्णच्छटा प्रदर्शित कर सकने पर मन को सान्त्वना मिलती है। नीलकठ ने बनवारी की प्रेमनाट्यलीला के इस आयोजन मे बारबार बाधा पहुँचाई। बनवारी घर का बड़ा लडका था, तो भी उसकी किसी बात मे नही चलती थी, मालिक का प्रश्रय पाकर भृत्य होते हुए भी नीलकठ उस पर आधिपत्य जमाता—उससे बनवारी को जिस असुविधा और अपमान का अनुभव होता, वह किसी कारण उतना नही होता, था जितना कामदेव के तूणीर मे मनोनुकूल बाण जुटाने की अक्षमता के कारण होता था।

एक दिन इस धन-सम्पत्ति पर उसीका तो अबाध अधिकार होगा। किन्तु, यौवन क्या चिर-काल रहेगा? बसन्त के रगीन प्याले मे फिर यह सुधा-रस अपने-आप इस प्रकार नही भर उठेगा, तब रुपया विषयी का धन होकर खूब कठोर होकर जम पाएगा, गिर-शिखर के हिम-सघात के समान—उसमे बात-बात मे असावधान मन की अपव्यय की लहरे क्रीडा नही करेंगी। रुपये की ज़रूरत

तो इसी समय है, जब आनन्द के लिए उसे खर्च करने के शक्ति नष्ट नही हुई है।

वनवारी के तीन खास शौक थे—कुश्ती, शिकार और संस्कृत-चर्चा। उसकी कापी सस्कृत की उद्भट कविताओ से लवालव भरी हुई थी। वादल के दिन, चाँदनी रात मे, दक्षिण पवन के चलने पर वड़े काम आती थी। सुविधा यह थी कि नीलकठ इन कविताओ की अलंकार वहुलता को कम नही कर सकता था। अतिशयोक्ति चाहे कितनी अतिशय हो, कोई मुनीम—सरिश्तेदार उसके लिए उत्तरदायी नही थे। किरण के कान के सोने मे कृपणता की जाती थी किन्तु उसके कान के समीप जो मन्दाक्रान्ता गुजरित होता था उसके छन्द मे एक भी मात्रा कम न होती और उसके भाव मे कोई सीमा ही न रहती, ऐसा कहने मे अत्युक्ति नही होगी।

वनवारी का चेहरा पहलवान के समान लम्वा-चौडा था। जव वह क्रोधित होता तव उसके डर से लोग घवरा जाते। किन्तु इस जवान व्यक्ति का मन वहुत ही कोमल था। उसका छोटा भाई वशीलाल जव छोटा था तव उसने उसे मातृ-स्नेह से पाला था। उसके हृदय मे मानो प्यार-दुलार करने की भूख हो।

अपनी पत्नी को जो वह प्यार करता था उसके साथ यह चीज भी जुडी थी—प्यार-दुलार करने की यह इच्छा। किरणलेखा तरुच्छाया के नीचे पथ-भूली रश्मि-रेखा के समान ही छोटी थी, छोटी होने के कारण ही उसने अपने पति के मन मे एक वडी भारी सवेदना जगा रखी थी, इस पत्नी को वस्त्राभूपणो से अनेक प्रकार सजाकर देखने की उसकी वडी इच्छा थी। वह भोग करने का आनन्द नही, वह रचना करने का आनन्द था, वह एक को अनेक करने का आनन्द था, किरण-लेखा को नाना वर्णो मे, नाना आवरणो मे, नाना प्रकार के रूपो मे देखने का आनन्द था।

किन्तु केवल संस्कृत के श्लोको का पाठ करने से ही वनवारी का यह शौक किसी भी प्रकार पूरा नही हो पाता था। उसके अपने भीतर एक पुरुपोचित प्रभु-शक्ति है, यह भी वह प्रकट नही कर सका, और प्रेम की सामग्री को नाना उपकरणो से ऐश्वर्यपूर्ण वनाने की उसकी इच्छा भी पूरी नही होने पाती।

इस प्रकार धनी की यह संतान अपनी मान-मर्यादा, अपनी सुन्दरी पत्नी, उसका भरा यौवन—साधारणत: लोग जिसकी अभिलापा करते है वह-कुछ लिये हुए भी ससार मे एक दिन उत्पात के समान उठ खडा हुआ।

सुखदा मधुकैवर्त की पत्नी थी, जो मनोहरलाल का आसामी था। वह

एक दिन घर के भीतर आकर किरणलेखा के पैर पकडकर रोने लगी। बात यह थी—कुछ वर्ष पूर्व नदी मे मछली पकड़ने का जाल फैलाने के काम के लिए हर वार की भाँति मछुओ ने एक साथ मिलकर कर्जनामा लिखकर मनोहरलाल की कचहरी से हजार रुपया उधार लिया था। अच्छी मछली मिलने पर असल रुपया व्याज सहित चुका देने मे कोई असुविधा नही होती, इसलिए ऊँची व्याजदर पर रुपया उधार लेने मे ये लोग आगा-पीछा नही करते थे। उस वर्ष वैसी मछली नही मिली, और सयोग से एक के वाद एक तीन वर्ष तक नदी की धार मे इतनी कम मछलियाँ आई कि मछुओ का खर्च भी न निकल पाया, यहाँ तक कि वे उल्टे ऋण के जाल मे फँस गए। जो मछुए अन्य इलाको के थे वे तो फिर दिखाई ही नही दिए किन्तु मधुकैवर्त वही का आसामी था, जहाँ उसका पुश्तैनी मकान था। उसके भागने का उपाय न होने के कारण कर्ज चुकाने का सारा उत्तरदायित्व उसके ऊपर आ पडा। सर्वनाश से रक्षा पाने का अनुरोध लेकर वह किरण की शरण मे आई थी। किरण की सास के पास जाने से कोई लाभ नही होता। इसे सभी जानते थे, क्योकि नीलकण्ठ की व्यवस्था मे कोई नुक्स निकाल सकता था, इस वात की वे कल्पना भी नही कर सकती थी। नीलकण्ठ के प्रति वनवारी के मन मे खूव आक्रोश था, यह जानकर ही मधुकैवर्त ने अपनी पत्नी को किरण के पास भेजा था।

वनवारी चाहे जितना क्रोध एवं चाहे जितनी आत्मश्लाघा करे, किरण निश्चय-पूर्वक जानती थी कि नीलकण्ठ के काम मे हस्तक्षेप करने का उसे कोई अधिकार नही है। इसलिए किरण ने सुखदा को वार-वार समझने का प्रयत्न करते हुए कहा, "वेटी, क्या करूँ वताओ। तुम जानती हो इसमे मेरा कोई हाथ नही है। मालिक है, मधु से कहो, उनको जाकर पकडे।"

वह प्रयत्य तो पहले ही किया जा चुका था। मनोहरलाल के पास किसी वात की फरियाद करते ही वे उसके विचार का भार नीलकण्ठ के ही ऊपर छोड देते थे, इसमे कभी कोई हेर-फेर नही होता था। इससे प्रार्थी की विपत्ति और भी वढ जाती थी। दूसरी वार यदि कोई उनके पास अपील करना चाहता तो मालिक क्रोध से आग-ववूला हो उठते थे। अगर जमीन-जायदाद का झंझट ही उन्हे उठाना पड गया तो फिर उसका भोग करने मे सुख ही क्या रहा!

सुखदा जव किरण के पास रो-पीट रही थी उस समय वनवारी वगल के कमरे मे वैठा हुआ अपनी वदूक की नली मे तेल लगा रहा था। वनवारी ने सारी वाते सुनी। किरण करुण स्वर मे वार-वार कह रही थी कि हम इसका कोई भी प्रतिकार करने मे असमर्थ है। वह वात वनवारी की छाती मे शूल के समान

चुभ गई।

उस दिन माघी पूर्णिमा फाल्गुन के आरम्भ मे आकर पडी थी। दिन के समय की उमस को मिटाकर संध्या-समय अचानक एक मतवाली हवा चल पडी थी। कोकिल कूक-कूककर अधीर हुई जा रही थी, बार-बार एक ही सुर की चोट से वह न जाने कहाँ के किस औदासीन्य को विचलित करने की चेष्टा कर रही थी। और आकाश मे फूलो की सुगन्धि का मेला लग गया था, जैसे खचाखच भीड़ हो, जंगले के बिलकुल पास अन्त:पुर के बगीचे से मुचकुन्द फूल की गन्ध ने बसंत के आकाश को नशे में बेसुध कर दिया था। किरण ने उस दिन लटकन[1] रंग की साडी तथा जूड़े मे बेलाफूलो की माला पहन रखी थी। इस दम्पत्ति के प्रचलित नियमानुसार उस दिन बनवारी के लिए भी फाल्गुन-ऋतु उत्सव मनाने के योग्य एक लटकन रंग की चद्दर और बेला के फूलो का गजरा तैयार किया गया था। रात का पहला पहर बीत गया तो भी बनवारी नही दिखा। यौवन का भरा प्याला आज उसे किसी प्रकार भी अच्छा नही लगा। प्रेम के बैकुण्ठलोक मे इतनी बडी कुण्ठा लेकर वह कैसे प्रवेश करता ? मधुकैवर्त का दु ख दूर करने की क्षमता उसमे नही थी, वह क्षमता नीलकण्ठ मे थी ! ऐसे कापुरुष के गले मे पहनाने के लिए माला किसने गूँथी थी !

पहले उसने अपने बाहर के कमरे मे नीलकण्ठ को बुलवाया और कर्ज चुकाने के उत्तरदायित्व के लिए मधुकैवर्त को बर्बाद करने से मना किया। नीलकण्ठ ने कहा, "मधु को यदि प्रश्रय दिया जायगा तो फिर इस तिमाही के प्रारम्भ मे ढेरो रुपया बाकी रह जायगा; सभी उज्र करना शुरू कर देगे।" बनवारी जब तर्क मे न जीत सका तो जो मुँह मे आया बकने लगा। बोला, "नीच !" नीलकण्ठ ने कहा, "नीच न होता तो बड़े आदमी की शरण क्यो लेता।" उसने कहा, "चोर !" नीलकठ ने कहा, "सो तो है ही, भगवान् जिसे अपना कुछ नही देते, दूसरे के धन से ही तो वह प्राण बचाता है।" सारी गालियाँ उसने अपने सिर पर ले ली; अन्त मे कहा, "वकील बाबू बैठे हैं, उनके साथ काम की बात समाप्त कर लूँ। यदि आवश्यकता समझे तो फिर आऊँगा।"

बनवारी ने छोटे भाई बशी को अपने दल मे खीचकर उसी समय पिता के पास जाने का निश्चय किया। वह जानता था, अकेले जाने से कोई फल नही होगा। क्योकि, इस नीलकंठ को लेकर पिता के साथ उसकी पहले ही खटपट हो चुकी थी। पिता उसके ऊपर अप्रसन्न थे ही। एक दिन था जब सभी सोचते थे कि

---

1 लटकन वृक्ष के फल के बीज का लाल रग।

मनोहरलाल अपने वडे लडके को सबसे अधिक चाहते है। किन्तु, अब लगता था, वशी के ऊपर ही उनका पक्षपात था। इसीलिए वनवारी ने वंशी को भी अपनी नालिश मे सम्मिलित करना चाहा।

वशी अत्यन्त भला लडका था। इस परिवार मे अकेले उसीने दो परीक्षाएँ पास की थी। इस वार वह कानून की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। दिन-रात जगकर पढते-पढते उसके अन्तर मे कुछ जमा हो रहा था या नही, ये अन्तर्यामी ही जानें, किन्तु शारीरिक दृष्टि से खर्च के सिवा और कुछ भी नहीं था।

इस फाल्गुन की संध्या को उसके कमरे के जगले वद थे। ऋतु-परिवर्तन के समय से वह वहुत डरता था। हवा पर उसे तनिक भी श्रद्धा न थी। टेविल पर केरोसीन का एक लैम्प जल रहा था; कुछ पुस्तके जमीन पर तख्त की वगल में जमा थी, कुछ टेविल पर; दीवाल के ताक पर औपधियो की कुछ शीशियाँ रखी थी।

वनवारी के प्रस्ताव से वह किसी भी तरह सहमत नही हुआ। वनवारी क्रुद्ध होकर गरज उठा, "तू नीलकठ से डरता है?" वशी इसका कोई उत्तर न देकर चुप रह गया। वास्तव मे उसकी चेष्टा सदा नीलकठ को अनुकूल रखने के लिए रहती थी। वह प्राय सारा वर्प कलकत्ता के घर मे ही विताता, वहाँ निर्धारित रुपये की अपेक्षा उसे ज्यादा की आवश्यकता पड ही जाती। इस सिलसिले मे नीलकठ को प्रसन्न रखने का उसे अभ्यास हो गया था।

वशी को भीरु, कापुरुष, नीलकठ का चरण-चारण-चक्रवर्ती कहकर गालियो की वौछार करके वनवारी अकेला ही पिता के पास जा उपस्थित हुआ। मनोहर लाल अपने वाग की पुष्करिणी के घाट पर नगे वदन आराम से हवा खा रहे थे। पार्पदगण पास वैठे कलकत्ता के वैरिस्टर की जिरह से जिला-कोर्ट मे दूसरे गाँव के जमीदार अखिल मजुमदार किस प्रकार हैरान हो गए उसीकी कहानी श्रुतिमधुर बनाकर मालिक से कह रहे थे। उस दिन वसत-सध्या की सुगन्धि के सहयोग से वह वृत्तान्त उनके लिए अत्यन्त रमणीय हो उठा था।

सहसा वनवारी ने वीच मे आकर रस-भग कर दिया। भूमिका वाँधकर अपनी वात को धीरे-धीरे प्रकट करने योग्य उसकी अवस्था नही थी। उसने गला चढ़ाकर एकदम शुरू कर दिया, नीलकठ के द्वारा उनकी क्षति हो रही है। वह चोर है, मालिक का रुपया मारकर अपना पेट भरता है। इस वात का कोई प्रमाण नही था और वह सत्य भी नही था। नीलकठ के द्वारा सम्पत्ति की वृद्धि हुई थी और वह चोरी भी नही करता था। वनवारी ने सोचा था, नीलकंठ के सत्स्वभाव के प्रति अटल विश्वास होने के कारण ही मालिक सव मामलो मे उसके ऊपर इस प्रकार

आँख बंद करके निर्भर रहते है। यह उसका भ्रम था। मनोहरलाल के मन मे दृढ धारणा थी कि नीलकंठ मौका लगने पर चोरी करता है। किन्तु, इस कारण उसके प्रति उनके मन मे किसी प्रकार की अश्रद्धा नही थी। क्योकि, अनादिकाल से इसी प्रकार ससार चला आ रहा है। अनुचरगण की चोरी की बचत से ही तो सदा बड़े घर पलते है। चोरी करने की चतुराई जिनमे नही है, मालिक की सम्पत्ति की रक्षा करने की बुद्धि ही उनमे कहाँ से आयगी ? धर्मपुत्र युधिष्ठिर से तो जमीदारी का काम नही चल सकता। मनोहर ने अत्यन्त खीझकर कहा, "अच्छा, नीलकंठ क्या करता है या नही करता है इस बात की चिन्ता तुम्हे नही करनी होगी।" साथ ही यह भी कहा, 'देखो न वशी का तो कोई झंझट नही है। वह कैसा पढ-लिख रहा है। वह लडका फिर भी थोडा-बहुत आदमी सरीखा है।"

इसके पश्चात् अखिल मजुमदार की दुर्गति की कहानी मे रस नही आया। परिणामस्वरूप, मनोहरलाल के लिए उस दिन वसन्त की वायु व्यर्थ ही चली और पुष्करिणी के काले जल के ऊपर चन्द्र ज्योत्स्ना के झिलमिलाने की कोई उपयोगिता नही रही। उस दिन की सध्या व्यर्थ नही गई तो केवल वशी और नीलकंठ के लिए। जगला बद करके वशी बहुत रात तक पढता रहा और वकील के साथ परामर्श करते हुए नीलकंठ ने आधी रात काट दी।

कमरे का दिया बुझाकर किरण जगले के पास बैठी थी। काम-काज आज उसने बहुत जल्दी समाप्त कर लिया था। रात्रि का भोजन करना बाकी था, किन्तु अभी तक बनवारी ने खाना नही खाया था, इसीलिए वह प्रतीक्षा कर रही थी। मधुकैवर्त की बात उसे याद भी नही थी। बनवारी मधु के दु.ख का कोई प्रतिकार नही कर सकता, इस सम्बन्ध मे किरण के मन मे लेश-मात्र भी क्षोभ नही था। अपने पति से कभी वह किसी विशेष क्षमता का परिचय पाने के लिए उत्सुक नही थी। परिवार के गौरव मे ही उसके पति का गौरव था। उसका पति उसके ससुर का बड़ा लडका था, उसे इससे भी ज्यादा बडा होना चाहिए, इस प्रकार की बात कभी उसके मन मे भी नही आई। आखिर ये तो गोसाईगज के प्रसिद्ध हालदार के वशज थे।

बनवारी बहुत रात तक बाहर के बरामदे मे टहलने के बाद कमरे मे आया। वह भूल गया था कि उसने भोजन नही खाया है। किरण उसकी प्रतीक्षा मे बिना खाए बैठी हुई थी—इस घटना ने उस दिन जैसे उसको विशेष रूप से चोट पहुँचाई हो। किरण के इस कष्ट स्वीकार करने के साथ उसकी अपनी अकर्मण्यता का मानो मेल न बैठ पाया हो। भोजन का कौर उसके गले मे अटकने लग गया। बनवारी ने अत्यन्त उत्तेजना के साथ पत्नी से कहा, "जैसे भी होगा मधुकैवर्त की

मै रक्षा करूँगा।" किरण ने उसकी इस अनावश्यक उग्रता पर विस्मित होकर कहा, "लो सुनो! तुम उसे किस तरह वचाओगे ?"

मधु का ऋण वनवारी स्वयं शोध कर देगा, यही उसका प्रण था, किन्तु वनवारी के हाथ मे कभी रुपया जमा नही रहता। उसने निश्चय किया कि अपनी तीन अच्छी वन्दूकों मे से एक वन्दूक और एक कीमती हीरे की अँगूठी वेचकर वह धन इकट्ठा करेगा। किन्तु, गाँव मे इन सव चीजो का उचित मूल्य नही मिलेगा और वेचने का प्रयत्न करने पर चारों ओर लोग कानाफूसी करेंगे। इस कारण कोई-न-कोई वहाना करके वनवारी कलकत्ता चला गया। जाते समय मधु को वुलाकर आश्वासन दे गया, कि उसके लिए भय की कोई वात नही है।

इधर वनवारी का शरणापन्न हुआ समझकर, नीलकंठ मधु पर क्रोध से आग ववूला हो उठा। चपरासियो के अत्याचार से कैवर्त मुहल्ले की इज्जत सकट मे पड़ गई।

जिस दिन वनवारी कलकत्ता से लौटकर आया उसी दिन मधु का लडका स्वरूप दौडता-हाँफता हुआ आया और सहसा वनवारी के पैर पकड़कर 'हाय-हाय!' करके रोने लग गया। "क्या है रे, मामला क्या है ?" स्वरूप ने कहा, "मेरे पिता को नीलकंठ ने कल रात से कचहरी मे वन्द कर रखा है।" वनवारी का सारा शरीर क्रोध से काँपने लगा। कहा, "अभी जाकर थाने मे खवर कर आ।"

'मर गए! थाने मे खवर! नीलकण्ठ के विरुद्ध!' उसके पैर उठना नही चाहते थे। अन्त मे वनवारी के धमकाने पर उसने थाने मे जाकर खवर कर दी। पुलिस ने तुरत कचहरी मे आकर मधु को वन्धन से छुडाया और नीलकण्ठ तथा कचहरी के कई चपरासियो को अभियुक्त वनाकर मजिस्ट्रेट के पास चालान कर दिया।

मनोहर वड़े परेशान हो उठे। उनके मुकद्दमे के मंत्री घूस के वहाने पुलिस के साथ मिलकर रुपया लूटने लगे। कलकत्ता से एक वैरिस्टर आया, वह विलकुल कच्चा था, नया पासशुदा। सुविधा इतनी ही थी कि जितनी फीस उसके नाम खाते मे लिखी जाती थी उतनी फीस उसकी जेव मे नही पहुँचती थी। दूसरी ओर मधुकैवर्त के पक्ष मे जिला अदालत का एक कुशल वकील नियुक्त हुआ। उसका खर्च कौन दे रहा था, पता नही चला। नीलकंठ को छह महीने की सजा हुई। हाईकोर्ट की अपील मे भी वह वहाल रही।

घड़ी और वन्दूक का उचित मूल्य मे विकना व्यर्थ नही हुआ। परिणाम-स्वरूप मधु वच गया और नीलकंठ को जेल हो गई। किन्तु, इस घटना के वाद

मधु अपने घर मे टिके कैसे ? वनवारी ने उसको आश्वासन देकर कहा, "तू रह, तुझे कोई डर नही है।" किसके वल पर आश्वासन दिया था यह वही जाने, शायद अपने पौरुष के वल पर।

इस मामले के मूल मे वनवारी था, इसको छिपा रखने का विशेप प्रयत्न उसने नही किया। वात प्रकट भी हो गई, यहाँ तक कि, मालिक के कानो तक पहुँची। उन्होंने नौकर के द्वारा कहला भेजा, "वनवारी कभी मेरे सामने न आवे।" बनवारी ने पिता का आदेश अमान्य नही किया।

किरण अपने पति का व्यवहार देखकर अवाक् रह गई। यह क्या माजरा है ! घर का वडा लड़का—पिता के साथ वातचीत वन्द ! उसके ऊपर अपने कर्मचारियो को जेल मे भेजकर दुनिया के लोगो के सामने अपने परिवार का सिर नीचा कर देना ! वह भी इस एक साधारण मधुकैवर्त को लेकर !

विचित्र वात थी ! इस वश मे कितने बड़े वावू जन्मे एव नीलकण्ठो का भी कभी अभाव नही रहा। नीलकठ अर्थ-व्यवस्था का सारा भार स्वय लेते रहे और वावू पूरी तरह निश्चेष्ट भाव से वश-गौरव की रक्षा करते रहे। ऐसी उल्टी गगा तो कभी नही वही।

आज इस परिवार के बडे वावू के पद की अवनति होने पर बडी वहू के सम्मान को धक्का लगा। इससे इतने दिन वाद आज पति के प्रति किरण की वास्तविक अश्रद्धा का कारण आ जुटा। इतने दिन वाद उसकी वसन्त काल की लटकन रग की साड़ी एव जूडे की फूलो की वेल की माला लज्जा से म्लान हो गई।

किरण की उम्र हो गई थी फिर भी कोई सन्तान नही हुई थी। इस नीलकठ ने ही एक दिन मालिक की अनुमति लेकर पात्री देखकर वनवारी का एक और विवाह प्राय. पक्का कर लिया था। वनवारी हालदारवश का वडा लड़का था, सव वातो के पहले यह वात तो ध्यान मे रखनी ही थी। वह पुत्रहीन रहेगा, यह तो हो ही नही सकता था। इस बात से किरण की छाती धक्-धक् करके काँप उठी। किन्तु, इसको मन-ही-मन विना स्वीकार किये भी वह नही रह सकी कि वात सगत थी। तव भी उसने नीलकठ के ऊपर तनिक भी क्रोध नही किया, उसने अपने भाग्य को ही दोपी ठहराया। उसका पति यदि क्रोधित होकर नीलकण्ठ को मारने न जाता एव विवाह-सम्बन्ध तोडकर पिता-माता के साथ लडाई-झगडा न करता तो किरण उसको अन्याय न मानती। यहाँ तक कि वनवारी ने अपने वंश की वात नही सोची, इससे अत्यन्त गोपन भाव से किरण के मन मे वनवारी के पौरुष के प्रति कुछ अश्र[illegible] [illegible]ो गई। वडे घर का उत्तरदायित्व क्या साधारण उत्तरदायित्व है ? [illegible] ठुर होने का अधिकार है। उसके [illegible] किसी

तरुणी स्त्री का अथवा किसी दुखी कैवर्त के सुख-दु ख का मूल्य ही कितना है ?

साधारणत जो घटित होता रहता है, कभी-कभी उसके घटित न होने पर कोई क्षमा नही कर सकता, यह बात बनवारी किसी भी प्रकार नही समझ सका। उसके लिए पूर्ण रूप से घर का बडा बाबू होना ही उचित था, अन्य किसी प्रकार के उचित-अनुचित की चिन्ता करके यहाँ की धारावाहिकता नष्ट करना उसके लिए अकरणीय था, यह उसको छोडकर सबके लिए अत्यन्त सुस्पष्ट था।

इसको लेकर किरण ने अपने देवर से कितना दु ख प्रकट किया था। वशी बुद्धिमान् था; उसे खाना हजम नही होता और थोडी-सी हवा लगते ही वह जुकाम-खॉसी से व्याकुल हो जाता, किन्तु वह स्थिर, धीर और विचक्षण था। वह अपनी कानून की किताब का जो अध्याय पढ रहा था उसे टेबिल पर उलटकर रखते हुए उसने किरण से कहा, "यह पागलपन के अलावा और कुछ नही है।" किरण ने अत्यन्त उद्वेग से सिर हिलाकर कहा, "जानते हो, देवरजी, तुम्हारे भैया जब तक ठीक रहते है तब तक ठीक है, किन्तु यदि एक बार विगड जायँ तो फिर उन्हे कोई नही संभाल पाता। मै क्या करूँ, बताओ तो।"

जब परिवार के सब समझदार लोगो के साथ किरण का मत पूर्ण रूप से मिल गया तो बनवारी के मन मे यही बात सबसे अधिक खटकी। यह एक जरा-सी स्त्री, अधखिले चंपा फूल के समान कोमल, इसके हृदय को अपनी वेदना के समीप खीच लाने मे पुरुष की समस्त शक्ति परास्त हो गई। आज के दिन किरण यदि बनवारी के साथ पूर्ण रूप से मिल सकती तो उसके हृदय-क्षत देखते-ही-देखते इस प्रकार बढ नही जाते।

मधु की रक्षा करनी होगी यह मामूली कर्त्तव्य की बात, चारो ओर की ताडना के कारण बनवारी के पक्ष मे वास्तव मे एक सनक बन गई। इसकी तुलना मे अन्य सब बाते उसके लिए तुच्छ हो गई। दूसरी ओर जेल से नीलकठ ऐसे स्वस्थ भाव से लौट आया मानो वह जमाई षष्ठी[1] का निमंत्रण निभाने गया था। वह दुबारा यथारीति अम्लान मुख से अपने काम मे जुट गया।

मधु को गृह-विहीन किये बिना प्रजा के सामने नीलकण्ठ के मान की रक्षा नही थी। मान के लिए तो उसे अधिक चिन्ता नही थी, किन्तु आसामियो के उसे न मानने पर उसका काम नही चल सकता था, इसी कारण उसको सावधान होना पडा। अत मधु को तिनके के समान उखाडने के लिए उसने अपने हँसिये पर शान

१ बगाल मे जेठ के महीने मे षष्ठी के दिन दामाद को बुलाकर खूब आदर-सत्कार से खिला-पिलाकर पैसे-कपड़े आदि भेट देते हैं।

चढाना शुरू किया।

इस बार बनवारी छिपा नही रहा। उसने नीलकंठ को स्पष्ट बता दिया कि चाहे जो हो वह मधु को नष्ट नही होने देगा। पहले तो, मधु का जो कर्ज़ था वह उसने अपने पास से पूरा चुका दिया, उसके बाद और कोई उपाय न देखकर वह स्वय जाकर मजिस्ट्रेट को सूचना दे आया कि नीलकठ अन्यायपूर्वक मधु को विपद् मे डालने का उद्योग कर रहा है।

सभी हितैपियो ने बनवारी को समझाया, जिस प्रकार की घटनाएँ घट रही थी, उनसे मनोहर किसी दिन उसको त्याग देगा। त्याग करने पर जो-जो कष्ट भुगतने होते है वे यदि न होते तो इतने दिनो मे मनोहर ने उसको कब का विदा कर दिया होता। किन्तु, बनवारी की माँ मौजूद थी एव आत्मीय स्वजन नाना लोगों के नाना प्रकार के मत थे, उसे लेकर कोई समस्या खड़ी करने के वे एकदम अनिच्छुक थे, अत अभी तक मनोहर चुप थे।

होते-होते एक दिन सुबह अचानक दिखाई पडा, मधु के घर मे ताला लगा है। रात-ही-रात में वह कहाँ चला गया था, इसका पता नही। मामला अत्यत अशोभन होते देखकर नीलकंठ ने जगीदार-सरकार से रुपया देकर उसको सपरिवार काशी भेज दिया था। पुलिस इसको जानती थी; इसलिए कोई हगामा नही हुआ। नीलकठ ने चतुराई से अफवाह उडा दी कि मधु को उसकी स्त्री-पुत्र-कन्या सगेत अमावस्या की रात्रि को काली पर बलि चढाकर मृत देहो को थैले मे भरकर गगा की मँझधार मे डुबा दिया गया है। भय से सबका शरीर सिहर उठा और नीलकंठ के प्रति जनसाधारण की श्रद्धा पहले की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा मे बढ गई।

बनवारी जिस बात को लेकर मत्त था फिलहाल उसकी शान्ति हो गई, किन्तु ससार उसके लिए पहले-जैसा नही रहा।

एक दिन बनवारी बंशी को बहुत चाहता था, आज देखा, बशी उसका कोई नही, वह हालदार परिवार का था। और, उसकी किरण, जिसके रूप के ध्यान ने यौवनारम्भ के पहले से ही क्रमश: उसके हृदय के लता-वितान को लपेट-लपेटकर आच्छन्न कर रखा था, वह भी पूर्ण रूप से उसकी नही थी, वह भी हालदार परिवार की थी। एक दिन था, जब नीलकंठ की फरमाइश से बना गहना उसकी इस हृदयविहारिणी किरण के शरीर पर अच्छी तरह से शोभित न होने के कारण बनवारी असन्तोप प्रकट करता था। आज देखा, कालिदास से आरम्भ करके अमरु और चौर कवियो की जिन समस्त कविताओ के सुहाग से प्रेयसी को मण्डित करता आ रहा था वह हालदार परिवार की इस बडी बहू को किसी भी प्रकार शोभा

नही दे रहा था।

हाय रे ! वसन्त की हवा अब भी बहती थी, रात मे श्रावण की वर्षा अब भी मुखरित हो उठती थी एवं अतृप्त प्रेम की वेदना शून्य हृदय के पथ-पथ पर रोती हुई फिर रही थी।

प्रेम की गहनता की सभी को तो आवश्यकता नही है; संसार मे अधिकांश लोगो का काम थोडे से निश्चित संबल से ही अच्छी तरह चल जाता है। उस नपी-तुली व्यवस्था से विशाल जगत् के क्रम मे कोई व्यतिक्रम नही घटता, किन्तु कई लोगो का इससे पूरा नही पडता। वे अजात पक्षीशावक के समान केवल अण्डे मे प्राप्त अल्प खाद्य-रस को लेकर ही जीवित नही रहते, वे अण्डा फोडकर बाहर निकल आते है, उन्हे अपनी शक्ति से खाद्य-संग्रह करने का विस्तृत क्षेत्र चाहिए। वनवारी वैसी ही भूख लेकर पैदा हुआ था, अपने प्रेम को अपने पौरुष द्वारा सार्थक करने के लिए उसका चित्त उत्सुक था, किन्तु वह जिस ओर दौड़ना चाहता था उसी ओर हालदार परिवार की पक्की दीवार थी; हिलते-डुलते ही उसका सिर टकरा जाता था।

दिन फिर पहले की ही तरह बीतने लगे। पहले की अपेक्षा वनवारी शिकार मे अधिक मन लगाने लगा, इसके अतिरिक्त बाहर से उसके जीवन में और कोई विशेष परिवर्तन नही दिखता था। घर मे वह भोजन करने जाता, भोजन के पश्चात् पत्नी के साथ काफी वातचीत भी होती थी। मधुकैवर्त को किरण ने आज भी क्षमा नही किया था, क्योकि, इस परिवार मे उसके पति ने अपनी प्रतिष्ठा जो खो दी थी उसका मूल कारण था मधु। इसीलिए क्षण-क्षण मे न जाने क्यो उस मधु की बात अत्यन्त कटु होकर किरण के मुँह पर आ जाती। मधु की नस-नस मे शैतानी भरी थी, वह शैतानो मे अग्रगण्य था, और मधु पर दया करने का अर्थ था पूरी तरह ठगा जाना; इस बात को बार-बार विस्तार से कहने पर भी वह थकती नही थी। पहले दो-एक दिन वनवारी ने प्रतिवाद का प्रयत्न करके किरण की उत्तेजना को और बढा दिया था, उसके बाद से वह कोई प्रतिवाद नही करता था। इस प्रकार अपने नियमित गृहधर्म की रक्षा कर रहा था; किरण इसमे किसी अभाव या कमी का अनुभव नही करती, किन्तु भीतर-ही-भीतर वनवारी का जीवन विवर्ण, रसहीन एव चिर-अभुक्त होता जा रहा था।

इसी बीच पता लगा कि परिवार की छोटी बहू, वशी की स्त्री गर्भवती है। सारा परिवार आशा से प्रफुल्लित हो उठा। इस महद्वश के प्रति कर्त्तव्य-पालन मे किरण से जो त्रुटि हो गई थी, इतने दिन बाद उसके पूरे होने की संभावना दिखी; अब षष्ठी देवी की कृपा से कन्या न होकर पुत्र होने मे ही कुशल थी।

पुत्र ही पैदा हुआ। छोटे वावू कॉलेज की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए, और वंश की परीक्षा मे भी प्रथम स्थान पाया। उनका सम्मान उत्तरोत्तर वढ रहा था, अव उनके सम्मान की सीमा न रही।

सभी का ध्यान इस वच्चे पर केन्द्रित हो गया। किरण तो उसको क्षण भर के लिए भी गोद से नही उतारना चाहती थी। उसकी ऐसी दशा हो गई कि मधुकैवर्त के स्वभाव की कुटिलता की वात भी वह प्राय. भूल सी गई थी।

वनवारी वच्चो को वहुत प्यार करता था। छोटों, असमर्थो, सुकुमारो के प्रति उसमे गभीर स्नेह एव करुणा के भाव थे। हर आदमी को विधाता कोई ऐसा गुण देते है जो उसकी प्रकृति के विरुद्ध होता है, यदि ऐसा न होता तो वनवारी पक्षियो का शिकार कैसे करता था, समझ मे नही आता।

किरण की गोद मे एक शिशु को देखने की इच्छा वनवारी के मन मे वहुत समय से अतृप्त वनी हुई थी। इस कारण वंशी के लड़का होने पर पहले तो उसके मन मे एक ईर्ष्याजनित वेदना उत्पन्न हुई, पर उमको दूर करने मे उसे देर नही लगी। इस शिशु को वनवारी खूब स्नेह कर सकता था, किन्तु व्याघात का कारण यह हो गया कि जैसे-जैसे दिन वीतने लगे किरण उसको लेकर वहुत अधिक रत रहने लगी। पत्नी के साथ वनवारी के मिलने मे वहुत व्यवधान पडने लगा। वनवारी स्पष्ट रूप से समझ गया कि इतने दिन वाद किरण को कुछ ऐसा मिल गया है जो उसके हृदय को वास्तव मे पूर्ण कर सकता है। वनवारी जैसे अपनी पत्नी के हृदय-हरम का एक किराएदार मात्र हो, जितने दिन घर का मालिक अनुपस्थित था उतने दिन सारे घर का वह उपभोग करता था, कोई वाधा नही देता था—अव घर का स्वामी आ गया था, इससे किराए का आदमी वाकी सव छोडकर केवल अपने कोने के कमरे पर ही दखल करने का अधिकारी था। किरण स्नेह मे कहाँ तक तन्मय हो सकती थी, उसकी आत्म-विसर्जन की शक्ति कितनी प्रवल थी, यह वनवारी ने जव देखा तव उसका मन सिर हिलाकर वोला, 'इस हृदय को मैं जगा तो नही पाया किन्तु जितना मुझसे साध्य था उतना तो किया।'

केवल इतना ही नही, इस लडके के माध्यम से वंशी का कमरा ही मानो किरण के लिए ज्यादा अपना हो गया। उसकी सारी मत्रणा, आलोचना वंशी के साथ ही अच्छी तरह जमती। उस सूक्ष्म वुद्धि, सूक्ष्म शरीर, रसरक्तहीन, क्षीणजीवी भीरु आदमी के प्रति वनवारी की अवज्ञा क्रमश. गम्भीरतर हो रही थी। संसार के सव आदमी वनवारी की अपेक्षा उसीको सव मामलो मे योग्य समझे यह तो वनवारी ने सहन किया, किन्तु आज जव उसने वार-वार देखा कि

तैल-सचय नष्ट न हो इसके लिए नीलकठ ही तो उपयुक्त प्रहरी था।

वनवारी ने देखा, नीलकठ अन्त.पुर मे आकर हर कमरे के सारे सामान की सूची वना रहा है और जहाँ जितने संदूक-वक्स है उनमे ताला लगा रहा है। अन्त मे किरण के सोने के कमरे मे आकर वह वनवारी की नित्य व्यवहार मे आने वाली सारी चीजो की सूची वनाने लगा। नीलकठ का अन्त·पुर मे आना-जाना था इसलिए किरण उससे पर्दा नही करती थी। किरण ससुर के शोक मे क्षण-क्षण मे आँसू पोछते हुए रुँधे गले से विशेप रूप से सारी चीजे समझाने लगी।

वनवारी ने सिंह-गर्जना करते हुए नीलकंठ से कहा, "तुम इसी समय मेरे कमरे से वाहर निकल जाओ!"

नीलकंठ ने नम्र होकर कहा, "वड़े वावू, मेरा तो कोई दोप नही है। मालिक के वसीयतनामे के अनुसार मुझे तो सव-कुछ समझ-वूझ लेना होगा। माल-असवाव सभी तो हरिदास का है।"

किरण ने मन-ही-मन कहा, "देखो जरा इनका हाल! हरिदास क्या पराया है! अपने लड़के की जायदाद का उपभोग करने मे लज्जा कैसी! और, माल-असवाव आदमी के साथ जायगा क्या! आज नही तो कल वाल-वच्चे ही तो भोग करेगे।"

इस घर की जमीन वनवारी के पैरों मे काँटे के समान चुभने लगी, इस घर की दीवाल उसके दोनो नेत्रों को मानो जलाने लगी। उसे दु ख किस वात का था, यह पूछने वाला व्यक्ति भी इस वड़े परिवार मे कोई नही था।

इसी क्षण घर-वार सव छोडकर वाहर चले जाने के लिए वनवारी का मन व्याकुल हो उठा। किन्तु उसके क्रोध की ज्वाला शान्त नही होना चाहती थी। वह चला जाये और नीलकठ आराम से एकाधिपत्य करे, यह कल्पना वह सहन नही कर सका। इसी क्षण कोई गुरुतर अनिष्ट किये विना उसका मन शान्त नही हो रहा था। वह वोला, "नीलकठ कैसे सम्पत्ति की रक्षा करता है, मैं देखूँगा।"

वाहर अपने पिता के कमरे मे जाकर देखा, उसमे कोई नही था। सभी अन्त पुर के वरतन-वासन और गहने आदि की देख-भाल करने गए थे। अत्यन्त सावधान व्यक्तियो से भी सावधानी मे त्रुटि रह जाती है। नीलकंठ को यह होश नही था कि मालिक का वक्स खोलकर वसीयतनामा निकालने के वाद वक्स मे ताला नही लगाया गया। उस वक्स मे वण्डल मे वँधी मूल्यवान समस्त दलीले

थी। उन प्रमाण-पत्रो के ऊपर ही इस हालदार वंश की सम्पत्ति भी प्रतिष्ठित थी।

वनवारी इन प्रमाणपत्रो का कुछ भी विश्वास नही जानता था, किन्तु ये वैसे काम के थे और इनके अभाव मे मामले-मुकद्दमे मे पग-पग पर अटकना पड़ेगा यह वह समझता था। कागज-पत्र लेकर एक रूमाल मे बाँधकर वह अपने बाहर के बाग मे चम्पा के नीचे वँधे हुए चबूतरे पर बैठकर बहुत देर तक सोचता रहा।

दूसरे दिन श्राद्ध के विषय मे बातचीत करने के लिए नीलकठ वनवारी के पास उपस्थित हुआ। नीलकठ की देह की भंगिमा अत्यन्त विनम्र थी, किन्तु उसके चेहरे पर ऐसा भाव था, अथवा नही था, जिसे देखकर अथवा कल्पना करके वन-वारी का सर्वांग जल उठा। उसे लगा, नीलकठ नम्रता द्वारा उस पर व्यग्य कर रहा है।

नीलकठ बोला, "मालिक के श्राद्ध के सम्बन्ध मे..."

वनवारी ने उसकी बात पूरी नही होने दी, बीच मे बोल उठा, "सो मैं क्या जानूँ।"

नीलकंठ ने कहा, "यह क्या कहते है! आप ही तो श्राद्धाधिकारी है।"

"क्या कहने है अधिकार के! श्राद्ध का अधिकार! ससार मे केवल इतने ही के लिए मेरी ज़रूरत है—मैं और किसी काम का ही नही हूँ।" वनवारी गरज उठा, "जाओ, जाओ! मुझे तंग मत करो!"

नीलकंठ चला गया, किन्तु उसे पीछे से देखकर वनवारी को लगा कि वह हँसता हुआ गया। वनवारी को लगा, घर के सब नौकर-चाकर इस अश्रद्धेय परित्यक्त को लेकर आपस मे हँसी-मजाक कर रहे है। जो व्यक्ति घर का होते हुए भी घर का नही होता उसके समान भाग्य द्वारा विडम्बित और कौन हो सकता है! रास्ते का भिखारी भी नही।

वनवारी प्रमाण-पत्रो का वण्डल लेकर वाहर निकला। हालदार परिवार के प्रतिवेशी और प्रतिद्वन्द्वी जमीदार थे प्रतापपुर के बाँडूज्ये (बनर्जी) जमीदार। वनवारी ने निश्चय किया, 'इन प्रमाण-पत्र-दस्तावेजो को उनके हाथो मे दे दूँगा, धन-सपत्ति सब खाक मे मिल जाय।'

वाहर निकलते समय हरिदास ने ऊपरी मंजिल से अपने सुमधुर वालककठ से पुकारते हुए कहा, "ताऊजी, तुम वाहर जा रहे हो, मै भी तुम्हारे साथ वाहर चलूँगा।"

वनवारी को लगा, वालक के अशुभ ग्रह यह बात उससे कहलवा रहे थे। 'मैं

तो सड़क पर निकल ही पड़ा हूँ, इसे भी अपने साथ निकाल ले चलूँ। जायगा, जायगा, सब खाक मे मिल जायगा।"

बाहर बगीचे तक पहुँचते ही बनवारी को जोरों का शोर-गुल सुनाई दिया। पास ही हाट से लगी एक विधवा की कुटी मे आग लग गई थी। अपने पुराने स्वभाव के अनुसार इस दृश्य को देखकर बनवारी चुप न रह सका। प्रमाण-पत्रों का अपना बण्डल चम्पा के पेड के नीचे रखकर आग की ओर दौड़ा।

जब लौटकर आया तो देखा उसका वह कागजों का बंडल नही था। क्षण-भर मे हृदय मे शूल-सा चुभा और यह बात मन में आई, 'नीलकंठ से फिर मेरी हार हुई। विधवा का घर जलकर राख हो जाने मे क्या हानि थी?' उसे लगा, वह बंडल दुबारा चालाक नीलकंठ के ही हाथ मे पहुँच गया।

तूफान के समान वह एकदम आकर कचहरी के कमरे मे उपस्थित हुआ। नीलकंठ ने तुरन्त बक्स बन्द करके सम्मान के साथ उठकर खड़े होकर बनवारी को प्रणाम किया। बनवारी को लगा, उस बक्स मे ही उसने कागज छिपा लिये हैं। बिना कुछ कहे तुरन्त उस बक्स को खोलकर वह उसमे रखे कागज टटोलने लगा। उसमे हिसाब का खाता और उसीसे सम्बन्धित कागज नत्थी थे। बक्स को उलटा करके झाड़ दिया, कुछ नही मिला।

रुद्धप्राय स्वर से बनवारी ने कहा, "तुम चम्पा के नीचे गए थे?"

नीलकंठ बोला, "जी हाँ, गया क्यो नही था? देखा, आप घबराकर दौड़ रहे है। बात क्या है। यही जानने के लिए गया था।"

बनवारी—"रूमाल में बँधे मेरे कागज तुम्हींने लिये हैं।"

नीलकंठ ने अत्यन्त भले आदमी के समान कहा, "जी नही।"

बनवारी—"झूठ बोल रहे हो। तुम्हारा भला नही होगा, अभी लौटा दो।"

बनवारी ने झूठ-मूठ झूठी डाँट-डपट की। उसकी क्या चीज खो गई थी सो भी वह नही बता सका और उस चोरी के माल के सम्बन्ध में अपना कोई जोर नही था, यह जानकर वह असावधान मूढ मन-ही-मन जैसे अपने को ही धिक्कारने लगा।

कचहरी मे इस प्रकार पागलपन करके वह फिर चम्पा के नीचे ढूँढने लगा। मन-ही-मन माता की शपथ लेकर उसने प्रतिज्ञा की, 'जैसे भी हो मैं इन कागजों का फिर उद्धार करके ही रहूँगा।' किस प्रकार उद्धार करेगा यह सोचने की उसमे शक्ति नहीं थी, केवल क्रुद्ध बालक के समान बार-बार जमीन पर पैर पटकते हुए बोला, "जरूर उद्धार करूँगा, जरूर करूँगा, जरूर करूँगा।"

थककर वह पेड़ के नीचे बैठ गया। कोई नही, उसका कोई नही था अनी

उसका कुछ नही था। अब से नि.सम्बल अपने भाग्य के साथ और ससार के साथ उसको जूझना पड़ेगा। उसके लिए मान-प्रतिष्ठा, शिष्टता, प्रेम, स्नेह, कुछ भी नही रह गया था। केवल मरने और मारने का काम शेप.था।

इस प्रकार मन मे छटपटाते हुए अत्यन्त थकावट के कारण चबूतरे के ऊपर लेटते ही उसे न जाने कब नीद आ गई। जब जागा तो एकाएक समझ नही सका वह कहाॅ है। अच्छी तरह सजग होकर उठकर देखा, उसके सिरहाने हरिदास बैठा था। बनवारी को जगते हुए देखकर हरिदास बोल उठा, "ताऊ, तुम्हारा क्या खो गया था, बताओ तो।"

बनवारी स्तब्ध रह गया। हरिदास के इस प्रश्न का उत्तर नही दे सका।

हरिदास ने कहा, "अगर मै ला दूॅं तो मुझे क्या दोगे ?"

बनवारी को लगा, शायद और कुछ था। उसने कहा, "मेरे पास जो-कुछ है सब तुझे दूॅंगा।"

यह बात उसने हॅंसी मे कही थी, वह जानता था, उसका कुछ नही था।

तब हरिदास ने अपने कपडो के भीतर से बनवारी के रूमाल मे लिपटा-कागज का बडल निकाला। इस रगीन रूमाल के ऊपर बाघ की तस्वीर बनी थी; वह तस्वीर उसके ताऊ ने उसे कई बार दिखाई थी। इस रूमाल के प्रति हरिदास का विशेप लोभ था। इसी कारण आग लगने के शोर-गुल मे नौकर लोग जब बाहर दौड गए थे तभी बगीचे मे आकर हरिदास ने चम्पा के नीचे दूर से ही इस रूमाल को देखकर पहचान लिया था।

बनवारी हरिदास को खीचकर छाती से लगाकर चुपचाप बैठा रहा, कुछ देर बाद—उसकी ऑखो से टप-टप करके ऑसू टपकने लगे। उसे याद आया, बहुत दिन पहले वह अपने एक नये खरीदे हुए कुत्ते को सजा देने के लिए बार-बार उसे चाबुक मारने के लिए बाध्य हुआ था। एक बार उसका चाबुक खो गया, कही मिलता ही न था। जब वह चाबुक की आशा छोड बैठा तभी देखा, वही कुत्ता कही से चाबुक मुॅंह मे दबाकर मालिक के सामने बडे आनन्द से पूॅंछ हिला रहा है। इसके बाद वह फिर कभी कुत्ते को चाबुक नही मार पाया।

झटपट ऑखो से ऑंसू पोंछकर बनवारी ने कहा, "हरिदास तू क्या चाहता है, मुझे बता।"

हरिदास ने कहा, "ताऊजी, मैं तुम्हारा वह रूमाल चाहता हूॅं।"

बनवारी बोला, "आ हरिदास, तुझे कधे पर चढाऊॅं।"

हरिदास को कधे पर चढाकर बनवारी तत्क्षण अन्त पुर मे गया। शयन-कक्ष मे जाकर देखा, किरण सारे दिन धूप मे सुखाए गए कम्बल को बरामदे से उठाकर

कमरे मे ज़मीन पर बिछा रही थी। वनवारी के कंधे परहरिदास को देखकर वह उद्विग्न होकर वोली, "उतार दो, उतार दो। तुम गिरा दोगे उसे।"

वनवारी ने किरण के चेहरे पर दृष्टि जमाते हुए कहा, "अव मुझसे मत डरना, मैं नही गिराऊँगा।"

यह कहकर हरिदास को कधे से उतारकर किरण की गोद की ओर वढा दिया। उसके वाद उन कागजों को लेकर किरण के हाथ में देकर कहा, "यह हरिदास की धन-संपत्ति के प्रमाणपत्र है। यत्न से रखना!"

किरण ने आश्चर्य से कहा, "तुम्हे कहाँ मिले ?"

वनवारी ने कहा, "मैंने चोरी की थी।"

उसके वाद हरिदास को छाती से लगाकर कहा, "यह ले वेटा, अपने ताऊ की जिस मूल्यवान संपत्ति के प्रति तुझे लोभ हुआ है, उसे ले!"

और यह कहते हुए रूमाल उसके हाथ मे दे दिया।

उसके वाद फिर एक वार अच्छी तरह से किरण की ओर ताककर देखा। देखा, वह तन्वी अव तन्वी नही रह गई है, कव मोटी हो गई थी यह उसने लक्ष्य नही किया था। इसी बीच मे हालदार परिवार की वड़ी वहू के उपयुक्त उसका चेहरा भर गया था। और अधिक क्या होगा, अव 'अमरुशतक' की कविताओ को भी अन्य सपूर्ण सम्पत्ति के साथ विसर्जित कर देना ही वनवारी के लिए अच्छा होगा।

उस रात के वाद वनवारी फिर नही दिखाई दिया। वह केवल एक पंक्ति की एक चिट्ठी लिख गया था कि वह नौकरी ढूँढने वाहर जा रहा है।

पिता के श्राद्ध की भी वह प्रतीक्षा नही कर सका! गाँव-भर के लोग इस वात पर उसे धिक्कारने लगे।

पत्नी का पत्र

श्री चरणकमलेषु,

आज हमारे विवाह को पन्द्रह वर्ष हो गए, लेकिन अभी तक मैंने कभी तुमको चिट्ठी नही लिखी। सदा तुम्हारे पास ही बनी रही —न जाने कितनी बाते कहती-सुनती रही, फिर चिट्ठी लिखने लायक दूरी कभी नही मिली।

आज मैं श्री क्षेत्र मे तीर्थ करने आई हूँ, तुम अपने आफिस के काम मे लगे हुए हो। कलकत्ता के साथ तुम्हारा वही सम्बन्ध है जो घोघे के साथ शंख का होता है। वह तुम्हारे तन-मन से चिपक गया है। इसलिए तुमने आफिस मे छुट्टी की दरख्वास्त नही दी। विधाता की यही इच्छा थी; उन्होने मेरी छुट्टी की दरख्वास्त मजूर कर ली।

मैं तुम्हारे घर की मझली बहू हूँ। पर आज पद्रह वर्ष बाद इस समुद्र के किनारे खडे होकर मैं जान पाई हूँ कि अपने जगत् और जगदीश्वर के साथ मेरा एक संबध और भी है। इसलिए आज साहस करके यह चिट्ठी लिख रही हूँ, इसे तुम अपने घर की ही मँझली बहू की चिट्ठी मत समझना।

तुम लोगो के साथ मेरे सम्बन्ध की बात जिन्होने मेरे भाग्य मे लिखी थी उन्हे छोड़कर जब इस सम्भावना का और किसी को पता नही था, उसी शैशव काल मे मैं और मेरा भाई एक साथ ही सन्निपात के ज्वर से पीडित हुए थे। भाई तो मर गया, पर मैं बची रही। मोहल्ले की औरते कहने लगी "मृणाल लड़की है न, इसीलिए बच गई। लडका होती तो क्या भला बच सकती थी।" चोरी की कला मे यमराज निपुण है उनकी नजर कीमती चीज पर ही पडती है।"

मेरे भाग्य मे मौत नही है। यही बात अच्छी तरह से समझाने के लिए मै यह चिट्ठी लिखने बैठी हूँ।

एक दिन जब दूर के रिश्ते मे तुम्हारे मामा तुम्हारे मित्र नीरद को लेकर कन्या देखने आए थे तब मेरी आयु बारह वर्ष की थी। दुर्गम गाँव मे मेरा घर था, जहाँ दिन मे भी सियार बोलते रहते। स्टेशन से सात कोस तक छकडा गाडी मे चलने के बाद बाकी तीन मील का कच्चा रास्ता पालकी मे बैठकर पार

करने के बाद हमारे गाँव मे पहुँचा जा सकता था। उस दिन तुम लोगों को कितनी हैरानी हुई ? तिस पर हमारे पूर्वी बंगाल का भोजन—मामा उस भोजन की हँसी उडाना आज भी नही भूलते।

तुम्हारी माँ की एक ही जिद थी कि वडी वहू के रूप की कमी को मँझली वहू के द्वारा पूरी करें। नही तो भला इतना कष्ट करके तुम लोग हमारे गाँव क्यों जाते ? पीलिया, यकृत, अमरशूल और दुलहिन के लिए वंगाल प्रान्त मे खोज नही करनी पडती। वे स्वय ही आकर घेर लेते है, छुडाये नही छूटते।

पिता की छाती धक्-धक् करने लगी। माँ दुर्गा का नाम जपने लगी। शहर के देवता को गाँव का पुजारी क्या देकर सन्तुष्ट करे ? वेटी के रूप का भरोसा था; लेकिन वेटी मे स्वयं उस रूप का कोई मान नही होता, देखने आया हुआ व्यक्ति उसका जो मूल्य दे, वही उसका मूल्य होता है। इसलिए तो हजार रूप-गुण होने पर भी लडकियो का सकोच किसी भी तरह दूर नही होता।

सारे घर का, यही नही, सारे मोहल्ले का यह आतक मेरी छाती पर पत्थर की तरह जमकर वैठ गया। आकाश का सारा उजाला और ससार की समस्त शक्ति उस दिन मानो इस वारह-वर्षीय ग्रामीण लडकी को दो परीक्षको की दो जोडी आँखों के सामने कसकर पकड रखने के लिए चपरासगिरी कर रही थी—मुझे छिपने की कही जगह नही मिली।

अपने करुण स्वर से सम्पूर्ण आकाश को कँपाती हुई शहनाई वज उठी। मै तुम लोगो के यहाँ आ पहुँची। मेरे सारे ऐवो का व्यौरेवार हिसाव लगाकर गृहिणियो को यह स्वीकार करना पडा कि सव-कुछ होते हुए भी मै सुन्दरी जरूर हूँ। यह वात सुनते ही मेरी वडी जेठानी का चेहरा भारी हो गया। लेकिन सोचती हूँ, मुझे रूप की जरूरत ही क्या है ! रूप नामक वस्तु को अगर किसी त्रिपुडी पडित ने गंगामिट्टी से गढा हो तो उसका आदर हो, लेकिन उसे तो विधाता ने केवल अपने आनन्द से निर्मित किया है। इसलिए तुम्हारे धर्म के ससार मे उसका कोई मूल्य नही। मै रूपवती हूँ, इस वात को भूलने मे तुम्हे वहुत दिन नही लगे। लेकिन मुझमे बुद्धि भी है, यह वात तुम लोगो को पग-पग पर याद करनी पडी। मेरी यह वुद्धि इतनी प्रकृत है कि तुम लोगो की घर-गृहस्थी मे इतना समय काट देने पर भी वह आज भी टिकी हुई है। मेरी इस वुद्धि से माँ वडी चिन्तित रहती थी। नारी के लिए यह तो एक बला ही है। बाधाओ को मानकर चलना जिसका काम है वह यदि बुद्धि को मान कर चलना चाहे तो ठोकर खा-खाकर उसका सिर फूटेगा ही। लेकिन तुम्ही वताओ, मैं क्या करूँ ? तुम लोगो के घर की वहू को जितनी बुद्धि की

जरूरत है विधाता ने लापरवाही मे मुझे उससे बहुत ज्यादा बुद्धि दे डाली है, अब मैं उसे लौटाऊँ भी तो किसको ? तुम लोग मुझे पुरखिन कहकर दिन-रात गाली देते रहे। अक्षम्य को कडी बात कहने से ही सान्त्वना मिलती है, इसीलिए मैंने उसको क्षमा कर दिया।

मेरी एक बात तुम्हारी घर-गृहस्थी से बाहर थी जिसे तुममे से कोई नही जानता। मैं तुम सबसे छिपाकर कविता लिखा करती थी। वह भले ही कूडा-करकट क्यो न हो, उस पर तुम्हारे अन्त.पुर की दीवार न उठ सकी। वही मुझे मृत्यु मिलती थी, वही पर मैं मैं हो पाती थी। मेरे भीतर तुम लोगो की मँझली बहू के अतिरिक्त जो कुछ था, उसे तुम लोगो न कभी पसन्द नही किया। क्योकि उसे तुम लोग पहचान भी न पाये। मैं कवि हूँ, यह बात पन्द्रह वर्ष मे भी तुम लोगो की पकड़ मे नही आई।

तुम लोगों के घर की प्रथम स्मृतियो मे से मेरे मन मे जो सबसे ज्यादा जगती रहती है वह है तुम लोगो की गोशाला। अन्त·पुर को जाने वाले जीने की बगल के कोठे मे तुम लोगो की गौएँ रहती है, सामने के आँगन को छोडकर उनके हिलने-डुलने के लिए और कोई जगह नही थी। आँगन के कोने मे गायो को भूसा देने के लिए काठ की नाँद थी, सवेरे नौकर को तरह-तरह के काम रहते इसलिए भूखी गाये नाँद के किनारो को चाट-चाटकर चबाचबाकर खुरच देती। मेरा मन रोने लगता। गाँव की बेटी होकर मै जिस दिन तुम्हारे घर से पहली बार आई उस दिन उस बडे शहर के बीच मुझे वे दो गाये और तीन बछड़े चिर परिचित आत्मीय-जैसे जान पडे। जितने दिन मैं रही, बहू रही, खुद न खाकर छिपा-छिपाकर मैं उन्हे खिलाती रही, जब बड़ी हुई तब गौओ के प्रति मेरी प्रत्यक्ष ममता को देख-कर मेरे साथ हँसी-मजाक का सम्बन्ध रखने वाले लोग मेरे गोत्र के बारे मे सन्देह प्रकट करते रहे।

मेरी बेटी जनमते ही मर गई। जाते समय उसने साथ चलने के लिए मुझे भी पुकारा था। अगर वह बची रहती तो मेरे जीवन मे जो कुछ महान् है, जो कुछ सत्य है, वह सब मुझे ला देती; तब मै मँझली बहू से एकदम माँ बन जाती। गृहस्थी मे बँधी रहने पर भी माँ विश्व-भर की माँ होती है। पर मुझे माँ होने की वेदना ही मिली, मातृत्व की मुक्ति प्राप्त नही हुई।

मुझे याद है, अंग्रेज डॉक्टर को हमारे घर का भीतरी भाग देखकर बडा आश्चर्य हुआ था और जच्चाघर देखकर नाराज होकर उसने डाँट-फटकार भी लगाई थी। सदर मे तो तुम लोगो का छोटा-सा बाग है। कमरे मे भी साज-शृंगार की कोई कमी नही, पर भीतर का भाग मानो पशमीने के काम की उलटी

परत हो। वहाँ न कोई लज्जा है, न सौन्दर्य, न शृंगार। उजाला वहाँ टिमटिमाता रहता है। हवा चोर की भाँति प्रवेश करती है, आँगन का कूडा-करकट हटने का नाम नही लेता। फर्श और दीवार पर कालिमा अक्षय बनकर विराजती है। लेकिन डॉक्टर ने एक भूल की थी। उसने सोचा था कि शायद इससे हमको रात-दिन दुख होता होगा। वात विलकुल उलटी है। अनादर नाम की चीज राख की तरह होती है। वह शायद भीतर-ही-भीतर आग को बनाये रहती है लेकिन ऊपर से उसके ताप को प्रकट नही होने देती। जव आत्म-सम्मान घट जाता है तव अनादर से अन्याय भी नही दिखाई देता। इसीलिए उसकी पीडा नही होती। यही कारण है कि नारी दुख का अनुभव करने मे ही लज्जा पाती है। इसीलिए मै कहती हूँ, अगर तुम लोगो की व्यवस्था यही है कि नारी को दुख पाना ही होगा तो फिर जहाँ तक सम्भव हो उसे अनादर मे रखना ही ठीक है। आदर से दुःख की व्यथा और वढ जाती है।

तुम चाहे जैसे रखते रहे, मुझे दुख है यह वात कभी मेरे ख़याल मे भी नही आई। जच्चाघर मे जव सिर पर मौत मँडराने लगी थी, तव भी मुझे कोई डर नही लगा। हमारा जीवन ही क्या है कि मौत से डरना पड़े? जिनके प्राणो को अनादर और यत्न से कसकर बाँध लिया गया हो, मरने मे उन्ही को कष्ट होता है। उस दिन अगर यमराज मुझे घसीटने लगते तो मै उसी तरह उखड आती जिस तरह पोली जमीन से जड-समेत घास बड़ी आसानी से खिंच आती है। वगाल की वेटी तो वात-वात मे मरना चाहती है। लेकिन इस तरह मरने मे कौन-सी वहादुरी है। हम लोगो के लिए मरना इतना आसान है कि मरते लज्जा आती है।

मेरी वेटी सन्ध्या-तारा के समान क्षण-भर के लिए उदित होकर अस्त हो गई। मै फिर से अपने दैनिक कामों मे और गाय-वछडो मे लग गई। इसी तरह मेरा जीवन आखिर जैसे-तैसे कट जाता; आज तुम्हे यह चिट्ठी लिखने की जरूरत न पडती, लेकिन, कभी-कभी हवा एक मामूली-सा वीज उडाकर ले जाती है और पक्के दालान मे पीपल का अकुर फूट उठता है, और होते-होते उसी से लकड़ी-पत्थर की छाती विदीर्ण होने लग जाती है। मेरी गृहस्थी की पक्की व्यवस्था मे भी जीवन का एक छोटा-सा कण न जाने कहाँ से उडकर आ पडा, तभी से दरार शुरू हो गई।

जव विधवा माँ की मृत्यु के वाद मेरी वड़ी जेठानी की वहन विन्दु ने अपने चचेरे भाइयो के अत्याचार के मारे एक दिन हमारे घर मे अपनी दीदी के पास आश्रय लिया था, तव तुम लोगो ने सोचा था, यह कहाँ की वला आ गई। आग

लगे मेरे स्वभाव को, करती भी क्या—देखा, तुम लोग सव मन-ही-मन खीझ उठे हो, इसीलिए उस निराश्रिता लडकी को घेरकर मेरा सम्पूर्ण मन यकायक जैसे कमर बॉधकर खड़ा हो गया हो। पराये घर मे, पराये लोगों की अनिच्छा होते हुए भी आश्रय लेना—कितना वड़ा अपमान है यह ! यह अपमान भी जिसे विवश होकर स्वीकार करना पड़ा हो उसे क्या धक्का देकर एक कोने मे डाल दिया जाता है ?

वाद मे मैंने अपनी वडी जेठानी की दशा देखी। उन्होने अपनी गहरी सम-वेदना के कारण ही वहन को अपने पास वुलाया था, लेकिन जव उन्होने देखा कि इसमे पति की इच्छा नही है, तो उन्होंने ऐसा भाव दिखाना शुरू किया मानो उन पर कोई वडी वला आ पडी हो, मानो अगर वह किसी तरह दूर हो सके तो जान वचे। उनमे इतना साहस नही हुआ कि वे अपनी अनाथ वहन के प्रति खुले मन से स्नेह प्रकट कर सके। वे पतिव्रता थी।

उनका यह सकट देखकर मेरा मन और भी दुखी हो उठा। मैंने देखा, वडी जेठानी ने खास तौर से सवको दिखा-दिखाकर विन्दु के खाने-पहनने की ऐसी रद्दी व्यवस्था की और उसे घर मे इस तरह नौकरानियो के-से काम सौंप दिए कि मुझे दु ख ही नही, लज्जा भी हुई। मैं सवके सामने इस वात को प्रमाणित करने मे लगी रहती थी कि हमारी गृहस्थी को विन्दु वहुत सस्ते दामो मे मिल गई है। ढेरो काम करती है फिर भी खर्च की दृष्टि से वेहद सस्ती है।

मेरी वड़ी जेठानी के पितृ-वश मे कुल के अलावा और कोई वड़ी चीज न थी, न रूप था, न धन। किस तरह मेरे ससुर के पैरों पड़ने के वाद तुम लोगो के घर मे उनका व्याह हुआ था, यह वात तुम अच्छी तरह जानते हो। वे सदा यही सोचती रही कि उनका विवाह तुम्हारे वंश के प्रति वडा भारी अपराध था। इसीलिए वे सव वातो मे अपने-आपको भरसक दूर रखकर, अपने को छोटा मानकर तुम्हारे घर मे वहुत ही थोड़ी जगह मे सिमटकर रहती थी।

लेकिन उनके इस प्रशंसनीय उदाहरण से हम लोगो को वडी कठिनाई होती रही। मै अपने-आपको हर तरफ से इतना वेहद छोटा नही वना पाती, मैं जिस वात को अच्छा समझती हूँ उसे किसी और की खातिर वुरा समझने को मैं उचित नही मानती—इस वात के तुम्हे भी वहुत से प्रमाण मिल चुके है।

विन्दु को मैं अपने कमरे मे घसीट लाई। जीजी कहने लगी, "मँझली वहू गरीव घर की वेटी का दिमाग खराव कर डालेगी।" वे सवसे मेरी इस ढग से शिकायत करती फिरती थी मानो मैंने कोई भारी आफत ढा दी हो। लेकिन मैं अच्छी तरह जानती हूँ, वे मन-ही-मन सोचती थी कि जान वची। अव अपराध

का बोझ मेरे सिर पर पड़ने लगा। वे अपनी बहन के प्रति खुद जो स्नेह नही दिखा पाती थी वही मेरे द्वारा प्रकट करके उनका मन हल्का हो जाता। मेरी बड़ी जेठानी बिन्दु की उम्र मे से दो-एक अंक कम कर देने की चेष्टा किया करती थी, लेकिन अगर अकेले मे उनसे यह कहा जाता कि उसकी अवस्था चौदह से कम नही थी, तो ज्यादती न होती। तुम्हे तो मालूम है, देखने मे वह इतनी कुरूप थी कि अगर वह फर्श पर गिरकर अपना सिर फोड लेती तो भी लोगों को घर के फर्श की ही चिन्ता होती। यही कारण है कि माता-पिता के न होने पर ऐसा कोई नही था जो उसके विवाह की सोचता, और ऐसे लोग भी भला कितने थे जिनके प्राणों मे इतना बल हो कि उससे व्याह कर सकें।

बिन्दु बहुत डरती-डरती मेरे पास आई। मानो अगर मेरी देह उससे छू जायगी तो मै सह नही पाऊँगी। मानो संसार मे उसको जन्म लेने का कोई अधिकार ही न था। इसीलिए वह हमेशा अलग हटकर आँख बचाकर चलती। उसके पिता के यहाँ उसके चचेरे भाई उसके लिए ऐसा एक भी कोना नही छोडना चाहते थे जिसमे वह फालतू चीज की तरह पडी रह सके। फालतू कूड़े को घर के आस-पास अनायास ही स्थान मिल जाता है क्योकि मनुष्य उसको भूल जाता है; लेकिन अनावश्यक लडकी एक तो अनावश्यक होती है, दूसरे उसको भूलना भी कठिन होता है। इसलिए उसके लिए घूरे पर भी जगह नही होती, फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि उसके चचेरे भाई ही संसार मे परमावश्यक पदार्थ थे। जो हो, वे लोग थे खूब। यही कारण है कि जब मैं बिन्दु को अपने कमरे मे बुलाकर लाई तो उसकी छाती धक्-धक् करने लग गई। उसका डर देखकर मुझे बडा दु.ख हुआ। मेरे कमरे मे उसके लिए थोडी-सी जगह है, यह बात मैंने बडे प्यार से उसे समझाई।

लेकिन मेरा कमरा एक मेरा ही कमरा तो था नही। इसलिए मेरा काम आसान नही हुआ। मेरे पास दो-चार दिन रहने पर ही उसके शरीर मे न जाने लाल-लाल क्या निकल आया। शायद अम्हौरी रही होगी या ऐसा ही कुछ होगा; तुमने कहा शीतला। क्यो न हो, वह बिन्दु थी न। तुम्हारे मोहल्ले के एक अनाडी डॉक्टर ने आकर बताया, दो-एक दिन और देखे बिना ठीक से कुछ नही कहा जा सकता। लेकिन दो-एक दिन तक धीरज किसको होता ? बिन्दु तो अपनी बीमारी की लज्जा से ही मरी जा रही थी। मैंने कहा, शीतला है तो हो, मैं उसे अपने जच्चाघर मे लिवा ले जाऊँगी, और किसी को कुछ करने की जरूरत नही। इस बात पर जब तुम लोग सब मेरे ऊपर भडककर क्रोध की मूर्ति बन गए, यह ही नही, जब बिन्दु की जीजी भी बडी परेशानी दिखाती हुई उस अभागी

लड़की को अस्पताल भेजने का प्रस्ताव करने लगी, तभी उसके शरीर के वे सारे लाल-लाल दाग एकदम विलीन हो गए। मैंने देखा कि इस बात से तुम लोग और भी व्यग्र हो उठे। कहने लगे अब तो वाकई शीतला बैठ गई है। क्यों न हो, वह बिन्दु थी न।

अनादर के पालन-पोषण में एक बड़ा गुण है। शरीर को वह एकदम अजर-अमर कर देता है। बीमारी आने का नाम नहीं लेती, मरने के सारे आम रास्ते बिलकुल बन्द हो जाते हैं। इसीलिए रोग उसके साथ मजाक करके चला गया, हुआ कुछ नहीं। लेकिन यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो गई कि संसार में ज्यादा साधनहीन व्यक्ति को आश्रय देना ही सबसे कठिन है। आश्रय की आवश्यकता उसकी जितनी अधिक होती है आश्रय की बाधाएँ भी उसके लिए उतनी ही विषम होती हैं।

बिन्दु के मन में से जब मेरा डर जाता रहा तब उसको एक और कुग्रह ने पकड़ लिया। वह मुझे इतना प्यार करने लगी कि मुझे डर होने लगा। स्नेह की ऐसी मूर्ति तो संसार में पहले कभी देखी ही न थी। पुस्तकों में पढ़ा अवश्य था, पर वह भी स्त्री-पुरुष के बीच ही। बहुत दिनों से ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी कि मुझे अपने रूप की बात याद आती। अब इतने दिनों बाद यह कुरूप लड़की मेरे उसी रूप के पीछे पड़ गई। रात-दिन मेरा मुँह देखते रहने पर भी उसकी आँखों की प्यास नहीं बुझती थी। कहती, जीजी तुम्हारा यह मुँह मेरे अलावा और कोई नहीं देख पाता। जिस दिन मैं स्वयं ही अपने केश बाँध लेती उस दिन वह बहुत रूठ जाती। अपने दोनों हाथों से मेरे केश-भार को हिलाने-डुलाने में उसे बड़ा आनन्द आता। कभी कहीं दावत में जाने के अतिरिक्त और कभी तो मुझे साज-शृंगार की आवश्यकता पड़ती ही न थी, लेकिन बिन्दु मुझे तंग कर-करके थोड़ा-बहुत सजाती रहती। वह लड़की मुझे लेकर बिलकुल पागल हो गई थी।

तुम्हारे घर के भीतरी हिस्से में कहीं रत्ती-भर भी मिट्टी नहीं थी। उत्तर की ओर की दीवार में नाली के किनारे न जाने कैसे एक गाब का पौधा निकला। जिस दिन देखती कि उस गाब के पौधे में नई लाल-लाल कोपलें निकल आई हैं, उसी दिन जान पड़ता कि धरती पर वसन्त आ गया है, और जिस दिन मेरी घर-गृहस्थी में जुटी हुई इस अनादृत लड़की के मन का ओर-छोर किसी तरह रंग उठा उस दिन मैंने जाना कि हृदय के जगत् में भी वसन्त की हवा बहती है। वह किसी स्वर्ग से आती है, गली के मोड़ से नहीं।

कि मुझे कभी-कभी उस पर क्रोध आ जाता; लेकिन उस स्नेह मे मैंने अपना एक ऐसा रूप देखा जो जीवन मे मैं पहले कभी नही देख पाई थी। वही मेरा मुख्य स्वरूप है।

इधर मै विंदु-जैसी लड़की को जो इतना लाड-प्यार करती थी यह वात तुम लोगो को वडी ज्यादती लगी। इसे लेकर वरावर खट-पट होने लगी। जिस दिन मेरे कमरे से वाजूवन्द की चोरी हुई उस दिन इस वात का आभास देते हुए तुम लोगों को तनिक भी लज्जा नही आई कि उस चोरी मे किसी-न-किसी रूप मे विंदु का हाथ है। जव स्वदेशी-आदोलन मे लोगो के घर की तलाशियाँ होने लगी तव तुम लोग अनायास ही यह संदेह कर वैठे कि विंदु पुलिस द्वारा रखी गई स्त्री-गुप्त-चर है। इसका और तो कोई प्रमाण नही था; प्रमाण वस इतना ही था कि वह विंदु थी। तुम लोगो के घर की दासियाँ उसका कोई भी काम करने से इन्कार कर देती थी—उनमे से किसी से अपने काम के लिए कहने मे वह लडकी भी संकोच के मारे जडवत् हो जाती थी। इन्ही सव कारणो से उसके लिए मेरा खर्च वढ गया। मैंने खासतौर से अलग से एक दासी रख ली। यह वात तुम लोगों को अच्छी नही लगी। विंदु को पहनने के लिए मैं जो कपडे देती थी, उन्हे देखकर तुम इतने क्रुद्ध हुए कि तुमने मेरे हाथ-खर्च के रुपये ही वन्द कर दिए। दूसरे ही दिन से मैने सवा रुपये जोडे की मोटी मिल की धोती पहननी शुरू कर दी। और जव मोती की माँ मेरी जूठी थाली उठाने के लिए आई तो मैने उसको मना कर दिया। मैने खुद जूठा भात वछडे को खिलाने के वाद आँगन के नल पर जाकर वर्तन मल लिये। एक दिन एकाएक इस दृश्य को देखकर तुम प्रसन्न नही हो सके। मेरी खुशी के विना तो काम चल सकता है, पर तुम लोगो की खुशी के विना नही चल सकता—यह वात आज तक मेरी समझ मे नही आई। उधर ज्यो-ज्यो तुम लोगों का क्रोध वढता जा रहा था त्यो-त्यो विंदु की आयु भी वढती जा रही थी। इस स्वाभाविक वात पर तुम लोग अस्वाभाविक ढग से परेशान हो उठे थे।

एक वात याद करके मुझे आश्चर्य होता रहा है कि तुम लोगो ने विंदु को जवरदस्ती अपने घर से विदा क्यो नही कर दिया! मै अच्छी तरह समझती हूँ कि तुम लोग मन-ही-मन मुझसे डरते थे। विधाता ने मुझे वुद्धि दी है, भीतर-ही-भीतर इस वात की खातिर किये विना तुम लोगों को चैन नही पडता था। अन्त मे अपनी शक्ति से विंदु को विदा करने मे असमर्थ होकर तुम लोगो ने प्रजापति देवता की शरण ली। विंदु का वर ठीक हुआ। वडी जेठानी वोली, जान वची। माँ काली ने अपने वश की लाज रख ली। वर कैसा था, मैं नही जानती। तुम

लोगों से सुना था कि सब बातों मे अच्छा है। बिंदु मेरे पैरो से लिपटकर रोने लगी। बोली, "जीजी मेरा व्याह क्यो कर रही हो भला ?" मैंने उसको समझाते-बुझाते कहा, "बिंदु, डर मत, मैंने सुना है तेरा वर अच्छा है।"

बिंदु बोली—"अगर वर अच्छा है तो मुझमें भला ऐसा क्या है जो पसन्द आ सके उसे ?" लेकिन वर-पक्ष वालो ने तो बिंदु को देखने के लिए आने का नाम भी न लिया। बडी जीजी इससे बडी निश्चित हो गई।

लेकिन बिंदु रात-दिन रोती रहती। चुप होने का नाम ही न लेती। उसको क्या कष्ट है, यह मैं जानती थी। बिंदु के लिए मैंने घर मे बहुत बार झगड़ा किया था लेकिन उसका व्याह रुक जाय यह बात कहने का साहस नही होता था। कहती भी किस बल पर ? मैं अगर मर जाती तो उसकी क्या दशा होती ?

एक तो लडकी तिस पर काली, किसके यहाँ जा रही है, वहाँ उसकी क्या दशा होगी, इन बातों की चिंता न करना ही अच्छा था। सोचती, तो प्राण काँप उठते।

बिंदु ने कहा, "जीजी, व्याह के अभी पाँच दिन और है। इस बीच क्या मुझे मौत नही आयगी ?"

मैंने उसको खूब धमकाया। लेकिन अंतर्यामी जानते है कि अगर किसी स्वाभाविक ढग से बिंदु की मृत्यु हो जाती तो मुझे चैन मिलता।

व्याह के एक दिन पहले बिंदु ने अपनी जीजी के पास जाकर कहा, "जीजी, मैं तुम लोगो की गोशाला मे पडी रहूँगी, जो कहोगे वही करूँगी, मैं तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ, मुझे इस तरह मत धकेलो।"

कुछ दिनो से जीजी की आँखो से चोरी-चोरी आँसू झर रहे थे। उस दिन भी झरने लगे। लेकिन सिर्फ हृदय ही तो नही होता, शास्त्र भी तो है। उन्होंने कहा, "बिंदी, जानती नही, स्त्री की गति-मुक्ति सब-कुछ पति ही है। भाग्य मे अगर दुःख लिखा है तो उसे कोई नही मिटा सकता।"

असली बात तो यह थी कि कही कोई रास्ता नही था—बिंदु को व्याह तो करना ही पड़ेगा। फिर जो हो, सो हो। मैं चाहती थी कि विवाह हमारे घर से ही हो। लेकिन तुम लोग कह बैठे वर के ही घर मे हो, उनके कुल की यही रीति है। मैं समझ गई, बिंदु के व्याह मे अगर तुम लोगों को खर्च करना पड़ा तो तुम्हारे गृह-देवता उसे किसी भाँति नही सह सकेंगे। इसीलिए चुप रह जाना पडा। लेकिन एक बात तुममे से कोई नही जानता। जीजी को बताना चाहती थी, पर फिर बताई नही। नही तो वे डर से मर जाती—मैंने अपने थोड़े-बहुत गहने लेकर

चुपचाप बिंदु का शृंगार कर दिया था। सोचा था, जीजी की नजर मे तो जरूर ही पड जायगा। लेकिन उन्होंने जैसे देखकर भी नही देखा। दुहाई है धर्म की, इसके लिए तुम उन्हे क्षमा कर देना।

जाते समय बिंदु मुझसे लिपटकर बोली, "जीजी, तो क्या तुम लोगो ने मुझे एकदम त्याग दिया?" मैंने कहा, "नही बिंदु, तुम चाहे-जैसी हालत मे रहो, प्राण रहते मैं तुम्हे नही त्याग सकती।"

तीन दिन बीते। तुम्हारे ताल्लुके के आसामियो ने तुम्हे खाने के लिए जो भेडा दिया था उसे मैंने तुम्हारी जठराग्नि से बचाकर नीचे वाली कोयले की कोठरी के एक कोने में बाँध दिया था। सवेरे उठते ही मे खुद जाकर उसको दाना खिला आती। दो-एक दिन तुम्हारे नौकरो पर भरोसा करके देखा उसे खिलाने की बजाय उनका झुकाव उसीको खा जाने की ओर अधिक था।

उस दिन सवेरे कोठरी मे गई तो देखा, बिंदु एक कोने में गुड-मुड होकर बैठी हुई है। मुझे देखते ही मेरे पैर पकडकर वह चुपचाप रोने लगी।

बिंदु का पति पागल था।

'सच कह रही है, बिंदु!"

"तुम्हारे सामने क्या मैं इतना बड़ा झूठ बोल सकती हूँ, दीदी? वह पागल है। इस विवाह मे ससुर की सम्मति नही थी, लेकिन वे मेरी सास से यमराज की तरह डरते थे। ब्याह के पहले ही काशी चल दिए थे। सास ने जिद करके अपने लडके का ब्याह कर लिया। मै वही कोयले के ढेर पर बैठ गई। स्त्री पर स्त्री को दया नही आती। कहती है, कोई लडकी थोडे ही है। लडका पागल है तो हो, है तो पुरुष।"

देखने मे बिंदु का पति पागल नही लगता। लेकिन कभी-कभी उसे ऐसा उन्माद चढता कि उसे कमरे मे ताला बन्द करके रखना पड़ता। ब्याह की रात वह ठीक था। लेकिन रात मे जगते रहने के कारण और इसी तरह के और झंझटो के कारण दूसरे दिन से उसका दिमाग बिलकुल खराब हो गया। बिंदु दोपहर को पीतल की थाली मे भात खाने बैठी थी, अचानक उसके पति ने भात समेत थाली उठाकर आँगन मे फेंक दी। न जाने क्यो अचानक उसको लगा, मानो बिंदुरानी रासमणि हो। नौकर ने, हो न हो, चोरी से उसी के सोने के थाल मे रानी के खाने के लिए भात दिया हो। इसलिए उसे क्रोध आ गया था। बिंदु तो डर के मारे मरी जा रही थी। तीसरी रात को जब उसकी सास ने उससे अपने पति के कमरे मे सोने के लिए कहा तो बिंदु के प्राण सूख गए। उसकी सास को जब क्रोध आता था तो होश मे नही रहती थी। वह भी पागल ही थी, लेकिन पूरी तरह से नही।

इसलिए वह ज़्यादा खतरनाक थी। विंदु को कमरे मे जाना ही पड़ा। उस रात उसके पति का मिजाज ठंडा था। लेकिन डर के मारे विंदु का शरीर पत्थर हो गया था। पति जब सो गए तब काफी रात बीतने पर वह किस तरह चतुराई से भागकर चली आई, इसका विस्तृत विवरण लिखने की आवश्यकता नही है।

घृणा और क्रोध से मेरा शरीर जलने लगा। मैंने कहा, "इस तरह धोखे के व्याह को व्याह नही कहा जा सकता। विंदु, तू जैसे रहती थी वैसे ही मेरे पास रह। देखूँ, तुझे कौन ले जाता है।"

तुम लोगो ने कहा, 'विंदु झूठ बोलती है।"

मैंने कहा, "वह कभी झूठ नही बोलती।"

तुम लोगों ने कहा, "तुम्हे कैसे मालूम ?"

मैंने कहा, "मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

तुम लोगो ने डर दिखाया, "अगर विंदु के ससुराल वालो ने पुलिस-केस कर दिया तो आफत मे पड जायँगे।"

मैंने कहा, "क्या अदालत यह बात न सुनेगी कि उसका व्याह धोखे से पागल वर के साथ कर दिया गया है ?"

तुमने कहा, "तो क्या इसके लिए अदालत जायँगे। हमें ऐसी क्या गर्ज है ?"

मैंने कहा, "जो कुछ मुझसे बन पड़ेगा, अपने गहने बेचकर करूँगी।"

तुम लोगो ने कहा, "क्या वकील के घर तक दौडोगी ?"

इस बात का क्या जवाब होता ? सिर ठोकने के अलावा और कर भी क्या सकती थी ?

उधर विंदु की ससुराल से उसके जेठ ने आकर बाहर बडा हगामा खड़ा कर दिया। कहने लगा, "थाने मे रिपोर्ट कर दूँगा।"

मैं नही जानती मुझमे क्या शक्ति थी—लेकिन जिस गाय ने अपने प्राणो के डर से कसाई के हाथो से छूटकर मेरा आश्रय लिया हो उसे पुलिस के डर से फिर उस कसाई को लौटाना पड़े यह बात मैं किसी भी प्रकार नही मान सकती थी। मैंने हिम्मत करके कहा, "करने दो थाने मे रिपोर्ट।"

इतना कहकर मैंने सोचा कि अब विंदु को अपने सोने के कमरे मे ले जाकर कमरे मे ताला लगाकर बैठ जाऊँ। लेकिन खोजा तो विंदु का कही पता नही। जिस समय तुम लोगो से मेरी बहस चल रही थी उसी समय विंदु ने स्वय बाहर निकलकर अपने जेठ को आत्म-समर्पण कर दिया था। वह समझ गई थी कि अगर वह इस घर मे रही तो मैं बडी आफत मे पड जाऊँगी।

का तर्क था कि उनका लडका उसको खाये तो नही जा रहा था न। संसार में बुरे पति के उदाहरण दुर्लभ नही है। उनकी तुलना मे तो उनका लड़का सोने का चाँद था।

मेरी बडी जेठानी ने कहा—जिसका भाग्य ही खराब हो उसके लिए रोने से क्या फायदा? पागल-वागल जो भी हो, है तो स्वामी ही न।

तुम लोगों के मन में लगातार उस सती-साध्वी का दृष्टांत याद आ रहा था जो अपने कोढी पति को अपने कंधो पर विठाकर वेश्या के यहाँ ले गई थी।

संसार-भर मे कायरता के इस सबसे अधम आख्यान का प्रचार करते हुए तुम तुम लोगों के पुरुष-मन को कभी तनिक भी संकोच नही हुआ। इसलिए मानव-जन्म पाकर भी तुम लोग विन्दु के व्यवहार पर क्रोध कर सके, उसमे तुम्हारा सिर नही झुका। विन्दु के लिए मेरी छाती फटी जा रही थी, लेकिन तुम लोगो का व्यवहार देखकर मेरी लज्जा का अन्त न था। मैं तो गाँव की लड़की थी, तिस पर तुम लोगों के घर आ पडी, फिर भगवान् ने न जाने किस तरह मुझे ऐसी बुद्धि दे दी। धर्म-संबंधी तुम लोगों की यह चर्चा मुझे किसी भी प्रकार सहन नहीं हुई।

मैं निश्चयपूर्वक जानती थी कि विन्दु मर भी भले ही जाय, वह अव हमारे घर लौटकर नही आयेगी। लेकिन मैं तो उसे व्याह के एक दिन पहले यह आशा दिला चुकी थी कि प्राण रहते उसे नही छोड़ूँगी। मेरा छोटा भाई शरद् कलकत्ता मे कॉलेज मे पढता था। तुम तो जानते ही हो, तरह-तरह से वालंटियरी करना, प्लेग वाले मोहल्लों मे चूहे मारना, दामोदर मे वाढ़ आने की खवर सुनकर दौड पडना—इन सब वातो मे उसका इतना उत्साह था कि एफ० ए० की परीक्षा मे लगातार दो वार फेल होने पर भी उसके उत्साह मे कोई कमी नही आई। मैंने उसे बुलाकर कहा, "शरद्, जैसे भी हो विन्दु की खवर पाने का इंतजाम तुझे करना ही पड़ेगा। विन्दु को मुझे चिट्ठी भेजने का साहस नही होगा, वह भेजे भी तो मुझे मिल नही सकेगी।"

इस काम की वजाय यदि मैं उससे डाका डालकर विन्दु को लाने की वात कहती या उसके पागल स्वामी का सिर फोड़ देने के लिए कहती तो उसे ज्यादा खुशी होती।

शरद् के साथ वातचीत कर रही थी तभी तुमने कमरे में आकर कहा, "तुम फिर यह क्या वखेड़ा कर रही हो?"

मैंने कहा, "वही जो शुरू से करती आई हूँ। जव से तुम्हारे घर आई हूँ··· लेकिन नही, वह तो तुम्ही लोगों की कीर्ति है।"

तुमने पूछा, "विन्दु को लाकर फिर कही छिपा रखा है क्या?"

मैंने कहा, "बिन्दु अगर आती तो मैं ज़रूर ही छिपाकर रख लेती, लेकिन वह अब नही आयेगी। तुम्हे डरने की कोई ज़रूरत नही है।"

शरद् को मेरे पास देखकर तुम्हारा संदेह और भी बढ़ गया। मैं जानती थी कि शरद् का हमारे यहाँ आना-जाना तुम लोगों को पसन्द नही है। तुम्हे डर था कि उस पर पुलिस की नज़र है। अगर कभी किसी राजनीतिक मामले में फँस गया तो तुम्हे भी फँसा डालेगा। इसीलिए मैं भैया-दूज का तिलक भी आदमी के हाथो उसीके पास भिजवा देती थी, अपने घर नही बुलाती थी।

एक दिन तुमसे सुना कि बिन्दु फिर भाग गई है, इसलिए उसका जेठ हमारे घर उसे खोजने आया है। सुनते ही मेरी छाती मे शूल चुभ गए। अभागिनी का असह्य कष्ट तो मैं समझ गई, पर फिर भी कुछ करने का कोई रास्ता नही था।

शरद् पता करने दौड़ा। शाम को लौटकर मुझसे बोला, "बिन्दु अपने चचेरे भाइयो के यहाँ गई थी, लेकिन उन्होने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसी वक्त उसे फिर ससुराल पहुँचा दिया। इसके लिए उन्हे हरजाने का और गाड़ी के किराये का जो दण्ड भोगना पड़ा उसकी खार अब भी उनके मन से नही गई है।"

श्रीक्षेत्र की तीर्थ-यात्रा करने के लिए तुम लोगो की काकी तुम्हारे यहाँ आकर ठहरी। मैंने तुमसे कहा, "मैं भी जाऊँगी।"

अचानक मेरे मन मे धर्म के प्रति यह श्रद्धा देखकर तुम इतने खुश हुए कि तुमने तनिक भी आपत्ति नही की। तुम्हे इस बात का भी ध्यान था कि अगर मैं कलकत्ता मे रही तो फिर किसी-न-किसी दिन बिन्दु को लेकर झगड़ा कर बैठूँगी। मेरे कारण तुम्हे बडी परेशानी थी। मुझे बुधवार को चलना था, रविवार को ही सब ठीक-ठाक हो गया। मैंने शरद् को बुलाकर कहा, "जैसे भी हो बुधवार को पुरी जाने वाली गाड़ी मे तुझे बिन्दु को चढ़ा ही देना पड़ेगा।"

शरद् का चेहरा खिल उठा। वह बोला, "डर की कोई बात नही जीजी, मैं उसे गाड़ी मे बिठाकर पुरी तक चला चलूँगा। इसी बहाने जगन्नाथजी के दर्शन भी हो जायँगे।"

उसी दिन शाम को शरद् फिर आया। उसका मुँह देखते ही मेरा दिल बैठ गया। मैंने पूछा, "क्या बात है" शरद्! शायद कोई रास्ता नही निकला।"

वह बोला, "नही।"

मैंने पूछा, "क्या उसे राजी नही कर पाए?"

उसने कहा, "अब जरूरत भी नही है। कल रात अपने कपड़ो मे आग लगा-कर वह आत्म-हत्या करके मर गई। उस घर के जिस भतीजे से मैंने मेल बढ़ा

लिया था उसी से खवर मिली कि तुम्हारे नाम वह एक चिट्ठी रख गई थी, लेकिन वह चिट्ठी उन लोगों ने नष्ट कर दी।"

"चलो, छुट्टी हुई।"

गाँव-भर के लोग चीख उठे। कहने लगे, "लडकियों का कपडो मे आग लगा-कर मर जाना तो अव एक फैशन हो गया है।"

तुम लोगों ने कहा, "अच्छा नाटक है। हुआ करे, लेकिन नाटक का तमाशा सिर्फ बंगाली लड़कियो की साडी पर ही क्यो होता है, वंगाली वीर पुरुषों की धोती की चुन्नटो पर क्यों नही होता, यह भी तो सोचकर देखना चाहिए।"

ऐसा ही था विन्दी का दुर्भाग्य। जितने दिन जीवित रही, तनिक भी यश नही मिल सका। न रूप का, न गुण का—मरते वक्त भी यह नही हुआ कि सोच-समझकर कुछ ऐसे नये ढग से मरती कि दुनिया-भर के लोग खुशी से ताली वजा उठते। मरकर भी उसने लोगों को नाराज ही किया।

जीजी कमरे मे जाकर चुपचाप रोने लगी, लेकिन उस रोने में जैसे एक सांत्वना थी। कुछ भी सही, जान तो वची। मर गई, यही क्या कम है? अगर वची रहती तो न जाने क्या हो जाता।

मैं तीर्थ मे आ पहुँची हूँ। विन्दु के आने की तो जरूरत ही न रही। लेकिन मुझे जरूरत थी।

लोग जिसे दु.ख मानते है वह तुम्हारी गृहस्थी मे मुझे कभी नही मिला। तुम्हारे यहाँ खाने-पहनने की कोई कमी नही। तुम्हारे वड़े भाई का चरित्र चाहे जैसा हो, तुम्हारे चरित्र मे ऐसा कोई दोप नही जिसके लिए विधाता को वुरा कह सकूँ। वैसे अगर तुम्हारा स्वभाव तुम्हारे वड़े भाई की तरह भी होता तो भी शायद मेरे दिन करीव-करीव ऐसे ही कट जाते और मैं अपनी सती-साध्वी वडी जेठानी की तरह पति देवता को दोष देने के वजाय विश्व-देवता को ही दोप देने की चेष्टा करती। अतएव, मै तुमसे कोई शिकायत नही करना चाहती—मेरी चिट्ठी का कारण यह नही है।

लेकिन मैं अव माखन वढाल की गली के तुम्हारे उस सत्ताईस नम्वर वाले घर मे लौटकर नही आऊँगी। मैं विन्दु को देख चुकी हूँ। इस ससार में नारी का सच्चा परिचय क्या है, यह मैं पा चुकी हूँ। अव तुम्हारी कोई जरूरत नही।

और फिर मैंने यह भी देखा है कि वह लडकी ही क्यो न हो, भगवान् ने उसका त्याग नही किया। उस पर तुम लोगो का चाहे कितना ही जोर क्यो न रहा हो, वह उसका अन्त नही था। वह अपने अभागे मानव-जीवन से वड़ी थी। तुम लोगों के पैर इतने लम्वे नही थे कि तुम मनमाने ढग से अपने हिसाव से उसके जीवन को

सदा के लिए उससे दवाकर रख सकते, मृत्यु तुम लोगों से भी वडी है। अपनी मृत्यु मे वह महान् है—वहाँ विन्दु केवल वंगाली परिवार की लडकी नही है, केवल चचेरे भाइयों की वहन नहीं है, केवल किसी अपरिचित पागल पति की प्रवंचिता पत्नी नही है। वहाँ वह अनन्त है।

मृत्यु की उस वशी का स्वर उस वालिका के भग्न-हृदय से निकलकर जव मेरे जीवन की यमुना के पास वजने लगा तो पहले-पहल मानो मेरी छाती मे कोई वाण विंध गया हो। मैंने विधाता से प्रश्न किया, 'इस संसार मे जो-कुछ सवसे अधिक तुच्छ है वही सवसे अधिक कठिन क्यों है ?' इस गली मे चारदीवारी से घिरे इस निरानन्द स्थान मे यह जो तुच्छतम वुदवुद है, वह इतनी भयंकर वाधा कैसे वन गया ? तुम्हारा संसार अपनी शठ नीतियो से क्षुधा-पात्र को सभाले कितना ही क्यो न पुकारे, मैं उस अन्त पुर की जरा-सी चौखट को क्षण-भर के लिए भी पार क्यो नही कर सकी ? ऐसे ससार मे ऐसा जीवन लेकर मुझे इस अत्यन्त तुच्छ काठ-पत्थर की आड मे ही तिल-तिलकर क्यो मरना होगा ? कितनी तुच्छ है यह मेरी प्रतिदिन की जीवन-यात्रा ! इसके वँधे नियम, वँधे अभ्यास, वँधी हुई वोली, वँधी हुई मार, सव कितनी तुच्छ है—फिर भी क्या अन्त मे दीनता के उस नाग-पाश वन्धन की ही जीत होगी, और तुम्हारे अपने इस आनन्द-लोक की, इस सृष्टि की हार ?

लेकिन, मृत्यु की वशी वजने लगी—कहाँ गई राज-मिस्त्रियों की वनाई हुई वह दीवार, कहाँ गया तुम्हारे घोर नियमो से वँधा वह काँटो का घेरा ? कौन-सा है वह दुःख, कौन-सा है वह अपमान जो मनुष्य को वन्दी वनाकर रख सकता है ? यह लो, मृत्यु के हाथ मे जीवन की जय-पताका उड़ रही है। अरी मँझली वहू, तुझे डरने की अव कोई जरूरत नही। मँझली वहू के इस तेरे खोल को छिन्न होते एक निमेप भी नही लगा।

तुम्हारी गली का मुझे कोई डर नही। आज मेरे सामने नीला समुद्र है, मेरे सिर पर आषाढ के वादल।

तुम लोगो की रीति-नीति के अँधेरे ने मुझे अव तक ढक रखा था। विन्दु ने आकर क्षण-भर के लिए उस आवरण के छेद मे से मुझे देख लिया। वही लडकी अपनी मृत्यु द्वारा सिर से पैर तक मेरा वह आवरण उघाड गई है। आज वाहर आकर देखती हूँ, अपना गौरव रखने के लिए कही जगह ही नही है। मेरा यह अनादृत रूप जिनकी आँखो को भाया है वे सुन्दर आज सम्पूर्ण आकाश से मुझे निहार रहे है। अव मँझली वहू की खैर नही।

तुम सोच रहे होगे, मै मरने जा रही हूँ—डरने की कोई वात नही। तुम

लोगो के साथ मैं ऐसा पुराना मजाक नहीं करूँगी। मीरावाई भी तो मेरे ही समान नारी थी। उनकी जंजीरे भी तो कम भारी नही थी, वचने के लिए उनको तो मरना ही पडा। मीरावाई ने अपने गीत में कहा था, 'वाप छोड़े माँ छोडे, जहाँ कही जो भी है, सव छोड़ दें, लेकिन मीरा की लगन वही रहेगी प्रभु, अव जो होना है सो हो।'

यह लगन ही तो जीवन है।

मैं अभी जीवित रहूँगी। मै वच गई।

तुम लोगों के चरणो के आश्रय से छूटी हुई

मृणाल

अपरिचिता

: १ :

आज मेरी आयु केवल सत्ताईस साल की है। यह जीवन न दीर्घता के हिसाब से बडा है, न गुण के हिसाब से। तो भी इसका एक विशेष मूल्य है। यह उस फूल के समान है जिसके वक्ष पर भ्रमर आ बैठा हो और उसी पदक्षेप के इतिहास ने उसके जीवन के फल मे गुठली का-सा रूप धारण कर लिया हो।

वह इतिहास आकार मे छोटा है, उसे छोटा करके ही लिखूंगा। जो छोटे को साधारण समझने की भूल नही करेंगे वे इसका रस समझेंगे।

कॉलेज मे पास करने के लिए जितनी परीक्षाएँ थी सब मैंने खत्म कर ली है। बचपन मे मेरे सुन्दर चेहरे को लेकर पंडितजी को सेमर के फूल तथा माकाल फल[1] के साथ मेरी तुलना करके हँसी उडाने का मौका मिला था, तब मुझे उससे बडी लज्जा लगती थी; किन्तु बड़े होने पर सोचता रहा हूँ कि यदि पुनर्जन्म हो तो मेरे मुख पर सुरूप और पडितजी के मुख पर विद्रूप इसी प्रकार प्रकट हो। एक दिन था जब मेरे पिता गरीब थे। वकालत करके उन्होने बहुत-सा रुपया कमाया, भोग करने का उन्हे पल भर भी समय नही मिला। मृत्यु के समय उन्होने जो लम्बी साँस ली थी वही उनका पहला अवकाश था।

उस समय मेरी अवस्था कम थी। माँ के हाथो ही मेरा लालन-पालन हुआ। माँ गरीब घर की बेटी थी; अत. हम धनी थे यह बात न तो वे भूलती, और न मुझे भूलने देती। बचपन में मैं सदा गोद मे ही रहा, शायद इसीलिए मैं अन्त तक पूरी तौर पर वयस्क ही नही हुआ। आज भी मुझे देखने पर लगेगा, जैसे मैं अन्नपूर्णा की गोद मे गजानन का छोटा भाई होऊँ।

मेरे असली अभिभावक थे मेरे मामा। वे मुझसे मुश्किल से छ वर्ष बडे होगे। किन्तु, फल्गु की रेती की तरह उन्होने हमारे सारे परिवार को अपने हृदय मे सोख लिया था। उन्हे खोदे बिना इस परिवार का एक भी बूंद रस पाने का कोई

---

१ बाहर से देखने मे सुन्दर तथा भीतर से दुर्गन्धयुक्त और अखाद्य गूदे वाला एक फल।

उपाय नहीं। इसी कारण मुझे किसी भी वस्तु के लिए कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

हर कन्या के पिता स्वीकार करेंगे कि मैं सत्पात्र हूँ। हुक्का तक नहीं पीता। भला आदमी होने में कोई झंझट नहीं है, अत: मैं नितान्त भला मानस हूँ। माता का आदेश मानकर चलने की क्षमता मुझमें है—वस्तुत: न मानने की क्षमता मुझमें नहीं है। मैं अपने को अन्त:पुर के शासनानुसार चलने के योग्य ही बना सका हूँ, यदि कोई कन्या स्वयंवरा हो तो इन सुलक्षणों को याद रखे।

बड़े-बड़े घरों से मेरे विवाह के प्रस्ताव आए थे। किन्तु मेरे मामा का जो धरती पर मेरे भाग्य देवता के प्रधान एजेण्ट थे, विवाह के सम्बन्ध में एक विशेष मत था। अमीर की कन्या उन्हें पसन्द नहीं थी। हमारे घर जो लड़की आये वह सिर झुकाए हुए आये, वे यही चाहते थे। फिर भी रुपये के प्रति उनकी नस-नस में आसक्ति समाई हुई थी। वे ऐसा समधी चाहते थे जिनके पास धन तो न हो, पर जो धन देने में त्रुटि न करे। जिसका शोषण तो कर लिया जाय, पर जिसे घर आने पर गुड़गुड़ी के बदले बँधे हुक्के में[1] तम्बाकू देने पर जिनकी शिकायत न सुननी पड़े।

मेरा मित्र हरीश कानपुर में काम करता था। छुट्टियों में उसने कलकत्ता आकर मन चंचल कर दिया। बोला, "सुनो जी, अगर लड़की की बात हो तो एक अच्छी-खासी लड़की है।"

कुछ दिन पहले ही एम० ए० पास किया था। सामने जितनी दूर तक दृष्टि जाती, छुट्टी धू-धू कर रही थी; परीक्षा नहीं है, उम्मीदवारी नहीं, नौकरी नहीं; अपनी जायदाद देखने की चिन्ता भी नहीं, शिक्षा भी नहीं, इच्छा भी नहीं—होने में भीतर माँ थी और बाहर मामा।

इस अवकाश की मरुभूमि में मेरा हृदय उस समय विश्व-व्यापी नारी-रूप की मरीचिका देख रहा था—आकाश में उसकी दृष्टि थी, वायु में उसका निश्वास, तरु-मर्मर में उसकी रहस्यमयी बातें।

ऐसे में ही हरीश आकर बोला, "अगर लड़की की बात हो तो···।" मेरा तन-मन वसन्त-वायु से दोलायित वकुल-वन की नवपल्लव-राशि की भाँति धूप-छाँह का पट बुनने लगा। हरीश आदमी था रसिक, रस देकर वर्णन करने की उसमें शक्ति थी, और मेरा मन था तृषार्त्त।

मैंने हरीश से कहा, "एक बार मामा से बात चलाकर देखो।"

---

१. गुड़गुड़ी हुक्का अधिक सम्मान-सूचक समझा जाता है, बँधा हुक्का मामूली हुक्का होता है।

बैठक जमाने मे हरीश अद्वितीय था। इससे सर्वत्र उसकी खातिर होती थी। मामा भी उसे पाकर छोडना नही चाहते थे। बात उनकी बैठक मे चली। लडकी की अपेक्षा लडकी के पिता की जानकारी ही उनके लिए महत्त्वपूर्ण थी। पिता की अवस्था वे जैसी चाहते थे वैसी ही थी। किसी जमाने मे उनके वश मे लक्ष्मी का मगल-घट भरा रहता था। इस समय उसे शून्य ही समझो, फिर भी तले मे थोडा वहुत बाकी था। अपने प्रान्त मे वंश-मर्यादा को रक्षा करके चलना सहज न समझकर वे पश्चिम मे जाकर वास कर रहे थे। वहाँ गरीव गृहस्थ की ही भाँति रहते थे। एक लड़की को छोडकर उनके और कोई नही था। अतएव उसी के पीछे लक्ष्मी के घट को एकदम औधा कर देने मे हिचकिचाहट नही होगी।

यह सव तो सुन्दर था। किन्तु लडकी की आयु पन्द्रह की है यह सुनकर मामा का मन भारी हो गया। वश मे तो कोई दोप नही है ? नही, कोई दोष नही— पिता अपनी कन्या के योग्य वर कही भी नही खोज पाए। एक तो वर की हाट में मँहगाई थी, तिस पर धनुष-भग की शर्त; अत: बाप सब्र किये बैठे है— किन्तु कन्या की आयु सब्र नही करती।

जो हो हरीश की सरस रसना मे गुण था। मामा का मन नरम पड गया। विवाह का भूमिका-भाग निर्विघ्न पूरा हो गया। कलकत्ता के बाहर बाकी जितनी दुनिया है, सबको मामा अण्डमान द्वीप के अन्तर्गत ही समझते थे। जीवन मे एक बार विशेष काम से वे कोन्नगर तक गये थे। मामा यदि मनु होते तो वे अपनी संहिता मे हावड़ा के पुल को पार करने का एकदम निपेध कर देते। मन मे इच्छा थी, खुद जाकर लडकी देख आऊँ। पर प्रस्ताव करने का साहस नही कर सका।

कन्या को आशीर्वाद देने[1] जिनको भेजा गया वे हमारे विनु दादा थे, मेरे फुफेरे भाई। उनके मत, रुचि एव दक्षता पर मैं सोलह आने निर्भर कर सकता था। लौटकर विनु दादा ने कहा, "बुरा नही है जी ! असली सोना है।"

विनु दादा की भाषा अत्यन्त सयत थी। जहाँ हम कहते थे 'अपूर्व', वहाँ वे कहते 'कामचलाऊ'। अतएव मैं समझा, मेरे भाग्य मे प्रजापति से पंचशर का कोई विरोध नही था।

: २ :

कहना व्यर्थ है, विवाह के उपलक्ष्य मे कन्यापक्ष को ही कलकत्ता आना पडा।

---

१ बगालियों मे विवाह पक्का करने के लिए एक रस्म होती है—जिसमे वरपक्ष के लोग कन्या को और कन्या-पक्ष के लोग वर को आशीर्वाद देकर कोई आभूषण दे जाते हैं।

या के पिता शम्भूनाथ बाबू हरीश पर कितना विश्वास करते थे, उसका प्रमाण
था कि विवाह के तीन दिन पहले उन्होने मुझे पहली बार देखा और आशीर्वाद
रस्म पूरी कर गए। उनकी अवस्था चालीस के ही आस-पास होगी। बाल
ले थे, मूँछो का पकवान अभी प्रारम्भ ही हुआ था। रूपवान थे, भीड मे देखने
र सबसे पहले उन्ही पर नजर पडने लायक चेहरा।

आशा करता हूँ कि मुझे देखकर वे खुश हुए थे। समझना कठिन था, क्योकि
अल्पभाषी थे। जो एकाध बात कहते भी थे उसे मानो पूरा जोर देकर नही
हते थे। इस बीच मामा का मुँह अबाध गति से चल रहा था—धन मे, मान मे
मारा स्थान शहर मे किसी से कम नही था, इसकी वे नाना प्रकार से प्रचार
र रहे थे। शम्भूनाथ बाबू ने इस बात मे बिलकुल योग नही दिया—किसी भी
संग मे कोई 'हाँ' तक नही सुनाई दिया। मैं होता तो निरुत्साहित हो जाता,
केन्तु मामा को हतोत्साहित करना कठिन था। उन्होने शम्भूनाथ बाबू का शान्त
स्वभाव देखकर सोचा कि आदमी बिलकुल निर्जीव है, तनिक भी तेज नही।
समधियों मे और कुछ भी जो हो, तेज होना पाप है, अतएव मन-ही-मन मामा
खुश हुए। शम्भूनाथ बाबू जब उठे तो मामा ने संक्षेप में ऊपर से ही उनको विदा
कर दिया, गाडी मे बिठाने नही गये।

दहेज के सम्बन्ध मे दोनो पक्षो मे बात पक्की हो गई थी। मामा अपने को
असाधारण चतुर समझकर गर्व करते थे। बातचीत मे वे कही भी कोई छिद्र न
छोड़ते। रुपये की संख्या तो निश्चित थी ही, ऊपर से गहना कितने-भर एवं सोना
किस दर का होगा, यह भी एकदम तय हो गया था। मैं स्वय इन बातों मे नही
था; न जानता था कि क्या लेन-देन निश्चित हुआ है। मैं जानता था कि यह
स्थूल भाग भी विवाह का एक प्रधान अंग है; एव उस अंश का भार जिनके ऊपर
है वे एक कौडी भी नही ठगायँगे। वस्तुत. अत्यन्त चतुर व्यक्ति के रूप मे मामा
हमारे सारे परिवार मे गर्व की प्रधान वस्तु थे। जहाँ कही भी हमारा कोई सम्बन्ध
हो उन सभी जगहो मे वे बुद्धि की लडाई मे जीतेगे, यह बिलकुल पक्की बात थी।
इसलिए हमारे यहाँ कमी न रहने पर भी एवं दूसरे पक्ष मे कठिन अभाव होते हुए
भी हम जीतेंगे, हमारे परिवार की यह ज़िद थी—इसमे चाहे कोई बचे या मरे।

हल्दी चढाने की रस्म बड़ी धूमधाम से हुई। ढोने वाले इतने थे कि उनकी
संख्या का हिसाब रखने के लिए क्लर्क रखना पडता। उनको विदा करने मे अपर
पक्ष का जो नाकों-दम होगा उसका स्मरण करके मामा के साथ स्वर मिलाकर
माँ खूब हँसी।

बैण्ड, शहनाई, फैन्सी कन्सर्ट आदि जहाँ जितने प्रकार की जोरदार आवाजे

थी, सबको एक साथ मिलाकर बर्बर कोलाहल रूपी मस्त हाथी द्वारा संगीत-सरस्वती के पद्मवन को दलित-विदलित करता हुआ मैं विवाह के घर मे जा पहुँचा। अँगूठी, हार, जरी, जवाहरात से मेरा शरीर ऐसा लग रहा था जैसे गहने की दुकान नीलाम पर चढी हो। उनके भावी जामाता का मूल्य कितना था यह जैसे कुछ मात्रा मे सर्वाङ्ग मे स्पष्ट रूप से लिखकर भावी ससुर के साथ मुकाबिला करने चला था।

मामा विवाह के घर पहुँचकर प्रसन्न नही हुए। एक तो आँगन मे बरातियों के बैठने के लायक जगह नही थी, तिस पर सम्पूर्ण आयोजन एकदम साधारण ढग का था। ऊपर से शम्भूनाथ बाबू का व्यवहार भी निहायत ठण्डा था। उनकी विनय अजस्र नही थी। मुँह मे शब्द ही न थे। बैठे गले, गजी खोपडी, कृष्णवर्ण एवं स्थूल शरीर वाले उनके एक वकील मित्र यदि कमर मे चादर बाँधे, बराबर हाथ जोडे, सिर हिलाते हुए, नम्रतापूर्ण स्मितहास्य और गद्गद् वचनो से कन्सर्ट पार्टी के करताल बजाने वाले से लेकर बरकर्ता तक प्रत्येक को बार-बार प्रचुर मात्रा मे अभिषिक्त न कर देते तो शुरू मे ही मामला इस पार या उस पार हो जाता।

मेरे सभा मे बैठने के कुछ देर बाद ही मामा शम्भूनाथ बाबू को बगल के कमरे मे बुला ले गए। पता नही, क्या बाते हुई। कुछ देर बाद ही शम्भूनाथ बाबू ने आकर मुझसे कहा, "लालाजी, जरा इधर तो आइए।"

मामला यह था—सभी का न हो, किन्तु किसी-किसी मनुष्य का जीवन मे कोई एक लक्ष्य रहता है। मामा का एकमात्र लक्ष्य था—वे किसी भी प्रकार किसी से ठगे नही जायँगे। उन्हे डर था कि उनके समधी उन्हे गहनो मे धोखा दे सकते है—विवाह-कार्य समाप्त हो जाने पर उस धोखे का कोई प्रतिकार नही हो सकेगा। घर-किराया, सौगात, लोगो विदाई आदि के विषय मे जिस प्रकार की खीचातानी का परिचय मिला उससे मामा ने निश्चय किया था—लेने-देने के सम्बन्ध मे इस आदमी की केवल जबानी बात पर निर्भर रहने से काम नही चलेगा। इसी कारण घर के सुनार तक को साथ लाए थे। बगल के कमरे मे जाकर देखा, मामा एक चौकी पर बैठे थे। एक सुनार अपनी तराजू, बाट और कसौटी आदि लिये जमीन पर।

शम्भूनाथ बाबू ने मुझसे कहा, "तुम्हारे मामा कहते हे कि विवाह कार्य शुरू होने के पहले ही वे कन्या के सारे गहने जँचवाकर देखेगे, इसमे तुम्हारी क्या राय है?"

मैं सिर नीचा किये चुप रहा।

मामा बोले, "वह क्या कहेगा ? मैं जो कहूँगा, वही होगा।"

शम्भूनाथ बाबू ने मेरी ओर देखकर कहा, "तो फिर क्या रहा यही ? वे जो कहेंगे वही होगा। इस सम्बन्ध मे तुम्हे कुछ नही कहना है ?"

मैंने जरा गरदन हिलाकर इशारे से बताया, "इन सब बातो मे मेरा बिलकुल भी अधिकार नही है।"

"अच्छा तो बैठो, लड़की के शरीर से सारा गहना उतारकर लाता हूँ।" यह कहते हुए वे उठे।

मामा बोले, "अनुपम यहां क्या करेगा ? वह सभा में जाकर बैठे।"

शम्भूनाथ बोले, "नही, सभा मे नही, यही बैठना होगा।"

कुछ देर बाद उन्होने एक अँगोछे मे बँधे गहने लाकर चौकी के ऊपर बिछा दिए। सारे गहने उनकी पितामही के जमाने के थे, नये फैशन का बारीक काम नही था— जैसा मोटा था वैसा ही भारी था।

सुनार ने गहना हाथ मे उठाकर कहा, "इसे क्या देखूं ? इसमें मिलावट नही है—ऐसे सोने का आजकल व्यवहार ही नही होता।"

यह कहते हुए उसने मकर के मुँह वाला मोटा एक बाला कुछ दबाकर दिखाया, यह टेढा हो जाता था।

मामा ने उसी समय नोट-बुक मे गहनों की सूची बना ली - कहीं, जो दिखाया गया था उसमें से कुछ कम न हो जाय। हिसाब करके देखा, गहना जिस मात्रा में देने की बात थी इनकी सख्या, दर एवं तोल उससे अधिक थी।

गहने मे एक जोडा इयरिंग था। शम्भूनाथ ने उसको सुनार के हाथ में देकर कहा, "इसकी ज़रा परीक्षा करके देखो !"

सुनार ने कहा, "यह विलायती माल है, इसमे सोने का हिस्सा मामूली ही है।"

शम्भू बाबू ने इयरिंग जोडी मामा के हाथ में देते हुए कहा, "इसे आप ही रखे।"

मामा ने उसे हाथ मे लेकर देखा, यही इयरिंग कन्या को देकर उन्होंने आशीर्वाद की रस्म पूरी की थी।

मामा का चेहरा लाल हो उठा, दरिद्र उनको ठगना चाहेगा, किन्तु वे ठगे नही जायँगे। इस आनन्द-प्राप्ति से वंचित रह गए एवं इसके अतिरिक्त कुछ ऊपरी प्राप्ति भी हुई। मुँह अत्यन्त भारी करके बोले, "अनुपम, जाओ, तुम सभा मे जाकर बैठो।"

शम्भूनाथ बाबू बोले, "नही, अब सभा मे नही बैठना होगा। चलिए, पहले

आप लोगों को खिला दूँ।"

मामा वोले, "यह क्या कह रहे है ? लग्न..."

शम्भूनाथ वावू ने कहा, "उसके लिए कुछ चिन्ता न करे—अभी उठिए!"

आदमी निहायत भलामानस था, किन्तु अन्दर से कुछ ज्यादा हठी प्रतीत हुआ। मामा को उठना पड़ा। वरातियो का भी भोजन हो गया। आयोजन में आडम्वर नही था। किन्तु रोसई अच्छी वनी थी और सव-कुछ साफ-सुथरा था। इससे सभी तृप्त हो गए।

वरातियो का भोजन समाप्त होने पर शम्भूनाथ वावू ने मुझसे खाने को कहा। मामा ने कहा, "यह क्या कह रहे है ? विवाह के पहले वर कैसे भोजन करेगा ?"

इस सम्वन्ध मे मामा के प्रकट किये मत की पूर्ण उपेक्षा करके मेरी ओर देख-कर वोले, "तुम क्या कहते हो ? भोजन करने वैठने मे कोई दोष है ?"

मूर्तिमती मातृ-आज्ञा-स्वरूप मामा उपस्थित थे, उनके विरुद्ध चलना मेरे लिए असम्भव था। मैं भोजन के लिए नहीं वैठ सका।

तव शम्भूनाथ वावू ने मामा से कहा, "आप लोगों को वहुत कष्ट दिया है। हम लोग धनी नही है। आप लोगों के योग्य व्यवस्था नही कर सके, क्षमा करेंगे। रात हो गई है, आप लोगो का कष्ट और नहीं वढाना चाहता। तो फिर इस समय..."

मामा वोले, "तो, सभा मे चलिए, हम तो तैयार है।"

शम्भूनाथ वोले, "तव आपकी गाड़ी वुलवा दूँ ?"

मामा ने आश्चर्य से कहा, "मजाक कर रहे है क्या ?"

शम्भूनाथ ने कहा, "मजाक तो आप ही कर चुके है। मजाक के सम्पर्क को स्थायी करने की मेरी इच्छा नही है।"

मामा दोनों आंखो को विस्फारित किये हुए अवाक् रह गए।

शम्भूनाथ ने कहा, "अपनी कन्या का गहना मैं चुरा लूँगा, जो यह वात सोचता है उसके हाथो मे मैं कन्या नही दे सकता।"

मुझसे एक शव्द कहना भी उन्होंने आवश्यक नही समझा। कारण, प्रमाणित हो गया था, मैं कुछ भी नही था।

उसके वाद जो हुआ उसे कहने की इच्छा नही होती। झाड़-फानूस तोड़-फोड़कर चीज-वस्तु को नष्ट-भ्रष्ट करके वरातियो का दल दक्ष-यज्ञ का नाटक पूरा करके वाहर चला आया।

घर लौटने पर वैण्ड, शहनाई और कन्सर्ट सब साथ नही बजे एव अभ्रक के के झाडों ने आकाश के तारों के ऊपर अपने कर्तव्य का निर्वाह करके कहाँ महा-निर्वाण प्राप्त किया, पता नही चला।

: ३ :

घर के सब लोग क्रोध से आग-बबूला हो गए। कन्या के पिता को इतना घमंड! कलियुग पूर्ण रूप से आ गया है!

सब बोले, "देखे, लडकी का विवाह कैसे करते है!" किन्तु, लड़की का विवाह नही होगा, यह भय जिसके मन मे न हो उसको दड देने का उपाय क्या है?

बगाल-भर मे मैं ही एकमात्र पुरुष था जिसको स्वयं कन्या के पिता ने जन-वासे मे से लौटा दिया था। इतने बडे सत्पात्र के माथे पर कलङ्क का इतना बडा दाग किस दुष्ट ग्रह ने इतना प्रचार करके गाजे-बाजे से समारोह करके आँक दिया? बराती यह कहते हुए माथा पीटने लगे कि "विवाह हुआ ही नही, लेकिन हमको धोखा देकर खिला दिया—पक्वाशय को सम्पूर्ण अन्न सहित निकालकर वहाँ फेक आने से अफसोस मिट जाता।"

"विवाह के वचन-भग का और मान-हानि का दावा करूँगा," कहकर मामा घूम-घूमकर खूब शोर मचाने लगे। हितैषियों ने समझा दिया कि ऐसा करने से जो तमाशा बाकी रह गया है वह भी पूरा हो जायगा।

कहना व्यर्थ है, मैं भी खूब क्रोधित हुआ था। 'किसी प्रकार शम्भूनाथ बुरी तरह हारकर मेरे पैरो पर आ गिरे,' मूँछो की रेखा पर ताव देते-देते केवल यही कामना करने लगा।

किन्तु, इस आक्रोश की काली धारा के समीप एक और स्रोत बह रहा था, जिसका रंग बिलकुल भी काला नही था। सम्पूर्ण मन उस अपरिचिता की ओर दौड गया। अभी तक उसको किसी प्रकार भी खीचकर लौटा नही सका। केवल दीवार भर की आड़ रह गई। उसके माथे पर चन्दन चर्चित था, देह पर लाल साडी, चेहरे पर लज्जा की ललाई, हृदय मे क्या था यह कैसे कह सकता हूँ! मेरे कल्पलोक की कल्पलता वसत के समस्त फूलो का भार मुझे निवेदित कर देने के लिए झुक पडी थी। हवा आ रही थी, सुगन्ध मिल रही थी, पत्तो का शब्द सुन रहा था—केवल एक पग बढने की देर थी—इसी बीच वह पग-भर की दूरी क्षण-भर मे असीम हो गई।

इतने दिन तक रोज शाम को मैंने बिनु दादा के घर जाकर उनको परेशान

कर डाला था। विनु दादा की वर्णन-शैली की अत्यन्त सघन संक्षिप्तता के कारण उनकी प्रत्येक वात ने स्फुल्लिग के समान मेरे मन मे आग लगा दी थी। मैंने समझा था कि लड़की का रूप वड़ा अपूर्व था; किन्तु उसको न तो आँखो से देखा और न उसका चित्र देखा, सब-कुछ .अस्पष्ट रह गया। वाहर तो उसने पकड़ दी ही नहीं, उसे मन मे भी नही ला सका—इसी कारण मन उस दिन की उस विवाह-सभा की दीवार के वाहर भूत के समान दीर्घ निश्वास लेकर चक्कर काटने लगा।

हरीश से सुना, लडकी को मेरा फोटोग्राफ दिखाया गया था। पसन्द अवश्य किया होगा। न करने का तो कोई कारण ही न था। मेरा मन कहता है, वह चित्र उसके किसी वक्स मे छिपा रखा है। कमरे का दरवाज़ा वन्द करके अकेली किसी-किसी निर्जन दोपहरी मे क्या वह उसे खोलकर नही देखी होगी, जव झुककर देखती होगी तव चित्र के ऊपर क्या उसके मुख के दोनो ओर से खुले वाल आकर नही पड़ते होगे ? अकस्मात् वाहर किसी के पैर की आहट पाते ही क्या वह झटपट अपने सुगन्धित अचल मे चित्र को छिपा नही लेती होगी ?

दिन वीत जाते है। एक वर्ष वीत गया। मामा तो लज्जा के मारे विवाह-सम्वन्ध की वात ही नही छेड़ पाते। माँ की इच्छा थी, मेरे अपमान की वात जव समाज के लोग भूल जायँगे तव विवाह का प्रयत्न करेगी।

दूसरी ओर मैंने सुना कि शायद उस लडकी को अच्छा वर मिल गया था, किन्तु उसने प्रण किया है कि विवाह नही करेगी। सुनकर मेरा मन आनन्द के आवेश से भर गया। मैं कल्पना मे देखने लगा, वह अच्छी तरह खाती नही; सन्ध्या हो जाती है, वह वाल वाँधना भूल जाती है। उसके पिता उसके मुँह की ओर देखते है और सोचते है, 'मेरी लड़की दिनो-दिन ऐसी क्यो होती जा रही है ?' अकस्मात् किसी दिन उसके कमरे मे आकर देखते है, लडकी के दोनो नेत्र आँसुओ से भरे है। पूछते है, 'वेटी, तुझे क्या हो गया है, मुझे वता ?' लडकी झटपट आँसू पोछकर कहती है, 'कहाँ, कुछ तो नही हुआ, पिताजी !' वाप की इकलौती लड़की है न—वडी लाड़ली लडकी। अनावृष्टि के दिनो मे फूल की कली के समान जव लड़की एकदम मुरझा गई तो पिता के प्राण और अधिक सहन नही कर सके। मान त्याग-कर वे दौड़कर हमारे दरवाजे पर आये। उसके वाद ? उसके वाद मन मे जो काले रंग की धारा वह रही थी वह मानो काले साँप के समान रूप धरकर फुफकार उठी। उसने कहा, "अच्छा है, फिर एक वार विवाह का साज सजाया जाय, रोशनी जले, देश-विदेश के लोगो को निमन्त्रण दिया जाय, उसके वाद तुम वर के

मौर को पैरो से कुचलकर दल-बल लेकर सभा से उठकर चले आओ!" किन्तु जो धारा अश्रु-जल के समान शुभ्र थी, वह राजहंस का रूप धारण करके बोली, "जिस प्रकार मैं एक दिन दमयन्ती के पुष्पवन मे गई थी उसी प्रकार मुझे एक वार उडकर जाने दो—मैं विरहिणी के कानो मे एक वार सुख-सन्देश दे आऊँ।" उसके वाद दु:ख की रात वीत गई, नव वर्षा का जल वरसा, म्लान फूल ने मुँह उठाया—इस वार उस दीवार के वाहर सारी दुनिया के और सव लोग रह गए, केवल एक व्यक्ति ने भीतर प्रवेश किया ? फिर ? फिर मेरी कहानी खतम हो गई।

: ४ :

लेकिन कहानी ऐसे खतम नही हुई। जहाँ पहुँचकर वह अनन्त हो गई है वहाँ का थोड़ा-सा विवरण वताकर अपना यह लेख समाप्त करूँ।

माँ को लेकर तीर्थ करने जा रहा था। भार मेरे ऊपर था, क्योकि मामा इस वार भी हावड़ा के पुल के पार नही हुए। रेलगाडी मे सो रहा था। झोके खाते-दिमाग मे नाना प्रकार के विखरे स्वप्नो का झुनझुना वज रहा था। अकस्मात् किसी एक स्टेशन पर जाग पड़ा, वह भी प्रकाश-अन्धकार-मिश्रित एक स्वप्न था। केवल आकाश के तारागण चिरपरिचित थे—और सव अपरिचित, अस्पष्ट था; स्टेशन की कई वत्तियाँ सीधी खड़ी होकर प्रकाश द्वारा यह धरती कितनी अपरिचित है एवं जो चारो ओर है वह कितना अधिक दूर है, यही दिखा रही थी। गाडी मे माँ सो रही थी, वत्ती के नीचे हरा पर्दा टँगा था, ट्रक, वक्स, सामान सव एक-दूसरे के ऊपर तितर-वितर पड़े थे। वह मानो स्वप्न-लोक का उलटा-पुलटा सामान हो, जो सन्ध्या की हरी वत्ती के टिमटिमाते प्रकाश मे होने और न होने के वीच मे न जाने किस ढंग से पड़ा था।

इस वीच उस विचित्र जगत् की अद्भुत रात मे कोई वोल उठा, "जल्दी से आ जाओ, इस डिव्वे मे जगह है।"

लगा, जैसे गीत सुना हो। वगाली लड़की के मुख से वँगला वात कितनी मधुर लगती है इसका पूरा-पूरा अनुमान ऐसे असमय मे, ऐसे अनुपयुक्त स्थान पर अचानक सुनने पर ही किया जा सकता है। किन्तु, इस स्वर को निरी एक लड़की का स्वर कहकर श्रेणी-भुक्त कर देने से ही काम नही चलेगा। यह केवल एक व्यक्ति का स्वर था, सुनते ही मन कह उठता है, 'ऐसा तो पहले कभी नही सुना।'

गले का स्वर मेरे लिए सदा ही वड़ा सत्य रहा है। रूप भी कम वड़ी

वस्तु नही है, किन्तु मनुष्य मे जो अन्तरतम और अनिर्वचनीय है, मुझे लगता है, जैसे कण्ठ-स्वर उसीकी आकृति हो। चटपट जंगला खोलकर मैंने मुँह वाहर निकाला, कुछ भी नही दिखा। प्लेटफार्म पर अँधेरे मे खडे गार्ड ने अपनी एक आँख वाली लालटेन दिखाई, गाडी चल दी; मैं जंगले के पास वैठा रहा। मेरी आँखो के सामने कोई मूर्ति नही थी, किन्तु हृदय मे मैं एक हृदय का रूप देखने लगा। वह जैसे इस तारामयी रात्रि के समान हो, जो आवृत्त कर लेती है, किन्तु उसे पकडा नही जा सकता। ओ स्वर! अपरिचित कण्ठ के स्वर! क्षण-भर मे तुम मेरे चिरपरिचित के आसन पर आकर वैठ गए हो। तुम कैसे अद्भुत हो—चञ्चल काल के क्षुव्ध हृदय के ऊपर फूल के समान खिले हो, किन्तु उसकी लहरों के आन्दोलन से कोई पंखुडी तक नही हिलती, अपरिमेय कोमलता मे जरा भी दाग नही पड़ता।

गाड़ी लोहे के मृदङ्ग पर ताल देती हुई चली। मैं मन में गाना सुनते-सुनते जा रहा था। उसकी एक ही टेक थी—'डिव्वे मे जगह है।' है क्या, जगह है क्या? जगह मिले कैसे, कोई किसी को नही पहचानता। साथ ही यह न पहचानना-मात्र कोहरा है, माया है, उसके छिन्न होते ही परिचय का अन्त नही होता। ओ सुधा-मय स्वर! जिस हृदय के तुम अद्भुत रूप हो, वह क्या मेरा चिर-परिचित नही है? जगह है, है, जल्दी वुलवाया था, जल्दी ही आया हूँ, क्षण-भर की भी देर नही की है।

रात मे ठीक से नीद नही आई, प्राय. हर स्टेशन पर एक वार मुँह निकालकर देखता, भय होने लगा कि जिसको देख नही पाया वह कही रात मे ही न उतर जाय।

दूसरे दिन सुवह एक वड़े स्टेशन पर गाड़ी वदलनी पड़ेगी। हमारे टिकिट फर्स्ट क्लास के थे—आशा थी, भीड नही होगी। उतरकर देखा, प्लेटफार्म पर साहवो और अर्दलियो का दल सामान लिये गाडी की प्रतीक्षा कर रहा था। फौज के कोई एक वड़े जनरल साहव भ्रमण के लिए निकले थे। दो-तीन मिनट के वाद ही गाड़ी आ गई। समझा, फर्स्ट क्लास की आशा छोड़नी पडेगी। माँ को लेकर डिव्वे मे चढूँ, इस वारे मे वडी चिंता मे पड़ गया। पूरी गाड़ी में भीड़ थी। दरवाजे-दरवाजे झाँकता हुआ घूमने लगा। इसी वीच सैकण्ड क्लास के डिव्वे से एक लडकी ने मेरी माँ को लक्ष्य करके कहा, "आप हमारे डिव्वे मे आइए न, यहाँ जगह है।"

मैं तो चौंक पडा। वही अद्भुत मधुर स्वर और वही गीत की टेक 'जगह है'। क्षण-भर की भी देर न कर माँ को लेकर डिव्वे मे चढ़ गया।

सामान चढाने का समय प्राय: नही था। मेरे-जैसा असमर्थ दुनिया में कोई न होगा। उस लडकी ने ही कुलियो के हाथ से झटपट चलती गाडी मे हमारे विस्तरादि खीच लिए। फोटो खीचने का मेरा एक कैमरा स्टेशन पर ही छूट गया—ध्यान ही न रहा।

उसके बाद—क्या लिखूं, नही जानता। मेरे मन मे एक अखड आनन्द की तस्वीर है—उसे कहाँ से शुरू करूँ, कहाँ समाप्त करूँ? बैठे-बैठे एक वाक्य के बाद दूसरे वाक्य की योजना करने की इच्छा नही होती।

इस बार उसी स्वर को आँखों से देखा। उस समय भी वह स्वर ही जान पडा। माँ के मुँह की ओर ताका; देखा कि उनकी आँखो के पलक नही गिर रहे थे। लडकी की अवस्था सोलह या सत्रह की होगी, किन्तु नवयौवन ने उसके देह, मन पर कही भी जैसे जरा भी भार न डाला हो। उसकी गति सहज, दीप्ति निर्मल, सौंदर्य की शुचिता अपूर्व थी, उसमे कही कोई जडता न थी।

मैं देख रहा हूँ, विस्तार से कुछ भी कहना मेरे लिए असम्भव है। यही नही, वह किस रग की साड़ी किस प्रकार पहने हुए थी, यह भी ठीक से नही कह सकता। यह बिलकुल सत्य है कि उसकी वेश-भूषा मे ऐसा कुछ नही था जो उसे छोडकर विशेष रूप से आँखो को आकर्षित करे। वह अपने चारो ओर की चीजो से बढकर थी—रजनीगंधा की शुभ्र मंजरी के समान सरल वृन्त के ऊपर स्थित, जिस वृक्ष पर खिली थी उसका एकदम अतिक्रमण कर गई थी। साथ मे दो-तीन छोटी-छोटी लड़कियाँ थी, उनके साथ उसकी हँसी और बातचीत का अन्त नही था। मैं हाथ मे एक पुस्तक लेकर उस ओर कान लगाए हुए था। जो कुछ कान मे पड़ रहा था वह सब तो बच्चो के साथ बचपने की बाते थी। उसका विशेषत्व यह था कि उसमे अवस्था का अन्तर बिलकुल भी नही था—छोटो के साथ वह अनायास और आनन्दपूर्वक छोटी हो गई थी। साथ मे बच्चो की कहानियो की सचित्र पुस्तके थी— उसीकी कोई कहानी सुनाने के लिए लड़कियो ने उसे घेर लिया था, यह कहानी अवश्य ही उन्होंने बीस-पच्चीस बार सुनी होगी। लड़कियो का इतना आग्रह क्यो था, यह मैं समझ गया। उस सुधा-कण्ठ के सोने की छड़ी से सारी कहानी सोना हो जाती थी। लड़की का सम्पूर्ण शरीर, मन पूरी तरह प्राणो से भरा था, उसकी सारी चाल-ढाल, स्पर्श मे प्राण उमड़ रहा था। अत: लड़कियाँ जब उसके मुँह से कहानी सुनती तब, कहानी नही, उसी को सुनती; उनके हृदय पर प्राणो का झरना झड पडता। उसके उस उद्भा-सित प्राण ने मेरी उस दिन की सारी सूर्य-किरणो को सजीव कर दिया, मुझे लगा, मुझे जिस प्रकृति ने अपने आकाश से वेष्टित कर रखा था वह उसी तरुणी

के ही अक्लान्त, अम्लान प्राणो का विश्व-व्यापी विस्तार था।—दूसरे स्टेशन पर पहुँचते ही खोंमचे वाले को बुलाकर उसने काफी-सी दाल-मोठ खरीदी, और लडकियो के साथ मिलकर विलकुल बच्चों के समान कलहास्य करते हुए निस्सकोच भाव से खाने लगी। मेरी प्रकृति तो जाल से घिरी हुई थी—क्यो मैं अत्यन्त सहज भाव से, उस हँसमुख लड़की से एक मुट्ठी दाल-मोठ न मॉग सका? हाथ वढ़ाकर अपना लोभ क्यो नही स्वीकार किया?

माँ अच्छा तथा वुरा लगने के वीच दुचित्ती हो रही थी। डिव्वे मे मैं था पुरुप, तो भी उसे कोई संकोच नही था, खासकर वह ऐसी लोभी की तरह खा रही थी, यह वात उनको पसन्द नही आ रही थी; और उसे वेहया कहने मे भी उनको हिचक नही हुई। उन्हे लगा, इस लडकी की अवस्था हो गई है, किन्तु शिक्षा नही मिली। माँ एकाएक किसी से वातचीत नही कर पाती। लोगों के साथ दूर-दूर रहने का ही उनको अभ्यास था। इस लड़की का परिचय प्राप्त करने की उनको वड़ी इच्छा थी, किन्तु स्वाभाविक वाधा नही मिटा पा रही थी।

इसी समय गाडी एक वडे स्टेशन पर आकर रुक गई। उन जनरल साहव के साथियों का एक दल इस स्टेशन से चढने का प्रयत्न कर रहा था। गाड़ी मे कही जगह नही थी। कई वार वे हमारे डिव्वे के सामने से होकर निकले। माँ तो भय के मारे जड़ हो गई, मै भी मन मे शान्ति का अनुभव नही कर रहा था।

गाडी छूटने के थोडी देर पहले एक देशी रेल-कर्मचारी के नाम लिखे हुए दो टिकिट डिव्वो की दो वैचो के सिरो पर लटकाकर मुझसे कहा, "इस डिव्वे की ये दो वैंचे पहले से ही दो साहवो ने रिजर्व करा रखी हे, आप लोगो को दूसरे डिव्वे मे जाना होगा।"

मैं तो झटपट घवराकर खडा हो गया। लड़की हिन्दी मे वोली, "नही, हम डिव्वा नही छोड़ेगे।"

उस आदमी ने ज़िद करते हुए कहा, "विना छोड़े चारा नही है।"

किन्तु, लड़की के उतरने की इच्छा का कोई लक्षण न देखकर वह उतरकर अग्रेज स्टेशन मास्टर को वुला लाया। उसने आकर मुझसे कहा, "मुझे खेद है, किन्तु .."

सुनकर मैंने 'कुली-कुली' की पुकार लगाई। लडकी ने उठकर दोनो आँखो से आग वरसाते हुए कहा, "नही, आप नही जा सकते, जैसे है वैठे रहिए।"

यह कहकर उसने दरवाजे के पास खड़े होकर स्टेशन-मास्टर से अंग्रेजी मे कहा, "यह डिव्वा पहले से रिज़र्व है, यह वात झूठ है।"

यह कहकर उसने नाम लिखे टिकटों को खोलकर प्लेटफार्म पर फेक दिया।

इस बीच मे अर्दली के साथ वर्दी पहने साहब दरवाजे के पास आकर खडा हो गया था। डिब्बे मे अपना सामान चढाने के लिए पहले उसने अर्दली को इशारा किया था। उसके पश्चात् लडकी के मुँह की ओर देखकर, उसकी बात सुनकर, मुखमुद्रा देखकर स्टेशन मास्टर को थोड़ा छुआ और उसको ओट मे ले जाकर, पता नही क्या कहा। देखा गया, गाडी छूटने का समय बीत जाने पर भी और एक डिब्बा जोडा गया, तब कही ट्रेन छूटी। लड़की ने अपना दल-बल लेकर फिर दुबारा दाल-मोठ खाना शुरू कर दिया, और मैं शर्म के मारे जंगले के बाहर मुँह निकालकर प्रकृति की शोभा देखने लगा।

गाडी कानपुर मे आकर रुकी। लड़की सामान बाँधकर तैयार थी—स्टेशन पर एक अबंगाली नौकर दौडकर उनको उतारने का प्रयत्न करने लगा।

तब फिर माँ से नही रहा गया। पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है, बेटी ?"

लडकी बोली, "मेरा नाम कल्याणी है।"

सुनकर माँ और मैं दोनो ही चौंक पड़े।

"तुम्हारे पिता—"

"वे यहाँ डॉक्टर है, उनका नाम शम्भूनाथ सेन है।"

इसके बाद ही वे उतर गई।

उपसंहार

मामा के निषेध को अमान्य करके माता की आज्ञा ठुकराकर मैं अब कानपुर आ गया हूँ। कल्याणी के पिता और कल्याणी से भेट हुई है। हाथ जोड़े है, सिर झुकाया है, शम्भूनाथ बाबू का हृदय पिघला है। कल्याणी कहती है, "मै विवाह नही करूँगी।"

मैंने पूछा, "क्यो ?"

उसने कहा, "मातृ-आज्ञा।"

गजब हो गया! इस ओर भी मातुल हैं क्या ?

बाद मे समझा, मातृ-भूमि है। वह सम्बन्ध टूट जाने के बाद से कल्याणी ने लडकियो को शिक्षा देने का व्रत ग्रहण कर लिया है।

किन्तु, मैं आशा नही छोड सका। वह स्वर मेरे हृदय मे आज भी गूँज रहा है—वह मानो कोई उस पार की वंशी हो—मेरी दुनिया के बाहर से आई थी, मुझे सारे जगत् से बाहर बुला रही थी। और, वह जो रात के अधकार मे मेरे कान मे पड़ा था, 'जगह है,' वह मेरे चिर-जीवन के संगीत की टेक बन गई। उस

समय मेरी आयु थी तेईस, अब हो गई है सत्ताईस। अभी तक आशा नही छोड़ी है, किन्तु मातुल को छोड़ दिया है। इकलौता लडका होने के कारण माँ मुझे नही छोड़ सकी।

तुम सोच रहे होगे, मैं विवाह की आशा करता हूँ। नही, कभी नहीं। मुझे याद है, केवल उस एक रात के अपरिचित कंठ के मधुर स्वर की आशा—जगह है। अवश्य है। नही तो खड़ा कहाँ होऊँगा? इसीसे वर्ष के बाद वर्ष बीतते जाते है —मैं यही हूँ। भेट होती है, वही स्वर सुनता हूँ, जब अवसर मिलता है उसका काम कर देता हूँ—और मन कहता है—यही तो जगह मिली है, ओ री अपरिचिता? तुम्हारा परिचय पूरा नही हुआ, पूरा होगा भी नही; किन्तु मेरा भाग्य अच्छा है, मुझे जगह मिल चुकी है।

पात्र और पात्री

इसके पूर्व तितली[1] कभी मेरे भाग्य पर तो नही बैठी, किन्तु एक बार मेरे मानस-कमल पर जरूर बैठी थी, उस समय मेरी आयु सोलह की थी। इसके बाद कच्ची नीद मे सहसा जगा देने से जैसे फिर नीद नही आती, वही दशा मेरी हुई।

मेरे बन्धु-बान्धवो मे से कोई-कोई नारी-परिग्रह के मामले मे दूसरा, यही नही, तीसरा प्रमोशन तक पा चुके थे, पर मैं कौमार्य की आखिरी बेंच पर बैठा-बैठा सूने संसार की कड़ियाँ गिनते-गिनते जीवन बिताता रहा।

मैंने चौदह वर्ष की अवस्था मे मैट्रिक पास किया था। उस समय विवाह अथवा एन्ट्रेंस परीक्षा मे आयु का कोई विचार नही होता था। मैंने पाठ्य-पुस्तके कभी नही घोंटी, इसीलिए मुझे कभी भी शारीरिक या मानसिक अजीर्ण नही भोगना पड़ा। जैसे चूहा दाँत गडाने लायक चीज पाते ही उसे काट डालता है, चाहे वह खाद्य हो या अखाद्य हो। वैसे ही छपी पुस्तक देखते ही पढ़ डालना मेरा बचपन से ही स्वभाव था। संसार मे पाठ्य-पुस्तको की अपेक्षा अपाठ्य पुस्तको की संख्या बहुत ज्यादा है, इसीलिए मेरे पुस्तक-सौरजगत् मे स्कूल-पाठ्य-पृथिवी की अपेक्षा स्कूलातीत पाठ्य-पुस्तकों का सूर्य चौदह लाख गुना बडा था। फिर भी, अपने संस्कृत के पडितजी की कठोर भविष्यवाणी के बावजूद मैं परीक्षा मे पास हो गया।

मेरे पिता डिप्टी-मजिस्ट्रेट थे। उस समय हम सातक्षीरा अथवा जहानाबाद या ऐसे ही किसी स्थान मे थे। प्रारम्भ मे ही कह देना अच्छा है, देश, काल एव पात्र के सम्बन्ध मे मेरे इस इतिहास मे जो भी स्पष्ट उल्लेख होंगे वे सभी स्पष्ट रूप से कल्पित होगे, जिनके लिए रस बोध की अपेक्षा कौतूहल बडा है, वे ठगे जायँगे। पिताजी उस समय तहकीकात के लिए बाहर गये हुए थे। माँ का कोई व्रत था, दक्षिणा तथा भोजन के लिए उन्हे ब्राह्मण की आवश्यकता थी। इस

---

१ बँगालियो मे तितली का शरीर के किसी अग पर बैठना विवाह-सम्बन्ध होने की सूचना का परिचायक है।

प्रकार के पारमार्थिक कार्यों के लिए हमारे पंडितजी माँ के प्रधान सहायक थे। इसी कारण माँ उनके प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ थी, यद्यपि पिता के मन का भाव इससे विलकुल उल्टा था।

आज भोजनोपरान्त दान-दक्षिणा की जो व्यवस्था हुई थी उसकी तालिका मे मुझे भी रखा गया था। उस सम्बन्ध मे जो विचार-विमर्श हुआ था उसका सार यह है—मेरा तो कलकत्ता कॉलेज में जाने का समय आ गया। ऐसी स्थिति मे पुत्र-विच्छेद-दुःख को दूर करने के लिए किसी सदुपाय का अवलवन लेना आवश्यक था। यदि एक शिशु-वधू माँ की गोद के समीप रहे तो उसका पालन-पोषण करने, देख-भाल करने मे उनके दिन कट सकते है। पड़ितजी की लड़की काशीश्वरी इस काम के लिए उपयुक्त थी—कारण, वह शिशु भी थी, सुशील भी थी, और कुल-शास्त्र के गणित मे उसका और मेरा एक-एक अंक मिलता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण के कन्याभारमोचन का पारमार्थिक फल भी लोभ की चीज थी।

माँ का मन विचलित हो गया। लडकी को एक वार देखने की आवश्यकता का आभास देते ही पडितजी वोले, 'उनकी पत्नी कल रात को ही लडकी को लेकर घर आ गई है।' माँ को पसन्द आने मे देर न लगी; क्योकि रुचि के साथ पुण्य के वँटवारो का योग होने के कारण सहज मे ही वज़न भारी हो गया। माँ वोली, 'लड़की सुलक्षणा है,'—अर्थात्, पूर्ण रूप से सुन्दरी न होने पर भी सान्त्वना का कारण थी।

वात धीरे-धीरे मेरे कानो तक पहुँची। जिन पडितजी के धातुरूप से मैं वरावर डरता आया था उन्हीकी कन्या के साथ मेरा विवाह-सवध—इसकी असंगति ने मेरे मन को सवसे पहले वड़े जोर से आकंपित किया। काल्पनिक कहानी की भाँति सहसा सुवन्त-प्रकरण मानो अपने सारे अनुस्वार-विसर्ग झाड़कर एकाएक राजकन्या वन गया हो।

एक दिन शाम को माँ ने अपने कमरे मे वुलाकर मुझसे कहा, "सनु, पंडितजी के घर से आम और मिठाई आई है, खाकर देख!"

माँ जानती थी, मुझे पच्चीस आम खाने के लिए देने पर पच्चीस और आमो द्वारा उसको पादपूर्ति कर देने पर ही मेरा छन्द मिलता था। अत. उन्होने रसना के सरस पथ द्वारा मेरे हृदय का आह्वान किया। काशीश्वरी उनकी गोद में वैठी थी। स्मृति वहुत-कुछ अस्पष्ट हो गई है, किन्तु याद है—उसके जूडे मे पन्नी लिपटी हुई थी और देह पर कलकत्ता की दुकान की एक साटिन की जाकिट थी—नीले और लाल रग की, लेस और फीते का वह मानो प्रत्यक्ष प्रलाप था।

जहाँ तक याद है रंग साँवला था, भौंहें खूब घनी थीं; और आँखें पालतू जानवर की तरह बिना संकोच के ताक रही थीं। चेहरे का बाकी अंश तनिक भी याद नहीं आ रहा है—शायद विधाता के कारखाने में उसका गढ़ना उस समय भी पूरा नहीं हुआ था, केवल उसका थोड़ा-सा हिस्सा ही तैयार हुआ था और जो हो, देखने में निहायत भलीमानस-जैसी लगती थी।

मेरी छाती भीतर-ही-भीतर फूल उठी। मन-ही-मन सोचा, यह पन्नाजटित वेणी वाली जाकेट से घिरी वस्तु सोलहों आने मेरी है—मैं उसका प्रभु हूँ, मैं उसका देवता हूँ। अन्य सभी दुर्लभ वस्तुओं के लिए साधना करनी पड़ती है, बस इसी एक वस्तु के लिए नहीं; अपनी कन्नी उँगली उठाने की देर थी विधाता यह वर देने के लिए मेरी खुशामद करते फिर रहे थे। माँ को मैं बराबर देखता आ रहा था, स्त्री शब्द का क्या अर्थ है, यह मुझे उसी सूत्र से ज्ञात हुआ था। मैंने देखा था, पिता अन्य सम्पूर्ण व्रतों से अप्रसन्न थे, किन्तु सावित्री-व्रत के समय वे मुँह से चाहे जो कहें, मन-ही-मन बड़े आनन्द का अनुभव करते। माँ उन्हें प्यार करती थी, यह जानता हूँ। पर पिताजी न जाने किस बात पर रुष्ट हो जायें, किस पर झल्ला उठें, माँ के मन में इसका जो डर सदा बना रहता, पिताजी अपने सारे पौरुष द्वारा इसीके रस का सबसे ज्यादा उपभोग करते। पूजा से देवताओं का तो शायद कुछ ज्यादा आता-जाता नहीं, क्योंकि वह उनका उचित प्राप्य है, पर शायद मनुष्य के लिए वह अवैध प्राप्य है, इसीलिए उसका लोभ उसे आपे से बाहर कर देता है। उस बालिका के रूप-गुण के आकर्षण ने उस दिन मुझे प्रभावित नहीं किया था, किन्तु पूजनीय हूँ, यह बात उस चौदह वर्ष की अवस्था में ही मेरे पुरुष-रक्त में समा गई। उस दिन बड़े गौरव के साथ आम खाए, यही नहीं, मैंने गर्व से तीन आम थाली में ही छोड़ दिए, जो मेरे जीवन में पहले कभी नहीं हुआ; और सारा अपराह्न-काल उसीकी अनुशोचना में बीता।

उस दिन काशीश्वरी को पता नहीं चला कि मेरे साथ उसका सम्बन्ध किस कोटि का था, किन्तु घर जाते ही शायद जान गई थी। उसके बाद जब भी उससे भेंट होती, उसे घबराहट के मारे छिपने की भी जगह नहीं मिलती थी। मुझे देखकर उसकी यह घबराहट मुझे बड़ी अच्छी लगती। मेरा आविर्भाव विश्व की किसी एक जगह में, किसी एक रूप में बड़े प्रबल प्रभाव का सचार करता है, यह प्राणी-विषयक रासायनिक तथ्य मुझे बड़ा मनोरम लगता था। मुझे देखकर भी कोई भयभीत या लज्जित हो सकता है, या कुछ कर सकता है, यह बड़ा अपूर्व था। काशीश्वरी अपने पलायन द्वारा ही मुझे जता जाती कि वह संसार में विशेष रूप से, सम्पूर्ण रूप से एवं घनिष्ठ रूप से मेरी ही थी।

इतने समय की अकिंचनता के पश्चात् अचानक क्षण-भर में ऐसा महत्वपूर्ण गौरव का पद पा जाने के कारण कुछ दिन तक मेरे सिर में रक्त सनसनाता रहा। पिताजी जिस तरह कर्त्तव्य की या रसोई की या व्यवहार की त्रुटियों को लेकर सर्वदा माँ को परेशान किये रहते थे, मैं भी मन-ही-मन उसीके चित्र पर हाथ फेरने लगा। पिताजी की इच्छा के विरुद्ध कोई काम करते समय माँ जिस प्रकार साव-धानी से नाना प्रकार की सुन्दर युक्तियों द्वारा कार्य सम्पन्न करतीं, अपनी कल्पना मे मैंने काशीश्वरी को भी उसी पथ पर प्रवृत्त होते देखा। बीच-बीच में मन-ही-मन मैं उसको स्वच्छन्द भाव से अकस्मात् बड़ी संख्या वाले बैंक-नोटों से लेकर हीरों के गहने तक भेंट करने लगा। किसी-किसी दिन भोजन करने के लिए बैठने पर भी उसका खाना नही हुआ एवं जंगले के पास बैठकर आँचल के छोर से आँसू पोंछती रही। यह करुण दृश्य भी मैंने कल्पना की आँखों से देख लिया और यह मुझे अत्यन्त खेदजनक लगा था, यह नही कह सकता। छोटे बच्चों की आत्म-निर्भरता के सम्बन्ध मे पिताजी बहुत सतर्क थे। अपना कमरा ठीक करना, अपने कपड़े आदि रखना, सब मुझे अपने हाथों करना पड़ता। किन्तु, मेरे मन मे गृहस्थी के जो चित्र स्पष्ट खिंच गए थे, उनमें से एक नीचे लिखता हूँ। कहना व्यर्थ है, मेरे पूर्वजों के इतिहास मे ठीक इसी प्रकार की घटना एक बार पहले भी घटित हुई थी; इस कल्पना मे मेरी कोई ओरिजिनैलिटी नही है। चित्र यह है—रविवार को दोपहर के भोजन के पश्चात् मैं खाट पर तकिया लगाये, पैर फैलाए, अधलेटी अवस्था में अखबार पढ़ रहा था। हाथ मे हुक्के की नली थी। हल्के तंद्रावेश मे नली नीचे गिर गई। बरामदे मे बैठी काशीश्वरी धोबी को कपड़े दे रही थी; मैंने उसे बुलाया, उसने झटपट आकर नली उठाकर मेरे हाथ मे दे दी। मैंने उससे कहा, 'देखो, जो बैठने के कमरे में दाईं ओर की आलमारी के तीसरे खाने में नीली [illegible] मोटी-सी अंग्रेजी की एक पुस्तक है, उसे ले तो आओ!' काशी नीली [illegible] किताब ले आई; मैं बोला, 'अरे यह नही, वह इससे मोटी है, [illegible] पर सुनहरे अक्षरों में नाम लिखा है।' इस बार वह एक [illegible] आई—मैं उसे श्रम से जमीन पर पटककर क्रोध से उठ [illegible] काशी का मुँह उतर गया और उसकी आँखें छलछला आई [illegible] पुस्तक तीसरे खाने में नहीं थी, पाँचवें खाने में थी। [illegible] आकर बिछौने पर लेट गया. किन्तु [illegible] अपनी [illegible] वह सिर झुकाए उदास होकर [illegible] के विश्राम में व्याघात डाला है [illegible]

पिताजी इतनी की तरह [illegible]

थे । उधर मेरे सम्बन्ध में पण्डितजी का व्यवहार और वार्तालाप क्षण-भर में कर्तृ-वाच्य से भाववाच्य में आ पहुँचा एवं वह अत्यन्त सद्भाववाच्य था ।

तभी डकैती की तहकीकात खतम हो गई, पिताजी घर लौट आए । मैं जानता हूँ, माँ ने तय किया था कि वे धीरे-धीरे मौका देखकर घुमा-फिराकर पिताजी की विशेष प्रिय तरकारी बनाने के साथ-साथ क्रमशः सह्य बनाते हुए, बात छेड़ेंगी । पिताजी पण्डितजी को अर्थलोलुप समझकर घृणा करते थे; माँ अवश्य ही पहले पण्डितजी की हल्की-सी निंदा, साथ ही उनकी पत्नी तथा कन्या की पर्याप्त प्रशंसा करके बात आरम्भ करती । किन्तु, दुर्भाग्य से पण्डितजी की उत्फुल्ल प्रगल्भता के कारण बात चारों ओर फैल चुकी थी । विवाह पक्का है, मुहूरत देखा जा रहा है, किसी को यह बात बताना उन्होंने बाकी नही छोडा । यहाँ तक कि विवाह के दिनों मे उनको कुछ दिनों के लिए सरिस्तेदार बाबू के पक्के दालान की जरूरत पड़ेगी, यथास्थान यह बात भी उन्होंने तय कर रखी थी । शुभकर्म मे यथासाध्य सभी उनकी सहायता करने को राजी हो गए थे । पिताजी की अदालत मे वकीलो का दल चंदा करके विवाह का खर्च वहन करने के लिए राजी था । स्थानीय इण्ट्रेंस स्कूल के सेक्रेटरी वीरेश्वर बाबू का तीसरा लडका तीसरे दर्जे मे पढता था, उसने चाँद और कुमुद के रूपक का सहारा लेकर इसी बीच मे विवाह के सम्बन्ध में त्रिपदी छंद में एक कविता लिख डाली । सेक्रेटरी साहब ने वह कविता, गली-कूचे मे जहाँ जो मिला उसी को घेर-घेरकर सुनाई । लड़के के सम्बन्ध मे गाँव के लोग खूब आशान्वित हो उठे थे ।

अतएव, लौटने पर बाहर ही पिताजी ने यह शुभ संवाद सुन लिया । उसके बाद माँ का रोना-धोना और भोजन-त्याग, घर-भर की घबराहट, नौकरो पर अकारण जुर्माना, इजलास मे बडी तेजी से मामले डिसमिस करना और बड़ी कडाई से दंड देना, पण्डितजी की पद-च्युति एवं पन्नी-जटित वेणी समेत काशीश्वरी को लेकर उनका अन्तर्धान होना—और छुट्टी समाप्त होने के पहले ही मातृसंग से विच्छिन्न करके मेरा जबरदस्ती कलकत्ता निर्वासन । मेरा मन फटी फुटबाल के समान बैठ गया—आकाश मे, हवा मे उसकी उछल-कूद बिलकुल बन्द हो गई ।

: २ :

मेरे परिणय-पथ मे प्रारम्भ मे ही यह विघ्न आ पडा—उसके बाद मेरे प्रति तितली का व्यर्थ पक्षपात बार-बार होता रहा है । उसका विस्तृत विवरण देने की इच्छा नही है—अपने इस विफलता के इतिहास के एक-दो संक्षिप्त नोट छोड जाऊँगा । बीस वर्ष की अवस्था होने के पहले ही मैं पूर्ण रूप से एम० ए० परीक्षा

पास करके आँखों पर चश्मा लगाकर और मूँछों की रेखा को ताव देने के योग्य वनाकर वाहर निकला था। पिताजी उस समय रामपुर हाट या नोआखाली या वारासत अथवा ऐसी ही किसी जगह मे थे। इतने दिन तक तो शव्द-सागर का मन्थन करके डिग्री-रत्न प्राप्त किया; अव अर्थसागर-मन्थन की वारी आई। पिताजी ने अपने वड़े-वड़े पेट्रन साहव लोगो का स्मरण किया तो देखा, कि उनके जो सवसे वड़े सहायक थे वे परलोक मे थे, उनसे जो कम थे वे पेन्शन लेकर विलायत चले गए थे, जो और भी कम थे उनकी पंजाव वदली हो गई थी, और जो वंगाल मे वाकी रह गए थे उनमे से अधिकांश प्रार्थी को प्रारम्भ में आश्वासन देते, किन्तु उपसंहार के समय उसका संहरण कर लेते। मेरे पितामह जव डिप्टी थे तव पृष्ठपोपको का वाजार ऐसा ठण्डा नही था, अतएव उस समय नौकरी से पेन्शन एवं पेन्शन से नौकरी एक ही वंश में नदी के इस पार, उस पार आने-जाने वाले खेल की तरह चलती रहती। अव दिन खराव थे। इसलिए पिताजी जव चिंतित होकर सोच रहे थे कि उनके वंशधर को गवर्नमेंट ऑफ़िस के उच्च आसन से सौदागरी के कार्यालयों के नीचे पलड़े पर उतरना चाहिए या नही, तभी एक धनी व्राह्मण की एक-मात्र कन्या उनके ध्यान मे आई। व्राह्मण ठेकेदार था, उनके अर्थागम का पथ प्रत्यक्ष भूतल की अपेक्षा अदृश्य रसातल की ओर से ही प्रशस्त था। वे जिस समय वड़े दिन के उपलक्ष्य में नारंगियाँ तथा अन्य उपहार-सामग्री यथायोग्य पात्रों को वितरित करने मे व्यस्त थे, उसी समय उनके मुहल्ले मे मेरा पदार्पण हुआ। पिताजी का मकान उनके घर के सामने था, वीच में एक सडक थी। कहना व्यर्थ है, डिप्टी का एम० ए० पास लड़का लड़की वाले पक्ष के लिए अत्यन्त 'प्राशुलभ्य फल' था। इसलिए कन्ट्रेक्टर महाशय मेरे प्रति 'उद्‌वाहु' हो उठे। उनके वाहु आधूलि लवे थे यह पहले ही वता दिया है—अन्तत. वे वाहु डिप्टी महाशय के हृदय तक अनायास ही पहुँच गए। किन्तु मेरा हृदय उस समय उससे भी काफी ऊँचे पर था।

क्योकि मेरी आयु उस समय वीस पार करने पर थी, उस समय खरे स्त्री-रत्न के अतिरिक्त अन्य किसी रत्न के प्रति मेरा लोभ नही था। केवल यही नही, उस समय भी भावुकता की दीप्ति मेरे मन मे स्पष्ट थी। अर्थात्, सह-धर्मिणी शव्द का जो अर्थ मेरे मन मे था वह अर्थ वाजार में प्रचलित नही था। वर्तमान समय मे हमारे देश मे ससार चारों ओर से संकुचित हो गया है, मनन, साधन के अवसर पर मन को ज्ञान और भाव के उदार क्षेत्र मे लगाए रखना और व्यवहार के समय उसको उस जगत् के अत्यन्त छोटे आकार के अनुरूप छोटा वनाना, यह मैं मन में भी सहन नही कर पाता था। जिस स्त्री को आइडियल के

पथ की सगिनी बनाना चाहूँ वही स्त्री घर-गृहस्थी की कैद से पैरों की बेडी बन जाय एव प्रत्येक पदक्षेप मे झंकार करके पीछे खींचती रहे, इस प्रकार के दुराग्रह को स्वीकार कर लेने के लिए मैं तैयार नही था। असल बात यह थी, हमारे देश के प्रहसन मे आधुनिक कहकर जिस पर व्यंग करते है कॉलेज से हाल ही मे निकलकर मैं उसी प्रकार का पूर्ण आधुनिक बन गया था। हमारे समय में इन आधुनिको का दल आज की अपेक्षा बहुत बडा था। आश्चर्य यह है कि वे वास्तव मे विश्वास करते थे कि समाज को मानकर चलना दुर्गति है और उसको घसीटे लिये चलना ही उन्नति।

सो यो मैं श्रीयुक्त सनत्कुमार, एक बलशाली कन्या-दाय-ग्रस्त व्यक्ति के रुपयो की खुली थैली के मुँह के सामने आ पडा। पिताजी बोले, 'शुभस्य शीघ्रम्'। मैं चुप लगाए रहा; सोचा, कि कुछ देख-सुन, सोच-समझ तो लूँ। आँख, कान खुले रखे—थोड़ा-सा देखा और बहुत-सा सुना। लडकी गुड़िया के समान छोटी और सुन्दर थी—उसको देखकर यह नहीं लगता था कि वह स्वाभाविक नियमो द्वारा निर्मित है। उसका एक-एक बाल संभालकर, उस की भौहे आँककर न जाने किसने उसे अपने हाथो से गढ़ा था। वह सस्कृत का गगास्तव मुँहजुबानी सुना सकती थी। उसकी माँ पत्थर के कोयले तक को गगा-जल से धोकर भोजन पकाती थी, जीवधात्री वसुन्धरा के नाना जातियो को धारण करने के कारण उसका स्पर्श करने मे वे हमेशा सकोच करती थी, वे अधिकाशत जल का ही व्यवहार करती थी, क्योकि जलचर मत्स्यादि मुसलमान-वशीय नही है और जल मे प्याज नही होता। उनके जीवन का मुख्य काम अपनी देह, घर, कपड़े-लत्ते, हाँडी-बटलोई, खाट-पलग, बर्तनादि को साफ करना और माँजना था, सारा काम पूरा करने मे लगभग ढाई बज जाते। अपनी लडकी को उन्होने अपने हाथ से एड़ी से चोटी तक इस प्रकार परिमार्जित कर दिया था कि उसका अपना मन या अपनी इच्छा नाम की कोई बला नही रह गई थी। किसी व्यवस्था मे कितनी भी असुविधा क्यो न हो, उसका पालन करना उसके लिए सहज होता, यदि उसका कोई सगत कारण उसको नही समझा दिया जाता। भोजन करते समय अच्छा कपडा नही पहनती कि कही सखरा न हो जाय, उसने छाया तक का विचार करना सीखा था। वह जिस प्रकार पालकी के भीतर बैठकर ही गगा-स्नान करती थी, उसी प्रकार अठारह पुराणो से घिरी रहकर गृहस्थी चलती-फिरती। विधि-विधानो मे मेरी मा की भी पर्याप्त श्रद्धा थी, किन्तु उनसे भी अधिक श्रद्धा किसी और को हो और उसको लेकर वह मन-ही-मन घमण्ड करे यह वे नही सह सकती थी। इसलिए जब मैने उनसे कहा, "माँ, इस लडकी के योग्य पात्र मैं नही हूँ," तो उन्होने हँसकर कहा, "ठीक है,

कलियुग मे ऐसा पात्र मिलना मुश्किल है !"

मैं वोला, "तो मैं विदा लूँ !"

माँ वोली, "यह क्या, सुनु, क्या तुझे पसन्द नही आई ? क्यो, लड़की देखने मे तो अच्छी है।"

मैंने कहा, "माँ पत्नी केवल निहारने के लिए तो होती नही, उसमे बुद्धि भी तो होनी चाहिए।"

माँ वोली, "देखो जरा, इसी बीच तुझे उसकी कम बुद्धि का ऐसा क्या परिचय मिल गया है !"

मैंने कहा, "यदि बुद्धि होती तो मनुष्य दिन-रात ये निरर्थक काम लेकर रह ही नही पाता। घुट-घुटकर मर जाता।"

माँ का मुँह सूख गया। वे जानती थी, उस विवाह के सम्वन्ध मे पिताजी ने दूसरे पक्ष से प्राय वात पक्की कर ली है। वे वह भी जानती थी कि पिताजी प्राय: यह भूल जाते थे कि दूसरे व्यक्तियो मे भी इच्छा नामक वला हो सकती है। वस्तुत:, पिताजी यदि वहुत ज्यादा क्रोध या जवर्दस्ती न करते तो शायद कालान्तर मे उस पौराणिक गुडिया के साथ विवाह करके मैं भी एक दिन प्रवल भक्ति-भाव से स्नान, दैनिक कर्म, व्रत-उपवास करते-करते गगा के किनारे सद्गति-लाभ कर लेता। अर्थात्, माँ के ऊपर यदि यह विवाह करने का भार रहता तो वे हाथ मे समय लेकर धैर्यपूर्वक सुयोगानुसार क्षण-क्षण कान मे मन्त्र देकर हर क्षण आँसू वहाकर कार्य सम्पन्न करा सकती थी। पिताजी जव वार-वार डाटने-फटकारने लगे तो मैंने उनसे निराश होकर कहा, 'आपने मुझे वचपन से ही खाने-पीने, चलने-फिरने मे आत्म-निर्भरता का उपदेश दिया है, केवल विवाह के समय ही क्या आत्म-निर्भरता नही चलेगी ?" कॉलेज मे लॉजिक मे पास होने के अलावा न्याय-शास्त्र के वल पर किसी ने कभी सफलता प्राप्त की हो, यह मैंने नही देखा। सगत युक्ति कुतर्क की अग्नि के सामने कभी जल का कार्य नही करती, वल्कि तेल का ही काम करती है। पिताजी ने सोच रखा था कि उन्होने दूसरे पक्ष को वचन दे दिया है। अत. विवाह के औचित्य के सम्वन्ध मे इससे वड़ा प्रमाण और कुछ नही हो सकता और यदि मैं उनको स्मरण करा देता कि पण्डितजी को एक दिन माँ ने भी वचन दिया था फिर भी उसी वात के कारण केवल मेरा विवाह ही भग नही हुआ साथ ही पण्डितजी की जीविका भी चली गई—तो इसको लेकर फौजदारी हो जाती। बुद्धि-विचार एवं रुचि की अपेक्षा शुचिता, मन्त्र-तन्त्र, क्रिया-कर्म कही अधिक अच्छे हैं, उनका कवित्व गम्भीर और सुन्दर होता है, उनमे निष्ठा रखना वहुत श्रेष्ठ और उनका फल अति उत्तम

होता है, सिम्बोलिज्म ही आइडियलिज्म है—आदि बातें पिताजी आजकल मुझे सुना-सुनाकर अवसर-कुअवसर आलोचना करते। मैंने जीभ रोक रखी थी, किन्तु मन को तो मौन नहीं रख सकता था। जो बात मुँह तक आकर लौट जाती थी वह यह थी कि 'यदि आप यह सब मानते हैं तो जब पालते हैं तो मुरगी क्यों पालते हैं।' और भी एक बात मन में आती। पिता ने ही एक दिन दिन-मुहूर्त्त, व्रत-पर्व, विधि-निषेध, दान-दक्षिणा को लेकर अपनी असुविधा या क्षति होने पर माँ को कठोर भाषा में इन सब अनुष्ठानों की निरर्थकता को लेकर फटकारा था। माँ ने तब दीनता स्वीकार की थी, अबला-जाति को स्वभाव से ही नासमझ मान सिर झुकाकर खीझ के आघात को सहते हुए ब्राह्मण-भोजन के विस्तृत आयोजन में प्रवृत्त हुई थी। किन्तु विश्वकर्मा ने जीव को लॉजिक के पक्के साँचे में ढालकर नहीं बनाया है। अतएव अमुक व्यक्ति की बात या कार्य में संगति नहीं है, यह कहकर उसको वश में नहीं किया जा सकता, केवल अप्रसन्न किया जा सकता है। न्याय-शास्त्र की दुहाई देने से अन्याय की प्रचण्डता का वेग बढ़ जाता है—जो लोग पॉलिटिकल या गार्हस्थ्य एजिटेशन में श्रद्धा रखते हैं, उनको यह बात याद रखनी चाहिए। जब घोड़ा अपने पीछे की गाड़ी को अन्याय समझकर उस पर दुलत्ती झाड़ता है तो अन्याय तो बना ही रहता है, ऊपर से उसके पैर भी ज़खमी हो जाते हैं। यौवन के आवेग में थोड़ा-सा तर्क करने पर मेरी भी वैसी ही दशा हुई। पौराणिकी लड़की के हाथों से मुक्ति तो अवश्य मिली, किन्तु पिता के आधुनिक युग के तहवील का आश्रय भी खो दिया। पिता ने कहा, "जाओ, तुम आत्मनिर्भर रहो!"

मैंने प्रणाम् करके कहा, "जो आज्ञा।"

माँ बैठी-बैठी रोने लगी।

पिता का दाहिना हाथ तो जरूर विमुख हो गया, किन्तु बीच में माँ होने के कारण कभी-कभी मनिऑर्डर के हरकारे के दर्शन हो जाते थे। बादलों ने वर्षा बन्द कर दी, किन्तु छिपे-छिपे स्निग्ध रात्रि में ओस-जल का अभिषेक चलने लगा। उसीके बल पर व्यवसाय शुरू कर दिया। ठीक उन्नासी रुपये से प्रारंभ किया था। अब उस कार-बार में जितना मूलधन लगा था वह ईर्ष्यापूर्ण जनश्रुति से बहुत कम होने पर भी बीस लाख रुपये से कम नहीं था।

तितली का प्यादा मेरे पीछे-पीछे फिरने लगा। पहले जो सब द्वार बन्द थे अब उनमें अर्गला नहीं रही। मुझे याद है, एक दिन यौवन की अदम्य दुराशा में एक षोडशी के प्रति (आयु का अंक अब के निष्ठावान् पाठकों के भय से कुछ सहनीय बनाकर कहा है) अपने हृदय को उन्मुख किया था, किन्तु पता लगा कि कन्या के मातृपक्ष की निगाह सिविलियनों की ओर थी—कम-से-कम बैरिस्टर के

नीचे उनकी निगाह नहीं जाती थी। मैं उनके मनोयोग-मीटर के जीरो प्वाइंट से भी नीचे था। किन्तु, वाद में उसी घर मे एक दिन केवल चाय ही नही, लंच खाया, रात मे डिनर के वाद लडकियों के साथ 'ह्विस्ट'[1] खेला, उनके मुँह से एकदम ठेठ विलायती अँग्रेजी मे वाते सुनी। मेरी कठिनाई यह थी कि मैंने रसेल्स, डेज़र्टेड विलेज, एवं एडीसन स्टील पढकर अपनी अंग्रेज़ी पक्की की थी, इस लडकी से होड़ वदना मेरे वश का नही था। ओ माइ, ओ डियर, ओ डियर आदि शव्द मेरे मुँह से ठीक स्वर मे निकलना ही नही चाहते थे। मेरा जितना ज्ञान था उससे मैं विलकुल सरल अंग्रेजी भापा मे वडी कठिनाई से हाट-वाज़ार में खरीद-विक्री कर सकता था, किन्तु वीसवी शताव्दी की अग्रेजी मे प्रेमालाप करने की वात याद आते ही मेरा प्रेम ही भाग खडा होता। और उसके मुँह मे वँगला भापा का जिस प्रकार दुर्भिक्ष था उससे उसके साथ शुद्ध वंकिमी भापा मे मधुरालाप करने का प्रयत्न करने पर घाटा ही रहता। उससे पूरी मजूरी वसूल न होती। खैर जो हो, ऐसी विलायती मुलम्मेदार लडकी भी एक दिन मेरे लिए सुलभ थी। किन्तु वन्द दरवाजे के छेद से जो मायानगरी देखी थी दरवाजा खुलने पर फिर उसका पता नही चला। उस समय मुझे वार-वार लगने लगा कि मेरी वह व्रतचारिणी निरर्थक नियमो की निरन्तर पुनरावृत्ति के चक्र मे अहोरात्रि चक्कर लगाती हुई अपनी जिस जडवुद्धि को तृप्त करती थी, ये लडकियाँ भी ठीक वैसी ही वुद्धि से विलायती चाल-चलन, अदव-कायदों के सारे तुच्छातितुच्छ उपसर्गो की प्रदक्षिणा करके दिन-पर-दिन, वर्प के वाद वर्ष अनायास से अक्लान्तचित्त से काट देती है। जिस प्रकार वह छूत-स्नान की लेश-मात्र त्रुटि देखते ही अश्रद्धा से रोमांचित हो उठती, ये भी एक्सेंट मे थोडी त्रुटि होने अथवा काँटे-चम्मच के प्रयोग मे थोडी भूल देखते ही ठीक उसी प्रकार अपराधी व्यक्ति के मनुष्यत्व के सम्वन्ध मे सन्देह करने लगती। वे देशी गुडियाँ थी, ये विदेशी गुडियाँ। ये मन की गति के वेग के अनुसार नही चलती, अभ्यास की चावी या कल ही इनको चलाती है। परिणाम यह हुआ कि मुझे मन-ही-मन स्त्री जाति के ही ऊपर अश्रद्धा हो गई; मेरी धारणा हो गई कि जव उनमे वुद्धि की ही कमी है तव वे स्नान-आचमन-उपवास, अकर्म-कण्ड की अधिकता के विना जिएँ भी कैसे! पुस्तको मे पढ़ा था कि ऐसे प्राणी भी होते है जो वरावर चक्कर काटते रहते है। किन्तु मनुष्य चक्कर नही लगाता, मनुष्य चलता है। उन जीवाणुओ के परिवर्धित संस्करणों के साथ ही क्या विधाता ने हतभागे पुरुषो के विवाह का सम्वन्ध निश्चित किया है!

---

१. ताश का एक खेल।

दूसरी ओर जैसे-जैसे आयु वढने लगी वैसे ही विवाह के सम्वन्ध मे दुविधा भी वढने लगी। मनुष्य की एक अवस्था होती है जव वह चिन्ता किये विना ही विवाह कर सकता है। वह अवस्था पार हो जाने पर विवाह करने मे दुस्साहस की आवश्यकता होती है। मैं उन वेपरवाहो के दल मे से नहीं था। इसके अतिरिक्त कोई अच्छी-भली लडकी विना कारण एकदम मेरे साथ क्यो विवाह कर लेगी, यह मैं किसी तरह नही समझ सकता था। सुना था प्रेम अन्धा होता है, किन्तु यहाँ उस अन्धे के ऊपर तो कोई भार था नही। ससारी वुद्धि के पास तो दो से भी ज्यादा नेत्र होते है—वे नेत्र जव विना नशे के मेरी ओर ताकने लगते तव मुझमे क्या देख पाते थे, मैं यही सोचा करता था। मुझमे अवश्य ही अनेक गुण थे, पर उनको पहचानने मे तो देर लगती, एक ही नजर मे तो समझे नही जा सकते थे। मेरी नाक मे जो छोटाई है उसको वुद्धि की प्रखरता ने पूरा कर दिया था, यह मैं जानता था, किन्तु नाक तो रहती है। प्रत्यक्ष और वुद्धि को भगवान् ने निराकार कर डाला है। जो हो, जव देखता कि कोई वय:प्राप्त लडकी अत्यल्प समय के नोटिस पर भी मुझसे विवाह करने मे जरा भी आपत्ति न करती, तव लडकियो के प्रति मेरी श्रद्धा और भी घट जाती। यदि मैं लड़की होता तो श्रीयुत् सनत्कुमार की अपनी छोटी नाक की लम्वी साँस से उसकी आशा और अहकार धूल मे मिल जाते।

इस प्रकार विवाह के वोझ से मुक्त मेरी नाव वीच-वीच मे किनारे को तो छू जाती—किंतु घाट पर आकर नही लगी। पत्नी के अलावा संसार के अन्यान्य उपकरण, व्यवसाय की उन्नति के साथ वढते चले गए। एक वात भूल गया था, आयु भी वढ़ती जा रही है। सहसा एक घटना ने इसका स्मरण करा दिया।

अभ्रक की खान खोजते-खोजते छोटा नागपुर के एक शहर मे जाकर देखा, पंडितजी वहाँ शालवन की छाया मे एक छोटी-सी नदी के किनारे अच्छा-खासा घर वनाए वैठे है। उनका लडका वहाँ काम करता था। इसी शालवन मे मेरा तंवू लगा था। उन दिनो देश-भर मे मेरे वैभव की ख्याति थी। पडितजी ने कहा कि कालान्तर मे मैं असाधारण व्यक्ति वनूँगा, यह वे पहले ही जानते थे। हो सकता है, किन्तु यह वात उन्होंने आश्चर्यपूर्ण ढग से छिपा रखी थी। इसके अतिरिक्त किन लक्षणो से उनको यह ज्ञात हुआ था, यह मैं नही कह सकता। कदाचित् असाधारण लोगो को छात्रावस्था मे षत्वणत्य ज्ञान[1] नही होता। काशीश्वरी ससुराल मे थी। अत: विना वाधा के मैं पडितजी के घर का आदमी हो गया। कई

---

१. 'प' और 'ण' की व्यवहार-विधि का ज्ञान।

वर्ष पहले उनकी पत्नी की वियोग हो चुका था— किन्तु वे नातिनियों से घिरे थे। सब उनकी अपनी नही थी, उनमे से दो उनके स्वर्गवासी वडे भाई की थी। वृद्ध ने इनसे अपनी वृद्धावस्था के अपराह्न को नाना रंगों से रंगीन वना लिया था। उनके 'अमरशतक', 'आर्या सप्तशती', 'हंसदूत', 'पदांकदूत' के श्लोकों की धारा शिलाओ के चारों ओर पर्वतीय नदी के फेनोच्छल प्रवाह के समान इन वालिकाओ को घेर-कर सहास्य ध्वनित हो रही थी।

मैंने हँसते हुए कहा, "पंडितजी, मामला क्या है ?"

उन्होंने कहा, "वेटा, तुम्हारे अग्रेजी शास्त्र मे कहा है कि शनि ग्रह चाँद की माला पहने रहते है—यह मेरी वही चाँद की माला है।"

उस दरिद्र परिवार का यह दृश्य देखकर अचानक मुझे याद आया कि मैं अकेला हूँ। 'मुझे अनुभव हुआ, मैं अपने वोझ से स्वयं थक गया हूँ। पंडितजी नही जानते थे कि वे वृद्ध हो गए है', किन्तु मैं हो गया था यह मैंने स्पष्ट रूप से जान लिया था कि मैं वृद्ध हो गया हूँ। कहने का तात्पर्य यह था कि अपने चारों ओर के जगत् को पार कर आया हूँ, चारो ओर से ढील पड जाने के कारण दरारे हो गई है। ये दरारे रुपयों से, ख्याति से नही भरी जा सकती। धरती से रस नही मिल रहा था, केवल वस्तु संग्रह कर रहा था, इसकी व्यर्थता को अभ्यासवशत. भूले हुए रहा जा सकता था। किन्तु जव पडितजी का घर देखा तव समझा, मेरे दिन शुष्क थे, रातें शून्य। पडितजी पूर्ण रूप से तय किये वैठे थे कि मैं उनकी अपेक्षा भाग्य-वान् पुरुप था—यह वात सोचकर मुझे हँमी आई। इस वस्तु-जगत् को एक अदृश्य आनन्द-लोक घेरे हुए है। उस आनन्द-लोक के साथ हमारे जीवन का योगसूत्र न रहने पर हम त्रिशंकु के समान शून्य मे घूमते रहते है। पडितजी के साथ वह योग था, मेरे साथ नही, यही अंतर था। मैं आराम-कुर्सी के दोनो वाजुओ पर दोनो पैर रखकर सिगरेट पीते-पीते सोचने लगा, पुरुप के जीवन के चार आश्रमों के चार अधिदेवता हैं। वाल्यावस्था मे माँ, यौवनावस्था मे पत्नी, प्रौढावस्था मे कन्या-पुत्रवधू, वृद्धावस्था मे नातिनी, नात-वहू। इस प्रकार स्त्री के द्वारा पुरुप अपनी पूर्णता प्राप्त करता है। इस तत्व ने मुझे उस मर्मरित शाल-वन मे अभिभूत कर लिया। मन के सामने अपनी भावी वृद्धावस्था के अन्तिम छोर तक झाँककर देखा—देखकर उसकी निरतिशय नीरसता से हृदय हाहाकार करने लगा। उस मरुपथ मे होकर मुनाफे के वोझ को सिर पर लादे हुए न जाने कहाँ जाकर मुँह के वल गिरकर मर जाऊँगा ! अव और देर करना ठीक न होगा। इस समय चालीस पार कर गया हूँ—यौवन की वाकी थैली को झटक लेने के लिए पचासवी रास्ते के किनारे वैठी हुई है, उसकी लाठी का सिरा यहाँ से दिखाई दे रहा है। अव जेव की

पूर्ण रूप से मरना नही चाहता ।

मैने विश्वपति से कहा, "पात्र मेरा परिचित है, कोई वाधा नही पड़ेगी। आप लोग वात एव दिन पक्का करे ।"

"किन्तु लडकी को देखे विना तो और..."

"विना देखे ही हो जायगा ।"

"किन्तु, पात्र को यदि सम्पत्ति का लोभ हो तो वहुत ज्यादा नही है। माँ के मरने पर केवल यह घर मिलेगा, शायद थोडा-वहुत और मिल जाय ।"

"पात्र की अपनी सम्पत्ति है, उसके लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नही है।"

"उनका नाम, विवरण आदि . "

"यह अभी नही वताऊँगा, क्योकि चर्चा फैलने पर विवाह मे वाधा पड़ सकती है।"

"लडकी की माँ को तो उसका कुछ विवरण देना पड़ेगा ।"

"कह दे, व्यक्ति अन्य साधारण मनुष्यों के समान गुण-दोपो से युक्त है। दोप इतने अधिक नही है, जिनके लिए चिंतित होना पड़े; गुण भी इतने अधिक नही है कि लोभ हो। जहाँ तक मैं जानता हूँ, इन वातो से कन्याओ के माता-पिता उसे विशेष रूप से पसन्द करते हैं; स्वय कन्याओ के अपने मन की वात की ठीक पता नही चल पाता ।"

विश्वपति वावू इस मामले से अत्यन्त कृतज्ञ हुए तो उनके प्रति मेरी भक्ति वढ गई। उसके पहले जिस कार-वार मे उनके साथ मेरी दरे तय नही हो रही थी, उनमे नुकसान सहकर भी मैं रजिस्ट्री प्रमाण-पत्र सही कराने के लिए उत्सुक था। जाते समय वे कह गए, "पात्र से कहिएगा, अन्य वातो मे जैसी भी हो, ऐसी गुण-वती लडकी कही नही मिलेगी ।"

जो कन्या समाज के आश्रय और आदर से वचित है उसे यदि हृदय मे प्रतिष्ठित कर लिया जाय तो क्या वह अपने- आपको उत्सर्ग करने मे तनिक भी कृपणता करेगी? जिस लडकी की आशाएँ वडी होती है उसीकी आशा का अन्त नही होता। किन्तु इस दीपालि का दीपक मिट्टी का था, अतः मेरे मिट्टी के घर के कोने मे उसकी ज्योति की हेठी न होगी।

सन्ध्या समय रोशनी जलाकर विलायती अखबार पढ रहा था कि सूचना मिली, एक लडकी मुझसे मिलने आई है। घर मे कोई महिला नही थी, इसलिए मैं परेशान हो उठा। कोई शिष्ट उपाय सोच पाऊँ, इससे पहले ही लडकी ने कमरे मे आकर प्रणाम किया। वाहर से किसी को विश्वास नही होगा, किन्तु मैं वहुत ही

लजीला आदमी हूँ। न मैंने उसके मुँह की ओर देखा, न कोई बात कही। वह बोली, "मेरा नाम दीपालि है।"

गला बड़ा मीठा था। साहस करके मुँह की ओर देखा, वह चेहरा बुद्धि और कोमलता से सिक्त था। सिर पर पल्ला नही था—सादी देशी धोती आजकल के फैशन के अनुसार पहने हुए थी। क्या बात करूँ यही सोच रहा था कि इतने मे वह बोली, "मेरे विवाह के लिए आप कोई प्रयत्न न करे।"

और जो हो, दीपालि के मुँह से इस प्रकार की आपत्ति की मैंने प्रत्याशा नही की थी। मैंने सोच रखा था, 'विवाह के प्रस्ताव से उसके देह मन, प्राण कृतज्ञता से भर उठेगे।'

पूछा, "ज्ञात अज्ञात किसी भी व्यक्ति से तुम विवाह नही करोगी?"

उसने कहा, "नही, किसी व्यक्ति से नही।"

यद्यपि मनस्तत्त्व की अपेक्षा वस्तुतत्त्व की मेरी अभिज्ञता अधिक है—विशेप रूप से नारी का मन मेरे लिए बँगला हिज्जो से भी कठिन है, तो भी बात का सीधा अर्थ मुझे सच्चा अर्थ प्रतीत नही हुआ। मैंने कहा, "जो पात्र मैंने तुम्हारे लिए चुना है वह अवज्ञा करने योग्य नही है।"

दीपालि बोली, "मैंने उनकी अवज्ञा नही की, किन्तु मैं विवाह नही करूँगी।"

मैंने कहा, "वह व्यक्ति भी सच्चे मन से तुम पर श्रद्धा करता है।"

"किन्तु, नही, मुझसे विवाह करने के लिए न कहे।"

"अच्छा, नही कहूँगा, किन्तु क्या मैं तुम्हारे किसी काम नही आ सकता?"

"मेरे लिए यदि लडकियो के किसी स्कूल मे पढाने का काम जुटाकर मुझे यहाँ से कलकत्ता ले चले तो बडा उपकार हो।"

मैं बोला, "काम मौजूद है, जुटा सकूँगा।"

यह बात पूरे तौर पर सच नही थी। लडकियो के स्कूल के बारे मे मैं क्या जानूँ? किन्तु लडकियो का स्कूल स्थापित करने मे तो कोई दोप नही है।

दीपालि ने कहा, "आप मेरे घर जाकर एक बार माँ से इस बात पर चर्चा करना चाहेगे?"

मैंने कहा, "मैं कल सवेरे ही आऊँगा।"

दीपालि चली गई। मेरा अखबार पढना समाप्त हो गया। छत पर जाकर चौकी पर बैठ गया। तारागणों से प्रश्न किया, 'कोटि-कोटि योजन दूर स्थित तुम क्या सचमुच चुपचाप बैठे-बैठे मनुष्य के जीवन के सम्पूर्ण कर्म-सूत्र एवं सम्बन्ध-सूत्र बुनते रहते हो?'

इसी बीच बिना कोई सूचना दिये विश्वपति का मँझला लड़का श्रीपति

अचानक छत पर आ उपस्थित हुआ। उसके साथ जो बातचीत हुई, उसका सार यह है—

श्रीपति दीपालि से विवाह करने के हठ मे समाज छोड़ने के लिए प्रस्तुत था। पिता कहते थे, ऐसा दुष्कार्य करने पर वे उसे त्याग देंगे। दीपालि कहती, उसके लिए इतना बड़ा दु:ख, अपमान और त्याग कोई स्वीकार करे इतनी योग्यता उसमे नही है। इसके अतिरिक्त श्रीपति वचपन से ही धनी घर मे पला है; दीपालि के मत में वह समाजच्युत एवं निराश्रित होकर दारिद्रय का कष्ट नही सह सकेगा। इसीको लेकर वहस छिड़ रही थी, किस प्रकार इसका निर्णय नही हो पा रहा था। ठीक इस संकट के समय मैंने वीच मे पडकर उनके वीच और एक पात्र को खडा करके समस्या की जटिलता अत्यन्त विपम कर दी। इसी हेतु श्रीपति मुझसे इस नाटक मे से प्रूफ-शीट के कटे अंश के समान निकल जाने के लिए कह रहा था।

मैं वोला, "जव आ ही पडा हूँ तो फिर निकलूँगा नही। और यदि निकलूँगा तो ग्रन्थि काटकर ही निकलूँगा।"

विवाह का दिन नही वदला गया, केवल पात्र वदल गया। मैंने विश्वपति का आग्रह पूरा कर दिया, किन्तु वे उससे सन्तुष्ट न हुए। दीपालि का अनुरोध मैं पूरा नही कर पाया, किन्तु उसके भाव से लगा, वह सन्तुष्ट थी। पता नही स्कूल मे काम खाली था या नही, किन्तु मेरे घर मे कन्या का स्थान खाली था, वह भर गया। मुझ-जैसा फालतू आदमी निरर्थक नही है, यह मेरे अर्थ ने ही श्रीपति के समक्ष प्रमाणित कर दिया। उसका गृह-दीप मेरे कलकत्ता के घर मे ही जला। सोचा था कि समय पर न किये गए स्थगित विवाह की पूर्ति असमय मे विवाह करके करनी पड़ेगी, किन्तु देखा ऊपर वाला प्रसन्न हो तो दो-एक क्लास लाँघकर प्रमोशन मिल जाता है। आज पचपन वर्ष की अवस्था मे मेरा घर नातिनियो से भर गया है, ऊपर से एक नाती भी आ धमका है। किन्तु, विश्वपति वावू के साथ मेरा कार-वार वन्द हो गया है—क्योकि, उन्हे पात्र पसन्द नही आया।

● ● ●